व्याकरणग्रन्थाः।

नाम.		की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
३२३ लघुशब्देन्दुशेखर काशीके छा.		५-०	०-८
३२४ सिद्धान्तकौमुदीअष्टाध्यायी, गणपाठ, धातुपाठ, लिङ्गानुशासन पा०अक्षर मोटाजिल्द	खे	४-०	०-१२
३२५ अष्टाध्यायी, गणपाठ, धातुपाठ आदि....	खे	१-०	०-२
३२६ सिद्धांतकौमुदी अतिउत्तम और बारीक टैपमें छपके तैयार है	खे	२-०	०-४
३२७ लघुसिद्धान्तकौमुदी टिप्पणीसहित जिल्द अक्षर बडा सूत्र और वृत्ति खुलासेवार है.	क	०-१२	०-२
३२८ तथा सादा जिल्द	क	०-१०	०-१॥
३२९ लघुसिद्धान्तकौमुदी टिप्पणीसहित छोटा	क	०-४	०-१
३३० सिद्धान्तचन्द्रिका सुबोधिनीटीका और तत्त्वदीपिकासह संपूर्ण	खे	४-०	०-८
३३१ सिद्धान्तचन्द्रिका उत्तरार्द्ध सुबोधिनी और तत्त्वदीपिकासह	खे	२-०	०-४
३३२ सिद्धान्तचन्द्रिका सटीक पूर्वार्द्ध सुबोधिनी और तत्त्वदीपिका टीका	खे	२-०	०-४
३३३ तत्त्वबोधिनी कौमुदीके पृष्ठाङ्कसह पूर्वार्द्ध	१	२-८	०-६
३३४ रूपमालाव्याकरणका षड्लिङ्गविभाग	खे	०-६	०-॥
३३५ ,, सन्धिभागः, अव्ययार्थभागः प्रयोगविधिसंग्रहः (कारकसमासतद्धितादिक) क्रियाकलापः आख्यातचद्रिका धातुरूपभेदः श्लोकयोजनिकोपाय	खे	१-४	०-२
३३६ सन्धिविभाग	खे	०-५	०-॥
३३७ अव्ययार्थविभाग	क	०-३	०-॥
३३८ प्रयोगविधि	क	०-२	०-॥
३३९ कारकसमासतद्धितादिक क्रियाकलाप आख्यातचन्द्रिका धातुरूपभेद श्लोकयोजनिकोपाय	२	०-६	०-१
३४० सारस्वत चद्रकीर्ती उत्तरार्ध		२-०	०-४
३४१ सारस्वतसटीक प्रसादटीका	क	०-१२	०-२
३४२ सारस्वतमूल पूर्वार्द्ध जिल्द टाईपका....	क	०-८	०-१

क्रमांक व नाम		मूल्य	डाकव्यय
३४३ सारस्वत तीनों वृत्ति	क	०–१२	०–२
३४४ सारस्वत चन्द्रकीर्त्तिटीकासह परमोत्तम	क	१–४	०–२
३४५ ” ” तथा रफ कागजका	क	१–०	०–२
३४६ सारस्वत भा० टी० (व्याकरण)	खे	२–०	०–४
३४७ कारकवादार्थ शब्दबोध व्याकरणन्याय	क	०–२	०–॥
३४८ सारस्वत माधवीटीकासमेत	सुं	२–०	०–३
३४९ धातुरूपावलि लघुधातुपाठसहित	क	०–३	०–॥
३५० शब्दरूपावलि एकाक्षरीकोष सहित	क	०–१॥	०–॥
३५१ समासचक्र	क	०–१	०–॥
३५२ समासकुसुमावलि	क	०–२	०–॥
३५३ लघुकौमुदी भा० टी० अतिउत्तम	क	२–०	०–४
३५४ सिद्धांतचद्रिका उत्तरार्ध सुबोधिनी, तत्वदिपीका सस्कृत टीका और भाषाटीकासह छपती है			
३५५ बालसंस्कृतप्रभाकर नवीन संस्कृत शिखने-वालेको बहुत उपयोगी है	क	०–८	०–१
३५६ संस्कृतनामावली भाषाटीका	क	०–२	०–॥
३५७ लिङ्गबोध व्याकरण भाषाटीका	खे	०–२	०–॥
३५८ लघुभाष्य सारस्वतका		३–०	०–८
३५९ कारकस्वरूप भाषाटीका सहित [व्याकरण]	खे	०–६	०–१
३६० सिद्धान्त चद्रिका मूल	खे	०–१०	०–१
३६१ अर्थप्रकाशिका (व्याकरण) पढनेवालोंको अती उपयोगीहै भाषाभाष्यभीहै	खे	०–८	०–१
३६२ शब्दरत्न मनोरमा .... (काशी)		९–०	०–१२
३६३ सस्कृतारोहण भाषाटीका समेत	रं	०–६	०–१
३६४ सस्कृतप्रदीप भाषाटीका अतिउत्तम	क	०–३	०–॥
३६५ सस्कृतशिक्षामंजरी	रं	०–१॥	०–१

गोविंदराजीय भूषण, तानिश्लोकी, रामानुजी इन
तीनों टीकाओंसहित–

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण.

महाशयो ! देखो इस अपूर्व भूषणटीकाकी पांडित्यशैली, सुगमता, विचारचातुर्य आदि सब अद्भुत गुण कैसे चमकते

है. देखो 'भूषण' यह नामभी कैसा अन्वर्थ रक्खा गया है जिसके श्रवणमात्रसेही कल्पना होती है कि रामायणरूपी भगवान् रामचंद्रजीकी मूर्तिको टीकारूपी अलंकारोंसे अलंकृत किया है और ऐसीही टीकाकारने कल्पना कर रचना की है, देखो-कि उक्त भगवान्‌के बालकांडरूपी पादको टीकारूपी मणिमंजीर (पायजेब), अयोध्याकांडरूपी जघनको पीतांबर, आरण्यकांडरूपी कटिको रत्नमेखला (कंदनी), किष्किंधाकांडरूपी हृदय और कंठको मुक्ताहार (मोतियोंका कंठा), सुंदरकांडरूपी ललाटको शृंगारतिलक, युद्धकांडरूपी शिरको रत्नकिरीट और उत्तरकांडरूपी ऊपरके भागको मणिमुकुट, इस तरह ये गहने अर्पण कर रामायणरूपी भगवान्‌को सजाया है. तो इस व्याख्यामें क्या कम है कुछ नहीं फिर लेनेमें क्या हरज है झट लीजिये और इसका पाठ कर अपना जन्म कृतार्थ कीजिये. यह २५ रुपये कीमतका पुस्तक लेनेवालोंको भगवद्गुणदर्पणभाष्य आदि व्याख्यात्रयसमेत विष्णुसहस्रनाम भेंट मिलेगा.

मालविकाग्निमित्रं. (नाटकम्)

बालबोधिनीटीकायुतम् ।

विदितचरमेव सर्वेविदुषामस्मिन् किल भारतवर्षे विविधसस्कृतविद्यापारावारपारीणस्य निखिलपण्डितमण्डलीमण्डमायमानस्य कविरत्नस्य श्रीकालिदासस्य तान्नि प्रख्यातमाधिकोपम्यादिगुणगुणितं सुजनमान्यं सुप्रसिद्धं मालविकाग्निमित्रं नाम नाटकम् । अस्य रचनासौन्दर्यादि वर्णनं तु एतत्कर्तुः कविचक्रवर्तिनः कालिदासस्य "पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे" इत्यादिना जेगीयमानकीर्तित्वेनसर्वैर्ज्ञायमानत्वात्पौनरुक्त्यायैव । एवं निसर्गरमणीयस्यास्य नाटकस्य रूपकत्वादनेकव्यवहारैरुपकारित्वेन एतद्ग्रहणात् सत्व्याख्यामन्तराऽस्य यथार्थज्ञाने प्रांशुलभ्यार्थमनुधावनो वामनानिव चेलियमानवबुध्य विद्वद्वरैर्न्यायविद्याधाधचरपत्युपाधिभी राशीवडेकरोपाव्हैः श्रीयुतआपाशास्त्रिभिरियं बालबोधिनी नाम व्याख्याऽकारि । अस्यां च व्याकरणच्छन्दोऽलङ्कारादिविषयाणां यथायथ प्रतिपादनादस्यार्थज्ञाने व्याख्येयमनीषोपयोगिनीति सर्वे रसज्ञा विद्वांसोऽस्याः समहेण कृतार्थीकुर्वन्तु व्याख्याकारा

नलमानीविस्तरेणेति शुभम् । विदांकुर्वन्तु पुस्तकमिद मोहमयीसमीपवर्ति कल्याणनगरस्थसुप्रसिद्ध " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " नामक मुद्रायन्त्रतो लभ्यमत पत्रादिप्रेषण तत्रैव कर्तव्यमिति जिघृक्षव इति ॥ मूल्यमस्य ग्राहकसौकर्यार्थ केवल सपादो रूप्यकः (१।)

अन्वितार्थप्रकाशिकाख्यव्याख्यासहित-

श्रीमद्भागवत.

(व्याख्याग्रन्थसंख्या ७००००)

यह टीका बूंदी महाराजाश्रित पं० गंगासहायजीने बनाई है. इसमें मल्लि नाथके ढंगपर अन्वयक्रमसे सरल और कठिन सब श्लोकोंका अर्थ सुगम रूपसे लिखा है और टीकामें जिन जिन बातोंका लिखना आवश्यक है वे सब संक्षेप और सुगमतासे लिख दी हैं इसमें श्रीधरजीकी टीकाकी तो प्रायः सब बात आगई और बहुतसी बातें तोषिणीसारार्थसंदर्शिनी आदिसेभी लीगई है और सुगमता अन्वयक्रम और संक्षेपपर पूरी दृष्टि रक्खी गई है इस टीकाके शेषमें भागवतोपयोगी वेदांत सांख्यादिक कितनेक मत सुगम रीतिसे लिख दिये हैं. इसमें किसी मतका पक्षपात अथवा खंडन नहीं किया गया है । सब मतोंके आचार्योंका आदरपूर्वक स्मरण किया गया है. और भागवतके स्कंध और प्रकरणोंका अभिप्राय और श्लोकोंके छन्द तथा अध्यायोंके श्लोकोंकी गणना लिख दी है औरभी बहुत बातें हैं. इसका मूल्य अत्यल्प केवल १२ रुपये. देखनेसे मालूम होगा. पुस्तक समग्र छप चुका. नमूना मंगालो. काशि- आदि ठिकानेके विद्वानोंकी सेंकडो सम्मति आई हैं.

सुगमकौमुदी.

विदेशी विद्वान्भी प्रायः इस बातको सादर स्वीकार करते हैं कि हजारसे ऊपर लोकप्रसिद्ध भाषाओंमें संस्कृत भाषा अधिक ललित, अधिक निर्दोष और अधिक प्राचीन है। व्याकरण विना उसमें पूर्ण कुशलता प्राप्त नहीं होती है । यद्यपि व्याकरण ग्रंथ अनेक हैं परंतु यह सबही लोगोंकी सम्मति है कि पाणिनि व्याकरण सबसे अधिक प्रामाणिक सर्वोपजीवी और व्यभिचारन्यूनतादि दोषरहित है । परंतु पाणिनि व्याकरण अति कठिन होनेसे बालकोंके समझमें आने योग्य नहीं है । काशिकावृत्ति यद्यपि सुगम है परंतु उसमें विस्तार बहुत है, धातुपाठ नहीं है और प्रक्रियाक्रम नहीं है इसलिये अल्पबुद्धिवालोंके अनुकूल नहीं हो सकती है। सिद्धान्तकौमुदी चाहे प्रक्रियानुकूल और निर्दोष है तथापि वह कठिन होनेसे बालकोंके उपयोगी नहीं है और उसमें विस्तारभी अधिक हैं। तथापि सर्वांगपूर्ण और निर्दोष सिद्धान्तकौमुदी ही जानकर बालकोंके उसमें प्रवेशके लिये वरदराजने लघुकौमुदीकी रचना की है। उसमें यद्यपि विस्तार न करनेपरभी कितनेही उपयोगी विषय लिखे गये हैं तथापि सिद्धान्तकौमुदीमें प्रवेश करनेके लिये जितने विस्तारकी अपेक्षा है उससे दुगुना विस्तार कर दिया गया है, बालकोंके उपयुक्त सुगमता उसमें नहीं है, बालकोंके अनुपयोगी बहुश्रेयसि इत्यादि शब्द, त्वै, द्वै इत्यादि अव्यय, कटे ह इत्यादि धातु लिखकर अनेक उपयोगी धातु तथा अव्यय छोड दिये गये हैं इन कारणोंसे वहभी मन्दमति लोगोंके उपयोगी नहीं है किन्तु जो कोई लघुकौमुदी पढताभी है तो उसे व्याकरणका पूर्ण ज्ञान होनेके लिये सिद्धान्तकौमुदी पढना पडता है और इस तरह अनन्य गतिसे लघुकौमुदी दुबारा पढनी पडती हैं। इस कारण मुझ मन्दमतिने अपने जैसे मन्दमति लोगोंके उपयोगके लिये, अपने अनुभवके अनुसार सिद्धान्तकौमुदीके लौकिक शब्दोंके प्रकरणके तीन खंड कर दिये हैं और इसका नाम सुगम- सिद्धान्तकौमुदी रक्खा है। इसमें बालबोधके लिये प्रथम सुगम फिर उत्तरोत्तर कठिन इस रीतिसे और इसी क्रमसे विषययोजना की है जिससे पढनेमें बालकोंको क्रम क्रमसे सिद्धान्तकौमुदीका पूरा पूरा ज्ञान हो जाय। इसके प्रथम खंडमें बहुत प्रसिद्ध समस्त शब्द, अव्यय और धातु हैं, लघुकौमुदीके समान प्रमाण होनेपरभी उसकी अपेक्षा चौगुने धातु हैं और जो शब्द अव्यय तथा धातु अप्रसिद्ध हैं उन्हें छोड दिया गया है । इतनेपरभी प्रथमखंडके दो भाग किये गये हैं । प्रथमखंडके

प्रथम भागमें बालकोंके उपयोगी सुगम और सामान्य विषय है जिनसे उन्हें सिद्धान्तकौमुदी तथा अन्य शास्त्रोंमें प्रवेश करनेकी योग्यता होजाय। इस छोटेसे ग्रंथमें सुगमतासे सन्धि, सुप्, तिङन्त, णिच्, सन्, यङ्, यङ्लुङ्, नामधातु भावकर्म, कृदन्त, कारक, समास, तद्धित, स्त्रीप्रत्ययका सामान्य बोध होजाता है। प्रथम खडके द्वितीय भागमें प्रथम भागके बचे बचाये प्राय समस्त सधि, सुबन्त अव्यय जो लोकप्रसिद्ध है और सब धातु है इसलिये मध्यकौमुदीके अध्ययनसे अधिक फल होता है। सामान्यत प्रचारमें आनेवाले णिजन्तादि विषय जो प्रथम खडमें नहीं लिखे गये उनका मध्यखडमें उल्लेख है। इसमें समस्त बचेहुए कारक, सारे बचे हुए कर्म समस्त सटीक परिभाषा, सर्वोत्तम सटीक लिंगानुशासन लिखा गया है इसलिये मध्य खडके अध्ययनसे प्राय पूरी पूरी व्युत्पत्ति होजाती है। व्युत्पत्तिके लिये तीसरे खडकी अपेक्षा नही रहती है। प्रथम और द्वितीय खडमे जो विषय शेष रह गये है जो अप्रसिद्ध हैं, जिनका प्रचार बहुत थोडा है वे तृतीयखडमें है इसमे गौणादिशब्द, अप्रसिद्ध धातु णिजन्तसे बचे हुए उणादिक, सटीक गणपाठ, सर्वशेष फक्किकादि विषय तृतीय खडमें दिये गये है। इसलिये जो केवल अन्य शास्त्रोंमें प्रवेश करनेके लिये व्याकरण पढना चाहें वे प्रथमखडका आद्य भाग अथवा समग्र प्रथमखड पढे। जो लोकप्रसिद्ध महाकाव्यादि सर्व प्रयोगोंकी व्युत्पत्ति करना चाहते हों वे दोनोंखड पढले और जिनकी इच्छा सर्वलौकिक प्रयोगोसहित पूर्ण व्युत्पत्तिकी हो वे तीसरे खडकाभी अभ्यास करले। यही इस सुगम सिद्धान्तकौमुदीका प्रयोजन है। श्रीकृष्ण दासजीके पुत्र सेठगगाविष्णुजीके लक्ष्मीवेंकटेश्वर यन्त्रालयमें इसके ये दो खड मुद्रित होके प्रस्तुत आपके हाथमेंही है, तृतीय खड छप रहा है तृतीय खड छपजाने पूर्व जो मूल्य देंगे उन्हें ३ रुपयेमें और छपजानेके अनन्तर ४ में मिलेगी। इति शुभम्।

श्रीमान् बुन्दीनरेशका आश्रित विद्वानोंका किंकर

गंगासहायशर्मा.

पुस्तके मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना.

कल्याण-मुम्बई.

श्रीः ।

श्रीपरमेश्वराय नमः ॥

अथ सुगमकौमुदीप्रारम्भः ।

श्रीशन्नत्वा त्रिभिः खण्डैर्विभज्य सुगमाध्वना ॥
भट्टोजिकृतकौमुद्याः कुर्वे सुगमकौमुदीम् ॥ १ ॥
तत्रादौ प्रायोपयोगी बालार्हः प्रक्रियाक्रमः ॥
अतिसंक्षेपतः प्रोक्तः शेषो विस्तरतस्ततः ॥ २ ॥

अइउण् १ ऋऌक् २ एओङ् ३ ऐऔच् ४ हयवरट् ५ लण् ६ ञमङणनम् ७ झभञ् ८ घढधष् ९ जबगडदश् १० खफछठथचटतव् ११ कपय् १२ शषसर् १३ हल् १४ ॥

एषामन्त्या इतः । हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः । लण्मध्ये त्वित्संज्ञकः ॥

हलन्त्यम् १ । ३ । ३ ॥

उपदेशेऽन्त्यं हलित् । उपदेश आद्योच्चारणम् ॥

आदिरन्त्येन सहेता १ । १ । ७१ ॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा। यथा अण् इति अइउनां संज्ञा । अच् इति अइउऋऌएओऐऔ एषां संज्ञा । अणादयः प्रत्याहारा उच्यन्ते । तेषु इतान्तु न ग्रहणम् यथा अचि णकङानां न ग्रहणम् ॥

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः १ । २ । २७ ॥

उ १ ऊ २ ऊ ३ एषां कालइव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद्ध्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः । यथा अ १ आ २ आ ३ इ १ ई २ ई ३ उ १ ऊ २ ऊ ३ ऋ १ ॠ २ ॠ ३ ऌ १ ऌ ३ अयं दीर्घो नास्ति ए २ ए ३

अचां नव नव भेदा यथासम्भवम् ।			
	अ इ उ ऋ	ऌ	ए ओ ऐ औ
ह्रस्वाः	ह्रस्वोदात्ताः	ह्रस्वोदात्तः	एषां ह्रस्वा न सन्ति
	ह्रस्वानुदात्ताः	ह्रस्वानुदात्तः	
	ह्रस्वस्वरिताः	ह्रस्वस्वरितः	
दीर्घाः	दीर्घोदात्ताः	अयं दीर्घो नास्ति	दीर्घोदात्ताः
	दीर्घानुदात्ताः		दीर्घानुदात्ता
	दीर्घस्वरिताः		दीर्घस्वरिताः
प्लुताः	प्लुतोदात्ताः	प्लुतोदात्तः	प्लुतोदात्ताः
	प्लुतानुदात्ता	प्लुतानुदात्तः	प्लुतानुदात्ता
	प्लुतस्वरिता.	प्लुतस्वरितः	प्लुतस्वरिता.

अचाम्प्रत्येकं यथासम्भवमष्टादश भेदा. ।			
	अ इ उ ऋ	ऌ	ए ओ ऐ औ
ह्रस्वाः	ह्रस्वोदात्तानुनासिकः	ह्रस्वोदात्तानुनासिकः	एषां ह्रस्वा न सन्ति
	ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः	ह्रस्वोदात्ताननुनासिकः	
	ह्रस्वानुदात्तानुनासिकः	ह्रस्वानुदात्तानुनासिकः	
	ह्रस्वानुदात्ताननुनासिकः	ह्रस्वानुदात्ताननुनासिकः	
	ह्रस्वस्वरितानुनासिकः	ह्रस्वस्वरितानुनासिकः	
	ह्रस्वस्वरिताननुनासिक.	ह्रस्वस्वरिताननुनासिकः	
दीर्घाः	दीर्घोदात्तानुनासिकः	अस्य दीर्घो नास्ति	दीर्घोदात्तानुनासिकाः
	दीर्घोदात्ताननुनासिकः		दीर्घोदात्ताननुनासिकाः
	दीर्घानुदात्तानुनासिक.		दीर्घानुदात्तानुनासिकाः
	दीर्घानुदात्ताननुनासिकः		दीर्घानुदात्ताननुनासिकाः
	दीर्घस्वरितानुनासिकः		दीर्घस्वरितानुनासिकाः
	दीर्घस्वरिताननुनासिकः		दीर्घस्वरिताननुनासिकाः
प्लुताः	प्लुतोदात्तानुनासिकः	प्लुतोदात्तानुनासिकः	प्लुतोदात्तानुनासिकाः
	प्लुतोदात्ताननुनासिकः	प्लुतोदात्ताननुनासिकः	प्लुतोदात्ताननुनासिकाः
	प्लुतानुदात्तानुनासिकः	प्लुतानुदात्तानुनासिकः	प्लुतानुदात्तानुनासिकाः
	प्लुतानुदात्ताननुनासिकः	प्लुतानुदात्ताननुनासिकः	प्लुतानुदात्ताननुनासिकाः
	प्लुतस्वरितानुनासिकः	प्लुतस्वरितानुनासिकः	प्लुतस्वरितानुनासिकाः
	प्लुतस्वरिताननुनासिकः	प्लुतस्वरिताननुनासिकः	प्लुतस्वरिताननुनासिकाः

एचो ह्रस्वा न सन्ति ओ २ ओ ३ ऐ २ ऐ ३ औ २ औ ३ । एवं ह्रस्वादिभेदभिन्नोऽच् प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा । एवं स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यान्द्विधा । तथाहि ॥

उच्चैरुदात्तः १ । २ । २९ ॥

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः ॥

नीचैरनुदात्तः १ । २ । ३० ॥

समाहारः स्वरितः १ । २ । ३१ ॥

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाह्रियेते यस्मिन्सोऽच् स्वरितसंज्ञः ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १ । १ । ८ ॥

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः यथा अँ आँ इँ ईँ इत्यादि–तदित्थम् । अइउऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः । ऌवर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् ॥

इति १ अंशः ।

अथ वर्णानां स्थानप्रयत्नाः । अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः । इचुयशानां तालु । ऋटुरषाणां मूर्द्धा । ऌतुलसानां दन्ताः । उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङणनानां नासिका च । एदैतोः कण्ठतालु । ओदौतोः कण्ठोष्ठम् । वकारस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य । यत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो बाह्यश्च । आद्यः पञ्चधा । स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतविवृतसंवृतभेदात् । तत्र स्पृष्टं प्रयतनं स्पर्शानाम् । ईषत्स्पृष्टं यणाम् । ईषद्विवृतं शलाम् । विवृतमचाम् । ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम् । प्रक्रियादशायान्तु विवृतमेव । बाह्य एकादशधा श्वासाघोषविवारा नादघोषसंवारा उदात्तानुदात्तस्वरिताः महाप्राणोऽल्पप्राणश्चेति । झभघढधाः हकारोऽनुस्वारश्च नादघोषसंवारमहाप्राणाः । शरो विसर्गः ≍क ≍पौ खफछठथाश्च श्वासाघोषविवारमहाप्राणाः । चयः श्वासाघोषविवाराल्पप्राणाः ।

(स्थानप्रयत्नचक्रम् ।)

वर्णाः	स्थानानि	वर्णाः	आभ्यन्तरप्रयत्नाः	वर्णाः	बाह्यप्रयत्नाः
अआआ३ कवर्गहविसर्गाः	कण्ठः	अ	प्रयोगे संवृतम् प्रक्रियायां विवृतम्	अआआ ३ इईई ३ उऊऊ ३ ऋॠॠ ३ लृलृ ३ एए ३ ऐऐ ३ ओओ ३ औऔ ३	नादघोषसंवाराल्पप्राणोदात्तानुदात्तस्वरिताः
ङ	कण्ठनासिकम्				
इईई ३ चवर्गयशाः	तालु				
ञ	तालुनासिकम्	आआ ३ इईई ३ उऊऊ ३ ऋॠॠ ३ लृलृ ३ एए ३ ऐऐ ३ ओओ ३ औऔ ३	विवृतम्		
उऊऊ ३ पवर्गोपध्मानीयाः	ओष्ठौ				
म	ओष्ठनासिकम्				
ऋॠॠ ३ टवर्गरषाः	मूर्द्धा			हझभघढधानुस्वाराः	नादघोषसंवारमहाप्राणाः
ण	मूर्द्धनासिकम्				
लृलृ ३ तवर्गलसाः	दन्ताः	कखगघङ चछजझञ टठडढण तथदधन पफबभम	स्पृष्टम्		
न	दन्तनासिकम्			खफछठथशषसविसर्ग ≍ क ≍ पाः	श्वासाघोषविवारमहाप्राणाः
एए ३ ऐऐ ३	कण्ठतालु				
ओओ ३ औऔ ३	कण्ठोष्ठम्				
व	दन्तोष्ठम्	यरलव	ईषत्स्पृष्टम्	चटतकप	श्वासाघोषविवाराल्पप्राणाः
जिह्वामूलीयः	जिह्वामूलम्				
अनुस्वारः	नासिका	शषसह	ईषद्विवृतम्	यरलवञमङणन जबगडद	नादघोषसंवाराल्पप्राणाः

यणो ञमो जशश्च नादघोषसंवारालपप्राणाः । अचः श्वासाघोपविवारालपप्राणोदात्तानुदात्तस्वरिताः । यमा वेदे एव प्रसिद्धाः ॥

तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् १ । १ । ९ ॥

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णम् । यथा अ १ आ २ आ ३ एते, मिथः सवर्णाः । कखगघङ एते च ॥

ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ॥ * ॥

अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः १ । १ । ६९ ॥

अविधीयमानोऽण् उदिष सवर्णस्य संज्ञा । अत्रैवाण् परेण णकारेण । कुचुटुतुपु एते उदितः । तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा । तथा इकारोकारौ । ऋकारस्त्रिंशतः एवम्लृकारोऽपि । एचो द्वादशानाम् । एदैतोरोदौतोश्च न मिथः सावर्ण्यम् । ऐऔच्सूत्रारम्भसामर्थ्यात् । अनुनासिकाननुनासिकभेदेन यवला द्विधा । तेनाननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञाः ।

तपरस्तत्कालस्य १ । १ । ७० ॥

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा । यथा ॥

अदेङ्गुणः १ । १ । २ ॥

अदेङ् च गुणसंज्ञः । अत्र-अत् इति तपरोऽकारः ह्रस्वानामेव षण्णां सञ्ज्ञा एवन्तात्पर एङ् दीर्घाणामेव षण्णां षण्णां संज्ञा ॥

वृद्धिरादैच् १ । १ । १ ॥

आदैच वृद्धिसंज्ञः ॥

परः सन्निकर्षः संहिता १ । ४ । १०९ ॥

वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः ॥

सुप्तिङन्तं पदम् १ । ४ । १४ ॥

सुबन्तं तिङन्तञ्च पदसंज्ञम् ॥

स्थानेऽन्तरतमः १ । १ । ५० ॥

प्रसङ्गे सति सदृशतम आदेशः ॥

इति संज्ञाप्रकरणम् । इति २ अंशौ ।

इको यणचि ६ । १ । ७७ ॥

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये । सुध्युपास्यः । धात्रित्यादि वक्ष्यते । मध्वरिः धात्रंशः लाकृतिः ॥

एचोऽयवायावः ६ । १ । ७८ ॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

यथासंख्यमनुदेशः समानाम् १ । ३ । १० ॥

समसंबंधी विधिर्यथासंख्यम् । हरये । विष्णवे । नायकः । पावकः ॥

आद्गुणः ६ । १ । ८७ ॥

अवर्णादचि पूर्वपरयोरेको गुणादेशः । उपेन्द्रः । रमेशः । गङ्गोदकम् ॥

उपदेशेऽजनुनासिक इत् १ । ३ । २ ॥

उपदेशेऽनुनासिकोऽजित्संज्ञः । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः । लण्सूत्रस्थोऽकारोऽनुनासिकः प्रतिज्ञातः । तेन सहोच्चार्यमाणो रेफः उरण् रपर इत्यत्र रलयोः संज्ञा ॥

उरण् रपरः १ । १ । ५१ ॥

ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम्तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । तेन कृष्णर्द्धिरित्यादावर् तवल्कार इत्यादावल् आन्तरतम्यात् । कृष्णर्द्धिः । हलोपादिकं वक्ष्यते । तवल्कारः ॥

वृद्धिरेचि ६ । १ । ८८ ॥

---

१ प्रक्रियारीतिशास्त्रेभ्य एव ज्ञाता. [illegible] प्रत्याहारादौ [illegible] लिखितम् । तत्र प्रक्रियाभ्यासदार्ढ्यं [illegible] शक्यानीति अत्र लिख्यन्ते ।

आदेचि वृद्धिरेकादेशः । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् । गङ्गौघः । देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठ्यम् ॥

अकः सवर्णे दीर्घः ६ । १ । १०१ ॥

अकः सवर्णेऽचि परे दीर्घ एकादेशः । दैत्यारिः । रमात्र । श्रीशः । विष्णूदयः । होतॄकारः ॥

एङः पदान्तादति ६ । १ । १०९ ॥

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः । हरेऽव । विष्णोऽव ॥

अदर्शनं लोपः १ । १ । ६० ॥

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञम् ॥

लोपः शाकल्यस्य ८ । ३ । १९ ॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ।

पूर्वत्रासिद्धम् ८ । २ । १ ॥

सपादसप्ताध्यायीं प्रति त्रिपाद्यसिद्धा ।

त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । इति लोपस्यासिद्धत्वान्न सन्धिः । हर इह । हरयिह । विष्ण इह । विष्णविह । श्रिया एषः । श्रियायेषः । गुरा अयम् । गुरावयम् ॥

इति ३ अंशाः ।

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ६ । १ । १२५ ॥

प्लुताः प्रगृह्याश्चाचि नित्यं प्रकृत्या ॥

अचोऽन्त्यादि टि १ । १ । ६४ ॥

अचाम्मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टिसंज्ञम् ॥

दूराद्धूते च ८ । २ । ८४ ॥

दूरात्संबोधने यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतः । एहि कृष्णा ३ अत्र गौश्चरति ॥

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १ । १ । ११ ॥

ईदूदेदन्तं द्विवचनं प्रगृह्यसंज्ञम् । हरी एतौ । विष्णू इमौ । गङ्गे अमू । पचेते इमौ ॥

अदसो मात् १ । १ । १२ ॥

अस्मात्परावीदूतौ प्रगृह्यौ । अमी ईशाः । अमू आसाते ॥

चादयोऽसत्त्वे १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यार्थाश्चादयो निपातसंज्ञाः ॥

ओत् १ । १ । १५ ॥

आदन्तो निपातः प्रगृह्यः । अहो ईशाः ॥

स्तोः श्चुना श्चुः ८ । ४ । ४० ॥

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्तः । हरिश्शेते । रामश्चिनोति । सच्चित् । शार्ङ्गिञ्जय ॥

शात् ८ । ४ । ४४ ॥

शात्परस्य तोश्चुर्न । प्रश्नः । अश्नाति ॥

ष्टुना ष्टुः ८ । ४ । ४१ ॥

स्तोः ष्टुना योगे ष्टुः । रामष्षष्ठः । रामष्टीकते । पेष्टा । तट्टीका । चक्रिण्ढौकसे ॥

न पदान्ताट्टोरनाम् ८ । ४ । ४२ ॥

पदान्ताट्टोरनामः स्तोः ष्टुर्न । षट्सन्तः। षट् ते । नेह । षण्णाम् ॥

अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥ ❀ ॥

षण्णवतिः षण्णगर्यः ॥

तोः षि ८ । ४ । ४३ ॥

तवर्गस्य षकारे परे न ष्टुत्वम् । सन्षष्ठः ॥

झलाञ्जशोऽन्ते ८ । २ । ३९ ॥

पदान्ते झलां जशः । वागीशः ॥

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८ । ४ । ४५ ॥

यरः पदान्तस्यानुनासिके परेऽनुनासिको वा । एतन्मुरारिः । एतद्मुरारिः । स्पर्शस्यैव । नेह चतुर्मुखः ॥

प्रत्यये भाषायां नित्यम् ॥ ॥

चिन्मयम् ॥

तोर्लि ८ । ४ । ६० ॥

तवर्गस्य लकारे परे परसवर्णः । तल्लयः । विद्वाँल्लिखति । नकारस्यानुनासिको लकारः ॥

खरि च ८ । ४ । ५५ ॥

खरि झलाश्चरः । तत्पुत्रः । षट्पदः । ककुप्प्रदेशः ॥

झयो होऽन्यतरस्याम् ८ । ४ । ६२ ॥

पदान्ताज्झयः परस्य हस्य वा पूर्वसवर्णः । घोषस्य महाप्राणस्य हस्य तादृशो वर्गचतुर्थ एव । वाग्घरिः । वाग्हरिः । तद्धविः । तद्हविः ॥

इति ४ अंशाः ।

शश्छोऽटि ८ । ४ । ६३ ॥

पदान्ताज्झयः परस्य शस्य छो वाऽटि दस्य जश्त्वे चर्त्वम् । तच्छिवः । तच्शिवः ॥

छत्वममीति वाच्यम् ॥ ॥

तच्छ्लोकेन । तच्श्लोकेन ॥

मोऽनुस्वारः ८ । ३ । २३ ॥

मान्तस्य पदस्यानुस्वारो हलि ॥

अलोऽन्त्यस्य १ । १ । ५२ ॥

षष्ठीनिर्दिष्टान्त्यस्यादेशः । हरिं वन्दे ॥

अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ८ । ४ । ५८ ॥

अङ्कितः । अञ्चितः । कुण्ठितः । शान्तः । गुम्फितः ॥

वा पदान्तस्य ८ । ४ । ५८ ॥

पदान्तस्यानुस्वारस्य यथि परसवर्णो वा । त्वङ्करोषि त्वं करोषि। सय्यँन्ता । संयन्ता । सव्वँत्सर संवत्सरः । यल्ँलोकम् । यं लोकम् ॥

आद्यन्तौ टकितौ १ । १ । ४६ ॥

टित्कितौ यस्योक्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तावयवौ स्तः ॥

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८ । ३ । ३२ ॥

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तं यत्पदं ततः परस्याचो नित्यं ङमुट् आगमः । उकारोऽनुनासिकत्वादित् । इत्संज्ञालोपौ च सूत्रमवृत्तिकाले एव प्रयोगाद्बहिरेव भवत ॥

तस्य लोपः १ । ३ । ९ ॥

तस्येतो लोपः । प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्णीशः । सन्नच्युतः ॥

अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा ८ । ३ । २ ॥

अत्र रुप्रकरणे रोः पूर्वस्यानुनासिको वा ॥

अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः ८ । ३ । ४ ॥

अनुनासिकं विहाय रोः पूर्वस्मात्परोऽनुस्वारागमः ॥

विरामोऽवसानम् १ । ४ । ११० ॥

वर्णानामभावोऽवसानसञ्ज्ञः ॥

खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८ । ३ । १५ ॥

खरि अवसाने च रेफस्य विसर्गः पदान्ते ॥

नश्छव्यप्रशान् ८ । ३ । ७ ॥

अम्परे छवि नान्तस्य पदस्य रुः नतु प्रशान्शब्दस्य ॥

विसर्जनीयस्य सः ८ । ३ । ३४ ॥

खरि । चक्रिँस्त्रायस्व । राजँश्चित्रम् ।

इति ५ अंशाः ।

छे च ६ । १ । ७३ ॥

ह्रस्वस्य छे परे तुक् संहितायाम् । गच्छति । स्वच्छा । जश्त्वं चुत्वश्चर्त्वम् । शिवच्छाया ॥

दीर्घात् ६ । १ । ७५ ॥

दीर्घस्य छे तुक् । चेच्छिद्यते ॥

पदान्ताद्वा ६ । १ । ७६ ॥

दीर्घस्य पदान्तस्य छे तुग्वा । लक्ष्मीच्छाया । लक्ष्मीछाया ॥

अचो रहाभ्यां द्वे ८ । ४ । ४६ ॥

अचः पराभ्यां रेफहकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वा । हर्य्यनुभावः । हर्यनुभावः । नह्य्यस्ति । नह्यस्ति ॥

अनचि च ८ । ४ । ४७ ॥

अचः परस्य यरो द्वे वा न त्वचि । धात्त्रंशः । धात्रंशः ॥

झलां जश् झशि ८ । ४ । ५३ ॥

इति धस्य दः ॥

हलोऽनन्तराः संयोगः १ । १ । ७ ॥

अज्भिरव्यवहिता हलः संयोगसञ्ज्ञाः ॥

संयोगान्तस्य लोपः ८ । २ । २३ ॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः । इति प्राप्ते ॥

यणः प्रतिषेधो वाच्यः ॥ * ॥

सुद्ध्युपास्यः । सुध्युपास्यः ॥

झरो झरि सवर्णे ८ । ४ । ६५ ॥

हलः परस्य झरो लोपो वा सवर्णे झरि । कृष्णर्द्धिः । कृष्णर्धिः । विसर्जनीयस्य सः । विष्णुस्त्राता ॥

वा शरि ८ । ३ । ३६ ॥

शरि विसर्गस्य विसर्गो एव वा । हरिः शेते । हरिश्शेते ॥

कुप्वो ≍क ≍पौ च ८ । ३ । ३७ ॥

कवर्गे पवर्गे च परे क्रमाद्विसर्गस्य जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ विसर्गश्च । सत्वापवादः । हरि ≍ करोति । हरिः करोति । हरि ≍ पाति । हरिः पाति ॥

अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा १ । १ । ६५ ॥

अन्त्यादलः पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञः ॥

इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ८ । ३ । ४१ ॥

इकारोकारोपधस्याप्रत्ययस्य विसर्गस्य षः कुप्वोः । निष्प्रत्यूहम् । आविष्कृतम् । दुष्कृतम् ॥

ससजुषो रुः ८ । २ । ६६ ॥

पदान्तस्य सस्य सजुषश्च रुः । जश्त्वापवादः । हरिर्वन्द्यः ॥

अतो रोरप्लुतादप्लुते ६ । १ । ११३ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुः स्यादप्लुतेऽति । भो भगो इति यत्वापवादः । शिवोऽर्च्यः । रोः किम् । प्रातरत्र ॥

हशि च ६ । १ । ११४ ॥

अप्लुतादतः परस्य रोरुर्हशि । शिवो वन्द्यः । रोः किम् । प्रातर्गच्छ ॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८ । ३ । १७ ॥

एतत्पूर्वस्य रोर्यादेशः अशि । देवा इह देवायिह ॥

हलि सर्वेषाम् ८ । ३ । २२ ॥

भोभगोअघोअपूर्वस्य यस्य लोपो हलि । भो देवाः । भगो नमस्ते । अघो याहि । देवा नम्याः ॥

रो रि ८ । ३ । १४ ॥

रेफस्य रेफे परे लोपः ॥

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ६ । ३ । १११ ॥

ढकाररेफलोपनिमित्ते ढकाररेफात्मके वर्णे परे पूर्वस्याणो दीर्घः । पुना रमते । हरी रम्यः । मनस रथ । इत्यत्र रुत्वे कृते हशि चेत्युत्वे रोरीति लोपे प्राप्ते रोरीत्यस्यासिद्धत्वादुत्वमेव । मनोरथः ॥

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ६।१।१३२॥

अककारयोरेतत्तदोर्यः सुस्तस्य लोपो हलि नतु नञ्समासे । एष विष्णुः । स शम्भुः ॥

इति संधयः । इति ६ अंशाः ।

पुंसि[1] रामो हरिः सुश्रीः प्रधीः शम्भुः स्वभूः पिता ॥ धाताऽथ राजयज्वानौ दण्डी धीमान् मरुत् पचन् ॥ १ ॥ ददद्विद्वान् सेदिवांश्च वेधा अष्टादशोदिताः ॥

अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् १ । २ । ४५ ॥

धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तञ्च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दरूपं प्रातिपदिकसंज्ञम् ॥

कृत्तद्धितसमासाश्च १ । २ । ४६ ॥

कृत्तद्धितान्तौ समासश्च प्रातिपदिकसंज्ञाः । अत्रावयवार्थो व्युत्पत्तिस्तद्रहिता डित्थादयः शब्दा अव्युत्पन्नाः तेषामर्थवत्सूत्रेण प्रातिपदिकसञ्ज्ञा व्युत्पत्तिमन्तो रक्षितृदाशरथिराजपुरुषादयः रक्षणकर्त्ता दशरथापत्यं राजसम्बन्धी पुरुष इत्येषामवयवार्थास्तेषां कृत्तद्धितेत्यनेन सञ्ज्ञा रामशब्दे च मृगविशेषादावव्युत्पत्तिपक्षस्तत्रार्थवत्सूत्रेण सञ्ज्ञा । रमन्ते योगिनोऽत्रेति श्रीरामे व्युत्पत्तिपक्षस्तत्र कृत्तद्धितेत्यनेन सञ्ज्ञा एवमग्रेऽपि यथायोग्यम् ।

स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङ्योस्सुप् ४ । १ । २॥

ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाच्च परे स्वादयः प्रत्ययाः सु औ

---

[1] अत्राजन्ता हलन्ताश्च पुल्लिङ्गाः शब्दा क्रमेणैकत्र न्यस्ताः व्यवधानेन सङ्केतस्य निष्फलत्वात् । एवं स्त्रीक्लीबयोरपि ॥

जस् प्रथमा । अम् औट् शस् द्वितीया । टा भ्याम् भिस् तृतीया । ङे भ्यां भ्यस् चतुर्थी । ङसि भ्यां भ्यस् पञ्चमी । ङस् ओस् आम् षष्ठी । ङि ओस् सुप् सप्तमी । इति प्राचां संज्ञाः ॥

चुटू १ । ३ । ७ ॥

प्रत्ययाद्यौ चुटू इतौ ॥

लशक्वतद्धिते १ । ३ । ८ ॥

तद्धितवर्जप्रत्ययाद्या लशकवर्गा इतः ॥

न विभक्तौ तुस्माः १ । ३ । ४ ॥

विभक्तिस्थास्तवर्गसकारमकारा इतो न ॥

विभक्तिश्च १ । ४ । १०४ ॥

सुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ ॥

सुपः १ । ४ । १०३ ॥

सुपः त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रत्येकमेकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि ॥

द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने १ । ४ । २२ ॥

द्वित्वैकत्वयोरेते स्तः ॥

बहुषु बहुवचनम् १ । ४ । २१ ॥

बहुत्वे एतत्स्यात् । रुत्वविसर्गौ । रामः ॥

सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ १ । २ । ६४ ॥

एकविभक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते । एकशेषश्चायमनैमित्तिकत्वेऽन्तरङ्गत्वाद्विभक्त्युत्पत्तेः पूर्वमेवेति ॥

प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ६ । १ । १०२ ॥

अकः प्रथमाद्वितीययोरचि पूर्वसवर्णदीर्घ एकादेशः ॥

नादिचि ६ । १ । १०४ ॥

अवर्णादिचि न पूर्वसवर्णदीर्घः । रामौ ॥

अतो गुणे ६ । १ । ९७ ॥

अपदान्तादतो गुणे पररूपमेकादेशः । इति 'पररूपे प्राप्ते पर-त्वात्पूर्वसवर्णदीर्घः । रामाः ॥

एकवचनं संबुद्धिः २ । ३ । ४९ ॥

संबोधने प्रथमाया एकवचनं संबुद्धिसंज्ञम् ॥

यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् १।४।१३ ॥

यः प्रत्ययो यस्मात् क्रियते तदादि शब्दरूपं तस्मिन् प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञम् ॥

एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः ६ । १ । ६९ ॥

एङन्ताद्ध्रस्वान्ताच्चाङ्गाद्धल्लुप्यते संबुद्धेश्चेत् । हे राम हे रामौ । हे रामाः ॥

अमि पूर्वः ६ । १ । १०७ ॥

अकोऽम्यचि पूर्वरूपमेकादेशः । रामम् । रामौ ॥

इति ७ अंशाः ।

तस्माच्छसो नः पुंसि ६ । १ । १०३ ॥

पूर्वसवर्णदीर्घात्परो यः शसः सस्तस्य नः पुंसि ॥

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८ । ४ । २ ॥

अट्कवर्गपवर्गआङ्नुम् एतैर्व्यस्तैर्यथासम्भवं मिलितैश्च व्यवधानेऽपि रषाभ्यां परस्य नस्य णः समानपदे । इति प्राप्ते ॥

पदान्तस्य ८ । ४ । ३७ ॥

पदान्तस्य नस्य णो न । रामान् ॥

टाङसिङसामिनात्स्याः ७ । १ । १२ ॥

अदन्तादङ्गाट्टादीनामिनादयः । रामेण ॥

सुपि च ७ । ३ । १०२ ॥

यञादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः । रामाभ्याम् ॥

अतो भिस ऐस् ७ । १ । ९ ॥

अदन्तादङ्गाद्भिस ऐस् ॥

अनेकाल्शित्सर्वस्य १ । १ । ५५ ॥

अलोऽन्त्यस्येत्यस्यापवादः । रामैः ॥

ङेर्यः ७ । १ । १३ ॥

अतोऽङ्गात्परस्य ङे इत्यस्य यः ॥

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ १ । १ । ५६ ॥

आदेशः स्थानिवत्स्यान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ तेन ङेर्यस्य सुप्त्वात्सुपि चेति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् ॥

बहुवचने झल्येत् ७ । ३ । १०३ ॥

झलादौ बहुवचने सुप्यतोऽङ्गस्यैकारः । रामेभ्यः । जश्त्वं बाधित्वा॥

वावसाने ८ । ४ । ५६ ॥

अवसाने झलाञ्चरो वा । रामात् । पक्षे जश्त्वम् । रामाद् । रामाभ्याम् । रामेभ्यः । रामस्य ॥

ओसि च ७ । ३ । १०४ ॥

ओसि परेऽतोऽङ्गस्य एकारः । रामयोः ॥

ह्रस्वनद्यापो नुट् ७ । १ । ५४ ॥

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चाङ्गात्परस्यामो नुट् ॥

नामि ६ । ४ । ३ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः । रामाणाम् । रामे । रामयोः ॥

आदेशप्रत्यययोः ८ । ३ । ५९ ॥

इण्कुभ्यां परस्यापदान्तस्यादेशः प्रत्ययावयवश्च यः सस्तस्य मूर्द्धन्यः । रामेषु । एवं कृष्णादयोऽप्यदन्ताः ॥

जसि च ७ । ३ । १०९ ॥

ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणः । हरिः । हरी । हरयः ॥

ह्रस्वस्य गुणः ७ । ३ । १०८॥

संबुद्धौ । हे हरे ॥

शेषो घ्यसखि १ । ४ । ७॥

अनदीसंज्ञौ ह्रस्वौ याविदुतौ तदन्तं सखिवर्जं घिसंज्ञम् ॥

आङो नाऽस्त्रियाम् ७ । ३ । १२० ॥

घेः परस्याङो ना स्यादस्त्रियाम् । हरिणा ॥

घेर्ङिति ७ । ३ । १११ ॥

घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुणः । हरये ॥

ङसिङसोश्च ६ । १ । ११० ॥

एङो ङसिङसोरति पूर्वरूपमेकादेशः । हरेः ॥

अच्च घेः ७ । ३ । ११९ ॥

इदुद्भ्यां परस्य ङेरौत् घेरन्तादेशश्चाकारः । हरौ । एवं कव्यादयः ॥

भूवादयो धातवः १ । ३ । १ ॥

क्रियावाचिनो भ्वादयो धातुसंज्ञाः ॥

अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरियङुवङौ ६ । ४ । ७७ ॥

श्नुप्रत्ययान्तस्य इवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्येतस्य चाङ्गस्येयङुवङावजादौ प्रत्यये ॥

ङिच्च १ । १ । ५३ ॥

ङिदनेकालप्यन्त्यस्यादेशः । सुश्रीः । सुश्रियौ ॥ एवं यवक्रीप्रभृतयः ॥

एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य ६ । ४ । ८२ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्याऽनेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ प्रत्यये । प्रधीः । प्रध्यौ । प्रध्यः । शम्भुर्हरिवत् । एवं भान्वादयः । स्वभूः । स्वभुवौ ॥

सुडनपुंसकस्य १ । १ । ४३ ॥

स्वादिपञ्चवचनानि सर्वनामस्थानसंज्ञानि स्युरक्लीबस्य ॥

ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः ७ । ३ । ११० ॥

गुणः । इति प्राप्ते ॥

ऋदुशनस्पुरुदंसोनेहसां च ७ । १ । ९४ ॥

ऋदन्तानामुशनसादीनाञ्च अनङसंबुद्धौ सौ ॥

सर्वनामस्थाने चासंबुद्धौ ६ । ४ । ८ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घः असंबुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

अपृक्त एकाल् प्रत्ययः १ । २ । ४१ ॥

हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल् ६ । १ । ६८ ॥

हलन्तादीर्घौ यौ ङ्यापौ तदन्ताच परं सुतिसीत्येतदपृक्तं हल्लुप्यते ॥

प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् १ । १ । ६२ ॥

प्रत्यये लुप्तेऽपि तदाश्रितं कार्यं स्यात् ।

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य ८ । २ । ७ ॥

प्रातिपदिकसंज्ञकं यत्पदन्तदन्तस्य नस्य लोपः । पिता । पितरौ ॥

ऋत उत् ६ । १ । १११ ॥

ऋदन्तादङ्गात् ङसिङसोरति उदेकादेशः । रपरत्वम् ॥

रात्सस्य ८ । २ । २४ ॥

रात्संयोगान्तस्य सस्यैव लोपो नान्यस्य । पितुः ॥

ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम् ॐ ॥

पितॄणाम् । एवं भ्रात्रादयः ॥

अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम् ६ । ४ । ११ ॥

अवादीनामुपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने । धाता । धातारौ इत्यादि । शेषं पितृवत् । राजा । राजानौ ॥

स्वादिष्वसर्वनामस्थाने १ । ४ । १७ ॥

कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पदसंज्ञम् ॥

यचि भम् १ । ४ । १८ ॥

यकारादिष्वजादिषु च कप्प्रत्ययावधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञम् ॥

आकडारादेका संज्ञा १ । ४ । १ ॥

इत ऊर्ध्वं कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा । या पराऽनवकाशा च । तेन शसादावचि भसंज्ञा नतु पदसंज्ञा ॥

इति ९ अंशाः ।

न ङिसम्बुद्ध्योः ८ । २ । ८ ॥

नस्य लोपो न ङौ संबुद्धौ च । हे राजन् ॥

अल्लोपोऽनः ६ । ४ । १३४ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपः । जश्त्वम् । राज्ञः । राज्ञा । पदत्वान्नलोपः । राजभ्याम् ॥

नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ८ । २ । २ ॥

सुबादिविधौ कृति तुग्विधौ च नलोपोऽसिद्धो नान्यत्र राजाश्वः ॥

विभाषा ङिश्योः ६ । ४ । १३६ ॥

अङ्गावयवोऽसर्वनामस्थानयजादिस्वादिपरो योऽन् तस्याकारस्य लोपो वा ङिश्योः । राज्ञि । राजनि । राजसु । यज्वा ॥

न संयोगाद्वमन्तात् ६ । ४ । १३७ ॥

वकारमकारान्तसंयोगात्परस्यानोऽकारलोपो न । यज्वनः । ब्रह्मणः ॥

इन्हन्पूषार्यम्णां शौ ६ । ४ । १२ ॥

एषां शास्त्रेवोपधाया दीर्घो नान्यत्र ॥

सौ च ६ । ४ । १३ ॥

इनादीनामुपधाया दीर्घः असंबुद्धौ सौ । दण्डी दण्डिनौ ॥

अत्वसंतस्य चाधातोः ६ । ४ । १४ ॥

अत्वन्तस्य धातुभिन्नासन्तस्य च उपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सौ ॥

उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः ७ । १ । ७० ॥

अधातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् सर्वनामस्थाने ॥

मिदचोऽन्त्यात्परः १ । १ । ४७ ॥

अचाम्मध्ये योऽन्त्यस्तस्मात्परस्तस्यैवान्त्यावयवो मित्स्यात् ॥

संयोगान्तस्य लोपः

धीमान् । धीमन्तौ । हे धीमन् । धीमतः इत्यादि । मरुत् । मरुतौ । पचन् । पचन्तौ । एवं शत्रन्तभवच्छब्दस्य भवन् । सन् ॥

उभे अभ्यस्तम् ६ । १ । ५ ॥

पाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते ते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे ॥

नाभ्यस्ताच्छतुः ७ । १ । ७८ ॥

अभ्यस्तात्परस्य शतुर्नुम्न । ददत् । ददतौ ॥

सान्तमहतः संयोगस्य ६ । ४ । १० ॥

सान्तसंयोगस्य महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसंबुद्धौ सर्वनामस्थाने । विद्वान् ॥

नश्चापदान्तस्य झलि ८ । ३ । २४ ॥

नस्य मस्य चापदान्तस्य झल्यनुस्वारः । विद्वांसौ ॥

वसोः संप्रसारणम् ६ । ४ । १३१ ॥

वस्वन्तस्य भस्य संप्रसारणम् ॥

इग्यणः संप्रसारणम् १ । १ । ४५ ॥

यणः स्थाने प्रयुज्यमानो य इक् स संप्रसारणसंज्ञः ॥

संप्रसारणाच्च ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारणादचि पूर्वरूपमेकादेशः । विदुषः ॥

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः ८ । २ । ७२ ॥

सान्तवस्वन्तस्य स्रंसादेश्च दः पदान्ते । विद्वद्भ्याम् । निषेदिवान् ॥

अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः * ॥

निमित्तं विनाशोन्मुखं दृष्ट्वा तत्प्रयुक्तं कार्यं न कुर्वन्तीत्यर्थः। तेन वलादित्वं नाशोन्मुखं दृष्ट्वा इडमेव न कुर्वन्ति । निषेदुषः । निषेदिवद्भ्याम् । वेधाः । हे वेधः । वेधोभ्याम् ॥

इति पुल्लिङ्गाः ॥

इति १० अंशाः इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

स्त्रिया रमा मतिर्गौरी श्रीर्धेनुर्भूश्चमूर्युधः ॥ शरद्वाक् च सरित्प्रावृडिति द्वादश कीर्त्तिताः ॥

अजाद्यतष्टाप् ४ । १ । ४ ॥

अजादीनामदन्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वं तत्र द्योत्ये टाप् । अजा । रमा ॥

षिद्गौरादिभ्यश्च ४ । १ । ४१ ॥

षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च स्त्रियां ङीष् ॥

यस्येति च ६ । ४ । १४८ ॥

यस्येवर्णावर्णयोर्लोपस्तद्धिते ईति च । नर्त्तकी। गौरी इत्यादि । रमा ॥

औङ आपः ७ । १ । १८ ॥

आबन्तादङ्गात्परस्यौङ: शी । रमे । रमाः ॥

संबुद्धौ च ७ । ३ । १०६ ॥

आप एकारः संबुद्धौ । हे रमे ॥

आङि चापः ७ । ३ । १०५ ॥

आङ्योसि चाबन्ताङ्गस्य एकारः । रमया ॥

याडापः ७ । ३ । ११३ ॥

आपः परस्य ङिद्वचनस्य याडागमः । रमायै । रमायाः २ । रमाणाम् ॥

ङेराम्नद्याम्नीभ्यः ७ । ३ । ११६ ॥

नद्यन्तादाबन्तान्नीशब्दाच्च ङेराम् । रमायाम् । एवं दुर्गादयः । मतीः । मत्या ॥

ङिति ह्रस्वश्च १ । ४ । ६ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्रीशब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिंगावीदूतौ ह्रस्वौ चेवर्णोवर्णौ स्त्रिया वा नदीसंज्ञौ ङिति ॥

आण् नद्याः ७ । ३ । ११२॥

नद्यन्तात्परेषां ङितामाट् ॥

आटश्च ६ । १ । ९० ॥

आटोऽचि वृद्धिरेकादेशः । मत्यै । मतये । मत्याः । मतेः । नदीत्वे औदिति ङेरौत्वे प्राप्ते ॥

इदुद्भ्याम् ७ । ३ । ११७ ॥

नदीसंज्ञकाभ्यामिदुद्भ्यां ङेराम् पक्षेऽत्र घेः । मत्याम् । मतौ । शेषं हरिवत् । एवं बुद्ध्यादयः । गौरी ॥

दीर्घाज्जसि च ६ । १ । १०५ ॥

दीर्घाज्जसि इचि च न पूर्वसवर्णदीर्घः । गौर्यौ ॥

यू स्त्र्याख्यौ नदी १ । ४ । ३ ॥

ईदूदन्तौ नित्यस्त्रीलिङ्गौ नदीसंज्ञौ ॥

अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः ७ । ३ । १०७ ॥

अम्बार्थानां नद्यन्तानां च ह्रस्वः संबुद्धौ । हे गौरि । गौर्यः । एवं नद्यादयः । श्रीः । श्रियौ ॥

नेयङुवङ्स्थानावस्त्री १ । ४ । ४ ॥

इयङुवङोः स्थितिर्ययोस्तावीदूतौ नदीसंज्ञौ न स्तः । स्त्रीशब्दस्तु स्यात् । हे श्रीः । श्रियै । श्रिये ॥

वामि १ । ४ । ५ ॥

इयङुवङ्स्थानौ स्त्र्याख्यौ ईदूतौ आमि वा नदीसंज्ञौ स्त्री तु नित्यम् । श्रीणाम् । श्रियाम् । धेनुर्मतिवत् । भ्रूः श्रीवत् । चमूः । चम्वै । युत् । युद् । युधौ । युधः । शरत् । शरद् । शरदौ ॥

चोः कुः ८ । २ । ३० ॥

झलि पदान्ते च । वाक् । वाग् । वाचौ । सरित् । सरिद् । सरितौ । प्रावृट् । प्रावृड् । प्रावृषौ ॥

इति स्त्रीलिङ्गाः ॥ इति ११ अंशाः ।

क्लीबे ज्ञानं वारि मधु नाम ब्रह्म च दण्डि च ॥ जगत्तुदत्पचच्चक्षुः पय एकादशोदिताः ॥ १ ॥

अतोऽम् ७ । १ । २४ ॥

अतोऽङ्गात् क्लीबात्स्वमोरम् । ज्ञानम् ॥

नपुंसकाच्च ७ । १ । १९ ॥

क्लीबात् परस्य औङः शी । यस्येति लोपे प्राप्ते ॥

औङः श्यां प्रतिषेधः ॥

ज्ञाने ॥

जश्शसोः शिः ७ । १ । २० ॥

क्लीबादनयोः शिः ॥

शि सर्वनामस्थानम् १ । १ । ४१ ॥

नपुंसकस्य झलचः ७ । १ । ७२ ॥

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् सर्वनामस्थाने । ज्ञानानि । पुनस्तद्वत् । शेषं रामवत् । एवं फलादयः ॥

प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः १ । १ । ६१ ॥

एतैः शब्दैः कृतं प्रत्ययादर्शनं क्रमादेतत्संज्ञम् ॥

स्वमोर्नपुंसकात् ७ । १ । २३ ॥

क्लीवादङ्गात्स्वमोर्लुक् । वारि ॥

इकोऽचि विभक्तौ ७ । १ । ७३ ॥

इगन्तस्य क्लीवस्य नुम् अचि विभक्तौ । वारिणी ॥

वृद्ध्यौत्वतृज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन * ॥

वारीणि ॥

न लुमताङ्गस्य १ । १ । ६३ ॥

लुक्श्लुलुप्शब्दैर्लुप्ते तन्निमित्तमङ्गकार्यं न तेन सम्बुद्धिनिमित्तो गुणो न । हे वारि । अस्यानित्यत्वात्पक्षे गुणः । हे वारे । आङो ना । वारिणा ॥

नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन * ॥

वारीणाम् । मधु । मधुनी । नाम । नाम्नी । नामनी । नामानि ॥

सम्बुद्धौ नपुंसकानां नलोपो वा * ॥

हे नाम । हे नामन् । ब्रह्म । ब्रह्मणी । ब्रह्माणि । हे ब्रह्मन् । हे ब्रह्म । दण्डि । दण्डिनी । दण्डीनि । जगत् । जगती । जगन्ति ॥

आच्छीनद्योर्नुम् ७ । १ । ८० ॥

अवर्णान्तादङ्गात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्याङ्गस्य नुम् वा शीनद्योः । तुदन्ती । तुदती । माती । मान्ती ॥

शप्श्यनोर्नित्यम् ७ । १ । ८१ ॥

शप्श्यनोरात्परो यः शतुरवयवस्तदन्तस्याङ्गस्य नित्यं नुम् शीनद्योः । पचन्ती । दीव्यन्ती । ददत् । ददती ॥

वा नपुंसकस्य ७ । १ । ७९ ॥

अभ्यस्तात्परो यश्शाता तदन्तस्य क्लीवस्य नुम् वा सर्वनामस्थाने ददन्ति । ददति । अथ नुम्सङ्ग्रहपद्यम् । शतुरक्लीबमुटि शी

शीनश्चोरपि शप्श्यनः ॥ अन्यावर्णाचयोर्वा नुम्नाभ्यस्तादेपु शी तु वा ॥ १ ॥ धनुः । धनुषी ॥

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८ । ३ । ५८ ॥

एतैः प्रत्येकं व्यवधानेऽपि इण्कुभ्यां परस्य सस्य षः । धनूंषि । धनुर्भ्याम् । धनुःषु । धनुष्षु । एवं चक्षुर्हविरादयः । पयः । पयांसि । पयोभ्याम् ॥

इति नपुंसकलिङ्गाः ॥ इति १२ अंशाः ॥

अथ सर्वादयस्त्रिलिङ्गाः ।

सर्वादीनि सर्वनामानि १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि शब्दरूपाणि सर्वनामसंज्ञानि । सर्व, विश्व, उभ, उभय, डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर, त्वत्, त्व, नेम, सम, सिम, पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् । स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः । त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवतु, किम् ॥ तत्र पुंसि ॥

जसः शी ७ । १ । १७ ॥

अदन्तात्सर्वनाम्नो जसः शी । सर्वे ॥

सर्वनाम्नः स्मै ७ । १ । १४ ॥

अतः सर्वनाम्नो ङेः स्मै । सर्वस्मै ॥

ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ७ । १ । १५ ॥

अतः सर्वनाम्नः । सर्वस्मात् ॥

आमि सर्वनाम्नः सुट् ७ । १ । ५२ ॥

अवर्णान्तात्सर्वनाम्नो विहितस्यामः सुट् । सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् शेषं रामवत् । एवं विश्वादयः ॥ उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । उभौ उभौ इत्यादि । डतरडतमौ प्रत्ययौ । ततस्तदन्ता ग्राह्याः ॥

---

१ सर्वादीनां त्रिलिङ्गत्वादृपरैत्सम्याच सुखेन बोधाय त्रिलिङ्गीतः पृथङ्न्यासः ॥

पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् १ । १ । ३४ ॥

एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सर्वनामसंज्ञा गणपाठात्सर्वत्र या प्राप्ता सा जसि वा । पूर्वे पूर्वाः । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था । दक्षिणाः गायकाः कुशला इत्यर्थः । संज्ञायान्तु उत्तराः कुरवः ॥

पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ७ । १ । १६ ॥

एभ्यो ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा । पूर्वस्मात् पूर्वस्माद् । पूर्वात् पूर्वाद् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे । एवं परादीनामपि शेषं सर्ववत् ॥

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् १ । १ । ३५ ॥

ज्ञातिधनान्यवाचिनः स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । स्वे स्वाः आत्मीया इत्यर्थः । आत्मान इति वा । अन्यत्र स्वाः ज्ञातयोऽर्था वा ॥

अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः १ । १ । ३६ ॥

बाह्ये परिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । अन्तरे अन्तराः वा गृहाः शाटका वा । बाह्याः परिधानीया वा इत्यर्थः ॥

त्यदादीनामः ७ । २ । १०२ ॥

एषामकारोऽन्तादेशो विभक्तौ ॥

द्विपर्यन्तानामेवेष्टिः ॥

त्यदादेः संबोधनं नास्तीत्युत्सर्गः ॥

तदोः सः सावनन्त्ययोः ७ । २ । १०६ ॥

त्यदादीनां द्विपर्यन्तानां तदयोरनन्त्ययोः सः सौ । स्यः । त्यौ । त्ये । सः । तौ । ते । एषः । एतौ । एते ॥

इदमो मः ७ । २ । १०८ ॥

सौ । अत्वापवादः ॥

इदोऽय् पुंसि ७ । २ । १११ ॥

इदम इदः अय् सौ पुंसि । अयम् ॥

दश्च ७ । २ । १०९ ॥

इदमो दस्य मः विभक्तौ । इमौ ॥

अनाप्यकः ७ । २ । ११२ ॥

अककारस्येदम इदोऽन् आपि विभक्तौ । अनेन ॥

इदमोऽन्वादेशेऽशनुदात्तस्तृतीयादौ २ । ४ । ३२ ॥

अन्वादेशविषयस्येदमोऽनुदात्तोऽश् आदेशस्तृतीयादौ । अश् साकच्कार्थः ॥

इति १२ अंशाः ॥

द्वितीयाटौस्स्वेनः २ । ४ । ३४ ॥

द्वितीयायां टौसोश्च परतः इदमेतदोरेनादेशोऽन्वादेशे । किंचित्कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः । यथाऽनेन व्याकरणमधीतम् एनञ्छन्दोऽध्यापयेति । अनयोः पवित्रं कुलम् एनयोः प्रभूतं स्वम् । एनम् ॥

हलि लोपः ७ । २ । ११३ ॥

अककारस्य इदम इदो लोप आपि हलादौ विभक्तौ ॥

नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ❀ ॥

आद्यन्तवदेकस्मिन् १ । १ । २१ ॥

एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् । आभ्याम् ॥

नेदमदसोरकोः ७ । १ । ११ ॥

अककारयोरिदमदसोर्भिस ऐस् न । एभिः । अस्मै । एभ्यः । अस्मात् । अनयोः । एषाम् । अस्मिन् । एषु ॥

अदस औ सुलोपश्च ७ । २ । १०७ ॥

अदस औकारोन्तादेशः सौ परे सुलोपश्च । असौ ॥

अदसोऽसेर्दादु दो मः ८ । २ । ८० ॥

असान्तस्यादसो दात्परस्य उदूतौ दस्य मश्च । ह्रस्वव्यञ्जनयो-र्ह्रस्वो दीर्घस्य दीर्घः । अमू । जसः शी । गुणः ॥

एत ईद्बहुवचने ८ । २ । ८१ ॥

अदसो दादेत ईद्दस्य मश्च बह्वर्थोक्तौ । अमी । पूर्वत्रासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक् पश्चादुत्वमत्वे । अमुम् । अमू । अमून् ॥

न मु ने ८ । २ । ३ ॥

नाभावे कर्त्तव्ये कृते च मुभावो नासिद्धः । घिसंज्ञा । अमुना । अमूभ्याम् । अमीभिः । अमुष्मै । अमुष्मात् । द्विशब्दो द्विवचनान्तः । द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् । द्वयोः ॥

किमः कः ७ । २ । १०३ ॥

विभक्तौ । अकच्सहितस्यापि कः । कौ ॥

अथ स्त्रियाम् ॥

टाप् । सर्वा । सर्वे ॥

सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च ७ । ३ । ११४ ॥

आबन्तात्सर्वनाम्नो ङितः स्याडापश्च ह्रस्वः । सर्वस्यै । सर्वस्याः । सर्वासाम् । सर्वस्याम् ॥ शेषं रमावत् ॥ एवं विश्वादयः ॥ उभयी । उभय्यौ । स्या । त्ये । सा । ते । या । ये । एषा । एते॥

यः सौ ७ । २ । ११० ॥

इदमो दस्य यः सौ । इयम् । इमे । इमाः । अनया । आभ्याम् । असौ । अमू । अमूः । अमुया । अमुष्यै । अमुष्याः। एका । एके । द्वे । द्वे । भवती । भवत्यौ । का । के । क्लीबे । सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि । पुनस्तद्वत् । शेषं पुंवत् । एवं विश्वादयः ॥

अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः ७ । १ । २५ ॥

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्ड् आदेशः ॥

टेः ६ । ४ । १४३ ॥

डिति परे भस्य टेर्लोपः । डित्वसामर्थ्यात् अभस्यापि । कतरत् कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत् । शेषं पुंवत् । एवं कतमत् । इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमस्य तु अन्यतममित्येव ॥

एकतरात्प्रतिषेधः ॥ ❀ ॥

एकतरम् ॥

इति १४ अंशाः ॥

त्यद् । त्ये । त्यानि । तत् । यद् । एतद् । इदम् । इमे । इमानि ॥

अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः ॥ ❀ ॥

एनद् । एने । एनानि । एनेन । एनयोः । अदः । अमू । अमूनि । एकम् । एके । द्वे । द्वे । भवत् । भवती । भवन्ति । सोर्लुका लुप्तत्वात्कादेशो न । किम् । के । कानि । अथ युष्मदस्मदौ ॥

ङेप्रथमयोरम् ७ । १ । २८ ॥

युष्मदस्मद्भ्यां ङे इत्यस्य प्रथमा द्वितीययोश्चाम् ॥

त्वाहौ सौ ७ । २ । ९४ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य त्व अह इत्यादेशौ सौ ॥

शेषे लोपः ७ । २ । ९० ॥

आत्वयत्वनिमित्तेतरविभक्तावनयोरन्त्यलोपः । त्वम् । अहम् ॥

युवावौ द्विवचने ७ । २ । ९२ ॥

द्वयोरुक्तावनयोर्मपर्यन्तस्य युवावौ विभक्तौ ॥

प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् ७ । २ । ८८ ॥

इहानयोराकारोऽन्तादेशः । युवाम् । आवाम् ॥

यूयवयौ जसि ७ । २ । ९३ ॥

मपर्यन्तस्य । यूयम् । वयम् ॥

त्वमावेकवचने ७ । २ । ९७ ॥

एकस्योक्तौ अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वमौ विभक्तौ ॥

द्वितीयायाञ्च ७ । २ । ८७ ॥

अनयोः आकारः । त्वाम् । माम् । युवाम् । आवाम् ॥

शसो न ७ । १ । २९ ॥

आभ्यां परस्य शसो नकारः ॥

आदेः परस्य १ । १ । ५४ ॥

परस्य यद्विहितन्तत्तस्यादेः स्यात् । अलोन्त्यापवादः । इति शसोऽकारस्य नकारः । संयोगान्तस्य लोपः । युष्मान् । अस्मान् ॥

योऽचि ७ । २ । ८९ ॥

अनयोर्यकारादेशोऽजादौ विभक्तौ । त्वया । मया ॥

युष्मदस्मदोरनादेशे ७ । २ । ८६ ॥

अनयोः आकारादेशे हलादौ विभक्तौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ॥

तुभ्यमह्यौ ङयि ७ । २ । ९५ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तुभ्यमह्यौ ङयि । शेषे लोपः । तुभ्यम् । मह्यम् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् ॥

भ्यसो भ्यम् ७ । १ । ३० ॥

आभ्यां भ्यसो भ्यम् अभ्यम् वाऽऽदेशः । युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ॥

एकवचनस्य च ७ । १ । ३२ ॥

आभ्यां ङसेः अत् । त्वत् । मत् । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् ॥

पञ्चम्या अत् ७ । १ । ३१ ॥

आभ्यां पञ्चम्या भ्यसोऽत् । युष्मत् । अस्मत् ॥

युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् ७ । १ । २७ ॥

तवममौ ङसि ७ । २ । ९६ ॥

अनयोर्मपर्यन्तस्य तवममौ ङसि । तव । मम । युवयोः । आवयोः । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः ॥

साम आकम् ७ । १ । ३३ ॥

आभ्यां परस्य आम आकं स्यात् । सुट् तु न स्यात् । युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयोः । आवयोः । युष्मासु । अस्मासु ॥

इति १५ अंशाः ।

युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ ८।१।२०

पदात्परयोरपादादौ स्थितयोः षष्ठ्यादिविशिष्टयोस्तयोर्वान्नावौ तौ चानुदात्तौ ॥

बहुवचनस्य वस्नसौ ८ । १ । २१ ॥

उक्तविधयोस्तयोः षष्ठ्यादिबहुवचनान्तयोर्वस्नसौ । वान्नावोरपवादः ॥

तेमयावेकवचनस्य ८ । १ । २२ ॥

उक्तविधयोस्तयोष्षष्ठीचतुर्थ्येकवचनान्तयोस्ते मे ॥

त्वमौ द्वितीयायाः ८ । १ । २३ ॥

उक्तविधयोस्तयोर्द्वितीयैकवचनान्तयोस्त्वा मा । श्रीशस्त्वावतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ॥ स्वामी ते मेऽपि स हरिः पातु वामपि नौ विभुः ॥ १ ॥ सुखं वान्नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः ॥ सोऽव्याद्वो नः सुखं वो नो देयात्सेव्योऽत्र वः स नः ॥ २ ॥ नेह त्वाम्पातु । वेदैरशेषैः संवेद्योऽस्मान् कृष्णः सर्वदाऽवतु । एते आदेशा अनन्वादेशे वा । अन्वादेशे नित्यम् । धाता ते भक्तोऽस्ति तव वा । तस्मै ते नम इत्येव । विभक्तिसत्वे एव नेह इति युष्मत्पुत्रो ब्रवीति ॥ इति सर्वादयः ॥

---

१ अत्र साम इति भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थं ससुट्कनिर्देश इति व्याख्यानात् । सदेव स्पष्टमुक्त सुट् तु न स्यादिति ।

स्वरादिनिपातमव्ययम् १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयो निपाताश्चाव्ययसंज्ञाः । स्वर् अन्तर् प्रातर् पुनर् इत्यादयोऽग्रे बोध्याः ॥

अव्ययादाप्सुपः २ । ४ । ८२ ॥

अव्ययाद्विहितस्यापः सुपश्च लुक् । स्वः । अन्तः । चादयोऽसत्वे । च वा ह अह एव इत्यादयोऽपि अग्रे बोध्याः ॥

प्रादयः १ । ४ । ५८ ॥

अद्रव्यार्थाः प्रादयो निपातसंज्ञाः । प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उद् अभि प्रति परि उप एते प्रादयः ॥

उपसर्गाः क्रियायोगे १ । ४ । ५९ ॥

गतिश्च १ । ४ । ६० ॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञा गतिसंज्ञाश्च स्युः ॥

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः १ । १ । ३९ ॥

यस्मात्त सर्वा विभक्तिर्नोत्पद्यते स तद्धितान्तोऽव्ययसंज्ञः । सर्वतः । सर्वत्र । तत्र शालायाम् । परिगणनं करिष्यते ॥

कृन्मेजन्तः १ । १ । ३९ ॥

कृद्यो मान्त एजन्तश्च एतदन्तमव्ययम् । स्मारम् । स्मारम् । जीवसे । पिबध्यै ॥

क्त्वातोसुन्कसुनः १ । १ । ४० ॥

एतदन्तमव्ययम् । कृत्वा । प्रणम्य । उदेतोः । विसृपः इत्यादि ॥

अव्ययीभावश्च १ । १ । ४१ ॥

अधिहरि । अव्ययानां लिङ्गकारकसंख्याभावादेकरूप्यम् । वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ॥ आपश्चैव हलन्तानां यथा वाचा निशा दिशा । अवगाहः । वगाहः । अपिधानम् । पिधानम् ॥

इत्यव्ययानि । इति १६ अंशाः ।

अथाख्यातम्

तत्र धातुभ्यो लकाराः धातवस्तु द्विविधाः। अकर्मकाः सकर्मकाश्च। तत्राद्या यथा। सत्तायामुदये स्नेहे मोहस्नानविशुद्धिषु। शयनासनलज्जासु जीवने मरणे क्षुधि ॥ १ ॥ त्वरायां क्रीडने नृत्ये रोदनस्थितिदीप्तिषु ॥ भये स्पन्दे च सन्देहे स्वेदस्पर्द्धाक्षयेष्वपि ॥ २ ॥ मदोद्वेगप्रकम्पेषु व्यथाजागरवृद्धिषु ॥ जरायां स्वदनोत्पत्त्योर्मूत्रणे हदने तथा ॥ ३ ॥ विकासे मीलने हासे नाशस्फूर्तिसमृद्धिषु। तोषे दोषे विरागे च विषादोन्मादसिद्धिषु॥४॥ प्रभातोड्डीतिदम्भेषु शुक्लिमादिगुणेषु च॥ध्याने क्लैव्ये दरिद्रत्वे ग्लानिगर्वश्रमेष्वपि ॥५॥ क्षोभप्रस्रवणाद्यर्थे धातवः स्युरकर्मकाः॥अन्ये सकर्मकाः शेषो विषयोऽग्रेऽभिधास्यते॥६॥भू सत्तायाम् लकारास्तु लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् लङ् लिङ् लुङ् लृङ् इति दश एषु लेट् छन्दस्येव ॥

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ३ । ४ । ६९ ॥

लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मकर्त्रोरकर्मकेभ्यो भावकर्त्रोः स्युः ॥

वर्त्तमाने लट् ३ । २ । १२३ ॥

वर्त्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य न इत्त्वम् । कर्तृविवक्षायां भू ल इति स्थिते ॥

तिप्तस्झिसिप्थस्थमिप्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्वहिमहिङ् ३ । ४ । ७८ ॥

एतेऽष्टादश लस्यादेशाः ॥

लः परस्मैपदम् १ । ४ । ९९ ॥

लादेशा एतत्संज्ञाः ।

तङानावात्मनेपदम् १ । ४ । १०० ॥

तङ् शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः ॥ पूर्वसंज्ञापवादः ।

---

१ यद्यपि लकाराणामयं क्रमः पाणिनिना न प्रोक्तः नापि प्रक्रियानुगुणः किन्तु बालानां सुखेन बोधाय. लट् लङ् लोट् लिङ् लुट् लृट् लृङ् लुङ् लिट् इति क्रमो योग्यस्तथापि टित् ङित् लकारभेदमात्रफलकोऽयं क्रमः प्राचामनुरोधादादृत ।

अनुदात्तङित आत्मनेपदम् १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्तेत उपदेशे यो ङित्तदन्ताच्च धातोर्लस्यात्मनेपदम् ॥

स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १ । ३ । ७२ ॥

स्वरितेतो ञितश्च धातोर्लस्य आत्मनेपदम् कर्तृगामिनि क्रियाफले ॥

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् १ । ३ । ७८ ॥

आत्मनेपदानिमित्तहीनाद्धातोः कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥

तिङस्त्रीणि त्रिणि प्रथममध्यमोत्तमाः १ । ४ । १०१ ॥

तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः ॥

तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १ । ४ । १०२ ॥

लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि क्रमादेतत्संज्ञानि ॥

युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः १ । ४ । १०५ ॥

तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ॥

अस्मद्युत्तमः १ । ४ । १०७ ॥

तथाभूते अस्मदि उत्तमः ॥

शेषे प्रथमः १ । ४ । १०८ ॥

मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः ॥

इति १७ अंशाः ॥

भू ति इति स्थिते ॥

तिङ्शित्सार्वधातुकम् ३ । ४ । ११३ ॥

तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः ॥

आर्द्धधातुकं शेषः ३ । ४ । ११४ ॥

तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहित एतत्संज्ञः ॥

लिट् च ३ । ४ । ११५ ॥

लिडादेशस्तिङार्द्धधातुकसंज्ञ एव स्यात् ॥

लिङाशिषि ३ । ४ । ११६ ॥

आशिषि लिङस्तिङार्द्धधातुकसंज्ञ एव ॥

कर्त्तरि शप् ३ । १ । ६८ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप् । शपावितौ ॥

सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः ७ । ३ । ८४ ॥

अनयोः परयोः इगन्ताङ्गस्य गुणः । भवति । भवतः ॥

झोऽन्तः ७ । १ । ३ ॥

प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः । भवन्ति । भवसि । भवथः । भवथ ॥

अतो दीर्घो यञि ७ । ३ । १०१ ॥

अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके । भवामि । भवावः । भवामः । सः भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि इत्यादि योज्यम् ॥

परोक्षे लिट् ३ । २ । ११५ ॥

भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् । लस्य तिबादयः ॥

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ३ । ४ । ८२ ॥

लिटस्तिबादीनां क्रमाण्णलादयो नव स्युः ॥

भुवो वुक् लुङ्लिटोः ६ । ४ । ८८ ॥

भुवो वुक् लुङ्लिटोरचि । गुणवृद्धयोर्बाधकः ॥

लिटि धातोरनभ्यासस्य ६ । १ । ८ ॥

लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भूव् भूव् अ इति स्थिते ॥

पूर्वोऽभ्यासः ६ । १ । ४ ॥

षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः ॥

हलादिः शेषः ७ । ४ । ६० ॥

अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते । अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपः॥

ह्रस्वः ७ । ४ । ५९ ॥

अभ्यासस्याचो ह्रस्वः ॥

भवतेरः ७ । ४ । ७३ ॥

भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

अभ्यासे चर्च ८ । ४ । ५४ ॥

अभ्यासे झलाञ्चरः स्युर्जशश्च झशां जशः खयाञ्चरः । तत्रापि प्रकृतिजशां प्रकृतिजशः प्रकृतिचरां प्रकृतिचरः ॥

असिद्धवदत्राभात् ६ । ४ । २२ ॥

इत उर्द्ध्वमापादसमासेराभीयम् । समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तदसिद्धम् । इति वुकोऽसिद्धत्वादुवङि प्राप्ते ॥

वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ ॥ * ॥

बभूव । बभूवतुः । बभूवुः ॥

आर्द्धधातुकस्येड् वलादेः ७ । २ । ३५ ॥

वलादेरार्धधातुकस्येडागमः । बभूविथ । बभूवथुः । बभूव । बभूव । बभूविव । बभूविम ॥

इति १८ अंशाः ॥

अनद्यतने लुट् ३ । ३ । १५ ॥

भविष्यति अनद्यतने धातोर्लुट् ॥

स्यतासी ललुटोः ३ । १ । ३३ ॥

धातोः स्यतासी एतौ स्तः ललुटोः परतः । शबाद्यपवादः । इट् ॥

लुटः प्रथमस्य डारौरसः २ । ४ । ८५ ॥

अस्य डारौरसः एते क्रमात्स्युः । टेर्लोपः ॥

ह्रस्वं लघु १ । ४ । १० ॥

पुगन्तलघूपधस्य च ७ । ३ । ८६ ॥

पुगन्तस्य लघूपधस्य च अङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः । भवित् आ अत्रेको गुणे प्राप्ते ॥

दीधीवेवीटाम् १ । १ । ६ ॥

दीधीवेव्योरिटश्च गुणवृद्धी न । भविता ॥

तासस्त्योर्लोपः ७ । ४ । ५० ॥

तासेरस्तेश्च लोपः सादौ प्रत्यये ॥

रि च ७ । ४ । ५१ ॥

रादौ प्रत्यये प्राग्वत् । भवितारौ । भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थ । भवितास्मि । भवितास्वः । भवितास्मः ॥

लृट् शेषे च ३ । ३ । १३ ॥

भविष्यदर्थाद् धातोर्लृट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ॥

लोट् च ३ । ३ । १६२ ॥

विध्यादिष्वर्थेषु ॥

आशिषि लिङ्लोटौ ३ । ३ । १७३ ॥

एरुः ३ । ४ । ८६ ॥

लोट इकारस्य उः । भवतु ॥

तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ७ । १ । ३५ ॥

आशिषि तुह्योस्तातङ् वा परत्वात्सर्वादेशः । भवतात् ॥

लोटो लङ्वत् ३ । ४ । ८५ ॥

लोटो लङ इव कार्यन्तेन तामादयः सलोपश्च ॥

तस्थस्थमिपान्तान्तन्तामः ३ । ४ । १०१ ॥

ङितो लस्य तसादिचतुर्णां तामादयः ॥

नित्यङ्ङितः ३ । ४ । ९९ ॥

सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः । अलोऽन्त्यस्य । भवताम् । भवन्तु ॥

सेर्ह्यपिच्च ३ । ४ । ८७ ॥

लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च ॥

अतो हेः ६ । ४ । १०५ ॥

अतः परस्य हेर्लुक् भव । भवतात् । भवतम् । भवत ॥

मेर्निः ३ । ४ । ८९ ॥

लोटो मेर्निः ॥

आडुत्तमस्य पिच्च ३ । ४ । ९२ ॥

लोट उत्तमस्य आट् स पिच्च । भवानि । भवाव । भवाम ॥

अनद्यतने लङ् ३ । २ । १११ ॥

अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् ॥

लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ६ । ४ । ७१ ॥

एषु परेष्वङ्गस्याट् स चोदात्तः ॥

इतश्च ३ । ४ । १०० ॥

ङितो लस्य परस्मैपदमिदन्तं यत्तस्य लोपः । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवाम ॥

इति १९ अंशाः ।

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ३ । ३ । १६१ ॥

एष्वर्थेषु द्योत्येषु वाच्येषु वा लिङ् ॥

यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ३ । ४ । १०३ ॥

लिङः परस्मैपदानां यासुट् स चोदात्तो ङिच्च ॥

सुट् तिथोः ३। ४। १०७॥
लिङस्तथयोः सुट्॥
लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७। २। ७९॥
सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति सुटो लोपः। यासुटः सस्यापि लोपे प्राप्ते॥
अतो येयः ७। २। ८०॥
अतः परस्य सार्वधातुकालिङो यास इय्॥
लोपो व्योर्वलि ६। १। ६६॥
वकारयकारयोर्लोपो वलि। भवेत्। भवेताम्॥
झेर्जुस् ३। ४। १०८॥
लिङो झेर्जुस्। भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम॥
किदाशिषि ३। ४। १०४॥
आशिषि लिङो यासुट् कित्॥
स्कोस्संयोगाद्योरन्ते च ८। २। २९॥
पदान्ते झलि परे च यः संयोगस्तदाद्योः सकारककारयोर्लोप इति सलोपः॥
क्ङिति च १। १। ५॥
गित्कित्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः। भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म॥
लुङ् ३। २। ११०॥
भूतार्थवृत्तेर्धातोर्लुङ्॥
माङि लुङ् ३। ३। १७५॥
सर्वलकारापवादः॥
स्मोत्तरे लङ् च ३। ३। १७६॥

स्मोत्तरे माङि लङ् लुङ् च ॥

च्लि लुङि ३ । १ । ४३ ॥

शबाद्यपवादः ॥

च्लेः सिच् ३ । १ । ४४ ॥

इचावितौ ॥

गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु २ । ४ । ७७ ॥

इणादेशगातेः स्थाघुपिबतिभूभ्यश्च सिचो लुक् परस्मैपदे ॥

भूसुवोस्तिङि ७ । ३ । ८८ ॥

भूसू एतयोः सार्वधातुके तिङि गुणो न ॥

अस्तिसिचोऽपृक्ते ७ । ३ । ९६ ॥

विद्यमानात्सिचोऽस्तेश्चापृक्तहल ईट् सिचो लुप्तत्वान्नेट्। अभूत्। अभूताम् ॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ३ । ४ । १०९ ॥

सिचोऽभ्यस्ताद्विदेश्च परस्य ङितो झेर्जुस्। इति प्राप्ते ॥

आतः ३ । ४ । ११० ॥

सिज्लुक्यादन्तादेव झेर्जुस्। अभूवन्। अभूः। अभूतम्। अभूत। अभूवम्। अभूव। अभूम ॥

न माङ्योगे ६ । ४ । ७४ ॥

अडाटौ न। मा भवान् भूत्। मा स्म भवत् भूद्वा ॥

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३ । ३ । १३९ ॥

हेतुहेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ। अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम ॥

इति २० अंशाः। इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः।

भू प्राप्तावात्मनेपदी ॥

टित आत्मनेपदानां टेरे ३ । ४ । ७९ ॥

टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वं स्यात् । भवते ॥

सार्वधातुकमपित् १ । २ । ४ ॥

अपित् सार्वधातुकं ङिद्वत् ॥

आतो ङितः ७ । २ । ८१ ॥

अतः परस्य ङितामात इय् ॥

थासस्से ३ । ४ । ८० ॥

टितो लस्य थासः से । भवेते । भवन्ते । भवसे । भवेथे । भवध्वे । अतो गुणे भवे । भवावहे । भवामहे ॥

लिटस्तझयोरेशिरेच् ३ । ४ । ८१ ॥

लिडादेशयोस्तझयोरेशिरेच् एतो स्तः ॥

इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८ । ३ । ७८ ॥

इण्णन्तादङ्गात्परेषामेषां धस्य मूर्धन्यः ॥

विभाषेटः ८ । ३ । ७९ ॥

इणः परस्मादिटः परेषामेषां धस्य वा मूर्द्धन्यः । बभूवे । बभूवाते । बभूविरे । बभूविषे । बभूवाथे । बभूविढ्वे । बभूविध्वे । बभूवे । बभूविवहे बभूविमहे ॥

धि च ८ । २ । २५ ॥

धादौ प्रत्यये सलोपः ॥

ह एति ७ । ४ । ५२ ॥

तासस्त्योः सस्य ह एति परे । भविता । भवितारौ । भवितारः । भवितासे । भवितासाथे । भविताध्वे । भविताहे । भवितास्वहे । भवितास्महे । भविष्यते । भविष्येते । भविष्यन्ते । भविष्यसे । भविष्येथे । भविष्यध्वे । भविष्ये । भविष्यावहे । भविष्यामहे ॥

आमेतः ३ । ४ । ९० ॥

लोट एकारस्याम् ॥

सवाभ्यां वामौ ३ । ४ । ९१ ॥

सवाभ्यां परस्य लोट एतः क्रमात् व अम् एतौ स्तः ॥

एत ऐ ३ । ४ । ९३ ॥

लोडुत्तमस्य एत ऐ । भवताम् । भवेताम् । भवन्ताम् । भवस्व । भवेथाम् । भवध्वम् । भवै । भवावहै । भवामहै । अभवत । अभवेताम् । अभवन्त । अभवथाः । अभवेथाम् । अभवध्वम् । अभवे । अभवावहि । अभवामहि ॥

लिङः सीयुट् ३ । ४ । १०२ ॥

झस्य रन् ३ । ४ । १०५ ॥

लिङो झस्य रन् ॥

इटोऽत् ३ । ४ । १०६ ॥

लिङादेशस्येटोऽत् । भवेत । भवेयाताम् । भवेरन् । भवेथाः । भवेयाथाम् । भवेध्वम् । भवेय । भवेवहि । भवेमहि । भविषीष्ट । भविषीयास्ताम् । भविषीरन् । भविषीष्ठाः । भविषीयास्थाम् । भविषीढ्वम् । भविषीध्वम् । भविषीय । भविषीवहि । भविषीमहि ॥

आत्मनेपदेष्वनतः ७ । १ । ५ ॥

अनकारात्परस्य आत्मनेपदेषु झस्यात् । अभविष्ट । अभविषाताम् । अभविषत । अभविष्ठाः । अभविषाथाम् । अभविढ्वम् । अभविध्वम् । अभविषि । अभविष्वहि । अभविष्महि । अभविष्यत । अभविष्येताम् । अभविष्यंत । अभविष्यथाः । अभविष्येथाम् । अभविष्यध्वम् । अभविष्ये अभविष्यावहि । अभविष्यमहि ।

ते प्राग्धातोः १ । ४ । ८० ॥

ते गत्युपसर्गसंज्ञका धातोः प्राक् प्रयोज्याः । प्रभवतीत्यादि ॥

इति २१ अंशाः ।

रक्ष पालने । रक्षति । ररक्ष । रक्षिता । रक्षिष्यति । रक्षतु । अरक्षत् । रक्षेत् । रक्ष्यात् । अस्तिसिच इति ईट् ॥

वदव्रजहलन्तस्याचः ७ । २ । ३ ॥

वदेर्व्रजेर्हलन्तस्य चाङ्गस्याचो वृद्धिः सिचि परस्मैपदेषु । इति प्राप्ते ॥

नेटि ७ । २ । ४ ॥

इडादौ सिचि उक्तन्न ॥

इट ईटि ॥ ८ । २ । २८ ॥

इटः परस्य सस्य लोप ईटि ॥

सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वाच्यः ॥

अरक्षीत् । अरक्षिष्टाम् । सिजभ्यस्तेति झेर्जुस् । अरक्षिषुः । अरक्षीः । अरक्षिष्टम् । अरक्षिष्ट । अरक्षिषम् । अरक्षिष्व । अरक्षिष्म । अरक्षिष्यत् । चर्व अदने । जल्प व्यक्तायां वाचि । षस्ज गतौ ॥

धात्वादेः षः सः ६ । १ । ६४ ॥

सज्जति । अयमात्मनेपद्यपि । सज्जते । गर्ज शब्दे ॥

कुहोश्चुः ७ । ४ । ६२ ॥

अभ्यासस्य कवर्गहकारयोश्चवर्गः । जगर्ज । मन्थ विलोडने ॥

अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ६ । ४ । २४ ॥

हलन्तानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्य लोपः किति ङिति च । मथ्यात् । मथ्यास्ताम् । खाद भक्षणे । चखाद । जीव प्राणधारणे । जिजीव । बुक्क भषणे । फुल्ल विकसने । टुओस्फुर्जा वज्रनिर्घोषे ॥

आदिर्ञिटुडवः १ । ३ । ५ ॥

उपदेशे धातोराद्या एते इतः ॥

उपधायां च ८ । २ । ७८ ॥

धातोरुपधाभूतयो रेफवकारयोर्हल्परयोः परत इको दीर्घः ॥

शर्पूर्वाः खयः ७ । ४ । ६१ ॥

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्तेऽन्ये हलो लुप्यन्ते । हलादिरित्यस्यापवादः । स्फूर्जति । पुस्फूर्जे । मुर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः । मूर्च्छति । कूज अव्यक्ते शब्दे । खेल चलने ॥

एच इग्घ्रस्वादेशे १ । १ । ४८ ॥

आदिश्यमानेषु ह्रस्वेषु एच इगेव स्यात् । चिखेल । टुनदि समृद्धौ ॥

इदितो नुम् धातोः ७ । १ । ५८ ॥

नन्दति । इदित्वान्नलोपो न । नन्द्यात् । रगि रहि लगि गतौ । क्रदि आह्वाने रोदने च । खजि गतिवैकल्ये । णिदि कुत्सायाम् ॥

णो नः ६ । १ । ६५ ॥

धात्वादेः । निंदति । वृहि वृद्धौ शब्दे च ॥

उरत् ७ । ४ । ६६ ॥

अभ्यास ऋकारस्य अत् प्रत्यये । रपरत्वम् । हलादिः शेषः । ववृंह । स्तन शब्दे । स्तनति ॥

अत उपधायाः ७ । २ । ११६ ॥

उपधाया अतो वृद्धिर्ञिति णिति च प्रत्यये ॥

णलुत्तमो वा ७ । १ । ९१ ॥

उत्तमो णल् वा णित् । तस्तान । तस्तनतुः । तस्तान । तस्तन ॥

अतो हलादेर्लघोः ७ । २ । ७ ॥

हलादेर्लघोरकारस्य वा वृद्धिरिडादौ सिचि परस्मैपदे । अस्तानीत् । अस्तनीत् ॥

इति २२ अंशाः ।

गद व्यक्तायां वाचि । व्रज गतौ । व्रजेः पृथग्ग्रहणात् । नित्यं वृद्धिः । अव्राजीत् । भल आशुगमने ॥

अतो ल्रान्तस्य ७ । २ । २ ॥

अतसमीपौ यौ लरौ तदन्तस्याङ्गस्यातो वृद्धिः परस्मैपदे सिचि
(ल)टि अतो हलादेरनयोरपवादः । अश्वालीत् । स्खल संचलने । गल
अदने दल विशरणे । ददाल ॥

असंयोगाल्लिट् कित् १ । २ । ५ ॥

असंयोगात्परोऽपिल्लिट् कित् ॥

अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि ६ । ४ । १२० ॥

लिण्निमित्तादेशादिकं न भवति यदङ्गन्तदवयवस्यासंयुक्तहल-
मध्यस्थस्यात एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि ॥

थलि च सेटि ६ । ४ । १२१ ॥

प्रागुक्तम् । आदेशश्चेह वैरूप्यकृदेव गृह्यते । तेन दहचरादौ
प्रकृतिजश्चरतिषु सत्स्वपि एत्वादि स्यादेव । देलतुः । देलिथ ।
अदालीत् । मह पूजायाम् ॥

ह्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् ७ । २ । ५ ॥

हमयान्तस्य क्षणादेर्ण्यन्तस्य श्वयतेरेदितश्च वृद्धिर्नेडादौ पर-
स्मैपदे सिचि । अमहीत् । हसे हसने अहसीत् । चिती संज्ञाने ।
पुगन्तेति गुणः । चेतति । चिचेत ॥ क्ङिति चेति गुणनिषेधः ।
चिचिततुः । चित्यात् । अचेतीत् । जिमु अदने । शुच शोके ।
वृषु सेचनहिंसासंक्लेशनेषु । वर्षति । उरत् । ववर्ष ॥

ऋदुपधेभ्यो लिटः कित्वं गुणात् पूर्वविप्रतिषेधेन * ॥

ववृषतुः । श्रुपिर् विशब्दने ॥

इर इत्संज्ञा वाच्या * ॥

इरितो वा ३ । १ । ५७ ॥

इरितो धातोः च्लेरङ् वा परस्मैपदे । अश्रुपत् । अश्रोपीत् ।
च्युतिर् आसेचने श्च्युतिर् श्रुतिर् क्षरणे । अट गतौ ॥

अत आदेः ७ । ४ । ७० ॥

अभ्यासस्यादेरतो दीर्घः । पररूपापवादः । आट ॥

आडजादीनाम् ६ । ४ । ७२ ॥

लुङादौ । आटश्च । आटत् । आटीत् । मा भवानटीत् । अत सातत्यगमने । अर्च पूजायाम् ॥

तस्मान्नुड् द्विहलः ७ । ४ । ७१ ॥

अनेकहलो धातोर्दीर्घीभूताकारात्परस्य नुट् । आनर्च । आर्चत् । अर्ज अर्जने । अर्द गतौ याचने च ॥

इति २३ अंशाः ।

ईर्ष्य ईर्ष्यायाम् ॥

संयोगे गुरु १ । ४ । ११ ॥

संयोगे परे ह्रस्वं गुरुसंज्ञम् ॥

दीर्घं च १ । ४ । १२ ॥

गुरुसंज्ञम् ॥

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३ । १ । ३६ ॥

इजादिर्यो गुरुमान् ऋच्छत्यन्यस्तत आम् लिटि ॥

आमः २ । ४ । ८१ ॥

आमः परस्य लुक् । लिङादेशापवादत्वाल्लावस्थायामेव लुक् ॥

कृदतिङ् ३ । १ । ९३ ॥

सन्निहिते धात्वधिकारे तिङ्भिन्नः प्रत्ययः कृत्संज्ञः । इति लिटः कृत्वात् कृत्तद्धितेति प्रातिपदिकत्वे सुबुत्पत्तिः कृन्मेजन्त इत्यामन्तस्याव्ययत्वात् सुपो लुक् ॥

कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ३ । १ । ४० ॥

आमन्ताल्लिट्पराः कृभ्वस्तयोऽनुप्रयुज्यन्ते ॥

अचो ञ्णिति ७ । २ । ११५ ॥

ञिति णिति च परेऽजन्ताङ्गस्य वृद्धिः । ईर्ष्याञ्चकार । द्वित्वात्परत्वाद्यणि प्राप्ते ॥

द्विर्वचनेऽचि १ । १ । ५९ ॥

द्वित्वनिमित्तेऽचि परेऽच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्तव्ये यणि कृते तु अनच्कत्वाद्द्वित्वं न स्यात् । ईर्ष्याञ्चक्रतुः ॥

एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् ७ । २ । १० ॥

उपदेशे यो धातुरेकाजनुदात्तश्च ततः परस्य वलाद्यार्द्धधातुकस्येट् न । ईर्ष्याञ्चकर्थ । ईर्ष्याञ्चकृव । कृञः कर्तृगे फले आत्मनेपदे प्राप्ते ॥

आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १ । ३ । ६३ ॥

आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मनेपदम् । तच्च पूर्ववदेव नतु ततो विपरीतम् । तेन एधाञ्चक्रे इत्यादौ परस्मैपदं न । ईर्ष्याञ्चकारेत्यादौ तङ् न । भ्वस्तोस्तु कर्तृप्रत्यये तङ्ग पृथगास्तिग्रहण-सामर्थ्यान्नास्तेर्भूभावः । ईर्ष्यामास।ईर्ष्यांबभूव।अनुदात्ता वक्ष्यन्ते । उक्ष सेचने उक्षाञ्चकार। एजृ कम्पने । इखि इगि गतौ । इङ्खांचकार। उछि उञ्छे। अथ वेटः । ते च स्यसिच्सीयुट्तासिषु यथासम्भव-मिड्विकल्पवन्तः । त्वक्षू तनूकरणे ॥

स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा ७ । २ । ४४ ॥

स्वरत्यादेरूदितश्च परस्य वलाद्यार्द्धधातुकस्येट् वा । तत्वक्षिथ । स्कोरिति कलोपः । तत्वष्ठ । तत्वक्षिव । तत्वक्ष्व । वक्ष्यमाणक्रयादि-नियमाल्लिटि नित्यमेवेडिति परे । एवं रधादिष्वपि । त्वक्षिता । त्वष्टा । त्वक्षिष्यति ॥

षढोः कः सि ८ । २ । ४१ ॥

त्वक्ष्यति । इटि अत्वक्षीत् । इडभावे वदव्रजेति वृद्धिः । अत्वाक्षीत् ॥

झलो झलि ८ । २ । २६ ॥

झलः परस्य सस्य लोपो झलि ।अत्वाष्टाम् । षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च । स्वरतीति वेट् । सिसेधिथ ॥

झषस्तथोर्धोऽधः ८ । २ । ४० ॥

शपः परयोस्तयथयोर्धो नतु दधातेः । सिषेद्ध । सिषिधिव । सिषिध्व । मतान्तरे तु लिटि नित्यमिट् । सेधिता । सेद्धा । सेधिष्यति सेत्स्यति असेधीत् । वदव्रजेति वृद्धिः । असैत्सीत् । असैद्धामित्यादि ॥

इति २४ अंगाः ॥

अनुदात्ताश्च–

ऊदन्तऋदन्तरुणुक्ष्णुयौतिस्नुक्षुश्विडीशीश्रि च वृङ्वृञौ च ॥ स्युद्घातवः सेट इमेऽथ चान्ये एकाजजन्ता अनिटोऽनुदात्ताः ॥ १ ॥ कान्तेषु शक्ऌ एकः ॥१॥ चान्तेषु पच् मुच् रिच् वच् विच् सिचः षट् ६ ॥ छान्तेषु प्रच्छेकः १ ॥ जान्तेषु त्यज् निजिर् भज भञ्ज भुज् भ्रस्ज मस्ज् यज् युज् रुज् रञ्ज विजिर् स्वञ्ज सञ्ज सृजः पंचदश १५ ॥ दान्तेषु अद् क्षुद् खिद् छिद् तुद् नुद् पद्य भिद् विद्य विन्द् शद सद स्विद्य स्कन्द हदः पंचदश १५ ॥ धान्तेषु क्रुध् क्षुध् बुध्य बन्ध युध् रुध् राध व्यध शुध साध सिध्या एकादश ११ ॥ नान्तेषु मन्यहनौ द्वौ २ ॥ पान्तेषु आप् क्षिप् छुप् तप् तिप् तृप्यदृप्य लिप् लुप् वप् शप् स्वप सृपस्त्रयोदश १३ ॥ भान्तेषु यभ रभ लभस्त्रयः ३ ॥ मान्तेषु गम् नम् यमरमश्चत्वारः ४ ॥ शान्तेषु क्रुश् दंश् दिश् दृश् मृश् रिश् रुश् लिश् विशस्पृशौ दश १० ॥ षान्तेषु कृष् त्विष् तुष् द्विष् दुष् पिष् पुष्य विष् शिष् शुष श्लिष्या एकादश ११ ॥ सान्तेषु घसवसती द्वौ २ ॥ हान्तेषु दह दिह दुह नह मिह रुह लिह वहोऽष्टौ ८ ॥ अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम् ॥ सरूपधातुव्यावृत्त्यै युक्ता इत्संज्ञका इह ॥ १ ॥

अथानिटः ॥

त्यज हानौ । थलि एकाच इति इण्निषेधे प्राप्ते ॥

कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि ७ । २ । १३ ॥

क्रादिभ्य एव लिट इण् न स्यादन्यस्मादनिटोऽपि न निषेधः ॥

अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् ७ । २ । ६१ ॥

उपदेशेऽजन्तात्तासौ नित्यानिटो धातोः थल इण्न ॥

ऋतो भारद्वाजस्य ७ । २ । ६३ ॥

तासौ नित्यानिट ऋदन्तादेव थलो नेड् ऋदन्तभिन्नात्परस्य न निषेधः भारद्वाजस्य मते ॥

अयमत्र संग्रहः ॥

अजन्तोऽकारवान्वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ॥ ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् ॥ १ ॥ तत्याजिथ । तत्यक्थ । त्यक्ष्यति । वदव्रजेति वृद्धिः । अत्याक्षीत् । अत्याक्ताम् । अत्याक्षुः । तप संतापे । तेपिथ । ततप्थ । तप्ता । अताप्सीत् । णम प्रह्वत्वे शब्दे च । नमति । नेमतुः । नेमिथ । ननन्थ । वदव्रजेति वृद्धिं बाधित्वा ॥

यमरमनमातां सक् च ७ । २ । ७३ ॥

एषां सक् एभ्यः सिच इट् च परस्मैपदे । अनंसीत् । अनंसिष्टाम् । अनंसिषुः । क्षि क्षये । चिक्षाय । चिक्षयिथ । चिक्षेथ । चिक्षियिव । क्षेता ॥

अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ७ । ४ । २५ ॥

अजन्ताङ्गस्य दीर्घः यादौ प्रत्यये नतु कृत्सार्वधातुकयोः । क्षीयात् ॥

सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु ७ । २ । १ ॥

इगन्ताङ्गस्य वृद्धिः परस्मैपदे सिचि । अक्षैषीत् । अक्षैष्टाम् । इत्यादि ॥

इति २५ अंशाः ।

घृ सेचने । घरति । जघार । जघ्रतुः । जघर्थ । जघ्रिव । घर्त्ता ॥

ऋद्धनोः स्ये ७ । २ । ७० ॥

आभ्यां स्यस्येट् । घरिष्यति ॥

रिङ् शयग्लिङ्क्षु ७ । ४ । २८ ॥

शे यकि यादावार्द्धधातुके लिङि च ऋतो रिङ् । रीङि प्रकृते रिङ्विधिसामर्थ्यात् । दीर्घो न । घ्रियात् । अघार्षीत् इत्यादि । स्मृ चिन्तायाम् ॥

ऋतश्च संयोगादेर्गुणः ७ । ४ । १० ॥

ऋदन्तस्य संयोगादेरङ्गस्य गुणः लिटि । परत्वाण्यल्यप्ययम् । रपरत्वम् । उपधावृद्धिः । सस्मार । सस्मरतुः । स्मरिष्यति ॥

गुणोऽर्त्तिसंयोगाद्योः ७ । ४ । २९ ॥

अर्त्तेः संयोगादेर्ऋदन्तस्य च गुणः यकि यादावार्द्धधातुके लिङि च । स्मर्यात् । अस्मार्षीत् । सन्नन्तादात्मनेपदं वक्ष्यते । दैप् शोधने । दायति ॥

आदेच उपदेशे शिति ६ । १ । ४५ ॥

उपदेश एजन्तस्य धातोरात्वं स्यान्नतु इत्संज्ञकशादौ प्रत्यये ॥

आत औ णलः ७ । १ । ३४ ॥

आदन्ताद्धातोर्णल औ । ददौ ॥

आतो लोप इटि च ६ । ४ । ६४ ॥

अजाद्योरार्द्धधातुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातो लोपः । द्वित्वात्परत्वाल्लोपे प्राप्ते द्विर्वचनेऽचीति निषेधाद् द्वित्वे कृते आलोपः । ददतुः । ददुः । ददिथ । ददाथ । ददिव । ददिम । दाता । दास्यति । दायात् । दायास्ताम् । सगिटौ । अदासीत् । अदासिष्टाम् । अदास्यत् । ग्लै म्लै हर्षक्षये । ग्लायति । जग्लौ । जग्लिथ । जग्लाथ ॥

वाऽन्यस्य संयोगादेः ६ । ४ । ६८ ॥

स्थाभिन्नस्य संयोगादेर्धातोरात एत्वं वार्द्धधातुके किति लिङि । ग्लायात् । ग्लेयात् । ध्यै चिन्तायाम् । मिह सेचने । मिमेहिथ ॥

हो ढः ८ । २ । ३१ ॥

हस्य ढः झलि पदान्ते च ॥

ढो ढे लोपः ८ । ३ । १३ ॥

मेढा । मेक्ष्यति ॥

शल इगुपधादनिटः क्सः ३ । १ । ४५ ॥

इगुपधो यः शलन्तोऽनिडधातुस्ततः परस्ये च्लेः क्सः । अमिक्षत् । अमिक्षताम् ॥ इति परस्मैपदिनः ॥

काशृ दीप्तौ । प्रकाशते । चकाशे । काशिता । काशिष्यते । काशताम् । अकाशत । काशेत । काशिशीष्ट । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत । भासृ दीप्तौ । भाष व्यक्तायां वाचि।शिक्ष विद्योपादाने । भिक्ष भिक्षायाम् । चेष्ट चेष्टायाम् । लोचृ दर्शने । वदि अभिवादनस्तुत्योः । वन्दते । यती प्रयत्ने । येते । येताते । मुद हर्षे । ईक्ष दर्शने । ईक्षांचक्रे । एध वृद्धौ ॥

अथानिटः ॥

कुङ् शब्दे । धृङ् अवध्वंसने ॥

उश्च १ । २ । १२ ॥

ऋवर्णात्परौ झलादी लिङ् तङ्परः सिचेत्येतौ कितौ । धृषीष्ट ॥

ह्रस्वादङ्गात् ८ । २ । २७ ॥

सिचो लोपो झलि । अधृत । त्रैङ् पालने । तत्रे । अत्रास्त । हद पुरीषोत्सर्गे । अहत्त । अहत्साताम् । रभ राभस्ये । रेभे । रप्स्यते । डुलभष् प्राप्तौ । इत्यात्मनेपदिनः ॥

टुयाचृ याच्ञायाम्। धावु गतिशुद्धयोः । हिक्क अव्यक्ते शब्दे ॥

अथानिटः ॥

डुपचष् पाके । पेचतुः । पेचिथ । पपक्थ । पक्ता । अपाक्षीत् । अपक्त । धृञ् धारणे । धरति । धरते । दधार । दध्रतुः । दधर्थ । दध्रिव । दध्रिषे । धर्ता । धरिष्यति । ध्रियात् । धृषीष्ट । अधार्षीत् । अधृत । भृञ् भरणे । बभर्थ । बभृव । लुडादौ भर्ता । इत्यादि धृञ्वत् । अभृत ॥ इति उभयपदिनः ॥ इति भ्वादयः ॥

इति २६ अंशाः ।

अद् भक्षणेऽनिट् परस्मैपदी ॥

अदिप्रभृतिभ्यः शपः २।४।७२ ॥

लुक्। अत्ति ॥

लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४० ॥

अदो घस्लृ वा लिटि। जघास ॥

गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि ६।४।९८॥

एषामुपधाया लोपः क्ङिति न त्वङि ॥

शासिवसिघसीनाञ्च ८।३।६० ॥

इण्कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः। जक्षतुः। घसेस्तासावभावात् थलि नित्यमिट्। जघसिथ ॥

इडत्त्यर्त्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६ ॥

एभ्यस्थलो नित्यमिट्। आदिथ। अत्ता॥

हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१ ॥

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः। अद्धि ॥

अदः सर्वेषाम् ७।३।१०० ॥

अदः परस्यापृक्तसार्वधातुकस्याट् सर्वमते। आदत् ॥

उस्यपदान्तात् ६।१।९६ ॥

अपदान्तादवर्णादुसि पररूपमेकादेशः। अदुः ॥

लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७॥

अदो घस्लृ लुङि सनि च ॥

पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु ३।१।५५ ॥

दिवादिस्यपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च च्लेरङ् परस्मैपदे। अघसत्। अस् भुवि ॥

श्नसोरल्लोपः ६।४।१११ ॥

श्नस्यास्तेश्चाकारस्य लोपः सार्वधातुके क्ङिति। स्तः। संति। असि ॥

अस्तेर्भूः २ । ४ । ५२ ॥

आर्द्धधातुके । बभूव । भविता । इत्यादि ॥

घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च ६ । ४ । ११९ ॥

घोरस्तेश्चैत्वं स्याद्धौ परे । अभ्यासलोपश्च । आभीयत्वेन एत्वस्यासिद्धत्वाद्धेर्धिः। एधि । स्तात् । स्तम् । लङि । अस्तिसिच इति ईट् । आसीत् ॥

हु दानादानयोः आदाने प्रीणने च । परस्मैपद्यनिट् ॥

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २ । ४ । ७५ ॥

शपः ॥

श्लौ ६ । १ । १० ॥

धातोर्द्वे । जुहोति ॥

अदभ्यस्तात् ७ । १ । ४ ॥

झस्य ॥

हुश्नुवोः सार्वधातुके ६ । ४ । ८७ ॥

जुहोतेः श्नुप्रत्ययान्तस्य चानेकाचो संयोगपूर्वोवर्णस्य यणजादौ सार्वधातुके । उवङोऽपवादः । जुह्वति ॥

भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३ । १ । ३९ ॥

एभ्यो लिट्याम् वाऽऽमि । श्लाविव कार्यञ्च । जुहवाञ्चकार । जुहाव । होता ॥

जुसि च ७ । ३ । ८३ ॥

अजादौ जुसीगन्ताङ्गस्य गुणः। अजुहवुः। जुहुयात्। इह गुणो न । भाष्ये पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्न इति व्याख्यानात् विशेषविहितेन ङित्त्वेन पित्त्वस्य बाधात् हूयात् । अहौषीत् ॥

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु ॥

दिवादिभ्यः श्यन् ३ । १ । ६९ ॥

कर्त्रर्थे सार्वधातुके । इदमग्रेऽप्यनुवर्त्तते । शपोऽपवादः ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ३ । १ । ७३ ॥

तुदादिभ्यः शः ३ । १ । ७७ ॥

रुधादिभ्यः श्नम् ३ । १ । ७८ ॥

गुणं बाधते ॥

तनादिकृञ्भ्य उः ३ । १ । ७९ ॥

क्र्यादिभ्यः श्ना ३ । १ । ८१ ॥

हलि च ८ । २ । ७७ ॥

रेफवान्तधातोरुपधाया इको दीर्घो हलि । दीव्यति । देविता । इत्यादि । षुञ् अभिषवेऽनिट् उभयपदी । अभिषवः स्नपनं पीडनं स्नानं सुरासन्धानञ्च । सुनोति । सुनुतः । सुन्वन्ति ॥

लोपश्चास्यान्यतरस्यां म्वोः ६ । ४ । १०७ ॥

असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्ताङ्गस्य वा लोपो म्वोः । सुन्वः । सुनुवः । सुन्वहे । सुनुवहे ॥

उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ६ । ४ । १०६ ॥

असंयोगपूर्वो यः प्रत्ययोकारस्तदन्तादङ्गात्परस्य हेर्लुक् । सुनु॥

स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु ७ । २ । ७२ ॥

सिच इट् । असावीत् । असोष्ट । तुद व्यथनेऽनिडुभयपदी । तुदति । तुदते । तोत्ता ॥

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु १ । २ । ११ ॥

इकसमीपाद्धलः परौ झलादी लिङ्सिचौ कितावात्मनेपदेषु । तुत्सीष्ट । अतौत्सीत् । अतुत्त । अतुत्साताम् ॥ रुधिर् आवरणे उभयपद्यनिट् । रुणद्धि । श्नसोरल्लोपः । णत्वम्यानिस्वारपरसवर्णौ । रुन्द्धः । रुन्धः । रुन्धन्ति । रुन्धे । रोद्धा । रोत्स्यति । अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् ॥

दश्च ८ । २ । ७५ ॥

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि रुर्वा । अरुणत् । अरुणः । अरुधत् । अरौत्सीत् ॥

इति २७ अंशाः ।

तनु विस्तारे उभयपदी सेट् । तनोति । तन्वः । तनुवः । तनुते । तनिता ॥

अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो झलि क्ङिति ६ । ४ । ३७ ॥

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः झलादौ क्ङिति । यमिरमिनमिगमिहनिमन्या अनुदात्तोपदेशाः । तनु क्षणु क्षिणु ऋणु तृणु घृणु वनु मनु तनोत्यादयः ॥

तनादिभ्यस्तथासोः २ । ४ । ७९ ॥

तनादेः सिचो वा लुक् तथासोः । अतत । अतनिष्ट । अतथाः। अतनिष्ठाः । डुकृञ् करणेऽनिट् उभयपदी । करोति ॥

अत उत् सार्वधातुके ६ । ४ । ११० ॥

उप्रत्ययान्तकृञोऽत उत्सार्वधातुके क्ङिति । कुरुतः ॥

नित्यं करोतेः ६ । ४ । १०८ ॥

करोतेः प्रत्ययोकारस्य नित्यं लोपो वमयोः । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । कर्ता । हिलुकोऽसिद्धत्वादुत्वम् । कुरु ॥

ये च ६ । ४ । १०९ ॥

कृञ उलोपो यादौ प्रत्यये । हलि चेति दीर्घे प्राप्ते ॥

न भकुर्छुराम् ८ । २ । ७९ ॥

भस्य कुर्छुरोश्च उपधाया न दीर्घः । कुर्यात् । अकृत । अस्य विशेषो वक्ष्यते । डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये उभयपद्यनिट् । क्रीणाति ॥

श्नाभ्यस्तयोरातः ६ । ४ । ११२ ॥

अनयोरातो लोपः क्ङिति सार्वधातुके ॥

ई हल्यघोः ६ । ४ । ११३ ॥

श्नाभ्यस्तयोरात ईत्सार्वधातुके क्ङिति हलि न तु घुसंज्ञस्य । क्रीणीतः । क्रीणन्ति । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । क्रेता । चुर स्तेये ॥

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच् ३ । १ । २५ ॥

गुणः ॥

सनाद्यन्ता धातवः ३ । १ । ३२ ॥

सनादयः कमेर्णिङन्ताः प्रत्यया अन्ते येषान्ते धातुसंज्ञाः । सन्नाद्याः सन् काम्यणिच् क्यच्क्यषौ क्यङ्ङाचारक्विप् यङ् यगायेयङौ णिङ् तिप् शप् गुणायादेशाः । चोरयति ॥

णिचश्च १ । ३ । ७४ ॥

णिजन्तादात्मनेपदम् कर्तृगामिनि क्रियाफले । चोरयते ॥

कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ३ । १ । ३५ ॥

कासधातोः प्रत्ययान्तेभ्यश्चाम् नतु मन्त्रे ॥

कास्यनेकाज्ग्रहणं कर्तव्यम् ॥

एवं च प्रत्ययग्रहणं सूत्रे न कार्यमित्याहुः । क्षीवाञ्चक्रेइत्याद्यर्थङ्कार्यमिति परे ॥

अयामन्ताल्वाय्येत्न्विष्णुषु ६ । ४ । ५५ ॥

आमादिषु णेरय लोपापवादः । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चक्रे ॥

णेरनिटि ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादावार्द्धधातुके णेर्लोप । चोर्यात् ॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ् ३ । १ । ४८ ॥

ण्यन्तात् श्र्यादिभ्यश्च । च्लेश्चङ् कर्तृलुङि णिलोपात्परत्वादेरनेकाच इति यणि प्राप्ते ॥

ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घेभ्यः पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

इयङ् । अततक्षत् । यण् । आटिटत् । गुणः । कारणा । वृद्धिः कारकः । दीर्घः कार्यते ॥

णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः ७ । ४ । १ ॥

चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वः ॥

चङि ६ । १ । ११ ॥

अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे अजादेस्तु द्वितीयस्य ॥

दीर्घो लघोः ७ । ४ । ९४ ॥

चङ्परे णौ यल्लघु तत्परो योऽङ्गस्यावयवो लघुरभ्यासस्तस्य दीर्घः स्याण्णावग्लोपेऽसति । अचूचुरत् ॥

इति २८ अंशाः ।

भज विश्राणने ॥

सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे ७ । ४ । ९३ ॥

चङ्परे णौ यल्लघु तत्परो योऽङ्गस्यावयवोऽभ्यासस्तस्य सनीव कार्यं स्याण्णावग्लोपेऽसति ॥

सन्यतः ७ । ४ । ७९ ॥

अभ्यासस्यात इः सनि । दीर्घो लघोः । अबीभजत् । लोकृ दर्शने ॥

नाग्लोपिशास्वृदिताम् ७ । ४ । २ ॥

णिच्यग्लोपिनः शासेर्ऋदिताश्चोपधाया ह्रस्वो न चङ्परे णौ । अलुलोकत् ॥

भुवोऽवकल्कने ॥

णिच् । भावयति । णिचि अच आदेशो न स्याद्द्वित्वे कर्तव्ये ॥

ओः पुयण्ज्यपरे ७ । ४ । ८० ॥

सनि परे यदङ्गं तदवयवाभ्यासोकारस्येत्वं पवर्गयण्जकारेष्ववर्णपरेषु परतः । अवीभवत् । अवीभवत । अथार्दन्ताः । कथ वाक्यप्रबन्धे ॥

अतो लोपः ६ । ४ । ४८ ॥

आर्द्धधातुकोपदेशकाले यददन्तन्तस्यातो लोप आर्द्धधातुके ॥

अचः परस्मिन् पूर्वविधौ १ । १ । ५७ ॥

परनिमित्तोऽजादेशः स्थानिवत् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्त्तव्ये । इति अल्लोपस्य स्थानिवद्भावान्न वृद्धिः । कथयति । अचकथत् । अग्लोपित्वान्नदीर्घसन्वद्भावौ ॥

इति भ्वादयश्चुराद्यन्ता धातवः ।

कण्डूञ् गात्रविघर्षणे ॥

कण्ड्वादिभ्यो यक् ३ । १ । २७ ॥

कण्ड्वादयो धातवः प्रातिपदिकानि चेति द्विधा तत्र धातुभ्यः स्वार्थे यक् । कण्डूयति कण्डूयते । अकण्डूयिष्ट ॥

तत्प्रयोजको हेतुश्च १ । ४ । ५५ ॥

कर्त्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च ॥

हेतुमति च ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजकव्यापारे प्रेषणादौ वाच्ये धातोर्णिच् । भवन्तं प्रेरयति भावयति । अवीभवत् । रक्षयति । अररक्षत् । खादयति । नाग्लोपिशास्वृदिताम् । अचखादत् । ह्लादयति । अजिह्लदत् । शीलयति । अशीशिलत् । नादयति । अनीनदत् । चेतयति । अचीचितत् ॥

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ३।१।७॥

इषिकर्मण इषिणैककर्तृकाद्धातोः सन् वेच्छायाम् ॥

सन्यङोः ६ । १ । ९ ॥

सन्नन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमैकाचो द्वे स्तोऽजादेस्तु द्वितीयस्य। इति द्वित्वम् ॥

सनि ग्रहगुहोश्च ७।२।१२॥

ग्रहेर्गुहेरुगन्ताच्च सन इण् न॥

इको झल् १।२।९॥

इगन्ताज्झलादिः सन् कित्। बुभूषति। जिजीविषति। सन्यतः निनदिषति॥

अज्झनगमां सनि ६।४।१६॥

अजन्तानां हनः इङिणिकादेशगमेश्च झलादौ सनि दीर्घः। चिक्षीषति॥

पूर्ववत्सनः १।३।६२॥

सनः पूर्वो यो धातुस्तेन तुल्यं सन्नन्तादप्यात्मनेपदम्। डिड-यिषते॥

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्३।१।२२॥

पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारस्तस्मिन्द्योत्ये एकाचो हलादेर्धातोर्यङ्॥

गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२॥

अभ्यासस्य गुणः यङि यङ्लुकि च। पुनः पुनर्भृशं वा भवति बोभूयते। बोभूयाञ्चक्रे। अबोभूयिष्ट॥

दीर्घोऽकितः ७।४।८३॥

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङि यङ्लुकि च। रारक्ष्यते॥

यस्य हलः ६।४।४९॥

हलः परस्य यशब्दस्य लोपः आर्द्धधातुके। आदेः परस्य। रार-क्षांचक्रे। रारक्षिता॥

इति २९ अंशाः।

यङोऽचि च २।४।७४॥

यङोऽच्प्रत्यये लुक्। चान्तं विनापि वहुलं लुक्। अयमनैमित्तिकत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्वम्। शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम्। चर्करीतं चेत्यदादौ पाठाच्छपो लुक्। श्तिपा शपानुवन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च॥ यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि॥ १॥ इत्यपि स्मरणीयम्। इयं परिभाषा निर्मूला इत्यप्याहुः॥

यङो वा ७।३।९४॥

यङन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्येड् वा। भूसुवोरिति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न। वोभूतु तेतिक्ते इति छन्दसि निपातनात्। वोभवीति। वोभोति। वोभूतः। वोभुवति। वोभवाञ्चकार। वोभविता। अवोभवीत्। अवोभोत्। अवोभूताम्। अवोभवुः। वोभूयात्। वोभूयाताम्। वोभूयात्। वोभूयास्ताम्। अवोभूवीत्। अवोभोत्। अवोभूताम्। अवोभूवुः। अवोभविष्यदित्यादि। राराष्टि। राराष्टः। रारक्षति। रारक्षि। ढौ। राराढ्ढि। अरारक्षीत्। अरारट् लुङि अरारक्षीत्॥

सुप आत्मनः क्यच् ३।१।८॥

इषिकर्मण एषितृसंवन्धिनः सुवन्तादिच्छार्थे वा क्यच्॥

सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २।४।७१॥

एतयोरवयवस्य सुपो लुक्॥

क्यचि च ७।४।३३॥

अस्य ईत्। आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति॥

नः क्ये १।४।१५॥

क्यचि क्यङि च नान्तमेव पदन्नान्यत्। समिध्यति॥

क्यस्य विभाषा ६।४।५०॥

हलः परयोः क्यच्क्यङोर्लोपो वाऽऽर्द्धधातुके। समिधिता। समिध्यिता॥

काम्यच्च ३ । १ । ९ ॥

उक्तविषये। पुत्रकाम्यति। यशस्काम्यति ॥

उपमानादाचारे ३ । १ । १० ॥

उपमानात्कर्मणः सुबन्तादाचारेऽर्थे क्यच्। पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति च्छात्रम् ॥

अधिकरणाच्च * ॥

प्रासादीयति कुट्याम् ॥

कर्तुः क्यङ् सलोपश्च ३ । १ । ११ ॥

उपमानात्कर्तुः सुबन्तादाचारे क्यङ् वा। सान्तस्य तु कर्तृवाचकस्य लोपो वा क्यङ् वेत्युक्तेः। पक्षे वाक्यं कृष्ण इवाचरति कृष्णायते। ओजायते। अप्सरायते ॥

सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विब्वा वक्तव्यः * ॥

सुप इति न संबध्यते। तेन पदकार्यं न ॥

वेरपृक्तस्य ६ । १ । ६७ ॥

अपृक्तस्य वस्य लोपः। कृष्णति ॥

भावकर्मणोः १ । ३ । १३ ॥

लस्यात्मनेपदम् ॥

सार्वधातुके यक् ३ । १ । ६७ ॥

धातोर्यक् भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके। भावे प्रथमैकवचनमेव। अनभिहिते कर्तरि तृतीया। त्वया मया अन्यैश्च भूयते बभूवे ॥

स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ६ । ४ । ६२ ॥

उपदेशे योऽच् तदन्तानां हनादीनां च चिणीवाङ्गकार्यं वा स्यात् स्यादिषु परेषु भावकर्मणोर्गम्यमानयोः स्यादीनामिडागमश्च। अयमिट् चिण्वद्भावसंनियोगशिष्टत्वात्तदभावे न। भाविता। भविता।

भाविष्यते । भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भूयेत । भाविषीष्ट । भविषीष्ट ॥

चिण् भावकर्मणोः ३ । १ । ६६ ॥

च्लेश्चिण् भावकर्मवाचिनि तशब्दे ॥

चिणो लुक् ६ । ४ । १०४ ॥

चिणः परस्य तशब्दस्य लुक् । अभावि । अभाविष्यत । अभविष्यत । कर्मणि तङ् । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । अनुभूयेते । अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । इत्यादि । रक्ष्यते । अरक्षि ॥ इत्याख्यातम् ।

इति ३० अंशाः ।

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः ।

धातोः ३ । १ । ९१ ॥

अधिकारः ॥

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ३ । १ । ९२ ॥

धात्वधिकारे सप्तम्यन्ते कर्मणीत्यादौ वाच्यत्वेन स्थितं कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञम् ॥

कृदतिङ् ॥ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३ । १ । ९४ ॥

अस्मिन्धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्ययः उत्सर्गस्य बाधको वा स्यादधिकारोक्तं विना ॥

कृत्याः ३ । १ । ९५ ॥

'तव्यत्तव्यानीयर्यण्ण्यत्क्यप्केलिमरः कृत्यसंज्ञाः ॥

कर्तरि कृत् ३ । ४ । ६७ ॥

कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात् ॥

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३ । ४ । ७० ॥

एते भावकर्मणोरेव ॥

तव्यत्तव्यानीयरः ३ । १ । ९६ ॥

धातोरेते प्रत्ययाः स्युः । एधितव्यम् । एधनीयम् त्वया । भावे एकत्वं क्लीबत्वञ्च । चेतव्यश्चयनीयो वा धर्मस्त्वया । चेतव्या सम्पत्तिः । चेतव्यं धनम् ॥

केलिमर् च ॐ ॥

पचेलिमाः मापाः । कर्मणि प्रत्ययः ॥

अचो यत् ३ । १ । ९७ ॥

अजन्ताद्धातोर्यत् । चेयम् । जेयम् ॥

वान्तो यि प्रत्यये ६ । १ । ७९ ॥

यादौ प्रत्यये ओदौतोरवावौ । श्रव्यम् ॥

धातोस्तन्निमित्तस्यैव ६ । १ । ८० ॥

यादौ प्रत्यये धातोरेचश्चेदवावौ तर्हि तन्निमित्तस्यैव । भव्यम् । तन्निमित्तस्य किम् । ओयते । औयत ॥

ओरावश्यके ३ । १ । १२५ ॥

उवर्णान्ताद्धातोर्ण्यत् अवश्यंभावे द्योत्ये । अवश्यं भवितुं योग्यं भाव्यम् । श्राव्यम् ॥

पोरदुपधात् ३ । १ । ९८ ॥

पवर्गान्तादुदुपधाद्यत् । शप्यम् । लभ्यम् । सारूप्यान्न ण्यत् । तव्यदादयः स्युरेव । शप्तव्यम् । शपनीयम् ॥

ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ३ । १ । ११० ॥

क्यप् । वृत्यम् । वृध्यम् ॥

ऋहलोर्ण्यत् ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् । हार्यम् । वाह्यम् ॥

चजोः कु घिण्ण्यतोः ७ । ३ । ५२ ॥

चस्य जस्य च कुत्वं घिति ण्यति च प्रत्यये । पाक्यम् ॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ३ । ३ । १६९ ॥

चाल्लिङ् । पाठ्यः । पठिता । त्व कन्या वहेः ॥

शकि लिङ् च ३ । ३ । १७२ ॥

शक्तौ लिङ् । चात्कृत्याः । वाह्यः । वहनीयः । त्वं भारं वहेः ॥

ण्वुल्तृचौ ३ । १ । १३३ ॥

धातोः ॥

युवोरनाकौ ७ । १ । १ ॥

युवुएतयोरनुनासिकयोः अन अक एतौ स्तः । कारकः । कर्त्ता ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादेर्ल्युः ग्रह्यादेर्णिनिः पचादेरच् । नन्दनः । लवणः । निपातनाण्णः । ग्राही ॥

आतो युक् चिण्कृतोः ७ । ३ । ३३ ॥

आदन्तस्य युक् चिणि ञिति णिति कृति च । स्थायी । पचः । पचादिराकृतिगणः । सर्वधातुभ्य एवाच् इति प्राहुः ॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३ । १ । १३५ ॥

एभ्यः कः । क्षिपः । कृशः । ज्ञः । प्रियः ॥

ॠत इद्धातोः ७ । १ । १०० ॥

रपरत्वम् । किरः ॥

आतश्चोपसर्गे ३ । १ । १३६ ॥

कः । कुगतिप्रादयः इति वक्ष्यमाणेन समासः । सुग्लः । म्लः ॥

आशिषि च ३ । १ । १५० ॥

आशीर्विषयार्थवृत्तेर्धातोर्वुन् । जीवताज्जीवकः । नन्दकः ॥

कर्मण्यण् ३ । २ । १ ॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् ॥

उपपदमतिङ् २ । २ । १९ ॥

उपपदं समर्थेन नित्यं समस्यते अतिङन्तश्चायं समासः। प्रातिपदिकत्वम् । सुपो लुक् । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः ॥

आतोऽनुपसर्गे कः ३ । २ । ३ ॥

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात् । गोदः । पार्ष्णित्रम् । नेह । गोसंदायः ॥

क्विप् च ३ । २ । ७६ ॥

अयमपि दृश्यते ॥

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ६ । १ । ७१ ॥

कृत् ॥

इति ३१ अंशाः ।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३ । २ । ७८ ॥

अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिः ताच्छील्ये द्योत्ये । उष्णभोजी । उपजीवी ॥

कर्तर्युपमाने ३ । २ । ७९ ॥

णिनिः । उष्ट्रक्रोशी ॥

व्रते ३ । २ । ८० ॥

णिनिः । स्थण्डिलशायी ॥

बहुलमाभीक्ष्ण्ये ३ । २ । ८१ ॥

पौनःपुन्ये द्योत्ये सुप्युपपदे णिनिः । क्षीरपायिण उशीनराः । भूते इत्यधिकृत्य ॥

अन्येष्वपि दृश्यते ३ । २ । १०१ ॥

सप्तमीपञ्चम्यभिन्नेऽपि उपपदे जनेर्डः । अजः । द्विजः । जानेभिन्नादपि कारकान्तरेऽपि क्वचित् । परिखा ॥

क्तक्तवतू निष्ठा १ । १ । २६ ॥

एतौ निष्ठासंज्ञौ ॥

निष्ठा ३ । २ । १०२ ॥

भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विष्णुर्विश्वं कृतवान् ॥

श्र्युकः किति ७ । २ । ११ ॥

श्रिञ एकाजुगन्ताच्च गित्कितोरिण्न। श्रितः भूतम् भूतवान् ॥

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ३ । ४ । ७२ ॥

कर्तरि क्तः स्याद्भावकर्मणोश्च। गङ्गाङ्गतः। गङ्गां प्राप्तः। स्नातः सः। पक्षे प्राप्ता गङ्गा तेनेत्यादि। शेषं वक्ष्यते ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ३ । २ । १८८ ॥

वर्त्तमाने क्तः। राज्ञां मतः। इष्यमाण इत्यर्थः। बुद्धः पूजितः। चात् शीलितो रक्षितः क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यादि ॥

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे३।२।१२४॥

पचन्तं चैत्रम्पश्य ॥

आने मुक् ७ । २ । ८२ ॥

अदन्ताङ्गस्यातो मुक् आने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। प्रथमासमानाधिकरणेऽपि क्वचित्। सन् ब्राह्मणः ॥

तौ सत् ३ । २ । १२७ ॥

शतृशानचौ सत्संज्ञौ ॥

लृटः सद्वा ३ । ३ । १४ ॥

करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य। प्रथमासमानाधिकरणेऽपि क्वचित्। करिष्यतीति करिष्यन् ॥

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३ । २ ।१३४॥

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ॥

तृन् ३ । २ । १३५ ॥

कर्त्ता कटम् ॥

चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच्‌ ३ । २ । १४८ ॥

चलनार्थाच्छब्दार्थाच्चाकर्मकाद् युच्। चलनः। शब्दनः। इत्यादि ॥

अनुदात्तेतश्च हलादेः ३ । २ । १४९ ॥

अकर्मकाद्युच् । वर्तनः । वर्द्धनः ॥

क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ३ । २ । १५१ ॥

क्रोधनः । मण्डनः ॥

सनाशंसभिक्ष उः ३ । २ । १६८ ॥

चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३ । २ । १७८ ॥

क्विप् । छिद् । भिद् । मितद्वादिभ्यः डुः । मितद्रुः । शतद्रुः । शम्भुः ॥

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थे धातोरेतौ स्तः। अव्ययकृतो भावे । घटं कर्त्तुं याति । घटं कारको याति ॥

समानकर्तृकेषु तुमुन् ३ । ३ । १५८ ॥

इच्छार्थेष्वेककर्तृकेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् । इच्छति भोक्तुम् ॥

भावे ३ । ३ । १८ ॥

सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ् । पाकः पाकौ ॥

अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ३ । ३ । १९ ॥

कर्तृभिन्ने कारके घञ् । प्रासः। संज्ञायामिति प्रायिकम् । लाभो लब्धः । कृत्यल्युट इत्यतः प्राक् भावे अकर्त्तरि च कारके इति द्वयमप्यनुवर्त्तते ॥

एरच् ३ । ३ । ५६ ॥

जयः । नयः ॥

ऋदोरप् ३ । ३ । ५७ ॥

करः । गरः । लवः । यवः । स्तवः ॥

घञर्थे कविधानम् ❀ ॥

प्रस्थः । विघ्नः ॥

ड्वितः क्त्रिः ३ । ३ । ८८ ॥

अयमथुष भाव एव ॥

क्त्रेर्मम् नित्यम् ४ । ४ । २० ॥

क्त्रिप्रत्ययान्तान्नित्यं मप् निर्वृत्तेऽर्थे । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् ॥

भावप्रत्ययान्तादिमब्वक्तव्यः ❀ ॥

निर्वृत्तेऽर्थे । त्यागिमम् । पाकिमम् ॥

ट्वितोऽथुच् ३ । ३ । ८९ ॥

वेपथुः । श्वयथुः ॥

इति ३२ अंशाः ।

स्त्रियां क्तिन् ३ । ३ । ९४ ॥

स्त्रीलिङ्गे भावादौ क्तिन् । घञोऽपवादः । अजपौ तु परत्वाद्बाधते । कृतिः । चितिः । स्तुतिः ॥

तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च ७ । २ । ९ ॥

एषामेट् । दीप्तिः । स्फायी । स्फातिः । संपदादिभ्यः क्विप् । सम्पत् । विपत् । क्तिन्नपि । संपत्तिः । विपत्तिः ॥

अप्रत्ययात् ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारप्रत्ययः । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या ॥

गुरोश्च हलः ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियामकारप्रत्ययः । ईहा । ऊहा ॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ् ३ । ३ । १०४ ॥

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च स्त्रियामङ् । जरा । त्रपा । भिदा विदारणे । भित्तिरन्या । छिदा । कृपेः संप्रसारणं च । कृपा ॥

आतश्चोपसर्गे ३ । ३ । १०६ ॥

अङ् । प्रदा । उपदा । श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः । श्रद्धा । अन्तर्द्धा ॥

ण्यासश्रंथो युच् ३ । ३ । १०७ ॥

कारणा । आसना । श्रन्थना ॥

रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ३ । ३ । १०८ ॥

प्रच्छर्दिका । क्वचिन्न । शिरोर्त्तिः ॥

धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्यः ❀ ॥

आसिका । शायिका । इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे । पचिः । पचतिः ॥

वर्णात्कारः ॥

अकारः । रादिफः । रेफः । रकारः । मत्वर्थाच्छः वाहुलकात् । अलोपः मत्वर्थीयः ॥

इणजादिभ्यः ॥

आजिः । आतिः ॥

इञ् वपादिभ्यः ॥

वापिः । वासिः ॥

इक् कृष्यादिभ्यः ॥

कृषिः । गिरिः ॥

आक्रोशे नञ्यनिः ३ । ३ । ११२ ॥

नञि उपपदे अनिः आक्रोशे । अजीवनिस्ते भूयात् ॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ३ । ३ । ११३ ॥

यत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि स्युः। स्नात्यनेनेति स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः । राज्ञा भुज्यन्ते राजभोजनाः शालयः ॥

नपुंसके भावे क्तः ३ । ३ । ११४ ॥

कालसामान्ये ॥

ल्युट् च ३ । ३ । ११५ ॥

हसितम् । हसनम् ॥

करणाधिकरणयोश्च ३ । ३ । ११७ ॥

ल्युट् । इध्ममव्रश्चनः । गोदोहनी । खलः । प्राक्करणाधिकरणयोरित्यधिकारः ॥

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३ । ३ । ११८ ॥

आकुर्वन्त्यस्मिन् आकर. ॥

हलश्च ३ । ३ । १२१ ॥

घञ् । रमन्ते योगिनोऽत्रेति रामः ॥

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३ । ३ । १२६ ॥

एषु दुःखसुखार्थेषूपपदेषु खल् । दुष्करः कटो भवता । सुकरः। ईषत्करः ॥

आतो युच् ३ । ३ । १२८ ॥

खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोम इत्यादि ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ३ । ३ । १७० ॥

अवश्यकारी । शतन्दायी ॥

कृत्याश्च ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोः । अवश्यं हरिः सेव्यः । [illegible]तन्देयम् ॥

क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ३ । ३ । १[illegible]७४ ॥

धातोः क्तिच् क्तश्चाशिषि संज्ञायाम् । भ[illegible]वतात् । भूति. । देवदत्तः ॥

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः क्त्वा । अलं दत्त्वा । पीत्वा खलु ॥

समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३ । ४ । २१ ॥

समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा । भुक्त्वा व्रजति । भुक्त्वा पीत्वा व्रजति ॥

समासे नञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७ । १ । ३७ ॥

अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो ल्यप् । प्रकृत्य ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३ । ४ । २२ ॥

पौनःपुन्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् । चात् क्त्वा । द्वित्वम् । स्मारं स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा स्मृत्वा ॥

उपमाने कर्मणि च ३ । ४ । ४५ ॥

कर्मणि कर्त्तरि चोपमाने उपपदे धातोर्णमुल् ॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ३ । ४ । ४६ ॥

घृतनिधायन्निहितं जलम् । अजकनाशं नष्टः ॥

इति कृत् । इति ३२ अंशाः ।

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६॥

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात् । उच्चैः । नीचैः । कृष्णः । श्रीः । ज्ञानम् । अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च । प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम् । अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राद्याधिक्यस्य । तटः । तटी । तटम् । परिमाणमात्रे द्रोणो व्रीहिः । द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः । वचनं संख्या । एकः । द्वौ । बहवः ॥

सम्बोधने च २ । ३ । ४७ ॥

इह प्रथमा । हे राम ॥

कारके १ । ४ । २३ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

कर्तुरीप्सिततमं कर्म १ । ४ । ४९ ॥

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञम् ॥

अनभिहिते २ । ३ । १ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

कर्मणि द्वितीया २ । ३ । २ ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया । हरिं भजति ॥

उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु ॥
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयतः कृष्णम् । सर्वतः कृष्णम् । उपर्युपरि लोकम् । इत्यादि ॥

स्वतन्त्रः कर्ता १ । ४ । ५४ ॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्तृसंज्ञः ॥

साधकतमं करणम् १ । ४ । ४२ ॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञम् ॥

कर्तृकरणयोस्तृतीया २ । ३ । १८ ॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया । रामेण बाणेन हतो वाली ।

प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् * ॥

प्रकृत्या चारुः । प्रायेण याज्ञिकः । इत्यादि ॥

सहयुक्तेऽप्रधाने २ । ३ । १९ ॥

सहार्थेन युक्ते ऽप्रधाने तृतीया । पुत्रेण सहागतः पिता । एवं साकंप्रभृतियोगेऽपि ॥

विनापि तद्योगं तृतीया * ॥

पुत्रेणागतः ॥

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १ । ४ । ३२ ॥

दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानसंज्ञः ॥

चतुर्थी सम्प्रदाने २ । ३ । १३ ॥

विप्राय गां ददाति ॥

तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या ❀

मुक्तये हरिं भजति ॥

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च २ । ३ । १६॥

एभिर्योगे चतुर्थी । हरये नमः । इत्यादि ॥

ध्रुवमपायेऽपादानम् १ । ४ । २४ ॥

अपायो विश्लेषस्तस्मिन् साध्ये ध्रुवमवधिभूतं कारकमपादानसंज्ञम् ॥

अपादाने पञ्चमी २ । ३ । २८ ॥

ग्रामादायाति । धावतोऽश्वात्पतति ॥

अन्यारादितरर्त्तेदिक्छब्दाऽञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते २।३।२९

एभिर्योगे पञ्चमी । अन्यः भिन्नः आरात् इतरः ऋते वा कृष्णात् । चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः । प्राक् प्रत्यक् दक्षिणा । दक्षिणाहि वा ग्रामात् ॥

इति ३४ अंशाः ।

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च २ । ३ । ३५ ॥

प्रातिपदिकार्थमात्रे एभ्यो द्वितीया चात्पञ्चमीतृतीये । ग्रामस्य दूरं दूरात् दूरेण वा । एवमन्तिकयोगे । असत्त्ववचनस्यैव । नेह । दूरः पन्थाः ॥

षष्ठी शेषे २ । ३ । ५० ॥

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः शेषस्तत्र षष्ठी । राज्ञः पुरुषः।कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव । सतां गतम् । सर्पिषो जानीते । मातुः स्मरति । इत्यादि ॥

कर्तृकर्मणोः कृति २ । ३ । ६५ ॥

कृद्योगे कर्तरि कर्मणि च षष्ठी । कृष्णस्य कृतिः । जगतः कर्ता कृष्णः ॥

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् २ । ३ । ६९ ॥

एषा प्रयोगे षष्ठी न । कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः । हरिं दिदृक्षुः । अलंकरिष्णुर्वा दैत्यान् घातुको हरिः ॥

कमेरनिषेधः ॥

लक्ष्म्याः कामुको हरिः । जगत्स्रष्टा सुखं कर्तुम् । विष्णुना हता दैत्याः । दैत्यान् हतवान् हरिः । ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा । तृन्निति प्रत्याहारः। शानन् । सोमं पवमानः। चानश् । आत्मानं मण्डयमानः । शतृ । वेदमधीयन् । तृन् । कर्ता लोकान् ॥

द्विषः शतुर्वा ॥

मुरस्य मुरं वा द्विषन् । सर्वोऽयं कारकषष्ठ्याः प्रतिषेधः । शेषे षष्ठी तु स्यादेव । ब्राह्मणस्य कुर्वन् । नरकस्य जिष्णुः ॥

आधारोऽधिकरणम् १ । ४ । ४५ ॥

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणसंज्ञम् ॥

सप्तम्यधिकरणे च २ । ३ । ३६ ॥

अधिकरणे सप्तमी । चाद्दूरान्तिकार्थेभ्यः । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे आस्ते । स्थाल्यां पचति । मोक्षे इच्छास्ति । सर्वस्मिन्नात्मास्ति । वनस्य दूरे अन्तिके वा । दूरान्तिकार्थेभ्य इति विभक्तित्रयेण सह चतस्रोऽत्र विभक्तयः फलिताः ॥

यस्य च भावेन भावलक्षणम् २ । ३ । ३७ ॥

यस्य क्रियया क्रियान्तरं लक्ष्यते ततः सप्तमी । गोषु दुह्यमानासु गतः ॥

यतश्च निर्धारणम् २ । ३ । ४१ ॥

जातिगुणक्रियासंज्ञाभिः समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणं ततः षष्ठीसप्तम्यौ । नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः । गवां गोषु

वा कृष्णा बहुक्षीरा। गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्छीघ्रः। छात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः॥ इति कारकप्रकरणम्॥

इति ३५ अंशाः।

अव्ययीभावः २।१।५॥

अधिकारोऽयम्॥

अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसंपत्तिसाकल्यान्तवचनेषु २।१।६॥

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं समर्थेन सुबन्तेन सह समस्यते सोऽव्ययीभावः॥

प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १।२।४३॥

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञम्॥

उपसर्जनं पूर्वम् २।२।३०॥

समासे उपसर्जनं प्राक् प्रयोज्यम्। अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वम्। हरौ इति अधिहरि। अत्र हरि ङि अधि इत्यलौकिकं विग्रहवाक्यम्॥

अव्ययीभावश्च २।४।१८॥

अयं नपुंसकम्॥

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७॥

अजन्तस्य। गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम्॥

नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः २।४।८३॥

अदन्तादव्ययीभावात् सुपो न लुक्। तस्य पञ्चमीं विना अमादेशः। कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम्॥

तृतीयासप्तम्योर्बहुलम् २।४।८४॥

अम् उपकृष्णम् उपकृष्णेन उपकृष्णम् उपकृष्णे। मक्षिका-

णामभावः निर्मक्षिकम् । विष्णोः पश्चाद् अनुविष्णु । योग्यतावी-प्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थास्तेषु। रूपस्य योग्यम् अनुरूपम् । वीप्सायां विकल्पः । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ॥ इत्यव्ययीभावः ॥

तत्पुरुषः २ । १ । २२ ॥

अधिकारोऽयम् ॥

द्विगुश्च २ । १ । २३ ॥

तत्पुरुषसंज्ञः ॥

कर्तृकरणे कृता बहुलम् २ । १ । ३२ ॥

कर्त्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं समस्यते।हरिणा त्रातः हरित्रातः । नखनिर्भिन्नः ॥

षष्ठी २ । २ । ८ ॥

सुबन्तेन । लोकस्य पतिः लोकपतिः ॥

विशेषणं विशेष्येण बहुलम् २ । १ । ५७ ॥

भेदकं समानाधिकरणेन भेद्येन बहुलं समस्यते ॥

तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः १ । २। ४२॥

वृद्धश्चासौ पुरुषश्च वृद्धः पुरुष इति वा वृद्धपुरुषः । वृद्धौ च तौ पुरुषौ च वृद्धपुरुषौ । वृद्धाश्च ते पुरुषाश्च वृद्धपुरुषाः । एवमग्रेऽपि द्विवचन बहुवचने ज्ञेये । नीलोत्पलम् । नीलोत्पले नीलोत्पलानि ॥

पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु ६ । ३ । ४२ ॥

कर्मधारये जातीयदेशीययोश्च परतो भाषितपुंस्कात्पर ऊङभावो यस्मिन् तथाभूतं पूर्वं पुंवत् । फुल्ललता । फुल्ललते । फुल्ललताः ॥

उपमानानि सामान्यवचनैः २ । १ । ५५ ॥

समानाधिकरणैः । घन इव श्यामः घनश्यामः ॥

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे २ । १ । ५६॥

उपमेयं व्याघ्रादिभिः समानाधिकरणैः समस्यते साधारणधर्मस्याप्रयोगे । पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः । आकृतिगणोऽयम् ॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २ । १ । ५१ ॥

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे परे समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये समानाधिकरणे न समस्येते ॥

संख्यापूर्वो द्विगुः २ । १ । ५२ ॥

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तः संख्यापूर्वो द्विगुः स्यात् ॥

द्विगुरेकवचनम् २ । ४ । १ ॥

द्विग्वर्थः समाहारः एकवत् ॥

स नपुंसकम् २ । ४ । १७ ॥

समाहारे द्विगुर्द्वंद्वश्च नपुंसकम् । परवल्लिङ्गापवादः । पञ्चानां पात्राणां समाहारः पञ्चपात्रम् । शेषो द्विगुर्वक्ष्यते ॥

इति ३६ अंशाः ।

नञ् २ । २ । ६ ॥

सुपा सह समस्यते ॥

नलोपो नञः ६ । ३ । ७३ ॥

उत्तरपदे । अब्राह्मणः ॥

तस्मान्नुडचि ६ । ३ । ७४ ॥

लुप्तनकारान्नञ उत्तरपदस्याजादेर्नुट् । अनश्वः ॥

कुगतिप्रादयः २ । २ । १८ ॥

समर्थेन नित्यं समस्यन्ते । कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः । ऊरीकृतम् । सुम्लः प्रज्ञः इत्यादि तु उपपदसमासेनापि सिद्धम् । आदिग्रहणमगत्यर्थम् । प्रगतः आचार्यः प्राचार्यः । दुराचारः पुरुषो दुष्पुरुषः । सुस्वभावः पुरुषः सुपुरुषः ॥

ऊर्यादिच्विडाचश्च १ । ४ । ६१ ॥

एते क्रियायोगे गतिसंज्ञाः। ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य॥

एकविभक्ति चापूर्वनिपाते १।२।४४॥

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्नतु तस्य पूर्वनिपातः॥

गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य १।२।४८॥

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः। अतिमालः। निष्कौशाम्बिः अयमपि आदिसमासः॥

उपपदमतिङ् २।२।१९॥

कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। इह कुम्भ अस् कार् अ इत्यलौकिकं प्रक्रियावाक्यम्॥ इति तत्पुरुषः॥

शेषो बहुव्रीहिः २।२।२३॥

अनेकमन्यपदार्थे २।२।२४॥

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्त्तमानं वा समस्यते। अप्रथमार्थे समानाधिकरणानां बहुव्रीहिरिति फलितम्। प्राप्तमुदकं यं प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतौदना स्थाली। पीताम्बरो हरिः। वीरपुरुषो ग्रामः॥

स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ्समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ६।३।३४॥

तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङ भावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्येव रूपं समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्ग उत्तरपदे नतु पूरण्यां प्रियादौ च परतः। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः॥

तेन सहेति तुल्ययोगे २।२।२८॥

तुल्ययोगे वर्त्तमानं सहेत्येतत्तृतीयान्तेन प्राग्वत्॥

वोपसर्जनस्य ६।३।८२॥

बहुव्रीहेरवयवस्य सहस्य सो वा । पुत्रेण सह सपुत्रो गतः, सहपुत्रो वा ॥

नद्यृतश्च ५ । ४ । १५३ ॥

नद्यन्तोत्तरपदादृदन्तोत्तरपदाच्च बहुव्रीहेः कप् ॥

केऽणः ७ । ४ । १३ ॥

के परे णो ह्रस्वः इति ह्रस्वे प्राप्ते ॥

न कपि ७ । ४ । १४ ॥

कपि परे ह्रस्वो न । सपत्नीकः । बहुकर्तृकः ॥

इति बहुव्रीहिः ॥

चार्थे द्वंद्वः २ । २ । २९ ॥

अनेकं सुबंतं चार्थे वर्त्तमानं वा समस्यते । स द्वंद्वः इतरेतरयोगे । धवखदिरौ । समाहारे संज्ञापरिभाषम् । समाहारस्यैक्यादेकत्वम् ॥ इति द्वंद्वः ॥ इति समासाः ॥

इति ३७ अंशाः ।

तस्यापत्यम् ४ । १ । ९२ ॥

षष्ठ्यन्तात्कृतसन्धेः समर्थादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्च अणादयः प्रत्यया वा ॥

तद्धितेष्वचामादेः ७ । २ । ११७ ॥

ञिति णिति च तद्धिते परेऽचामादेरचो वृद्धिः ॥

किति च ७ । २ । ११८ ॥

किति तद्धिते तथा । आदिवृद्धिरन्त्योपधावृद्धी बाधते ॥

ओर्गुणः ६ । ४ । १४६ ॥

उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते । उपगोरपत्यमौपगवः ॥

अत इञ् ४ । १ । ९५ ॥

अदन्तं यत्प्रातिपदिकं तत्प्रकृतिकात्षष्ठ्यन्तादिञ् अपत्येऽर्थे । दाक्षिः ॥

स्त्रीभ्यो ढक् ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् अपत्ये ॥

आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ७।१।२॥

वैनतेयः ॥

इतश्चानिञः ४ । १ । १२२ ॥

इकारान्ताद्व्यचोऽपत्ये ढक् न त्विञन्तात् । दौलेयः । नैधेयः । आत्रेयः ॥

तदधीते तद्वेद ४ । २ । ५९ ॥

अत्रार्थे अणादयः ॥

नय्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ७।३।३ ॥

पदान्ताभ्या यकारवकाराभ्या परस्य न वृद्धिः । किंतु ताभ्या पूर्वौ क्रमादैचावागमौ । वैयाकरणः ॥

शेषे ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम् ॥

तत्र भवः ४ । ३ । ५३ ॥

अत्राणादयः । स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः ॥

तस्येदम् ४ । ३ । १२० ॥

अत्राणादयः । औपगवम् ॥

वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १ । १ । ७३ ॥

यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्वृद्धसंज्ञम् ॥

त्यदादीनि च १ । १ । ७४ ॥

वृद्धसंज्ञानि ॥

वृद्धाच्छः ४ । २ । ११४॥

शालीयः । तदीयः ॥

वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा * ॥

दैवदत्तः देवदत्तीयः ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५ । १ । ११५ ॥

ब्राह्मणवदधीते ॥

तस्य भावस्त्वतलौ ५ । १ । ११९ ॥

गोत्वम् गोता ॥

षः प्रत्ययस्य १ । ३ । ६ ॥

प्रत्ययस्यादिः प इत् ॥

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ५ । १ । १२४ ॥

ष्यञ् चाद्भावे । जाड्यम् । ब्राह्मण्यम् ॥

संख्याया अवयवे तयप् ५ । २ । ४२ ॥

पञ्चतयम् ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ५ । २ । ४३ ॥

द्वयं द्वितयम् । त्रयं त्रितयम् ॥

तस्य पूरणे डट् ५ । २ । ४८ ॥

एकादशः ॥

नान्तादसंख्यादेर्मट् ५ । २ । ४९ ॥

डटो मडागमः । पञ्चमः ॥

षट्कतिकतिपयचतुरान्थुक् ५ । २ । ५१ ॥

एषां थुगागमो डटि । षष्ठः । चतुर्थः ॥

चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च * ॥

तुरीयः तुर्यः ॥

द्वेस्तीयः ५ । २ । ५४ ॥

द्वितीयः ॥

त्रेः संप्रसारणञ्च ५ । २ । ५५ ॥

तृतीयः ॥

विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम् ५ । २ । ५६ ॥

एभ्यो डस्तमडागमो वा ॥

तिविंशतेर्डिति ६ । ४ । १४२ ॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपः डिति । विंशतितमः विंशः । एकविंशतितमः एकविंशः । शतादेर्नित्यं तमट् वक्ष्यते ॥

इति ३८ अंशाः ।

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५ । २ । ९४ ॥

गोमान् ॥

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८ । २ । ९ ॥

मवर्णावर्णान्तान्मवर्णावर्णोपधाच्च यवादिवर्जात्परस्य मतोर्मस्य वः । किंवान् । ज्ञानवान् । विद्यावान् । लक्ष्मीवान् ॥

तसौ मत्वर्थे १ । ४ । १९ ॥

तान्तसान्तौ भसंज्ञौ मत्वर्थे प्रत्यये । यशस्वान् । भास्वान् । यवादेस्तु । यवमान् । भूमिमान् ॥

झयः ८ । २ । १० ॥

झयन्तात् मतोर्मस्य वः । विद्युत्वान् ॥

प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५ । २ । ९६ ॥

चूडालः चूडावान् ॥

अत इनिठनौ ५ । २ । ११५ ॥

वा । दण्डी ॥

ठस्येकः ७ । ३ । ५० ॥

अङ्गात्परस्येकादेशः । दण्डिकः दण्डवान् ॥

अस्मायामेधास्रजो विनिः ५ । २ । १२१ ॥

यशस्वी यशस्वान् । इत्यादि ॥

संख्याया विधार्थे धा ५ । ३ । ४२ ॥

क्रियाप्रकारे वर्तमानात्संख्याशब्दात्स्वार्थे धा । चतुर्धा ॥

अतिशायने तमबिष्ठनौ ५ । ३ । ५५ ॥

अतिशयविशिष्टार्थवृत्तेः स्वार्थे एतौ । अयमेषामतिशयेन आढ्यः आढ्यतमः । लघुतमः ॥

टेः ६ । ४ । १५५ ॥

टेर्लोप इष्ठेमेयस्सु । लघिष्ठः ॥

तिङश्च ५ । ३ । ५६ ॥

तिङन्तादतिशये द्योत्ये तमप् ॥

तरप्तमपौ घः १ । १ । २२ ॥

एतौ घसंज्ञौ ॥

किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे ५ । ४ । ११ ॥

किम एदन्तात्तिङोऽव्ययाच्च यो घस्तदन्तादामुर्नतु द्रव्यप्रकर्षे । किन्तमाम् । पचतितमाम् । उच्चैस्तमाम् । एदन्तादुदयते । द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तमस्तरुः ॥

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५ । ३ । ५७ ॥

द्वयोरेकस्यातिशये विभक्तव्ये चोपपदे सुप्तिङन्ताद् एतौ स्तः । पूर्वयोरपवादः । अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः लघीयान् । उदीच्याः प्राच्येभ्यः पटुतराः पटीयांसः । किन्तराम् । पचतितराम् । उच्चैस्तराम् । द्रव्यप्रकर्षे तु उच्चैस्तरस्तरुः ॥

अत्यन्तस्वार्थे पिकन्तरप्मयटः ❀ ॥

बहुतरकम् । अल्पान्तरम् । ब्रह्ममयम् ॥

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ५।४।१७॥

क्रियाजन्मगणनवृत्तेः संख्याशब्दात्स्वार्थे कृत्वसुच् । पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ५ । ४ । १८ ॥

द्विर्भुङ्क्ते । त्रिः । चतुः ॥

एकस्य सकृच्च ५ । ४ । १९ ॥

सकृदित्यादेशः चात्सुच् । सकृद् भुङ्क्ते ॥

कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्त्तरि च्विः ५ । ४ । ५० ॥

अभूततद्भावे इति वाच्यम् ॥

विकारात्मतां प्राप्नुवत्यां प्रकृतौ वर्त्तमानाद्विकारशब्दात् स्वार्थे च्विर्वा करोत्यादिभिर्योगे ॥

अस्य च्वौ ७ । ४ । ३२ ॥

अवर्णस्य ईत् च्वौ । वेरपृक्तस्य । अकृष्णः कृष्णः सम्पद्यते तं करोति कृष्णीकरोति । ब्रह्मी भवति । गंगीस्यात् ॥

च्वौ च ७ । ४ । २६ ॥

च्वौ परे पूर्वस्य दीर्घः । शुचीभवति । पटूस्यात् ॥

रीङ् ऋतः ७ । ४ । २७ ॥

अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च ऋदन्ताङ्गस्य रीङ् । मात्रीकरोति ॥ इति तद्धिताः ॥

इति ३९ अंशाः ।

स्त्रियामित्यधिकृत्य ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥

अजा । एडका । इत्यादि । खट्वा ॥

प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७।३।४४॥

प्रत्ययस्थात्कात् पूर्वस्य आत इत् आपि परे स आप् सुपः परो न चेत् । सर्विका । कारिका । गङ्गाशब्दात् स्वार्थे कनि ततष्टापि च इति ह्रस्वः ॥

कृदिकारादक्तिनः ※ ॥

रात्रिः रात्री ॥

पुंयोगादाख्यायाम् ४ । १ । ४८ ॥

या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्त्तते ततो ङीप् । गोपस्य स्त्री गोपी ॥

स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् ४ । १ । ५४ ॥

असंयोगोपधमुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्तात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप् । केशानतिक्रांता अतिकेशी अतिकेशा । चन्द्रमुखी चन्द्रमुखा । संयोगोपधात्तु । सुगुल्फा । उपसर्जनात्किम् । शिखा ॥

जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् ४ । १ । ६३ ॥

जातिवाचि यन्न च स्त्रियान्नियतमयोपधमदन्तं ततः स्त्रिया ङीप् । तटी । घटी । औपगवी । कठी । वहृची । स्त्रीविषयात्तु वलाका ॥ *इति स्त्रीप्रत्ययाः* ॥

इति ४० अंशाः ।

आद्यखण्डे पूर्वभागः पाणिनीये प्रवेशकृत् ।
बालानां बोधदः पूर्णः श्रीहरेश्चरणेऽर्पितः ॥ १ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः । समाप्तोऽयं प्रथमाध्यायः ।

अत्रांशाः सूचिनिर्मित्यै कल्पिताः खद्विवह्नयः ।
तश्चत्वारिंशताध्यायोऽष्टाध्यायीयं भवेत्ततः ॥ १ ॥
सूच्या पादाः कादिसान्तैर्वर्णै (३२०) र्द्वात्रिंशदीरिताः ।
पादोंऽशैर्दशभिर्ह्रस्वदीर्घाणैश्चकल्पितैरिह ॥ २ ॥
पाणिनीयेऽष्टके सूत्रैर्विंशत्याशोङ्कसूचितैः ।
यद्वाङ्कैरेव कौमुद्यामष्टके चांशसूचनम् ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितकृतकौमुद्याः प्रतिबिम्बरूपायां सुगमकौमुद्यामाद्यखण्डे पूर्वभागः समाप्तः ।

सामान्ययोगी बालार्हः प्राक् प्रोक्तः प्रक्रियाक्रमः ।
तज्ज्ञानां हेतवे सोऽद्य विशेषेण निगद्यते ॥ १ ॥

यणो मयो द्वे वाच्ये ❀ ॥

मय इति पञ्चमी यण इति षष्ठीति पक्षे यस्यापि वा द्वित्वं तेन चत्वारि रूपाणि । सुद्ध्युपास्यः । द्ध्यु ध्य्यु ध्यु । एवं मद्ध्वरिः । इत्यादौ । हर्य्यनुभवः हर्यनुभवः । न ह्य्यस्ति न ह्यस्ति ॥

हलो यमां यमि लोपः ८ । ४ । ६४ ॥

हलः परस्य यमो लोपो वा यमि । लोपे द्वित्वाभावे चैकयन्तुल्यं रूपम् । लोपफलं तु आदित्यो देवतास्येति आदित्यं हविः । यमां यमीति यथासंख्यत्वान्माहात्म्यमित्यादौ न । तवल्कारः । यण इति पञ्चमी मय इति षष्ठीति पक्षे कस्य द्वित्वम् । लस्य त्वनचि चेति तेन तवल्कारादौ रूपचतुष्टयम् ॥

शरः खयो द्वे ❀ ॥

त्रिस्थ्थली त्रिस्थली । खय इति पञ्चमी शर इति षष्ठीति पक्षे वत्स्सरः वत्सरः ॥

गोर्यूतौ छन्दसि । अध्वपरिमाणे च ❀ ॥

ओतोऽव् गव्यूतिः ॥

एत्येधत्यूठ्सु ६ । १ । ८९ ॥

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च वृद्धिरेकादेशः । उपैति । उपैधते । प्रष्ठौहः ॥

अक्षादूहिन्याम् ❀ ॥

अक्षौहिणी सेना ॥

स्वादीरेरिणोः ❀ ॥

स्वैरः । स्वैरी । स्वैरिणी ॥

प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ❀ ॥

प्रौहः । प्रौढः । ऊढेति क्तान्तग्रहणं तु क्तवत्वन्तस्यैकदेशः अनर्थकत्वात् । तेन प्रोढवानित्यत्र न वृद्धिः । प्रौढिः । प्रैषः प्रैष्यः ॥

ऋते च तृतीयासमासे ❀ ॥

सुखार्तः ॥

प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे ❀ ॥

प्रार्णमित्यादि ॥

उपसर्गादृति धातौ ६ । १ । ९१ ॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृकारादौ धातौ वृद्धिरेकादेशः । उपार्च्छति । ऋत्यक इत्यपीह न ॥

वा सुप्यापिशलेः ८ । १ । ९२ ॥

अवर्णान्तादुपसर्गादृदादौ सुब्धातौ वृद्धिर्वा । प्रार्षभीयति प्रर्षभीयति । लृकारस्यापि ग्रहणात् । प्राल्कारीयति प्रल्कारीयति । तपरत्वाद्दीर्घे न । उपऋकारीयति उपर्कारीयति ॥

ऋत्यकः ६ । १ । १२८ ॥

पदान्ता अक ऋति परे प्रकृत्या स्युर्ह्रस्वश्च वा । होतृऋकारः ॥ ब्रह्म ऋषिः ब्रह्मर्षिः । होतृ ऋकारः ॥

ऋति सवर्णे ॠ वा ❀ ॥

मध्ये द्वौ रेफौ अभितोऽज्भक्तिश्च । होतॄकारः होतृकारः ॥

लृति सवर्णे ॡ वा ❀ ॥

मध्ये द्वौ लकारौ अभितोऽज्भक्तिश्च । उभयत्र पाक्षिक ऋत्यक इति प्रकृतिभावः । होतृ लृकारः होतॢकारः होतृकारः ॥

एङि पररूपम् ६ । १ । ९४ ॥

आदुपसर्गादेङादौ धातौ पररूपमेकादेशः। प्रेजते । उपोषति ॥

एङादौ सुब्धातौ वा ❀ ॥

उपेडकीयति उपैडकीयति ॥

एवे चानियोगे ❀ ॥

क्वेव भोक्ष्यसे। आनेयोगे किम्। तवैव ॥

शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् तच्च टेः ॥ ❀ ॥

शकन्धुः। कर्कन्धुः। सीमन्तः केशवेशे। सीमान्तोऽन्यः। मनीषा। पतंजलिः। सारंगः पशुपक्षिणोः। साराङ्गोऽन्यः। आकृतिगणोऽयम्। मार्त्तंडः ॥

इति ४१ अंशाः।

ओत्वोष्ठयोः समासे वा ❀ ॥

स्थूलोतुः स्थूलौतुः। विम्बोष्ठः विम्बौष्ठः ॥

ओमाङोश्च ६। १। ९५ ॥

ओमि आङि चात्परे पररूपमेकादेशः। शिवायों नमः। शिवेहि अव आ इहि। अवेहि अत्रैत्येधतीति वृद्धिर्नेति पुरस्तादपवादपरिभाषाया वक्ष्यते ॥

उस्योमाङ्क्ष्वाटः प्रतिषेधः ❀ ॥

उसि ओमाङोश्च परयोराटः पररूपं नेत्यर्थः। उस्रामैच्छत औस्रीयत्। औंकारीयत्। औढीयत् ॥

अव्यक्तानुकरणस्यात इतौ ६। १। ९८ ॥

ध्वनेरनुकरणस्ययोच्छब्दस्तस्मादितौ परे पररूपमेकादेशः। पटत् इति पटिति। एकाचो न। श्रदिति ॥

नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ६। १। ९९ ॥

आम्रेडितस्य प्रागुक्तं न। अन्त्यस्य तु तकारमात्रस्य वा डाचि बहुलं द्वे इति बाहुलकाद्द्वित्वम् ॥

तस्य परमाम्रेडितम् ८। १। २ ॥

द्विरुक्तस्य परं रूपमाम्रेडितसंज्ञम्। पटत पटेति, पटत् पटदिति ॥

सर्वत्र विभाषा गोः ६। १। १२२ ॥

लोके वेदे चैङन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते । गो अग्रम् गोऽग्रम् ॥

अवङ् स्फोटायनस्य ६ । १ । १२३ ॥

अचि परे पदान्ते एङन्तस्य गोरवङ वा । गवाग्रम् । व्यवस्थितविभाषया गवाक्षः ॥

इन्द्रे च ६ । १ । १२४ ॥

गोरवङ् इन्द्रे । गवेंद्रः ॥

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६ । १ । १२७ ॥

पदान्ता इकोऽसवर्णेऽचि परे प्रकृत्या स्युः ह्रस्वश्च वा । चक्रि अत्र चक्र्यत्र । हरी एतौ इत्यादौ नास्य प्रवृत्तिः । प्लुतप्रगृह्या इत्यत्र नित्यग्रहणात् ॥

न समासे ❀ ॥

वाप्यश्व. ॥

सिति च ❀ ॥

पार्श्वम् ॥

ऋत्यकः ❀ ॥

ब्रह्म ऋषिः ब्रह्मर्षि. ॥

समासेऽपि ॥ ❀ ॥

सप्त ऋषीणा सप्तर्षीणाम् ।

वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः ८ । २ । ८२ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ८ । २ । ८३ ॥

अशूद्रविषये प्रत्यभिवादे यद् वाक्य तस्य टेः प्लुतः।भो आयुष्मानेधि देवदत्ता ३ ॥

स्त्रियां न ❀ ॥

भो आयुष्मती भवगार्गि। नाम गोत्रं वा यत्रान्ते प्रयुज्यते तत्रैव प्लुतः। नेह। आयुष्मानेधि॥

भोराज्न्यविशां वा ॥

आयुष्मानेधि भोः ३। आयुष्मानेधीन्द्रवर्मा ३ न्। आयुष्मानेधीन्द्रपालिता ३॥

हैहेप्रयोगे हैहयोः ८।२।८५॥

एतयोः प्रयोगे दूराद्धूते यद्वाक्यं तत्र हैहयोरेव प्लुतः। है ३ राम। राम है ३॥

गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ८।२।८६॥

दूरात्संबोधने यद्वाक्यं तस्य ऋद्भिन्नस्यानन्त्यस्यापि गुरोर्वा पर्यायेण प्लुतः। दे ३ वदत्त। देवद ३ त्त। देवदत्त ३। प्राचामिति योगविभागात्सर्वप्लुतविकल्पः॥

अप्लुतवदुपस्थिते ६।१।१२९॥

उपस्थितोऽनार्ष इति शब्दस्तस्मिन् परे प्लुतोऽप्लुतवत्। अप्लुतकार्यं यणादिकं करोति सुश्लोकेति॥

ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्

मणीवेति तु इवार्थे वशब्दो वाशब्दो वा बोध्यः॥

निपात एकाजनाङ् १।१।१४॥

एकोऽज्निपात आङ्वर्जः प्रगृह्यः। इ इन्द्रः। अनाङित्युक्तेर्ङिदाकारः प्रगृह्य एव। आ एवं नु मन्यसे। आ एव किं तत्। ङित्तु न प्रगृह्यः।ईषदुष्णम् ओष्णम्। वाक्यस्मरणयोरङित् अन्यत्र ङिदिति विवेकः॥

इति ४२ संज्ञाः।

संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६॥

संबुद्धिनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतौ। विष्णो इति विष्णविति॥

उञः १ । १ । १७ ॥

उञ इतौ वा प्रागुक्तम् । उ इति विति ॥

ऊँ १ । १ । १८ ॥

उञ इतौ दीर्घोऽनुनासिकः प्रगृह्यश्च । ऊँ इत्ययमादेशो वा । ऊँ इति विति ॥

मय उञो वो वा ८ । ३ । ३३ ॥

मयः परस्य उञो वो वाऽचि । किमु उक्तम् किम्वुक्तम् । वस्यासिद्धत्वान्नानुस्वारः ॥

ईदूतौ च सप्तम्यर्थे १ । १ । १९ ॥

सप्तम्यर्थे पर्यवसन्नमीदूदन्तं प्रगृह्यम् । यथी आस्ते । तनू इति छन्दसि ॥

अणो प्रगृह्यस्यानुनासिकः ८ । ४ । ५७ ॥

अप्रगृह्यस्याणोऽवसानेऽनुनासिको वा । दधिँ दधि ॥

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८ । ४ । ६१ ॥

उदः परयोः स्थास्तंभोः पूर्वसवर्णः । आदेः परस्य । उत्थानम् । उत्थ्थानम् । उत्तम्भनम् । अत्र सस्य थः । तस्य झरोझरीति वा लोपः । तदभावे थस्यैव श्रवणं नतु चर्त्वम् । चर्त्वं प्रति थस्यासिद्धत्वात् ॥

मो राजि समः क्वौ ८ । ३ । २५ ॥

क्विबन्ते राजतौ परे समो मस्य म एव । सम्राट् ॥

हे मपरे वा ८ । ३ । २६ ॥

मपरे हकारे परे मस्य म एव स्याद्वा । किम् ह्मलयति किं ह्मलयति ॥

यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम् ॥

किय्ँह्यः।किव्ँ ह्वलयति । किल्ँ ह्लादयति । पक्षे किंह्यः।इत्यादि॥

नपरे नः ८ । ३ । २७ ॥

नपरे हकारे परे मस्य नो वा । किन्ह्नुते किं ह्नुते ॥

ङ्णोः कुक्टुक् शरि ८ । ३ । २८ ॥

ङकारणकारयोः कुक्टुकावागमौ वा शरि । तयोरसिद्धत्वाज्जश्त्वन्न ॥

चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः ॥

प्राङ्क्षष्ठः प्राङ्क्षष्ठः प्राङ् षष्ठः । सुगण्ट्षष्ठः सुगण्ट्षष्ठः सुगण् षष्ठः ॥

डः सि धुट् ८ । ३ । २९ ॥

डात्परस्य सस्य धुड्वा । षट्त्सन्तः षट्सन्तः ॥

नश्च ८ । ३ । ३० ॥

नान्तात्पदात्परस्य सस्य धुड्वा । सन्त्सः सन्सः ॥

शि तुक् ८ । ३ । ३१ ॥

पदान्तस्य नस्य शे परे तुग्वा । सञ्छंभुः सञ्च्छंभुः सञ्च्शंभुः सञ्शंभुः । इह तुक्छत्वचलोपानां विकल्पात् अच्छो अचछो अचशो अशाविति रूपचतुष्कम् ॥

आङ्माङोश्च ६ । १ । ७४ ॥

एतयोश्छे तुक् । पदान्ताद्वेति विकल्पापवादः । आच्छादयति । माच्छिदत् ॥

समः सुटि ८ । ३ । ५ ॥

समो रुः सुटि । अलोन्त्यस्य अनुस्वारानुनासिकौ विसर्गः विसर्जनीयस्य सः एतदपवादे वा शरीति पाक्षिके विसर्गे प्राप्ते ॥

संपुंकानां सः ॥

संस्स्कर्त्ता सँस्स्कर्त्ता समो वा लोपमेक इति भाष्यम् । लोपस्यापि रुप्रकरणस्थत्वादनुस्वारानुनासिकाभ्यामेकसमपि रूपद्वयम् । द्विसन्तूक्तमेव । तत्रानचीति द्वित्वे त्रिसमपि रूपद्वयम् । अनुस्वारविसर्गजिह्वामूलीयोपध्मानीययमानामकारोपरि शर्षु च पाठेनाऽनुस्वारस्या-

प्यत्त्वात् । अनुनासिकवतां त्रयाणां शरः खयः इति कद्वित्वे षट् । अनुस्वारवतामनुस्वारस्यापि द्वित्वे द्वादश । एषामष्टादशानां तकारस्य द्वित्वे वचनान्तरेण पुनर्द्वित्वे एकतं द्वितं त्रितमिति चतुष्पञ्चाशत् । अणोऽनुनासिकत्वेऽष्टोत्तरं शतम् ॥

पुमः खय्यम्परे ८ । ३ । ६ ॥

अम्परे खयि पुम्शब्दस्य रुः । संपुंकानामिति सः । पुँस्कोकिलः पुंस्कोकिलः। पुँस्पुत्रः पुंस्पुत्रः। ख्याञादेशे न । पुंख्यानम् ॥

नॄन्पे ८ । ३ । १० ॥

नॄनित्यस्य रुर्वा पकारे । नॄँ ॅ पाहि नॄं ॅ पाहि नॄँः पाहि नॄंः पाहि नॄन् पाहि ॥

कानाम्रेडिते ८ । ३ । १२ ॥

कान्नकारस्य रुः स्यादाम्रेडिते परे । संपुंकानामिति सः । यद्वा ॥

कस्कादिषु च ८ । ३ । ४८ ॥

एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यत्र तु सः । कुप्वोरित्यस्यापवादः । काँस्कान् कांस्कान् । कस्कः । कौतस्कुतः । सर्पिष्कुण्डिका । आकृतिगणोऽयम् ॥

इति ४२ अंशाः ।

शर्परे विसर्जनीयः ८ । ३ । ३५ ॥

शर्परे खरि विसर्जनीयस्य विसर्जनीयो न त्वन्यत् । कः त्सरुः। कुप्वोरित्यस्य विषयेऽप्ययमेव । घनाघनः क्षोभणः । इह सत्वं जिह्वामूलीयश्च न ॥

खर्परे शरि वा विसर्गलोपः ॥

रामस्थाता रामःस्थाता रामस्स्थाता । त्रैरूप्यम् ॥

सो पदादौ ८ । ३ । ३८ ॥

विसर्गस्य सो पदाद्योः कुप्वोः । पाशकल्पककाम्येष्विति वृत्तिः। [illegible]म् । यशस्कल्पम् । यशस्कम् । यशस्काम्यति ॥

अनव्ययस्येति वाच्यम् * ॥

प्रातःकल्पम् । काम्ये रेरेव नेह । गीः काम्यति ॥

इणः षः ८ । ३ । ३९ ॥

इणः परस्य विसर्गस्य षः पूर्वविषये । सर्पिष्पाशम् इत्यादि ॥

नमस्पुरसोर्गत्योः ८ । ३ । ४० ॥

गतिसंज्ञयोरनयोर्विसर्गस्य सः कुप्वोः । नमस्करोति । साक्षात्प्रभृतीनि चेति वा गतिसंज्ञा । तदभावे नमः करोति । पुरस्करोति । पुरोऽव्ययमिति नित्यं गतिसंज्ञा । इदुदुपधस्येत्यनेन एकादेशशास्त्रनिमित्तकस्य न षत्वम् । मातुः कृपा ॥

मुहुसः प्रतिषेधः * ॥

मुहुः कामा ॥

तिरसोऽन्यतरस्याम् ८ । ३ । ४२ ॥

सो वा कुप्वोः । तिरस्कर्त्ता तिरःकर्ता ॥

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ८ । ३ । ४३ ॥

कृत्वोर्थे वर्त्तमानानामेषां विसर्गस्य षो वा कुप्वोः । द्विष्करोति द्विःकरोति । इत्यादि ॥

इसुसोः सामर्थ्ये ८ । ३ । ४४ ॥

एतयोर्विसर्गस्य षकारो वा कुप्वोः । सर्पिष्करोति सर्पिःकरोति धनुष्करोति धनुःकरोति ॥

नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ८ । ३ । ४५ ॥

इसुसोर्विसर्गस्यानुत्तरपदस्थस्य समासे नित्यं षः कुप्वोः । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् ॥

अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८ । ३ । ४६ ॥

अकारादुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सकारादेशः करोत्यादौ परे नतूत्तरपदस्थस्य । अयस्कारः । अयस्काम इत्यादि॥

अधःशिरसी पदे ८ । ३ । ४७ ॥

समासेऽनुत्तरपदस्थस्य एतयोर्विसर्गस्य सः पदशब्दे परे । अधस्पदम् । शिरस्पदम् । कस्कादिषु च । भास्करः । भोस् भगोस् अघोस् इति सान्ता निपाताः । तेषा रुत्वे यत्वे च ॥

व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ८ । ३ । १८ ॥

पदान्तयोर्वयोर्लघूच्चारणौ यवौ वा शि ॥

ओतो गार्ग्यस्य ८ । ३ । २० ॥

ओकारात्परस्य पदान्तस्यालघुप्रयत्नस्य यकारस्य नित्यं लोपः। भो अच्युत । लघुप्रयत्नपक्षे भोयच्युत ॥

उञि च पदे ८ । ३ । २१ ॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्वयोर्लोप उञि परे । स उ एकाग्निः ॥

रोऽसुपि ८ । २ । ६९ ॥

अह्नो रेफादेशो न तु सुपि । रोरपवादः । अहरहः । अहर्गणः । सुपि तु अहोभ्याम् । अत्राहन्निति रुत्वम् ॥

रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम् ❀ ॥

अहोरूपम् । गतमहो रात्रिरेषा । अहोरात्रः । अहोरथंतरम् ॥

अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः ❀ ॥

विसर्गापवादः । अहर्पतिः । गीर्पतिः । धूर्पतिः । पक्षे विसर्गोपध्मानीयौ ॥

सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ६ । १ । १३४ ॥

सस् इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचि । पादश्चेल्लोपे सत्येव पूर्य्येत । सेमामविड्ढिप्रभृतिम् । सैष दाशरथी रामः । लोपे चेदिति किम् । स एवमुक्त्वा वचनम् । अवधारणान्नेह । सोऽहमाजन्मशुद्धानाम् ॥

इति प्रायोविशेषसन्धिप्रकरणम् ॥

इति ४४ अंशाः ।

अथ पुल्लिङ्गादिषु प्रायो विशेषशब्दाः ।

प्रथमचरमतयाल्पार्द्धकतिपयनेमाश्च १ । १ । ३३ ॥

जसः कार्यं प्रति सर्वनामसंज्ञा वा । प्रथमे प्रथमाः । तयः प्रत्ययस्ततस्तदन्ता ग्राह्याः । द्वितये द्वितयाः । शेषं रामवत् । नेमे नेमाः । शेषं सर्ववत् ॥

तीयस्य ङित्सु वा ॥

द्वितीयस्मै द्वितीयायेत्यादि । निर्जरः ॥

जराया जरसन्यतरस्याम् ७ । २ । १०१ ॥

जराशब्दस्य जरस् वा अजादौ विभक्तौ । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् जरशब्दस्य जरस् । निर्जरसौ । निर्जरसः । इत्यादि । पक्षे हलादौ च रामवत् । भिसि निर्जरैः । इत्येकम् ॥

पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु ६ । १ । ६३ ॥

पादादीनां शसादौ पदादय आदेशा वा ॥

मांसपृतनासानूनां मांस्पृत्स्नवो वा शसादौ ॥

पादः । पादौ । पादाः । पादम् । पादौ । पदः पादान् । दतः । दता । दद्भ्यामित्यादि । मासः । मासा । माभ्याम् । यूष्णः । यूषभ्याम् । यूष्णि यूषणि । पक्षे रामवत् । एवं दन्तादीनां स्वस्वलिङ्गे रूपाणि ज्ञेयानि । विस्तरभयान्न सर्वेषां लेखः । तत्र पुंसि पाददन्तमासयूषाणां पद् दत् मास् यूषन् इति । स्त्रियां नासिकानिशापृतनानां नस् निश् पृत् इति । क्लीबे हृदयअसृज्यकृत्शकृन्उदकआस्यमांसानां हृद् असन् यकन् शकन् उदन् आसन् मांस् इति । पुंक्लीबयोः दोष्स्नान्वोः दोषन् स्नु इति । पद्दन्निति सूत्रे प्रभृतिग्रहणं प्रकारार्थम् । तेन शसादेरन्यत्राप्यादेशः । पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम् । पदादयः स्नुपर्यन्ताः पृथगेव शब्दा इत्येके । शसादिविषयाणि प्रकृत्यन्तराण्येव पदादय इति परे । द्व्यङ्गः ॥

संख्याविसायपूर्वस्याह्नस्याहन्न्यतरस्यां ङौ ६।३।११०॥

संख्यादिपूर्वस्याह्नस्याहनादेशो वा ङौ परतः। द्वयोरह्नोर्भवो द्व्यह्नः। द्व्यह्नि द्व्यहनि । द्व्यह्ने । एवं विगतमहर्व्यह्नः । अह्नः सायः सायाह्नः । त्र्यह्ने इत्यादि ॥

आतो धातोः ६ । ४ । १४० ॥

आदन्तो यो धातुस्तदन्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः । विश्वपाः । विश्वपौ । विश्वपः । हे विश्वपाः । एवं शंखध्मादयः । धातोः किम् । हाहान् । हाहे । हाहाः । हाहौः । शेषं विश्वपावत् । आत इति योगविभागादधातोरपि क्वचिदालोपः । क्त्वः श्वः । आतो नाप इति वार्तिकात् आबन्तभिन्नाः सर्वे आदन्ता विश्वपावत् इति परे ॥

अनङ् सौ ७ । १ । ९३ ॥

सख्युरङ्गस्यानङादेशोऽसम्बुद्धौ सौ । सखा । हे सखे ॥

सख्युरसम्बुद्धौ ७ । १ । ९२ ॥

सख्युरङ्गात्परं संबुद्धिवर्जं सर्वनामस्थानं णित्कार्यकृत् । अचोऽञ्णिति । सखायौ । सख्या । सख्ये ॥

ख्यत्यात्परस्य ६ । १ । ११२ ॥

खितिशब्दाभ्यां खीतीशब्दाभ्यां कृतयणादेशाभ्यां परस्य ङसिङसोरत उत् । सख्युः ॥

औत् ७ । ३ । ११८ ॥

इदुद्भ्यां ङेरौत् । सख्यौ ॥

पतिः समास एव १ । ४ । ८ ॥

पतिशब्दः समास एव घिसंज्ञः । पत्या । पत्ये इत्यादि । समासे तु भूपतिना ॥

इति ४९ अंशाः ।

कतित्रिशब्दौ नित्यं बहुवचनान्तौ ॥

बहुगणवतुडतिसंख्या १ । १ । २३ ॥

एते संख्यासंज्ञाः ॥

डति च १ । १ । २५ ॥

डत्यन्ता संख्या षट्संज्ञा ॥

षड्भ्यो लुक् ७ । १ । २२ ॥

षड्भ्यः परयोर्जश्शसोर्लुक् । लुका लुप्तत्वाज्जसि चेति गुणो न । कति । कति । इत्यादि । अस्मद्युष्मद्षट्संज्ञास्त्रिषु सरूपाः। त्रयः॥

त्रेस्त्रयः ७ । १ । ५३ ॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेश आमि । त्रयाणाम् । पपीः । पप्यौ । पपीम् । पपीन् । पप्याम् । ङौ पपी । एवं ययीवातमम्यादयः । उन्नीः । धातुना संयोगस्य विशेषणत्वाद्यण् स्यादेव । उन्न्यौ । ङौ उन्न्याम् । एवं ग्रामणीः । सेनानीः ॥

गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते ॥

शुद्धधियौ । परमधियौ । दुर्धियः इति तु दुस्थिता धीर्येषा-मिति विग्रहे दुरो धीशब्दं प्रति गतित्वाभावात् । एवं वृश्चिकभिय इति । वृश्चिकसंबन्धिनी भीरिति विग्रहात् । नीः । नियौ । नियाम् ॥

न भूसुधियोः ६ । ४ । ८५ ॥

एतयोर्यण् न अचि सुपि परे । सुधीः । सुधियौ ॥

ओः सुपि ६ । ४ । ८३ ॥

धात्ववयवसंयोगपूर्वो न भवति य उवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तद-न्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यणजादौ सुपि । खलपूः । खलप्वौ ॥

तृज्वत्क्रोष्टुः ७ । १ । ९५ ॥

क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तेन तुल्यं भवति असंबुद्धौ सर्वनामस्थाने । क्रो-ष्टुस्थाने क्रोष्टृशब्दः प्रयोज्य इत्यर्थः । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टॄन् ॥

विभाषा तृतीयादिष्वचि ७ । १ । ९७ ॥

अजादिषु तृतीयादिषु क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्ट्रा । नुमचिरेति नुट् । क्रोष्टूनाम् । क्रोष्टरि । क्रोष्ट्रोः । पक्षे हलादौ च शम्भुवत् । हूहूः । हूहौ । हूहूम् । स्वभूः । स्वभुवौ । सुल्वौ । परमलुवौ ॥

वर्षाभ्वश्च ६ । ४ । ८४ ॥

अस्योवर्णस्य यणचि सुपि । वर्षाभ्वौ । दृम्भवतीति दृम्भूः । उणादिषु दृम्भ्वौ । हूहूवत् ॥

दृन्करपुनःपूर्वस्य भुवो यण् वक्तव्यः ❀ ॥

दृन्भ्वम् । करभ्वौ । दीर्घपाठे तु कर एव कारः । कारभ्वौ । पुनर्भ्वौ । दृम्भूकाराभूशब्दौ तु स्वयंभूवत् । नप्त्रादयो धातृवत् । उद्गातुरपि दीर्घः । उद्गातारौ । ना । नरौ । हे नः ॥

नृ च ६ । ४ । ६ ॥

नृइत्यस्य नामि वा दीर्घः । नृणाम् नृणाम् । कॄ तॄ अनयोरनुकरणे प्रकृतिवदनुकरणमिति वैकल्पिकातिदेशादित्वे रपरत्वम् । कीः । किरौ । किरः । तीः । तिरौ । तिरः । इत्यादि गीर्वत् । इत्वाभावे तु कः । क्रौ । क्रः । कॄन् । इत्यादि । डे' । ड्यौ । एवं सेः । स्मृतेः ॥

गोतो णित् ७ । १ । ९० ॥

गोशब्दात्परं सर्वनामस्थानं णित्कार्यकृत् ॥

औतोऽम्शसोः ६ । १ । ९३ ॥

ओकारादम्शसोरच्याकार एकादेशः । गौः । गावौ । गाम् । गाः ॥

ओतो णिदिति वाच्यं विहितविशेषणं च ❀ ॥

सुद्योः । स्मृतोः । हे मानो । इत्यादौ सारोशागन्ताद्विहितत्वाभावान्न णिद्वत् ॥

रायो हलि ७ । २ । ८५ ॥

रैशब्दस्याकारोन्तादेशो हलादौ विभक्तौ। राः। रायौ। राभ्याम्॥
इति ४६ अंशाः।

हो ढः
सुलोपः। लिट् लिड्। लिहौ। लिड्भ्याम्। लिट्सु लिट्त्सु॥

दादेर्धातोर्घः ८। २। ३२॥

उपदेशे दादेर्धातोर्हस्य घः झलि पदान्ते च॥

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ८। २। ३७॥

धातोरवयवो य एकाच् झषन्तस्तदवयवस्य बशो भष् से ध्वे पदान्ते च। धुक् धुग्। दुहौ॥

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ८। २। ३३॥

एषां हस्य वा घो झलि पदान्ते च। ध्रुक्, ध्रुट्। ध्रुक्षु ध्रुट्सु ध्रुट्त्सु॥

वाह ऊठ् ६। ४। १३२॥

भस्य वाहः सम्प्रसारणमूठ्। वृद्धिः। विश्वौहः। विश्वौहा॥

चतुरनडुहोरामुदात्तः ७। १। ९८॥



एतयोराम् सर्वनामस्थाने स चोदात्तः॥

सावनडुहः ७। १। ८२॥

अस्याकारात् नुम् सौ परे। संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वान्नलोपो न। अनड्वान्॥

अम् सम्बुद्धौ ७। १। ९९॥

चतुरनडुहोरम् सम्बुद्धौ। हे अनड्वन्। वसुस्रंस्विति दः। अनडुद्भ्यामित्यादि॥

सहेः साडः सः ८। ३। ५६॥

साड्रूपस्य सहेः सस्य मूर्द्धन्यः। तुराषाट्। तुरासाहौ चत्वारः॥

षट्चतुर्भ्यश्च ७। १। ५५॥

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुरश्च परस्य आमो नुडागमः । चतुर्णाम् चतुर्षु ॥

मो नो धातोः ८ । २ । ६४ ॥

धातोर्मस्य नः पदांते नत्वस्यासिद्धत्वान्नलोपो न । प्रशान् । प्रशान्भ्याम् । वृत्रहा । वृत्रहणौ ॥

एकाजुत्तरपदे णः ८ । ४ । १२ ॥

एकाजुत्तरपदं यस्य तस्मिन्समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिस्थस्य नस्य नित्यं णः ॥

हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु ७ । ३ । ५४ ॥

ञिति णिति च प्रत्यये नकारे च परे हन्तेर्हस्य कुत्वम् । वृत्रघ्नः ॥

हन्तेः ८ । ४ । २२ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्ताद्धन्तेर्नस्य णः । प्रहण्यात् ॥

अत्पूर्वस्य ८ । ४ । २२ ॥

हन्तेरत्पूर्वस्यैव नस्य णः नान्यस्य । प्रघ्नन्ति । वृत्रघ्ना । एवं शार्ङ्गिन्यशस्विन्नर्यमन् पूषन् ॥

मघवा बहुलम् ६ । ४ । १२८ ॥

मघवन्शब्दस्य वा तृ इत्यन्तादेशः । उपधादीर्घः । इह संयोगान्तलोपस्यासिद्धत्वं तु बाहुलकान्न । मघवान् । मघवन्तौ । हे मघवन् । मघवतः । पक्षे मघवा । सुटि राजवत् ॥

श्वयुवमघोनामतद्धिते ६ । ४ । १३३ ॥

अन्नन्तानां भसंज्ञकानामेषामतद्धिते संप्रसारणम् । मघोनः । शुनः ॥

न संप्रसारणे संप्रसारणम् ६ । १ । ३७ ॥

संप्रसारणे परतः पूर्वस्य यणः संप्रसारणं न । यूनः । यूना ॥

इति ४७ अंगाः ।

अर्वा ॥

अर्वणस्त्रसावनञः ६ । ४ । १२७ ॥

नञा रहितस्यार्वन्नित्यस्याङ्गस्य तृ इत्यन्तादेशो नतु सौ । अर्वन्तौ । अर्वन्ताम् । अनञः किम् । अनर्वाणौ यज्ञवत् ॥

पथिमथ्यृभुक्षामात् ७ । १ । ८५ ॥

एषामाकारोन्तादेशः सौ ॥

इतोत्सर्वनामस्थाने ७ । १ । ८६ ॥

पथ्यादेरिकारस्याकारः सर्वनामस्थाने ॥

थो न्थः ७ । १ । ८७ ॥

पथिमथोस्थस्य न्थादेशः सर्वनामस्थाने । पन्थाः । पन्थानौ ॥

भस्य टेर्लोपः ७ । १ । ८८ ॥

भसंज्ञकस्य पथ्यादेष्टेर्लोपः । पथः । एवं मन्थाः । ऋभुक्षाः ॥

ष्णान्ता षट् १ । १ । २४ ॥

षान्ता नान्ता च संख्या षट्संज्ञा । पञ्च । पञ्च ॥

नोपधायाः ६ । ४ । ७ ॥

नान्तस्योपधाया दीर्घो नामि । नलोपः । पञ्चानाम् । एवं सप्तादयः ॥

अष्टन आ विभक्तौ ७ । २ । ८४ ॥

अष्टनो हलादौ विभक्तौ जश्शसोश्च वा आत्वम् ॥

अष्टाभ्य औश् ७ । १ । २१ ॥

कृताकारादष्टनः परयोर्जश्शसोरौश् । अष्टौ । अष्टौ । अष्टाभिः । अष्टानाम् । आत्वाभावे अष्ट २ । इत्यादि पंचवत् ॥

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ३ । २ । ५९ ॥

एभ्यः क्विन् । तत्र निरुपपदात् युजेः क्विन् । कृदतिङ् । वेरपृक्तस्य ॥

युजेरसमासे ७ । १ । ७१ ॥

युजेः सर्वनामस्थाने नुम् असमासे ॥

क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८।२।६२॥

क्विन्प्रत्ययो यस्मात्तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते। नस्य ङः। युङ्युञ्जौ। युजः। युजा। समासे तु सुयुक्। युज समाधौ इत्यस्य तु न नुम्। तेन युक्। खन्। खञ्जौ। व्रश्चभ्रस्जे। ति षत्वम्। जश्त्वेन डः। राड् राड्। सुपि पक्षे धुट् चर्त्वम्। तस्यासिद्धत्वाच्चयो द्वितीया इति टतयोष्ठथौ न। न पदान्तादिति ष्टुत्वन्न। राट्सु राट्त्सु। षढोः कः सि इति तु न जश्त्वं प्रत्यसिद्धत्वात्। विभ्राड्ड् विभ्रस्-ड्ड्। परिमृ-ड्ड्। व्रश्चेति सूत्रे भ्राजः फणादेर्ग्रहणम्। अन्यस्य विभ्राक्॥

परौ व्रजेः षः पदान्ते * ॥

परावुपपदे व्रजेः क्विप्दीर्घौ पदान्ते षत्वं च। परिव्राट्-ड्॥

विश्वस्य वसुराटोः ६।३।१२८॥

विश्वशब्दस्य दीर्घोऽन्तादेशो वसौ राट्शब्दे च परे। विश्वावसुः। राडिति' पदान्तोपलक्षणम्। विश्वाराड्। विश्वाराड्भ्यां। नेह। विश्वराजौ। स्कोरिति सलोपः। भृट् भृड्। भृज्जौ। ऋतावुपपदे यजेः क्विन्। ऋत्विक्-ग्। रातसस्य। ऊर्क् र्ग्। ऊर्ज्जौ। सुपात्-द्। सुपादौ॥

पादः पत् ६।४।१३०॥

पाच्छब्दान्तं यदङ्गं भं तदवयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः। सुपदः। सुपदा। सुपाद्भ्यामित्यादि। अग्निमत्-द्। अग्निमथौ। अग्निमद्भ्यामित्यादि॥

इति ४८ अंशाः।

अञ्चेः सुप्युपपदे क्विन् अनिदितामिति नस्य लोपः। प्राङ्। प्राञ्चौ॥

अचः ६।४।१३८॥

लुप्तनस्याञ्चतेर्भस्यातो लोपः॥

चौ ६ । ३ । १३८ ॥

लुप्ताकारनकारेऽञ्चतौ परे पूर्वस्याणो दीर्घः । प्राचः । प्रत्यङ् । अच इति लोपस्य विषयेऽन्तरङ्गोऽपि यण् न प्रवर्त्तते । अकृतव्यूहाः इति परिभाषया । प्रतीचा । विष्वगञ्चतीति विग्रहे ॥

विश्वग्देवयोश्च टेरद्र्यंचतावप्रत्यये ६ । ३ । ९२ ॥

अनयोः सर्वनाम्नश्च टेरद्र्यादेशो वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ । विश्वद्र्यङ् । विष्वद्रीचः । एवं देवद्र्यङ् । उदङ् ॥

उद ईत् ६ । ४ । १३९ ॥

उदः परस्य लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् । उदीचः ॥

समः समि ६ । ३ । ९३ ॥

वप्रत्ययान्तेऽञ्चतौ परे समः समिरादेशः । सम्यङ् । समीचः ॥

सहस्य सध्रिः ६ । ३ । ९५ ॥

सध्र्यङ् । सध्रीचः ॥

तिरसस्तिर्यलोपे ६ । ३ । ९४ ॥

अलुप्ताकारेऽञ्चतौ अप्रत्ययान्ते परे तिरसस्तिरिः । तिर्यङ् । तिरश्चः ॥

नाञ्चेः पूजायाम् ६ । ४ । ३० ॥

पूजार्थस्याञ्चतेः उपधाया नस्य लोपो न । नलोपाभावान्न नुमकारलोपौ । प्राङ् । प्राञ्चौ । प्राञ्चः । प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु प्राङ्क्षु प्राङ्षु । एवं पूजार्थे प्रत्यङ्ङादयः। क्रुञ्चः। क्विनि नलोपाभावोऽपि निपात्यते । क्रुङ् । क्रुञ्चौ । क्रुङ्भ्यामित्यादि । पयोमुक्-ग् । सुवृट्-ड् । सुवृश्चौ ॥

वर्तमाने पृपन्महद्बृहज्जगच्छतृवच्च ॥

उगित्वान्नुम् । महान् । महान्तौ । महता ॥

जक्षित्यादयः षट् ६ । १ । ६ ॥

जक्षादयः षडन्ये जक्षितिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञाः । जक्ष-

त्-द् । जक्षतौ । एवं जाग्रत्-द् । दरिद्रत्-द् । शासत्-द् । चकासत्-द् । दीध्यत्-द् । वीव्यत् । छान्दसत्वात्परस्मैपदम् । गुप्-ब् । गुपौ ॥

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ३ । २ । ६० ॥

अज्ञानार्थाद् दृशेर्धातोः कञ् चात् क्विन् ॥

आ सर्वनाम्नः ६ । ३ । ९१ ॥

सर्वनाम्न आकारान्तादेशो दृग्दृश्वतुषु कुत्वस्यासिद्धत्वात्षः । ततो डगकाः । तादृक्-ग् । तादृशौ । विट्-ड् । विशौ ॥

नशेर्वा ८ । २ । ६३ ॥

नशेः कवर्गोऽन्तादेशो वा पदान्ते । नक्-ग् । नट्-ड् । नशौ ॥

स्पृशोऽनुदके क्विन् ३ । २ । ५८ ॥

अनुदके सुप्युपपदे स्पृशेः क्विन् । घृतस्पृक्-ग् । घृतस्पृशौ । क्विन्प्रत्यय इति बहुव्रीहेः क्विप्यपि कुत्वम् । स्पृक्-ग् । षडगकाः प्राग्वत् । धृषेः क्विन् द्वित्वं निपात्यते दधृक्-ग् । दधृषौ । रत्नमुट्-ड् रत्नमुषौ । षट्-ड् । षड्भिः ॥

प्रत्यये भाषायां नित्यम् ॥

षण्णाम् । दमेर्डोस् डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । षत्वस्यासिद्धत्वाद्रुत्वविसर्गौ । दोः । दोषौ । पदन्निति वा दोषन् । दोष्णः । दोष्णा । दोषः । दोषा । सान्तमहत इत्यत्र सान्तसंयोगोऽपि प्रातिपदिकस्यैव गृह्यते । तेन सुष्टु हिनस्तीति सुहिन् । सुहिंसौ । सुहिन्भ्याम् । उगिदचामित्यत्राजग्रहणं नियमार्थं धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति । तेनेह न । ध्वत्-द् । ध्वद्भ्याम् । एवं स्रत् ॥

पुंसोऽसुङ् ७ । १ । ८९ ॥

सर्वनामस्थाने विवक्षिते पुंसोऽसुङ् । पुमान् । हे पुमन् । पुमांसौ । पुंसः । पुंभ्याम् । उशना । उशनसौ ॥

अस्य संबुद्धावनङ् नलोपश्च वा वाच्यः ॥

हे उशनन् हे उशन हे उशनः । उशनोभ्याम् । अनेहा ।

अधातोरित्युक्तेर्न दीर्घः । सुष्ठु वस्ते सुवः । सुवसौ । पिण्डं ग्रसते पिण्डग्रः पिण्डग्लः ॥ इति पुलिङ्गाः ॥

इति ४९ अंशाः ।

विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् ७ । ३ । ११५ ॥

आभ्या परस्य ङितः स्याड् वापश्च ह्रस्वः । द्वितीयस्यै द्वितीयायै।अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः । हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । असंयुक्तडलकवतान्न । हे अम्बाडे । हे अम्बाले । हे अम्बिके । जरा । अजादौ जरस् । जरसौ । जरसम् । पक्षे हलादौ च रमावत् । निशानिश् । निशः। व्रश्चेति पः । निड्भ्याम् । व्रश्चेति सूत्रे धातोरित्यनुवृत्तौ तु निज्भ्याम् । श्चुत्वम् । निचशु । कुत्वं तु न जश्त्वस्यासिद्धत्वात् । गोपा विश्वपावत् ॥

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ ७ । २ । ९९ ॥

स्त्रीलिङ्गयोरेतयोरेतावादेशौ विभक्तौ ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च टाप्ङीपौ न । स्वस्रादयः स्युः स्वसृमातृयातृननांदातिस्रो दुहिता चतस्रः ॥

अचि र ऋतः ७ । २ । १०० ॥

तिसृचतसृएतयोः ऋकारस्य रेफादेशोऽचि । गुणदीर्घोत्वानामपवादः । तिस्रः ॥

न तिसृचतसृ ६ । ४ । ४ ॥

एतयोर्नामि दीर्घो न । तिसृणाम् । स्त्री । हे स्त्रि ॥

स्त्रियाः ६ । ४ । ७९ ॥

स्त्रीशब्दस्य इयङजादौ प्रत्यये । स्त्रियौ ॥

वाम्शसोः ६ । ४ । ८० ॥

अमि शसि च परे स्त्रिया इयङ् वा । स्त्रियम् स्त्रीम् । स्त्रियः । स्त्रीः । स्त्रियै । स्त्रियाः। स्त्रीणाम् । स्त्रियाम् । प्रधीशब्दस्य वृत्तिका-

रादीनां मते लक्ष्मीवद्रूपम् । कैयटमते पुंवत् । प्रकृष्टा धीरिति विग्रहे तु लक्ष्मीवत् । अमि शसि च प्रध्यम् । प्रध्यः । सुष्ठु धीर्यस्याः सा सुष्ठु ध्यायति वेति विग्रहे तु वृत्तिमते सुधीः श्रीवत् । मतान्तरे पुंवत् सुष्ठु धीरिति विग्रहे तु श्रीवदेव । ग्रामणीः पुंवत् । धेनुर्मतिवत् ॥

स्त्रियां च ७ । १ । ९६ ॥

स्त्रीवाची क्रोष्टुशब्दस्तृजन्तवद्रूपं लभते । ङीप् । क्रोष्ट्री । वधूर्गौरीवत् । भ्रूः श्रीवत् । हे सुभ्रूः । ह्रस्वस्त्वपाणिनीयः । प्राञ्चः कवयस्तु सुभ्रूशब्दे ह्रस्वं प्रयुञ्जते । खलपूः पुंवत् । पुनर्भूः । पुनर्भ्वौ । ह्रस्वः । हे पुनर्भु । पुनर्भ्वम् । एकाजुत्तरेति णः । पुनर्भूणाम् । भेकजातौ कैयटमते हे वर्षाभूः। मतान्तरे हे वर्षाभु । पुनर्नवायां तु सर्वेषाम् । हे वर्षाभु । वर्षाभ्वौ । स्वयंभूः पुंवत् । स्वसा । स्वसारौ । द्यौर्गोवत् । नौर्ग्लौवत् ॥

नहो धः ८ । २ । ३४ ॥

नहो हस्य धः झलि पदान्ते च । उपानत्-द् । उत्पूर्वात् ष्णिहः क्विन्निपातनात्तलोपषत्वे कुत्वम् । जश्त्वचर्त्वे उष्णिक्-ग् ॥

दिव औत् ७ । १ । ८४ ॥

दिविति प्रातिपदिकस्य औत् सौ । द्यौः । दिवौ ॥

दिव उत् ६ । १ । १३१ ॥

दिवोऽन्तादेशः उकारः पदान्ते । द्युभ्याम् । चतुरश्चतस्रृ । चतस्रः। चतसृणाम् । सृजेः क्विन् अमागमश्च निपात्यते । स्रक्-ग् । अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः । आपः । अपः ॥

अपो भि ७ । ४ । ४८ ॥

अपस्तकारो भादौ प्रत्यये । अद्भिः । दिक्-ग् । दृशेः क्विन्विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृक्-ग् । सह जुषते इति सजूः। सजुषौ । सजूर्भ्याम् । सजूष्षु सजूःषु ॥ इति स्त्रीलिंगाः ॥

इति ५० अंशाः । इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

अजरशब्दस्य सौ अजरमित्येव। सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य इति परिभाषया अजरसी। अजरे। अजरांसि। अजराणि। अजरसम् अजरम्। श्रीपं ज्ञानवत् ॥

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङ्ङुदात्तः ७। १। ७५ ॥

एषामनङ् टादावचि स चोदात्तः। दध्ना। दध्नि दधनि। तदन्तस्याप्यनङ्। अतिदध्ना। एवमस्थ्यादि। चत्वारि। रोऽसुपि अहर्भाति। विभाषाङिश्योः। अह्नी। अहनी। अहानि ॥

अहन् ८। २। ६८ ॥

अहन्नित्यस्य रुः पदान्ते। अहोभ्याम्। रात्सस्य। ऊर्क्-र्ग्। ऊर्जी। ऊर्न्जि। नरजानां संयोगः। तिर्यक्-ग्। तिरश्ची। तिर्यञ्चि। पूजायान्तु तिर्यङ्। तिर्यञ्ची ॥ इति नपुंसकलिङ्गाः ॥

सर्वादिषु उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्तीति कैयटः। अस्तीति हरदत्तः। जसि स्थानिवद्भावेन तयान्तत्वात् प्रथमचरमेति विकल्पे प्राप्तेऽन्तरङ्गत्वान्नित्यैव संज्ञा। उभये। समः सर्वपर्यायः। तुल्यपर्यायस्तु नेह गृह्यते। समे सर्वे। समास्तुल्याः। एकशब्दः संख्यायां नित्यैकवचनान्तः ॥

अन्तरं बहिर्योगेति गणसूत्रेऽपुरीति वक्तव्यम् ❀ ॥

अन्तरायां पुरि। सर्वाद्यन्तस्यापि सर्वनामसंज्ञा तेन परमसर्वत्रेति त्रल्। परमभवकानित्यकच ॥

न बहुव्रीहौ १। १। २९ ॥

बहुव्रीहौ चिकीर्षिते सर्वनामसंज्ञा न। त्वकं पिता यस्य त्वत्कपितृकः। मत्कपितृकः। समासात्प्रागेव प्रक्रियावाक्ये संज्ञानिषेधः अन्यथा लौकिकविग्रहवाक्य इव तत्राप्यकच् प्रवर्त्तेत स च समासेऽपि श्रूयेत। अतिक्रान्तो भवकन्तमतिभवकानितिवत्। भाष्यकारस्तु त्वकत्पितृकः मकत्पितृक इत्यङ्गीकृत्य सूत्रं प्रत्याचख्यौ ॥

यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम् ❀ ॥

संज्ञोपसर्जनीभूतास्तु न सर्वादयः। अतः संज्ञाकार्यमन्तर्गण-

कार्यं च तेषां न भवति। सर्वो नाम कश्चित्तस्मै सर्वाय देहि। अतिक्रान्तः सर्वमतिसर्वस्तस्मै अतिसर्वाय। आततत्॥

तृतीयासमासे १।१।३०॥

अत्र सर्वनामता न। मासपूर्वाय। तदर्थवाक्येऽपि न। मासेन पूर्वाय॥

द्वन्द्वे च १।१।३१॥

द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा न। वर्णाश्रमेतराणाम्॥

विभाषा जसि १।१।३२॥

जसाधारं यत् कार्यं शीभावाख्यं तत्र कर्तव्ये द्वन्द्वे उक्ता संज्ञा वा। वर्णाश्रमेतरे वर्णाश्रमेतराः। शीभावं प्रत्येव विभाषातो नाकच् किन्तु क एव। वर्णाश्रमेतरकाः। स्त्रियाम्॥

विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ १।१।२८॥

अत्र सर्वनामता वा। उत्तरपूर्वस्यै उत्तरपूर्वायै। दिङ्नामानीत्युक्ते प्रतिपदोक्ते समास एव। नेह। योत्तरा सा पूर्वा यस्या मुग्धायास्तस्यै उत्तरपूर्वायै। अन्तरस्यै बाह्यायै अन्तरायै पुर्यै। क्लीबे। कतरत् कतरद्। कतमत्। संज्ञागौणयोः। कतरम्। अतिकतरं कुलम्। अन्यत्। अन्यतरत्। द्वौ। द्वौ। परमद्वौ। द्विर्नाम कश्चित्। द्विः। अतिद्विः॥

इति ५१ अंशाः।

इदमः ककारयोगे अयकम्। इमकौ। इमकेन। परमसः। संज्ञाया गौणत्वे च। त्यद्। त्यदौ। अतित्यद्। अतित्यदौ। यः। एषः। अन्वादेशे एनमित्यादि। एनाम्॥

अदसः सौ औत्वप्रतिषेधः साकच्कस्य वा वक्तव्यः सादुत्वं च ॥॥

प्रतिषेधसन्नियोगशिष्टमुत्वं तदभावे न प्रवर्त्तते। असकौ। ..। असुकशब्दस्त्वव्युत्पन्नमदः पर्यायभूत शब्दान्तरम्॥

समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशाः ॥

एकतिङ् वाक्यम् । नेह । ओदनं पच तव भविष्यति । इह तु स्यादेव । शालीनां ते ओदनं दास्यामीति ॥

न च वाहाहैवयुक्ते ८ । १ । २४ ॥

चादिपञ्चकयुक्ते नैते आदेशाः हरिस्त्वां मां च रक्षतु । कथं त्वां मां वा न रक्षेदित्यादि साक्षाद्योगेऽयं निषेधः । परंपरासम्बन्धे स्यादेव । हरो हरिश्च मे स्वामी ॥

पश्यार्थैश्चानालोचने ८ । १ । २५ ॥

अचाक्षुषज्ञानार्थैर्धातुभिर्योगे नैते आदेशाः । चेतसा त्वां समीक्षते । परम्परासम्बन्धेऽपि न । भक्तस्तव रूपं ध्यायति । आलोचने तु भक्तस्त्वा पश्यति चक्षुषा ॥

सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ८ । १ । २६ ॥

विद्यमानपूर्वात्प्रथमान्तात्परयोरनयोरन्वादेशेऽपि एते आदेशा वा स्युः । भक्तस्त्वमप्यहन्तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम् । त्वामेति वा ॥

सामन्त्रितम् २ । ३ । ४८ ॥

सम्बोधने या प्रथमा तदन्तमामंत्रितसंज्ञम् ॥

आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ८ । १ । ७२ ॥

अग्ने तव । सर्वदा रक्ष देव न इत्यत्र तु रक्षेत्याश्रित्यादेशः ॥

नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ८।१।७३॥

विशेष्यं समानाधिकरणे विशेषणे आमंत्रिते परे नाविद्यमानवत् । हरे दयालो नः पाहि ॥

विभाषितं विशेषवचने ८ । १ । ७४ ॥

बहुवचनान्तं विशेष्यं समानाधिकरणे विशेषणे आमन्त्रिते परे अविद्यमानवद्वा । यूयं प्रभवः । देवाः शरण्याः । युष्मान् भजे । वो भजे इति वा । इहान्वादेशेऽपि वैकल्पिका आदेशाः ॥

इति ५२ अंशाः ।

स्वरादिनिपातमव्ययम् १ । १ । ३७ ॥

ते चादिवर्णक्रमेण लोके प्रसिद्धा लिख्यन्ते । अन्तर् । अभीक्ष्णम् । अंजसा । अतीव । अद्धा । अनिशम् । अनुपदम् । अन्तरा । अन्वक् । अपष्ठु । अमुत्र । अरम् । अर्वाक् । असांप्रतम् । अवश्यम् । अस्तम् । आरात् । आविस् । आशु । ईषत् । उच्चैस् । उषा । उपजोषम् । उपांशु । ऋधक् । ऋते । कामम् । कुजोपम् । झटिति । झगिति । तरसा । तिरस् । तिर्यक् । तूर्णम् । तूष्णीम् । तूष्णीकाम् । दिवा । दुष्ठु । दोषा । द्राक् । धिक् । नक्तम् । नमस् । नाना । निकषा । निकामम् । नीचैस् । न्यक् । परम् । परश्वस् । पराक् । पुनःपुनर् । पुनर् । पुरतस् । पृथक् । प्रकामम् । प्रत्यक् । प्रत्यहम् । प्रसह्य । प्रातर् । प्रादुस् । प्रायशस् । प्रायस् । प्रेत्य । बलात् । भुवर् । भूयस् । भूर् । मंक्षु । मनाक् । मिथस् । मिथुस् । मिथ्या । मुधा । मुहुर्मुहुस् । मुहुस् । मृषा । युगपत् । युक्तम् । रहस् । रोदसी । वरम् । वहिस् । विहायसा । विना । विश्वक् । विष्वक् । वृथा । शनैस् । शम् । शान्तम् । श्वस् । संवत् । सत्यम् । सपदि । समन्ततः । समन्तात् । सनत् । सनात् । समया । सना । समुपजोषम् । सह । साक्षात् । साचि । सामि । स्राक् । सायम् । सुदि । सुष्ठु । स्थाने । स्वयम् । स्वर् । स्वस्ति । हिरुक् । ह्यस् । आकृतिगणोऽयम् ॥

चादयो सत्वे ॥

अ । अकस्मात् । अग्रे । अघोस् । अङ्ग । अचिरम् । अट्ट । अथ । अथकिम् । अथवा । अथो । अन्तरेण । अपि । अपिच । अपितु । अभि । अमा । अयि । अये । अरे । अरे । अरेरे । अलम् । असकृत् । अस्ति । अस्तु । अहह । अहो । अहोवत । अह्नाय । आ । आङ् । आम् । आः । आहो । आहोस्वित् । इ । इति । इतिह । इव । उ । उत । उञ् । उताहो । उम् । उररी । उरी । ऊरी । ऋतम् । ए । एव । एवम् । एकपदे । ऐ । ओ । ओम् । औ । कच्चित् ।

कदाचन । कदाचित् । कम् । किंस्वित् । किंच । किंचन। किंचित् । किं । किल । किन्तु । किन्नु । किम् । किमु। किमुत। किंवा । किल । कुत्रचित् । कृतम् । कचन। कचित् । खलु । चन । चित् । चिरम् । चिररात्राय । चिरस्य । चिरात् । चिराय । चिरेण । चेत् । छंवट् । जातु । तत् । तथा च । तथापि । तथाहि । तावत् । तु । ते । दृग । दिष्ट्या । न । नञ् । ननु । ननु च । न चेत् । न वा । न वै । नहि । नाम । नास्ति । नितराम् । नु । नूनम् । नो । परमम् । पाट् । प्याट् । पुरा । प्रगे । प्रत्युत । प्राध्वम् । प्राह्णे।फट् । बत । बलवत् । भगोस् । भवतु । भृशम् । भोस् । मम । माङ् । मा स्म । मे।यत् । यथ । यथायथम् । यथातथम् । यथार्हम् । यथावत् । यथास्वम् । यद्वा । यदि नाम । यदि । यदुत । यद्यपि । यावत् । रेवत् । वदि । वरम्।वषट् । वा । वाव । विषु । वै । वौषट् । शश्वत् । शुभम् । श्रत् । श्रौषट् । सत् । सकृत् । सत्रा । सह । समम् । संप्रति । सम्यक् । स्म । साकम् । सांप्रतम् । सार्द्धम् । सुचिरम् । सुतराम् । स्वधा । स्वाहा । स्वित् । ह । हंहो । हञ्जे । हंडे । हंत । हम् । हला । हा । हि।ही । हीही । हुम् । हूम् । हे । हे । हैं । हौं । अयमप्याकृतिगणः ॥

इति ५३ अंशाः ।

उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च ॥

अवदत्तम् सुबन्तविभक्तिप्रतिरूपकाः । अहम् । अन्तरेण । अन्योन्यस्य । अह्नाय । अग्रे । अकस्मात् । एकपदे । कृतम् । चिरेण । चिराय । चिररात्राय । चिरात् । चिरस्य । ते । तेन । पर्याप्तम् । प्रगे । प्राह्णे । मम । मे । मात्रायाम् । येन । रात्रौ । वेलायाम् । शुभम् । हेतौ । अथ तिङन्तविभक्तिप्रतिरूपकाः । आसि । अस्ति । अस्तु । अस्मि । आस । आह । एहि।न याति । न वर्तते । नास्ति । पश्यत । पश्य । पर्यते । ब्रूहि । भवति । भवतु । मन्ये । याति । वर्तते । विद्यते । शंके । स्वरप्रतिरूपकाः । अ । आ । इ । ई । उ । ऊ । ऋ । ॠ । ऌ । ॡ । ए । ऐ । ओ । औ ।

प्रादयः । ते चोक्ताः । शेषा अव्यया गणपाठे बोध्याः । एषामर्थो अपि तत्रैव ॥

तद्धितश्चासर्वविभक्तिः ॥

तसिल् । त्रल् । ह । अत् । दा।र्हिल् । अधुना । दानीम् । द्यस् । उत् । आरि । समसण् । एद्यवि । द्य । एद्युस् । द्युस् । थाल् । थमु । अस्ताति । असि । अतसुच् । रिल् । रिष्टातिल् । आति । एनप् । आच् । आहि । धा । ध्यमुञ् । धमुञ् । एधाच् । शस् । तसि । च्वि । साति । त्रा । डाच् । अम् । आम् । कृत्वसुच् । सुच् । धा । तासि । वति । ना।नाञ् । इति । तेनेह ना।पचतिरूपम् । तसिल् । कुतः । यतः । ततः । अतः । इतः । अमुतः । परतः । पूर्वतः । सर्वतः । परितः । अभितः । इत्यादि । त्रल् । कुत्र । यत्र । तत्र । अत्र । सर्वत्र । इत्यादि । ह । इह । कुह । अत् । क । दा । सर्वदा । सदा । एकदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । र्हिल् । तर्हि । यर्हि । एतर्हि । कर्हि । अधुना । अधुना । दानीम् । इदानीम् । तदानीम् । द्यस् । सद्यः । द्य । अद्य । एद्यवि । परेद्यवि । एद्युस् । पूर्वेद्युः । अन्येद्युः।अन्यतरेद्युः।इतरेद्युः।अपरेद्युः।अधरेद्युः।उभयेद्युः उत्तरेद्युः । द्युस् । उभयद्युः । उत् । परुत् । आरि।परारि । समसण् । ऐषमः । थाल् । तथा।यथा।थमु । इत्थम् । अस्ताति । पुरस्तात् । अधस्तात् । अवस्तात् । अवरस्तात् । परस्तात् । असि । पुरः । अधः । अवः । अतसुच् । दक्षिणतः । उत्तरतः । अस्तातेर्लुक् । प्राक् । उदक् । प्रत्यक् । अवाक्।इत्यादि । रिल् । उपरि । रिष्टातिल् । उपरिष्टात् । आति । पश्चात् । उत्तरात्।अधरात्।दक्षिणात् । एनप् । उत्तरेण । दक्षिणेन । अधरेण । पूर्वेण । इत्यादि । आच् । उत्तरा । दक्षिणा । आहि । उत्तराहि । दक्षिणाहि । धा । द्विधा । इत्यादि । ध्यमुञ् । ऐकध्यम् । धमुञ् । द्वैधम् । त्रैधम् । एधाच् । द्वेधा । त्रेधा । शस् । बहुशः । अल्पशः।इत्यादि । तसि । कृष्णतः । आदितः । मध्यतः। उरस्तः । इत्यादि । च्वि । कृष्णीभवति । इत्यादि । साति । अग्निसाद्भवति । इत्यादि । त्रा । देवत्रा करोति । इत्यादि । डाच्।

पटपटाकरोति । सपत्राकरोति । इत्यादि । एकादिक्तसि । उरस्तः । वतिः । ब्राह्मणवत् । इत्यादि । ना । विना । नाञ् । नाना । आम् । पचतितराम् । सुतराम् । अम् । उन्दसि । प्रतं । नयप्रतरम् । कृत्वसुच् । पंचकृत्वः । इत्यादि । सुच् । द्विः । त्रिः । सकृत् । धा । बहुधा । इत्यादि ॥ इत्यव्ययानि ॥

इति ५४ अंशाः ।

अथाख्यातम् । फलं व्यापारश्च धात्वर्थः । यथा पचो विक्लित्तिः फलं तदनुकूलोऽधिश्रयणादिर्व्यापारः तत्र धातुपाठे प्रायो विक्लित्त्यादिरूपस्य पाकादेः फलस्यार्थतया निर्देशः तदनुकूलो व्यापार एव क्रिया तद्वाचित्वं विना धातुत्वस्यैवाभावात्सर्वधातूनां क्रिया वाच्या । व्यापारो भावना सैवोत्पादना सैव च क्रिया तत्र फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः धातुस्तयोर्द्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः । सकर्मकस्यापि हेतुचतुष्टयेनाकर्मकता । धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्द्धात्वर्थेनोपसंग्रहात् । प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रिया ॥ वहति भारम् । नदी वहति । स्यन्दत इत्यर्थः । जीवति । नृत्यति । अत्र प्राणधारणगात्रविक्षेपार्थयोर्जीवनृत्योरर्थेन कर्मणोः प्राणगात्रयोः उपसंग्रहादकर्मकता । प्रसिद्धेर्यथा । मेघो वर्षति । कर्मणोऽविवक्षातो यथा । हितान्नयः संशृणुते स किं प्रभुः । अत एव आङो यमहनः समो गम्पृच्छिभ्यामित्यादौ हनिगम्यादेरपि वक्ष्यमाणाऽकर्मकता न विरुद्धा अत एव च यथालक्ष्यमन्तर्भावितण्यर्थतायामकर्मकोऽपि सकर्मकः । प्रेरणांशत्यागे सकर्मकोऽप्यकर्मकः । यथा । गजो मदं क्षरति । गजस्य मदः क्षरति । रविस्तपति । रविर्ललाटं तपति । गत्युपसर्गसंज्ञा धातोः प्राक् प्रयोज्या इत्युक्तम् । उपसर्गास्त्वर्थविशेषस्य द्योतकाः । प्रभवति पराभवतीत्यादौ विलक्षणार्थावगतेः । उक्तञ्च । उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते । प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवदिति ॥ धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्त्तते । तमेव विशिनष्टयन्योऽनर्थकोऽन्यः प्रयुज्यते ॥

क्रमेण यथा । प्रतिष्ठते । प्रस्मरति । प्रहरति । इत्यादि । आद्रियते । अधीते । व्याप्रियते । इत्यादि । अनुगच्छति । आगच्छति।संस्करोतीत्यादि।प्रेक्षते । वीक्षते । निहन्तीत्यादि । धातुषु सत्ताद्यर्थनिर्देशश्चोपलक्षणम् । यागात्स्वर्गो भवतीत्यादावुत्पद्यत इत्याद्यर्थात् । किञ्च नकारजावनुस्वारपञ्चमौ झलि धातुषु षकारजः सकारस्तु षाट्टवर्गस्तवर्गजः ॥

आनि लोट् ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः । प्रभवाणि । दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्व न । दुःस्थितिः । दुर्भवानि । अन्तःशब्दस्याङ्किविधिणत्वेषूपसर्गत्वम् । अन्तर्द्धा । अन्तर्द्धिः । अन्तर्भवाणि ॥

नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ८ । ४ । १७॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णः स्यात् गदादिषु । प्रणिगदति । प्रणिनदति ॥

शेषे विभाषा कखादावषान्त उपदेशे ८ । ४ । १८ ॥

उपदेशे कादिखादिषान्तवर्जे गदनदादेरन्यस्मिन् धातौ परे उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नेर्नस्य णत्वं वा । प्रणिभवति । प्रनिभवति ॥

उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८ । ४ । १४ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य णः समासेऽसमासेऽपि च । नाधानार्दिनृत्यनाथूनाधनक्ननृनर्दान्नन्दं विना णोपदेशाः । प्रणिन्दति । अथ प्रसङ्गात् षोपदेशाः । स्त्यैसेक्सृस्तृसृजसृप्स्तृतोऽन्ये ये स्युस्तवर्गस्वरयुक्तसाद्याः । एकाच एते किल षोपदेशाः ष्वष्कष्विद्ष्वश्रूष्वद्ष्वपष्मिङश्च ॥

सात्पदाद्योः ॥

षत्वन्न । अनुसज्जति । इहोपसर्गाणामसमस्तत्वेऽपि संहिता

नित्या तदुक्तम् । संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः । नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे १ । ३ । १४ ॥

क्रियाविनिमये द्योत्ये कर्तरि लस्यात्मनेपदम् । व्यतिभवंते । व्यतिरक्षन्ते । कर्मव्यतिहाराविवक्षायां व्यत्युपसर्गयोगं विनाप्यात्मनेपदम् ॥

न गतिहिंसार्थेभ्यः १ । ३ । १५ ॥

व्यतिगच्छन्ति । व्यतिघ्नन्ति ॥

हसादीनामुपसंख्यानम् ❀ ॥

हसादयो हसप्रकाराः शब्दक्रियास्तेभ्योऽपि नात्मनेपदम् । व्यतिहसन्ति । व्यतिजल्पन्ति ॥

इतरेतरान्योन्योपपदाच्च १ । ३ । १६ ॥

नात्मनेपदम् । इतरेतरम् । व्यतिभवन्ति ॥

परस्परोपपदाच्च न ❀ ॥

परस्परं व्यतिभवन्ति । एवं न गतीत्यादि निषेधकं विना सर्वधातुभ्यः कर्मव्यतिहारे आत्मनेपदं तत्कार्यं च ज्ञेयम् । वल्ग गतौ । तर्ज भर्त्सने । तर्द हिंसायाम् । गर्द-नर्द शब्दे । कर्द कुत्सिते शब्दे । खर्व-गर्व गतौ । गर्व हिंसायाम् । फक्क नीचैर्गतौ । चञ्चु वञ्चु गतौ । आशीर्लिङि कित्वात् उपधाया नस्य लोपः । चच्यात् । चच्यास्ताम् । शंसु स्तुतौ दुर्गतौ च । णील वर्णे । नीलति । प्रणीलति । मील निमेषणे । शील समाधौ । क्रीड़ु विहारे ॥

क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च १ । ३ । २१ ॥

एभ्य आङश्च । क्रीड आत्मनेपदम् । अनुक्रीडते इत्यादि ॥

अनोः कर्मप्रवचनीयान्न ❀ ॥

---

१ उपसर्गादिनिर्देशेनात्मनेपदादिक तत्तद्धातुसान्निध्येन लिखितमत पदव्यवस्थाप्रकरण गणश्चेनान्तर्भूतमतो न तस्य पृथङ्न्यास. ॥

बालमनुक्रीडति । तृतीयार्थे इति कर्मप्रवचनीयता । समो कूजने । संक्रीडते । कूजने तु संक्रीडति रथचक्रम् । कील बन्धने । लुञ्च अपनयने । लुच्यात् । कुञ्च-क्रुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः । कुच्यात् । क्रुञ्चेस्तु । उपधालोपो न अस्य ओपधत्वेनैवेष्टत्वादित्याहुः । क्रुञ्च्यात् । तुम्प हिंसायाम् । तुतुम्प । तुतुम्पतुः । संयोगात्परस्य लिटः कित्त्वाभावान्नलोपो न । आशीर्लिङि तु कित्त्वान्नलोपः । तुप्यात् । प्रातुम्पतौ गवि कर्त्तरि इति पारस्करादिगणे पाठात्सुट् । प्रस्तुम्पति गौः । श्तिपा निर्देशाद्यङ् । लुकि न प्रतोतुम्पीति । चूष पाने । रूष भूषायाम् । शूल रुजायां संघोषे च । कूज अव्यक्ते शब्दे । भूष अलङ्कारे । मूल प्रतिष्ठायाम् । म्लेच्छ अव्यक्ते शब्दे । मिम्लेच्छ । वेल्ल-क्ष्वेल चलने । म्रेड्-लोड् उन्मादे। शोणृ वर्णगत्योः । शुशोण । धोर्ऋ गतिचातुर्ये । शौटृ गर्वे । शुशौट । त्वगि गतौ कम्पने च । काडि मदे । काक्षि काङ्क्षायाम् । ध्वाक्षि घोरवासिते च । लाच्छि लक्षणे । वाछि इच्छायाम् । रिगि लिगि गतौ । शिघि आघ्राणे । लुबि अर्दने । चुबि वक्त्रसंयोगे । कुथि हिंसासंक्लेशनयोः । जुगि वर्जने । लुटिलुठि स्तेये । मुडि खण्डने । शुठि कुठि प्रतिघाते।गुजि अव्यक्ते शब्दे ॥

इति ९९ अंशाः ।

हस शब्दे । जहास । कप हिंसायाम् । चकपतु. । कण क्वण ध्वन भण शब्दे । भप भर्त्सने । हठ प्लुति शठत्वबलात्कारेषु। स्खल संचलने । गल अदने ।लल विलासे । चल कम्पने । चर गतिभक्षणयोः । चेरतुः । अचारीत् ॥

उदश्चरः सकर्मकात् १ । ३ । ५३ ॥

तडानौ । धर्ममुच्चरते ॥

समस्तृतीयायुक्तात् १ । ३ । ५४ ॥

रथेन संचरते । व्यवहितेऽपि । रथेन समुदाचरते । जप व्यक्ताया वाचि मानसे च । अजापीत् अजपीत् । णट नृतौ । णद

अव्यक्ते शब्दे । पठ व्यक्तायां वाचि । मण रण शब्दे । रट परिभाषणे । जट संघाते । पट गतौ । रद विलेखने । रस शब्दे । लड विलासे । लप व्यक्तायां वाचि । लस श्लेषणक्रीडनयोः । शट रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । शसु हिंसायाम् । दन्त्यान्तः । शशास ॥

न शसददवादिगुणानाम् ६ । ४ । १२६ ॥

शसेर्ददेर्वकारादीनां गुणशब्देन भावितस्य च योऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासलोपौ न । शशसतुः । शशसुः । वोपदेवादयस्तु न शसेति सूत्रे शश प्लुतगतौ इति द्वितालव्यं धातुं गृह्णन्ति तेषां मते दन्त्यान्तस्य शेसतुरित्यादि द्वितालव्यस्य शशशतुरित्यादि । शिट आसे । पुष पुष्टौ । पोषति । अपोषीत् । प्लुष दाहे । लुठ उपघाते । लुड विलोडने । लुल विमर्दने साम्रः । कुच शब्दे तारे । घुट घृट्टौ शब्दे च । मृषु सेचने । घृषु संघर्षे । हृषु अलीके । स्फुटिर् विशरणे । अव रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिंगनहिंसादानभागवृद्धिषु । अर्ह पूजायाम् । अञ्चु गतिपूजनयोः । म्लुचु गतौ ॥

जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ३ । १ । ५८ ॥

एभ्यः च्लेरङ् वा नलोपः । अम्लुचत् । अम्लोचीत् । धिवि प्रीणने ॥

धिन्विकृण्व्योर च ३ । १ । ८० ॥

अनयोरकारोन्तादेश उप्रत्ययश्च शब्विषये । अतो लोपः । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । धिनोति । धिनुतः । धिन्वन्ति । धिन्वः धिनुवः । धिन्मः धिनुमः । हेर्लुक् । धिनु । नित्यत्वादुकारलोपात्पूर्वमाट् । धिनवाव । एवं कृवि हिंसाकरणयोर्गतौ च । चमु अदने ॥

ष्ठिवुक्लमुचमां शिति ७ । ३ । ७५ ॥

एषामचो दीर्घः शिति ॥

आङि चम इति वक्तव्यम् ॥

आचामति । चमति । अचमीत् । कटे वर्षावरणयोः । अक-टीत् । ष्ठिवु निरसने ॥

सुब्धातुष्ठिवुष्वष्कतीनां सत्वप्रतिषेधः ॥ * ॥

ष्ठीवति । अस्य द्वितीयस्थष्ठो वेति वृत्तिः । तिष्ठेव । टिष्ठेव । फल निष्पत्तौ ॥

तॄफलभजत्रपश्च ६ । ४ । १२२ ॥

एषामत एत्वमभ्यासलोपश्च किति लिटि सेटि थलि च । फेलतुः । अफालीत् । एवं ञिफला विशरणे । ईर्क्ष्य ईर्ष्यायाम् । ईर्क्ष्यांचकार । उछी विवासे । प्रायेण विपूर्वः । व्युच्छति । व्युच्छां-चकार । ऊष रुजायाम् । इदि परमैश्वर्ये । कित निवासे रोगाप-नयने च ॥

गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ३ । १ । ५ ॥

मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ३ । १ । ६॥

सूत्रद्वयोक्तेभ्यः सन्मानादीनामभ्यासेकारस्य दीर्घश्च । गुपेर्नि-न्दायाम् । तिजेः क्षमायाम् । कितेर्व्याधिप्रतीकारे निग्रहे अप-नयने संशये च । मानेर्जिज्ञासायाम् । बधेश्चित्तविकारे । दानेरार्जवे । शानेर्निशाने । गुपिप्रभृतयः कित्भिन्ना निन्दाद्यर्थका एवानुदा-त्तेतौ दानशानौ च स्वरितेतौ एते नित्य सन्नन्ताः । अर्थान्तरे त्वननुबधकाश्चुरादयः धातोरित्यविहितत्वात् सनोऽत्र नार्द्धधातुक-त्वं तेनेड्गुणौ न । सन्यङोः अभ्यासकार्यम् । चिकित्सति चिकि-त्सत इत्यपि कश्चित् । अतो लोपः । चिकित्साञ्चकार ॥

इति ५६ अंशाः ।

उष दाहे ॥

उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ३८ ॥

एभ्यो लिट्याम्वा । ओषाञ्चकार ॥

अभ्यासस्यासवर्णे ६ । ४ । ७८ ॥

अभ्यासस्येवर्णोवर्णयोरियङुवङौ असवर्णेऽचि । उवोप । ऊपतुः । ऊपुः । इह सवर्णदीर्घस्याभ्यासग्रहणेन ग्रहणाद्ध्रस्वः प्राप्तो न भवति सकृत्प्रवृत्तत्वात् । आङ्गत्वाद्धि पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्त्या ह्रस्वे कृते ततः सवर्णदीर्घः । वार्णादाङ्गं बलीयः इति न्यायात् परत्वाच्च । धूप सन्तापे ॥

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ३ । १ । २८ ॥

एभ्य आयप्रत्ययः स्वार्थे । धूपायति । धूपायांचकार ॥

आयादय आर्द्धधातुके वा ३ । १ । ३१ ॥

दुधूप । धूपायिता धूपिता । अधूपायीत् अधूपीत् । उख-उखि गतौ । ओखति । उवोख । ऊखतुः । उङ्खति । उङ्खांचकार ॥ अथ घटादयः ॥ ते च द्विधा । केचित् घटादिगण एवापूर्वतया पठिताः । केचित्तु अन्यत्र पठिता अपि मित्कार्यार्थं घटादिष्वपि पठिताः । तत्र घटादयस्त्वरत्यन्तास्त्रयोदश षितोऽपि तेभ्यः षि-द्भिदादिभ्योऽङ् । घटा । व्यथा । त्वरा इत्यादिघटादयो मित इति । मितस्तु फणान्ताः सर्वेऽपि तेषां मित्कार्यं च णिच्येव ॥

मितां ह्रस्वः ६ । ४ । ९२ ॥

मितामुपधाया ह्रस्वो णौ परे । लगयति । णिजन्तात्कर्मणि लुङि तस्य तादेशे च्लौ तस्य चिणि णिलोपे च ॥

चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् ६ । ४ । ९३ ॥

चिण्परे णमुल्परे च णौ मितामुपधाया दीर्घो वा । अलागि अलगि । आभीक्ष्ण्ये णमुलि लागं लागं लगं लगम् । एवं सर्वेषु घटादिषूदाहार्यम् । स्वस्वगणकार्यं च । लगति । ललाग । लेगतुः । अलगीत् । इत्यादि ज्ञेयम् । तत्राद्याः प्रसिद्धाश्चात्र खण्डे लिख्यन्ते । लगे संगे । क्रथ हिंसायाम् । ज्वर रोगे । ह्वल चलने । दॄ भये । त्रयादेरनुवादोऽयम् । अपूर्व एवेत्यन्ये । अक-अग कुटिलायां गतौ । रगे सङ्के । चक तृप्तौ । हेड वेष्टने । हेड्धातोरनुवादोऽयमित्याहुः । परे तु असाम्प्रदायिकोऽस्य पाठः । सति पाठे त्वपूर्व एवायं नत्वन-

वाद इत्याहुः। णिजन्ते सर्वे घटादयो वक्ष्यंते। अथ फणादयः॥ फण गतौ। अयं मतभेदेन घटादिष्वपि॥

फणाञ्च सप्तानाम् ६। ४। १२५॥

एषां वा एत्वाभ्यासलोपौ क्किति लिटि सेटि थलि च। फेणतुः फफणतुः। स्वन शब्दे। स्वेनतुः सस्वनतुः। शेषा वक्ष्यन्ते॥ अथ ज्वलादयः॥ ज्वल दीप्तौ। अज्वालीत्। वल प्राणने धान्यावरोधे च। वेलतुः। वेलुः। पत्ल गतौ॥

पतः पुम् ७। ४। १९॥

अङि। अपप्तत्। टल वैक्लव्ये। पुल महत्त्वे। हल विलेखने। टुवम् उद्गिरणे। वादित्वान्नेत्वाभ्यासलोपौ। ववमतुः। वेमतुरित्यपि भागवृत्तौ। तद्भाष्यादौ न दृष्टम्। अवमीत्। षिधु गत्याम्। सेधति। सात्पदाद्योरिति निषेधे प्राप्ते॥

उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ८। ३। ६५॥

उपसर्गादिण्निमित्तादेषां सस्य षः। निषेधति॥

सदिरप्रतेः ८। ३। ६६॥

प्रतिभिन्नोपसर्गस्थादिणः सदेः सस्यः षः॥

स्तम्भेः ८। ३। ६७॥

सौत्रस्य सस्य षः। प्रतेरपि। बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः॥

अवाच्चालम्बनाऽऽविदूर्ययोः ८। ३। ६८॥

अवात्स्तम्भेरेतयोरर्थयोः षः॥

वेश्च स्वनो भोजने ८। ३। ६९॥

व्यवाभ्यां स्वनतेः सस्य षः भोजने॥

परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम् ८। ३। ७०॥

एभ्यः परेषामेषां सस्य षः ॥

प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि ८ । ३ । ६३ ॥

सेवसित इत्यत्र सितशब्दात्प्राग्ये सुनोत्यादयस्तेषामड्व्यवायेऽपि षत्वम् । न्यषेधत् । न्यषेधीत् । न्यषेधिष्यत् ॥

स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ८ । ३ । ६४ ॥

प्राक्सितात्स्थादिष्वभ्यासेन व्यवायेऽपि षत्वम् एषामेव चाभ्यासस्य नतु सुनोत्यादीनाम् । निषिषेध । निषिषिधतुः ॥

सेधतेर्गतौ ८ । ३ । ११३ ॥

गत्यर्थस्य सेधतेः षत्वं न । गंगां विसेधति । भ्रमु चलने ॥

वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुत्रसित्रुटिलषः ३ । १ । ७०॥

एभ्यः श्यन् वा कर्त्तरि सार्वधातुके । भ्रम्यति भ्रमति। दिवादौ भ्राम्यति ॥

वा जॄभ्रमुत्रसाम् ६ । ४ । १२४ ॥

एषामेत्वाभ्यासलोपौ वा किति लिटि सेटि थलि च । भ्रेमतुः बभ्रमतुः । अभ्रमीत् । क्षथे निष्पाके । मथे विलोडने । क्षर संचलने । चल कंपने । कुच संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्टम्भविलेखनेषु । बुध अवगमने । कस गतौ । शेषा वक्ष्यन्ते ॥ अथ द्वौ यजादी ॥ वद व्यक्तायां वाचि ॥

वचिस्वपियजादीनां किति ६ । १ । १५ ॥

वचिस्वप्योर्यजादीनां च संप्रसारणं किति ॥

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च ६ । १ । १६ ॥

एषां किति ङिति च संप्रसारणम् ॥

लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ६ । १ । १७ ॥

वच्यादेर्ग्रहादेश्चाभ्यासस्य संप्रसारणं लिटि । उवाद ॥

परनित्यांतरंगापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः । संप्रसारणं तदाश्रयं च बलवत् । सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव । पुनः प्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम् पुनः प्रसङ्गविज्ञानाद् द्वित्वम् ❀ ॥

ऊदतुः । उद्यात् । अवादीत् ॥

भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वदः १ । ३ । ४७ ॥

आत्मनेपदम् । शास्त्रे वदते । भृत्यानुपवदते । शास्त्रे वदते । क्षेत्रे वदते । गेहे विवदन्ते । परदारानुपवदते ॥

व्यक्तवाचां समुच्चारणे १ । ३ । ४८ ॥

संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । नेह । संप्रवदन्ति खगाः ॥

अनोरकर्मकात् १ । ३ । ४९ ॥

व्यक्तवाग्विषयादनुपूर्वाद्वदेरात्मनेपदम् । अनुवदते कठः कलपस्य ॥

विभाषा विप्रलापे १ । ३ । ५० ॥

विरुद्धोक्तिरूपे व्यक्तवाचां समुच्चारणे उक्तं वा । विप्रवदंते विप्रवदन्ति वा वैद्याः ॥

अपाद् वदः १ । ३ । ७३ ॥

अपवदते । कर्त्रभिप्राय एव । नेह । अपवदति ॥

विभाषोपपदेन प्रतीयमाने १ । ३ । ७७ ॥

स्वरितञितः, णिचश्च, अपाद्वदः, समुदाङ्भ्यः, अनुपसर्गाज्ज्ञः इति पञ्चसूत्र्या यदात्मनेपदं विहितं तत्समीपोच्चारितेन पदेन क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वे द्योतिते वा । स्वं पुत्रमपवदते अपवदति वा ॥

इति ५७ अंशाः ।

टुओश्वि गतिवृद्ध्योः ॥

विभाषा श्वेः ६ । १ । ३० ॥

श्वयतेः संप्रसारणं वा लिटि यङि च । शुशाव । शुशुवतुः ॥

श्वयतेर्लिट्यभ्यासलक्षणप्रतिषेधः ❀ ॥

तेन लिटचभ्यासस्येति संप्रसारणं न । शिश्वाय । शिश्वियतुः । शूयात् ॥

जृस्तंम्भ्विति ॥

च्लेरङ् वा ॥

श्वयतेरः ७ । ४ । १८ ॥

श्वयतेरिकारस्य अकारोऽङि । अश्वत् ॥

विभाषा धेट्श्व्योः ३ । १ । ४९ ॥

आभ्यां च्लेश्चङ् वा कर्त्तृलुङि।चङि इति धित्वम्। अशिश्वियत। ह्यन्तेति न वृद्धिः। अश्वयीत् । शेषा वक्ष्यन्ते ॥ अथ वेडनिटः ॥ तत्र अनिटश्च गद्येन पूर्वमुक्ताः झटिति स्मरणार्थं श्लोकैरप्रोच्यन्ते । ऊदन्तऋदन्तरुणुक्ष्णुयौतिस्नुक्ष्णुश्विडीशीश्रिं च वृङ्वृञौ च। स्युर्द्धातवः सेट इमेऽथ चान्ये एकाजजन्ता अनिटोऽनुदात्ताः॥१॥ हलन्तेपु शक्नोति पच्वच्रिचश्च विचिर्मुचश्चातिः सिञ्चतिः पृच्छमज्जौ । त्यजिमज्जती रञ्जनेनेक्तिभृज्जाः भुजिः स्याद्भजिर्यज्ञ भवेद्भुज्रुजौ च ॥१॥ स्वञ्जविजिर्सृजिसञ्जखिदः क्षुदृच्छिनुदपद्यनुदोभिदविन्ते । स्विद्यति विद्यति सीदति चात्ति स्कन्दहदौ शदशुष्यतिबुध्यौ ॥ २ ॥ रुधिः सराधिर्युधिबन्धिसाधयः क्राधेः क्षुधिः सिध्यतिविध्यतौ हानिः । मन्यापतृप्यत्यथ लिम्पलुम्पती दृप्यस्वपौ सर्पतिवप्शपाक्षिपः ॥३॥ तेपति च्छुपाते तप्यभी रभिर्लभ्गमी अथ नमिर्यमी रमिः। दंशदृश्दिशतिमृश्रिशीरुशीर्लिंशस्पृशत्यथ विशत्यकुशेः ॥ ४ ॥ द्वेष्टि तुष्यकृपत्वेपत्यथ दुष्यति पुष्यति । पिनष्टि विप् ततः शुष्यत्यथ श्लिष्यति शिप तथा ॥ ५ ॥ स्याद्घसतिश्च घासिर्दहदेग्धीदो-

---

१ श्विड्यन्तः समाहारद्वन्द्वः अत क्लीवत्वम् ।

गिधनहींवाहिलेंदिरुहश्च । मेहातीरेत्यनुदात्तहलन्ताः संकलिता ह्यधिकं शतमेते ॥ ६ ॥ गुपू रक्षणे । गोपायाञ्चकार । जुगोपिथ जुगोप्थ । गोपायिता गोपिता गोप्ता । गोपाय्यात् गुप्यात् । अगोपायीत् अगोपीत् । अगौप्सीत् । अगौप्ताम् । अज गतिक्षेपणयोः। अजति ॥

अजेर्व्यघञपोः २ । ४ । ५६ ॥

अजेर्वी आदेश आर्द्धधातुकविषये घञमपं च वर्जयित्वा । वलाद्यार्द्धधातुके वेष्यते । विवाय । विव्यतुः । विव्युः । इह वकारस्य हल्परत्वात् उपधाया च इति दीर्घे प्राप्ते अचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावेनाच्परत्वम् । न च न पदान्तेति निषेधः। स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाजादेश एव न स्थानिवदिति वार्तिकोक्तेः । थलि एवा च इतीण्निषेधे प्राप्ते कृसृभृवृ इति क्रादिनियमादिट् प्राप्नोति।अत्र हि प्रकृत्याश्रयः प्रत्ययाश्रयो वा यावानिट्निषेधः स लिटि चेत्तर्हि क्रादिभ्य एव नान्येभ्य इति।ततश्चतुर्णां थलि भारद्वाजनियमप्रापितस्य वमादिषु क्रादिनियमप्रापितस्य चेटो निषेधार्थम् । एवमिटि प्राप्ते पुनरचस्तास्वादित्यनेन निषेधे प्राप्ते भारद्वाजमतेन पुनर्निषेधनिवृत्त्या विकल्पः नच स्तुद्रुस्रुश्रुवामपि थलि विकल्पः शंक्यः । अचस्तास्वदिति उपदेशे त्वत इति च योगद्वयप्रापितस्यैव हि प्रतिषेधस्य भारद्वाजनियमो निवर्तकः अनन्तरस्येति न्यायात् । विवयिथ विवेथ । आजिथ । विव्यथुः । विव्य । विवाय विवय । विविियव । विव्यिम । आजिव । आजिम । वेता । अजिता । वेष्यति । अजिष्यति । अजतु । आजत् । अजेत् । वीयात । अवैषीत् । आजीत् । अवेष्यत् । आजिष्यत् । रिष रुष हिंसायाम् ॥

तीषसहलुभरुषरिषः ७ । २ । ४८ ॥

इच्छत्यादेः परस्य तादेरार्द्धधातुकस्येट् वा । रेषिता रेष्टा । रोषिता रोष्टा । तॄ प्लवनतरणयोः । तरति ॥

ऋच्छत्यॄताम् ७ । ४ । ११ ॥

तौदादिकऋच्छेर्ऋधातोर्ऋतां च गुणो लिटि परत्वात् णल्यपि । गुणः । उपधावृद्धिः । गुणशब्दभावितकारवत्त्वान्निषेधे प्राप्ते तृफलेत्येत्त्वाभ्यासलोपौ । तेरतुः ॥

वृतो वा ७ । २ । ३८ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा न तु लिटि । तरिता तरीता ॥

ऋत इद्धातोः ॥

गुणवृद्धी परत्वाद्बाधेते । तीर्यात् । सिचि वृद्धिरिति वृद्धिः । अतारीत् ॥

सिचि च परस्मैपदेषु ७ । २ । ४० ॥

वृत इटो दीर्घो न । अतारिष्टाम् । कर्मव्यतिहार आत्मनेपदे तु ॥

लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ७ । २ । ४२ ॥

वृतः परयोर्लिङ्सिचोरिड् वा ताङि ॥

न लिङि ७ । २ । ३९ ॥

वृतो लिङ इटो दीर्घो न । तरिषीष्ट । उश्चेति कित्वम् । तीर्षीष्ट । अतरिष्ट अतरीष्ट अतीर्ष्ट ॥

इति ५८ अंशाः ।

तक्ष् तनूकरणे ॥

तनूकरणे तक्षः ३ । १ । ७६ ॥

श्नुर्वा शब्विषये । तक्ष्णोति तक्षति वा काष्ठम् । अन्यत्र वाग्भिः संतक्षति । भर्त्सयतीत्यर्थः । अतक्षीत् । पक्षे अताक्षीत् । अक्षू व्याप्तौ ॥

अक्षोऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ७५ ॥

श्नुः शब्विषये । अक्ष्णोति अक्षति । अक्ष्णुवन्ति । आनक्षिथ आनष्ठ । अक्षिता अष्टा । अक्षिष्यति अक्ष्यति । अक्ष्णोतु । आक्षीत् । मा भवानक्षीत् । आक्षिष्टाम् । अनिट्त्वे मा भवानाक्षीत् । आष्टाम् । ऋमु पादविक्षेपे । वा भ्राशेति श्यन्वा ॥

क्रमः परस्मैपदेषु ७ । ३ । ७६ ॥

क्रमेर्दीर्घः परस्मैपदपरे शिति । क्राम्यति क्रामति ॥

स्नुक्रमोरनात्मने पदनिमित्ते ७ । २ । ३६ ॥

अत्रैवेट् । अक्रमीत् ॥

वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः १ । ३ । ३८ ॥

आत्मनेपदम् । ऋचि क्रमते बुद्धिः । न प्रतिहन्यत इत्यर्थः । क्रन्ता । क्रंस्यते । अक्रंस्त । अध्ययनाय क्रमते क्रमतेऽस्मिन् शास्त्राणि ॥

उपपराभ्याम् १ । ३ । ३९ ॥

वृत्त्यादिष्वाभ्यामेव क्रमेर्न तूपसर्गान्तरपूर्वात् । उपक्रमते । पराक्रमते । नेह । संक्रामति ॥

आङ उद्गमने १ । ३ । ४० ॥

आक्रमते सूर्यः ॥

ज्योतिरुद्गमन एव ❋ ॥

नेह । आक्रामति धूमो हर्म्यतलात् ॥

वेः पादविहरणे १ । ३ । ४१ ॥

साधु विक्रमते वाजी ॥

प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् १ । ३ । ४२ ॥

प्रोपपूर्वादारम्भार्थात् क्रमेरात्मनेपदम् । प्रक्रमते । उपक्रमते ॥

अनुपसर्गाद्वा १ । ३ । ४३ ॥

क्रामति क्रमते । क्रन्ता । क्रंस्यते ॥ अथानिटः ॥ स्कन्दिर् गतिशोषणयोः । चस्कन्दिथ चस्कन्थ । स्कन्ता । स्कन्त्स्यति । नलोपः । स्कद्यात् । इरित्वादङ् वा । अस्कदत् । अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्त्सुः ॥

वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ८ । ३ । ७३ ॥

पत्वं वा । कृत्येवेदम् । अनिष्ठायामिति पर्युदासात् । विष्कन्ता विस्कन्ता । निष्ठायां तु । विस्कन्नः ।

परेश्च ८ । ३ । ७४ ॥

परेः परस्य स्कन्देः सस्य षो वा । योगविभागादनिष्ठायामिति न सम्बध्यते । परिष्कन्दति परिस्कन्दति । परिष्कण्णः परिस्कन्नः । षत्वपक्षे णत्वम् । न च पदद्वयाश्रयतया बहिरङ्गत्वात्षत्वमसिद्धम् । धातूपसर्गयोः कार्यमन्तरङ्गमित्यभ्युपगमात् । पूर्वं धातुरुपसर्गेण युज्यते ततः साधनेनेति भाष्यम् । पूर्वं साधनेनेति मतान्तरे तु न णत्वम् । तप सन्तापे । तेपिथ ततप्थ । तप्ता । अताप्सीत् ॥

उद्विभ्यां तपः १ । ३ । २७ ॥

अकर्मकात्तङानौ । उत्तपते । वितपते । दीप्यते इत्यर्थः ॥

स्वाङ्गकर्मकाच्च * ॥

उत्तपते स्वपाणिम् । नेह । चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति । सृप्लृ गतौ । सर्पति ॥

अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ६ । १ । ५९ ॥

उपदेशेऽनुदात्तो य ऋदुपधस्तस्य अम् वा झलादावकिति । स्रप्ता सर्प्ता । असृपत् । दह भस्मीकरणे । देहिथ । दादेरिति घः । ददग्ध । दग्धा । धक्ष्यति । अधाक्षीत् । अदाग्धाम् । अधाक्षुः । यभ मैथुने । येभिथ ययब्ध । अयाप्सीत् । घस्लृ अदने । शपि वलाद्यार्द्धधातुके लुङि चमराचि चास्य प्रयोगो न सर्वत्र । घस्ता ॥

सः स्यार्द्धधातुके ७ । ४ । ४९ ॥

सस्य तः सादावार्द्धधातुके । घत्स्यति । लृदित्वात् च्लेरङ् । अघसत् ॥

इति ५९ अंशाः ।

वस निवासे॥अयं यजादिः । उवास । शासिवसि इति षः । ऊषतुः । उष्यात् । वत्स्यति । ओवै शोषणे । श्रै पाके । स्त्यै शब्दसंघातयोः । क्षै क्षये । द्रै स्वप्ने । ष्णै वेष्टने । दाण् दाने ॥

पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्छधौशीयसीदाः ७ । ३ । ७८॥

पादीनां पिबादयः स्युः इत्संज्ञकशकारादौ प्रत्यये । यच्छति दाता । प्रणियच्छति । अड्व्यवायेऽपीष्यते । प्रण्ययच्छत् ॥

दाधाघ्वदाप् १ । १ । २० ॥

दाण्–डुदाञ्–दो–देङ्–डुधाञ्–धेटो घुसंज्ञाः ॥

एर्लिङि ६ । ४ । ६७ ॥

घुमास्थागापाजहातिसो एषामात एत्वमार्द्धधातुके किति लिङि । देयात् । गातिस्थेति सिचो लुक् । अदात् । आतः । उस्य पदांतात् । अदुः ॥

दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे १ । ३ । ५५ ॥

सम्पूर्वाद्दाणस्तृतीयान्तेन युक्तात्तङानौ तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या संयच्छते । व्यवधानेऽपि । दास्या सम्प्रयच्छते । सन्ददे । सन्दासीष्ट ॥

स्थाघ्वोरिच्च १ । २ । १७ ॥

अनयोरिदादेशः सिच्च कित् तङि । ह्रस्वादङ्गात् । समदित । समदिषाताम् । पा पाने । पिबादेशोऽदन्तः । तेन उपधागुणो न । पिबति । पेयात् । अपात् । ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । धमति । ध्मेयात् । ध्मायात् । अध्मासीत् । म्ना अभ्यासे । मनति । घ्रा गन्धोपादाने । जिघ्रति । घ्रेयात् घ्रायात् ॥

विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः २ । ४ । ७८ ॥

एभ्यः सिचो लुक् वा परस्मैपदे । अघ्रात् । अघ्रासीत् । धेट् पाने । प्रणिधयति । दधौ । दधिथ दधाथ । धेयात् । विभाषा धेट्ठिति चङ् द्वित्वम् । अदधत । अदधताम् । पक्षे अधात् । अधासीत् ॥

इति ६० अंशाः । इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

ष्ठा गतिनिवृत्तौ । तिष्ठति । तस्थौ । स्थेयात् । अस्थात् ॥

समवप्रविभ्यः स्थः १ । ३ । २२ ॥

आत्मनेपदम् । सन्तिष्ठते । समस्थित । समस्थिषाताम् ॥

आङः प्रतिज्ञायाम् ॥ ॥

शब्दं नित्यमातिष्ठते ॥

प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च १ । ३ । २३ ॥

गोपी कृष्णाय तिष्ठते । आशयं प्रकाशयतीत्यर्थः । संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः । कर्णादीन्निर्णेतृत्वेनाश्रयतीत्यर्थः ॥

उदोऽनूर्ध्वकर्मणि १ । ३ । २४ ॥

मुक्तावुत्तिष्ठते । ऊर्ध्वकर्मणि तु पीठादुत्तिष्ठति । ईहायामेव । नेह । ग्रामाच्छतमुत्तिष्ठति ॥

उपान्मंत्रकरणे १ । ३ । २५ ॥

आग्नेय्याग्नीध्रमुपतिष्ठते ॥

उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् ॥ ॥

आदित्यमुपतिष्ठते । गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते । रथिकानुपतिष्ठते । पंथाः स्रुघ्नमुपतिष्ठते ॥

वा लिप्सायाम् ॥ ॥

प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा ॥

अकर्मकाच्च १ । ३ । २६ ॥

उपात्तिष्ठतेरकर्मकादात्मनेपदम् । भोजनकाले उपतिष्ठते । गै शब्दे । गेयात् । अगासीत् । व्यतिगायति । जि जयेऽभिभवे च ॥

सँल्लिटोर्जेः ७ । ३ । ५७ ॥

जयतेः सनि लिटि च योऽभ्यासस्ततः परस्य कुत्वम् । जिगाय । अजैषीत् ॥

विपराभ्यां जेः १।३।१९॥

तङानौ । विजयते । पराजयते । व्यजेष्ट । जु रंहसि । द्रु गतौ । द्रोता । द्रूयात् । णिश्रिद्रुस्रु इति चङ् । चङि अदुद्रुवत् । व्यतिद्रुवन्ति । एवं स्रु गतौ । षु प्रसवैश्वर्ययोः । सवति । सोता । ध्रु स्थैर्ये । श्रु श्रवणे ॥

श्रुवः शृ च ३।१।७४॥

श्रुवः शृ इत्यादेशः श्नुप्रत्ययश्च कर्त्रर्थे सार्वधातुके । शपोऽपवादः । शृणोति । हुश्नुवोरिति यण् । शृण्वन्ति । शृण्वः शृणुवः । शुश्रोथ । शुश्रुव । शुश्रुम । शृणु ॥

अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च ॥

समोऽकर्मकेभ्य एभ्यस्तङानावित्यर्थः । संशृणुते । समश्रोष्ट । सन्नन्तादपि च तङानौ वक्ष्येते । ऋ गतिप्रापणयोः । ऋच्छति । उरत् । ऋच्छत्यृताम् णलि गुणे उपधावृद्धिः । आर । आरतुः । इडत्यर्तिव्ययतीनाम् । आरिथ । ऋद्धनोः स्ये । अरिष्यति । आट् आटश्च । आर्च्छत् । अर्यात् ॥

सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च ३।१।५६॥

एभ्यः च्लेरङ् कर्तरि लुङि । इत्यङ्ग तु न लुक्शपा शासिना साहचर्यात् सर्त्यर्त्योर्जोहोत्यादिकयोरेवात्र ग्रहणात् । आर्पीत् । समृच्छते । समारे । समाराते । समारिरे । उश्च । समृषीष्ट । समार्त । समार्षाताम् । समार्षत । माङि लुङि मासमृत । मासमृषाताम् । मासमृषत । सृ गतौ । शीघ्र गतौ । धावति । अन्यत्र सरति ॥

इति ६१ अंशाः ।

पञ्ज सङ्गे ॥

दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ६।४।२५॥

रञ्जेश्च ६।४।२६॥

एषां शपि नलोपः । सजति । ससञ्जिथ ससङ्क्थ । सङ्क्ता ।

दंश दशने । दशति । ददंशिथ ददंष्ठ । दंष्टा । दश्यात् । दंक्ष्यति । अदांक्षीत् । गम्लृ गतौ ॥

इषुगमियमाञ्छः ७ । ३ । ७७ ॥

एषां छः शिति । गच्छति । जगाम । गमहनेत्युपधालोपः । जग्मतुः । जगमिथ जगन्थ । गन्ता ॥

गमेरिट् परस्मैपदेषु ७ । २ । ५८ ॥

गमेः परस्य सकारादेः इट् तङानयोरभावे । गमिष्यति । च्लेरङ् । अगमत् ॥

समोगमृच्छिभ्याम् १ । ३ । २९ ॥

अकर्मकाभ्यामात्मनेपदम् । संगच्छते । संगंस्यते ॥

वा गमः १ । २ । १३ ॥

गमः परौ झलादी लिङ्सिचौ वा कितौ । कित्वे अनुदात्तोपदेशेति मलोपः । संगसीष्ट पक्षे संगंसीष्ट । समगत समगंस्त । यमु उपरमे । शपि यच्छति । शेषं णमवत् ॥

आङो यमहनः १ । ३ । २८ ॥

आत्मनेपदम् । आयच्छते । आयंस्त ॥

यमो गंधने १ । ३ । १५ ॥

परदोषाविष्करणे यमः सिच् कित् । उदायत । गन्धने किम् । उदायंस्त पादम् । आकृष्टवानित्यर्थः ॥

उपाद्यमः स्वकरणे १ । ३ । ५६ ॥

उपायमः स्वीकारे आत्मनेपदम् । भार्यामुपयच्छते ॥

विभाषोपयमने १ । २ । १६ ॥

यमः सिच् किद्वा । विवाहे रामः सीतामुपायत उपायंस्त वा । उदवोढेत्यर्थः । गन्धनाङ्ग उपयमे तु पूर्वविप्रतिषेधान्नित्यं कित्त्वम् ॥

समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रंथे १ । ३ । ७५ ॥

अग्रंथे इति च्छेदः । व्रीहीन् संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमा-

यच्छते । अन्ये तु उद्यच्छति वेदम् । विभाषोपपदेनेति । स्वं व्रीहिं संयच्छति संयच्छते वा । दृशिर् प्रेक्षणे । पश्यति ॥

विभाषा सृजिदृशोः ७ । २ । ६५ ॥

आभ्यां थल इड् वा ॥

सृजिदृशोर्झल्यमकिति ६ । १ । ५८ ॥

अनयोः अमागमो झलादावकिति दद्रष्ठ । ददर्शिथ ॥

ऋदृशोऽङि गुणः ७ । ४ । १६ ॥

ऋवर्णान्तानां दृशेश्च गुणो ङि । अदर्शत् । अङभावे ॥

न दृशः ३ । १ । ४७ ॥

दृशः च्लेः क्सो न । अद्राक्षीत् । अद्राष्टाम् ॥

अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च ॥

सम्पश्यते । संददृशे । संदर्शीष्ट । समदृष्ट । समदृक्षाता । समदृक्षत । सन्नन्तादात्मनेपदं वक्ष्यते । कृष विलेखने । अनुदात्तस्येत्यम् वा । क्रष्टा कर्ष्टा ॥

स्पृशमृशकृषतृपदृपां च्लेः सिज्वा * ॥

अक्राक्षीत् अकार्क्षीत् । अकृक्षत् । अथ ज्वलादिषु । शद्लृ शातने ॥

शदेः शितः १ । ३ । ६० ॥

शिद्भाविनोऽस्मादात्मनेपदम् । शीयते । शेदिथ शशत्थ । शत्ता । अशदत् । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । सीदति । सेदतुः ।

सदेः परस्य लिटि ८ । ३ । ११८ ॥

सदेरभ्यासात्परस्य षत्वं न लिटि । निषसाद । निषेदतुः । सत्ता । क्रुश आह्वाने रोदने च । क्रोष्टा । क्रक्ष्यति । अक्रुक्षत् । रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च । रोढा । रोक्ष्यति । अरुक्षत् । शेषा वक्ष्यन्ते ॥ इति परस्मैपदिनः ॥

इति ६२ अंशाः ।

वल्भ भोजने । वल्भते । ववल्भे । वल्भिता । वल्भिष्यते । वल्भताम् । अवल्भत । वल्भेत । वल्भिषीष्ट । अवल्भिष्ट । अवल्भिष्यत । पर्द कुत्सिते शब्दे । बर्ह परिभाषणहिंसाच्छादनेषु । श्रम्भु-स्रम्भु प्रमादे । स्पर्द्ध संघर्षे । कत्थ श्लाघायाम् । चकत्थे । गल्भ धाष्टर्ये । गर्ह कुत्सायाम् । घट्ट चलने । दक्ष वृद्धौ शीघ्रार्थे च । भक्ष अदने । परस्मैपद्ययमित्येके । नित्यचुरादिरयं नतु भ्वादिरिति परे । बाधृ वि लोडने । बबाधे । रास शब्दे । शाडृ श्लाघायाम् । लाघृ सामर्थ्ये । श्लाघृ कत्थने । भाम क्रोधे । भ्राजृ दीप्तौ । ह्लाद अव्यक्ते शब्दे । ह्लादी सुखे च । टीकृ गतौ । दीक्ष मौण्ड्येज्योपनयननियमव्रतादेशेषु । शीकृ सेचने । क्लीबृ अधाष्टर्ये । क्षीबृ मदे । कुर्द क्रीडायामेव । कूर्दते । धुक्ष संदीपनक्लेशनजीवनीयेषु । पूयी विशरणे । पूद क्षरणे । क्नूयी शब्दे उन्दे च । घूर्ण भ्रमणे । वेष्ट वेष्टने । देवृ देवने । पेवृ सेवने । टुवेपृ कंपने । रेट्ट अव्यक्ते शब्दे । रेभृ शब्दे । हेडृ अनादरे । हेपृ-ह्रेपृ अव्यक्ते शब्दे । ग्लेपृ गतौ दैन्ये कम्पने च । ढौकृ गतौ । चडि कोपे । पचि व्यक्तीकरणे । लघि गतौ भोजननिवृत्तौ च । रभि शब्दे । लबि शब्दे अवस्रंसने च । शकि शंकायाम् । आङ्शसि इच्छायाम् । श्लथि शैथिल्ये । स्कभि-ष्टभि प्रतिबन्धे । केऽपि ष्टभेष्टकारमौपदेशिकमाहुः । स्पदि, किंचिच्चलने । कठि शोके । कपि चलने । ग्रथि कौटिल्ये । कडि मदे । भडि परिभाषणे । मडि विभाजने । हिडि गत्यनादरयोः । पिडि संघाते । जृभि गात्रविनामे । कच बन्धने । दद दाने ।ददते । न शसेति निषेधान्नेत्वाभ्यासलोपौ । ददद्दे । दददाते । दददिरे । दध धारणे । देधे । षच सेवने सेचने च । ष्ठुव गतौ । वल संवरणे संचरणे च । कल शब्दसंख्यानयोः । ष्वद आस्वादने । अयमनुभवे सकर्मकः रुचावकर्मकः । ग्रसु अदने । ष्टुभु स्तम्भे । स्तोभते । स्फुट विकसने । ऋज गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । अर्जतो नुड्विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते तेनानेकहल्त्वान्नुट् । आनृजे । भृजी भर्जने । ईह चेष्टायाम् । ईहांचक्रे । ऊयी तन्तुसंताने । एषृ गतौ ।

एपते। डीङ् विहायसा गतौ। डयते। डिड्ये। डिड्यिचक्रे डि-
ड्यिच्चे। पूङ् पवने। पवते। तायृ संतानपालनयोः॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३।१।६१॥

एभ्यः च्लेश्चिण् वा एकवचने तशब्दे परे। चिणो लुक्। अतायि।
अतायिष्ट। स्फायी-ओप्यायी वृद्धौ॥

लिड्यङोश्च ६।१।२९॥

लिटि यङि च प्यायः पीभावः। पिप्ये। पिप्यिरे। अप्यायि।
अप्यायिष्ट। कासृ शब्दकुत्सायाम्। कासते। कासाचक्रे। कासिता।
नाथृ-नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु॥

आशिषि नाथः॥

अस्याशिष्येवात्मनेपदम्। नाथते। अन्यत्र नाथति। केचित्
नाधेर्णोपदेशतामाहुः। मान पूजायाम्। मीमांसते। बध बन्धने।
मष्त्वम्। बीभत्सते। तिज निशाने। तितिक्षते। गुप गोपने।
जुगुप्सते। पण व्यवहारे स्तुतौ च। पनिसाहचर्यात्पणेरपि स्तुत्यर्थ-
स्यायः अन्यत्र पणते इत्यादि। वणिजा पणाया इति भट्टिर्व्य-
वहारेऽपि प्रायुङ्क्त। स्तुतावनुबन्धस्य केवले चरितार्थत्वात् आया-
न्ताभ्नात्मनेपदम्। पणायति। पणायाञ्चकार। पेणे। पणायितासि
पणितासे। पणाय्यात्। जमी गात्रविनामे॥

रधिजभोरचि ७।१।६१॥

एतयोर्नुमागमोऽचि। जम्भते। कमु कान्तौ॥

कमेर्णिङ् ३।१।३०॥

स्वार्थे। कामयते। कामयाचक्रे। चकमे। कामयिता कमिता।
णिश्रीति चङ्। काम इ अत इति स्थिते। णिलोपः। उपधाह्रस्वः।
सन्वद्भावः। सन्यतः। दीर्घो लघोः। अचीकमत। णिङभावे॥

कमेश्च्लेश्चङ् वाच्यः ॥

अचकमत॥

इति ६२ अंशाः॥

दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु ॥

दयायासश्च ३ । १ । ३७ ॥

दय अय आस एभ्य आम् लिटि । दयाञ्चक्रे । दयिषीढ्वम् दयिषीध्वम् । अय गतौ । अयाञ्चक्रे ॥

उपसर्गस्यायतौ ८ । २ । १९ ॥

अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लः । प्लायते । पलायते । निस्दुसोरुत्वस्यासिद्धत्वान्न लत्वम् । निरयते । दुरयते । निर्दुरोरुत्वे । निलयते । दुलयते । प्रत्यय इति णिजो रूपम् ॥

अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम् ॥

उदयति । ऊह वितर्के । ऊहते ॥

उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वा ॥

आत्मनेपदम् । समूहति समूहते ॥

उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः ७ । ४ । २३ ॥

यादौ क्ङिति । समुह्यात् । समुह्य ॥ अथ द्युतादयः ॥ द्युत दीप्तौ ॥

द्युतिस्वाप्योः संप्रसारणम् ७ । ४ । ६७ ॥

अनयोः अभ्यासस्य संप्रसारणम् । दिद्युते ॥

द्युद्भ्यो लुङि १ । ३ । ९१ ॥

द्युतादिभ्यो लुङः परस्मैपदं वा । पुष्यादिपाठात् । अद्युतत् । अद्योतिष्ट । रुच दीप्तावभिप्रीतौ च । घुट परिवर्तने । शुभ संचलने । शुभ दीप्तौ । श्विता वर्णे । स्रंसु विश्वासे । अस्रसत् । अस्रंसिष्ट । भ्रंशु-ध्वंसु अवस्रंसने । ध्वंसु अवस्रंसने गतौ च ॥ अथ घटादयः ॥ घट चेष्टायाम् । घटते । अघटि । घटादिमित्कार्यं च घटयति । अघाटि अघाटि । घाटं घाटम् । घटं घटम् इत्यादि । मथ प्रख्याने । पप्रथे । व्यथ भयसंचलनयोः ॥

व्यथो लिटि ७ । ४ । ६८ ॥

व्यथोऽभ्यासस्य संप्रसारणं लिटि । विव्यथे । प्रद मर्दने । त्रि-

त्वरा संभ्रमे । एते पितः ॥ अथ फणाद्याः ॥ टुभ्राजृ दीप्तौ । भ्रेजे । बभ्राजे । भ्राजतेरिह पाठः फणादिकार्यार्थः । पूर्वं पाठस्तु भ्रश्नादिपरत्वाभावार्थः । तत्र हि राजिसाहचर्यात् फणादेरेव ग्रहणम्॥ अथ वेटः ॥ क्षमूष् सहने ॥

म्वोश्च ८ । २ । ६५ ॥

मान्तस्य धातोर्मस्य नः वमयोः । चक्षण्वहे चक्षमिमहे । अक्षमिष्ट अक्षंस्त । त्रपूष् लज्जायाम् । त्रेपे । त्रेपाते । त्रप्ता त्रपिता । सह मर्षणेऽभिभवे च । ज्वलादिः । तीयेति वेद् । सहिता ॥

सहिवहोरोदवर्णस्य ६ । ३ । ११२ ॥

अनयोरवर्णस्य ओत् ढलोपे । सोढा । गाहू विलोडने । जघाक्षे। जगाहिद्वे, जगाहिध्वे जगाढ्वे । गाहिता । ढोढे लोपः । गाढा । गृहू ग्रहणे ॥

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥

घृक्षीष्ट गृहिषीष्ट । च्लेः क्सः । अघृक्षत ॥

क्सस्याचि ७ । ३ । ७२ ॥

अजादौ तङि । क्सस्य लोपः । अघृक्षाताम् । अघृक्षन्त ॥ अथ द्युतादिष्वेव वृतादयः ॥ वृतु वर्त्तने ॥

वृद्भ्यः स्यसनोः १ । ३ । ९२ ॥

वृतादिभ्यः परस्मैपदं वा स्ये सनि च ॥

न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः ७ । २ । ५९ ॥

एभ्यः सकारादेरार्द्धधातुकस्येण्न तङानयोरभावे।वर्त्स्यति वर्तिष्यते । अवृतत् अवर्तिष्ट । अवर्त्स्यत् अवर्तिष्यत् । एवं वृधु वृद्धौ। शृधु शब्दकुत्सायाम्।स्यन्दू प्रस्रवणे।सस्यन्दे।सस्यन्दिषे सस्यन्त्से । सस्यन्दिध्वे सस्यन्ध्वे । स्यन्दिता स्यन्ता । वृद्भ्यः इति परस्मैपदे इड्विकल्पं बाधित्वा चतुर्ग्रहणसामर्थ्यान्न वृद्भ्य इति इड्निषेधः । स्यन्त्स्यति । स्यन्दिष्यते स्यन्त्स्यते । स्यन्दिषीष्ट स्यन्त्सीष्ट । पर-

स्मैपदपक्षेऽङ् नलोपः। अस्यदत् अस्यन्दिष्ट अस्यन्त। अस्य-न्त्साताम्। अस्यन्त्सत। अस्यन्दिष्यत् अस्यन्त्स्यत॥

अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु ८।३।७२॥

एभ्यः परस्याप्राणिकर्तृकस्य स्यन्दतेः सस्य षो वा। अनुष्य-न्दते अनुस्यन्दते वा जलम्। अप्राणिषु किम्। अनुस्यन्दते हस्ती। अप्राणिष्वित्युक्तेः। मत्स्योदके अनुष्यन्देते इत्यत्रापि पक्षे षत्वं भवत्येव। प्राणिषु नेत्युक्तौ तु न स्यात्। कृपू सामर्थ्ये॥

कृपो रो लः ८।२।१८॥

कृपो रेफस्य लः। ऋकारस्य लृकारः। कल्पते। चक्लृपे। इत्यादि स्यंदिवत्॥

लुटि च क्लृपः १।३।९३॥

लुटि स्यसनोश्च क्लृपेः परस्मैपदं वा॥

तासि च क्लृपः ७।२।६०॥

क्लृपः परस्य तासेः सकारादेरार्द्धधातुकस्य चेण्न तङानयोर-भावे। कल्प्तासि कल्पितासि। कल्प्तासे॥ अथानिटः॥ ञिमिङ् ईषद्धसने। क्रादिनियमान्नित्यमिट्॥

विभाषेटः ॥

सिष्मियिढ्वे सिष्मियिध्वे। अस्मेष्ट। ग्मुङ् ग्रुङ् च्युङ् ह्रुङ् गतौ। ङ्यैङ गतौ। गाङ् गतौ। गाते। गाते। गाते। जगे। गातासे। इट एत्वे कृते वृद्धिः।गे। लङ् इटि।अगे। गेत। गेयाता-म्। गेरन्। गासीष्ट। गाङ्कुटादिभ्य इत्यत्र इङादेशस्यैव ग्रहणं न त्वस्य तेनाङित्वाद् घुमास्था इतीत्वं न। अगास्त। मेङ् प्रणिदाने। प्रणिमयते। नेर्गदेत्यत्रास्यापि ग्रहणमिष्यते। ष्वञ्ज परिष्वङ्गे। नलोपः। स्वजते। परिष्वजते॥

श्रंथिग्रंथिदम्भिस्वञ्जीनां लिटः कित्वं वेति ॥

व्याकरणान्तरम्। सस्वजे सस्वञ्जे। सस्वजिषे सस्वञ्जिषे।

स्वङ्गा । स्वङ्क्ष्यते । स्वजेत । स्वङ्क्षीष्ट । रमु क्रीडायाम् । ज्वलादिः । रमते ॥

व्याङ्परिभ्यो रमः १ । ३ । ८३ ॥

परस्मैपदम् । विरमतीत्यादि । व्यरंसीत् ॥

उपाच्च १ । ३ । ८४ ॥

उपरमति ॥

विभाषाकर्मकात् १ । ३ । ८५ ॥

उपाद्रमेरकर्मकात्परस्मैपदं वा । उपरमति उपरमते वा । इत्यात्मनेपदिनः ॥

इति ६४ अंशाः ।

चायृ पूजानिशामनयोः । चायति चायते । चचाये । पच समवाये । बुधिर् बोधने । अबुधत् । अबोधीत् । अबोधिष्ट । दीपजनेत्यत्र दिवादेरेव ग्रहणादत्र चिण् न । अस गतिदीप्त्यादानेषु । श्रिञ् सेवायाम् । श्रयति श्रयते । श्रयिता । चङ् अशिश्रियत् । शान खण्डने । दीदांसति दीदांसते । एवं शान तेजने । शीशांसति । अर्थविशेषे सन् अन्यत्र । दानयति । शानयति । खनु अवदारणे । जनसनेत्युपधालोपः । चख्नतुः ॥

ये विभाषा ६ । ४ । ४३ ॥

जनसनखनामात्वं वा यादौ क्ङिति । खायात् खन्यात् । लष कान्तौ । श्यन् वा । लषति लषते । भ्रेष्ट गतौ भ्रंशने च । मेधृ मेधाहिंसनयोः सङ्गमे च । राजृ दीप्तौ । फणादिः । रेजतुः । रराजतुः । रेजे । रराज ॥ अथ वेटः ॥ गुहू संवरणे ॥

ऊदुपधाया गोहः ६ । ४ । ८९ ॥

गुह उपधाया ऊत् गुणहेतावजादौ प्रत्यये । गूहति गूहते । गूहिता गोढा । अगूहीत् । अघुक्षत् ॥

लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ७ । ३ । ७३ ॥

एषां क्सस्य लुग्वा दन्त्ये तङि । अगूढ । अघुक्षत । अघुक्षन्त । अगुह्वहि । अघुक्षावहि ॥ अथानिटः ॥ भज सेवायाम् । भेजतुः । भेजे । रञ्ज रागे । रजति रजते । शप आक्रोशे । शेपिथ शशप्थ । शेपिषे । शप उपालम्भे । अकर्तृगेऽपि फले तङानौ । कृष्णाय शपते । त्विष दीप्तौ । अत्विक्षत् । तङि अत्विक्षाताम् । अत्विक्षन्त ॥ अथ षट् स्वरन्ता यजादयः ॥ यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । इयाज । ईजतुः । ईजुः । इयजिथ इयष्ठ । ईजे । इज्यात् । डुवप् बीजसंताने छेदने च । प्रणिवपति । उवाप । ऊपतुः । उप्यात् । वह प्रापणे । प्रणिवहति । उवोढ । वोढा । अवोढम् ॥

प्राद्वहः १ । ३ । ८१ ॥

परस्मैपदम् । प्रवहति । परेर्मृष इत्यत्र योगविभागात्परेरपीति केचित् । परिवहति । वेञ् तन्तुसंताने ॥

वेञो वयिः २ । ४ । ४१ ॥

वा लिटि । ग्रहिज्येति यकारस्य प्राप्ते ॥

लिटि वयो यः ६ । १ । ३८ ॥

वयो यस्य संप्रसारणं न स्याल्लिटि । ऊयतुः ॥

वश्चास्यान्यतरस्यां किति ६ । १ । ३९ ॥

वयो यस्य वो वा किति लिटि । ऊवतुः । वयस्तासावभावात् । थलि नित्यमिट् । उवयिथ । ऊये । ऊवे । वयादेशाभावपक्षे ॥

वेञः ६ । १ । ४० ॥

वेञो न संप्रसारणं लिटि । ववौ । ववतुः । व्येञ् संवरणे ॥

न व्यो लिटि ६ । १ । ४६ ॥

व्येञ आत्वं न स्याल्लिटि । विव्याय । विव्ययतुः । इडत्त्यर्तीति इट् । विव्ययिथ । वीयात् । ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च ॥

अभ्यस्तस्य च ६ । १ । ३३ ॥

अभ्यस्तीभविष्यतो ह्वेञः संप्रसारणम् । ततो द्वित्वम् । जुहाव । जुहुवतुः ॥

लिपि सिचि ह्वश्च ३ । १ । ५३ ॥

एभ्यश्च्लेरङ् । आतो लोपः । अह्वत् । अह्वत । अह्वास्त ॥

निसमुपविभ्यो ह्वः १ । ३ । ३० ॥

तङानौ । निह्वयते ॥

स्पर्द्धायामाङः १ । ३ । ३१ ॥

कृष्णश्चाणूरमाह्वयते । णीञ् प्रापणे । नयति नयते । नेता ॥

सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः १ । ३ । ३६ ॥

आत्मनेपदम् । शास्त्रे नयते । दण्डमुन्नयते । माणवकमुपनयते । तत्वं नयते । कर्मकरानुपनयते । करं विनयते । शतं विनयते ॥

कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि १ । ३ । ३७ ॥

नियः कर्तृस्थे कर्मणि यदात्मनेपदं प्राप्तं तच्छरीरावयवभिन्ने एव स्यात् । क्रोधं विनयते । नेह गडुं विनयति । हृञ् हरणे । हरति हरते ॥

हरतेर्गतताच्छील्ये ❀ ॥

आत्मनेपदम् । पैतृकमश्वा अनुहरन्ते । पितुः प्रकारं अनुशीलयन्तीत्यर्थः ॥

कर्मव्यतिहारे हरतेरप्रतिषेधः ❀ ॥

संप्रहरन्ते राजानः ॥ इति भ्वादयः ॥

इति ६५ अंशाः ।

अयादादयः ॥ टुक्षु शब्दे ॥

उतो वृद्धिर्लुकि हलि ७ । २ । ८९ ॥

लुग्विषये उतो वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। क्षौति। क्षविता। पिच्च ङिन्न ङिच्च पिन्नेति भाष्यम्। तेन लिङि उतो वृद्धिर्न। क्षुयात्। यु मिश्रणे अमिश्रणे च। णु स्तुतौ॥

आङि नुप्रच्छ्योः ❀॥

तङानौ। आनुते। रु शब्दे॥

तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके ७। ३। ९५॥

एभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेस्तिङ ईड्वा। रौति रवीति। रुतः रुवीतः। रुयात् रुवीयात्। क्ष्णु तेजने। क्ष्णौति॥

समः क्ष्णुवः १। ३। ६५॥

तङानौ। संक्ष्णुते। ष्णु प्रस्रवणे। स्नौति। स्नविता। कर्मव्यतिहारादावात्मनेपदे तु स्नुक्रमोरिति नियमान्नेट्। स्नोता। स्नोष्यते। अस्नोष्ट। विद ज्ञाने॥

विदो लटो वा ३। ४। ८३॥

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा। वेद। विदतुः। वेत्ति। वित्तः। विवेद। विदाञ्चकार। विदांकुर्वन्त्वित्यामि गुणाभावनिपातनाल्लिट्यप्यामि न गुणः॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ३। १। ४१॥

वेत्तेर्लोट्याम् गुणाभावो लोटो लुक् लोडन्तकृञनुप्रयोगश्च वा निपात्यते। पुरुषवचनेनेह विवक्षिते। विदाङ्करोतु। विदांकुरुतात्। इत्यादि। सेर्जुस। अविदुः। दश्चेति सिपि रुर्वा। अवेः। अवेत्। अवेदीत्॥

विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् ❀॥

समोऽकर्मकेभ्यः एतेभ्यस्तङानौ इत्यर्थः। तत्र संवित्ते। संविदाते॥

वेत्तेर्विभाषा ७। १। ७॥

वेत्तेः परस्य झादेशस्यातो रुडागमो वा। संविद्रते। संविदते।

समवेदिष्ट । वश कान्तौ । वष्टि । उवाश । उष्टात् । अवट् । औशाम् । उश्यात् । उश्यास्ताम् । अस भुवि । प्रागुक्तः । कर्मव्यतिहारे । व्यतिस्ते । व्यतिषाते । व्यतिषते । व्यतिषे । व्यतिध्वे । व्यतिहे । व्यत्यस । व्यतिषीत । व्यत्यास्त ॥

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गेऽणः प्रादुसश्च परस्यास्तेः सस्य षः स्याद्यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रादुष्यात् । निषन्ति । प्रादुःषन्ति । यच्परः किम् । अभिस्तः ॥ रुदादिषु चत्वारः स्वप्निद्रसु ॥ रुदिर् अश्रुविमोचने ॥

रुदादिभ्यस्सार्वधातुके ७ । २ । ७६ ॥

एभ्यो वलादेः सार्वधातुकस्येट् । रोदिति । रुदितः । रुदिहि ॥

रुदश्च पञ्चभ्यः ७ । ३ । ९८ ॥

हलादेः पितः सार्वधातुकस्यापृक्तस्य ईट् ॥

अड् गार्ग्यगालवयोः ७ । ३ । ९९ ॥

अरोदीत् । अरोदत् । अरुदिताम् । अन्तरङ्गत्वाद्यासुट् । रुद्यात् । श्वस-अन प्राणने । श्वसिहि । अश्वसीत् ॥

अनितेः ८ । ४ । १९ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्यानितेर्नस्य णः । प्राणिति ॥ अथ सप्त जक्षादयोऽभ्यस्तसंज्ञाः ॥ जक्ष-भक्ष हसनयोः । अयं रुदादिष्वपि । जक्षिति । झस्य अत् । जक्षति । सिजभ्यस्तेति झेर्जुस् । अजक्षुः । जागृ निद्राक्षये । जागर्ति । जाग्रति । जागराञ्चकार जजागार ॥

जाग्रो विचिण्णल्ङित्सु ७ । ३ । ८५ ॥

जागर्तेर्गुणो विचिण्णल्ङिद्भ्योऽन्यस्मिन् वृद्धिविषये प्रतिषेधविषये च । जजागरतुः । अजागः । जुसि चेति गुणः । अजागरुः । जागर्यात् । अजागरीत् । दरिद्रा दुर्गतौ । दरिद्राति ॥

इद्दरिद्रस्य ६ । ४ । ११४ ॥

दरिद्रातेरिकारो हलादौ क्ङिति सार्वधातुके । दरिद्रतः । श्नाभ्यस्तयोरातः। दरिद्रति । दरिद्राञ्चकार । ददरिद्रावित्येके ॥

दरिद्रातेरार्द्धधातुक आलोपः लुङि वा सनि ण्वुलि ल्युटि च न ॐ ॥

दरिद्रिता । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दरिद्रियात् दरिद्र्यात् । अदरिद्रीत् । इट्सकौ । अदरिद्रासीत् ॥

इति ६६ अंशाः ।

शासु अनुशिष्टौ ॥

शास इदङ्हलोः ६ । ४ । ३४ ॥

शास उपधाया इदङि हलादौ क्ङिति च । शिष्टः । शासति ॥

शा हौ ६ । ४ । ३५ ॥

शास्तेः शादेशो हौ । तस्याभीयत्वेनासिद्धत्वाद्धेर्धिः । शाधि ॥

तिप्यनस्तेः ८ । २ । ७३ ॥

पदान्तस्य सस्य दस्तिपि न त्वस्तेः । ससजुषोरित्यस्यापवादः। अशात्-अशाद् ॥

सिपि धातो रुर्वा ८ । २ । ७४ ॥

पदान्तस्य धातोः सस्य रुर्वा पक्षे जश्त्वेन दः। अशाः। अशात्-द्। सर्तिशास्तीत्यङ् । अशिषत् । अशासिष्यत् । चकासृ दीप्तौ । चकाधि । अचकात्-अचकाद् । अचकासुः । अचकाः । अचकात् । दीधीवेव्यौ छान्दसौ । मृजूष् शुद्धौ ॥

मृजेर्वृद्धिः ७ । २ । ११४ ॥

मृजेरिको वृद्धिर्धातुप्रत्यये क्ङित्यजादौ वेष्यते । मार्ष्टि । मृष्टः । मृजन्ति मार्जन्ति । मार्क्षि । मृष्ठः । मृष्ठ ॥ अयानिटः ॥ दाप् लवने । दाति ॥

लङः शाकटायनस्यैव ३ । ४ । १११ ॥

आदन्ताल्लङो झेर्जुस् वा । अदुः । अदात् । दायास्ताम् । अदासीत् । पा रक्षणे । पायास्ताम् । अपासीत् । भा दीप्तौ । रा दाने । ला आदाने च । प्रा पूरणे । श्रा पाके । ष्णा शौचे । या प्रापणे । वा गतिगन्धनयोः । मा माने । नेर्गदेत्यत्रास्य न ग्रहणम् । मेयात् । ख्या प्रकथने । अयं सार्वधातुकमात्रविषयः । सम्पूर्वस्य ख्यातेः प्रयोगेनेति न्यासकारः । द्रा कुत्सायाम् । प्रणिद्राति । प्सा भक्षणे । प्रणिप्साति । इण् गतौ ॥

इणो यण् ६ । ४ । ८१ ॥

अजादौ प्रत्यये । यन्ति । इयाय ॥

दीर्घ इणः किति ७ । ४ । ६९ ॥

इणः अभ्यासस्य दीर्घः किति लिटि । ईयतुः । ईयुः । ऐत् । आयन् ॥

एतेर्लिङि ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्गात्परस्य इणोऽणो ह्रस्व आर्द्धधातुके किति लिङि । निरियात् । अणः किम् । समेयात् । समीयादिति तु भ्वादिकस्य ॥

इणो गा लुङि २ । ४ । ४५ ॥

गातिस्थेति सिचो लुक् । अगात् । इक् स्मरणे । इङिकौ नित्यमधिपूर्वौ ॥

इण्वदिक इति वक्तव्यम् * ॥

अधियन्ति । अध्यगात् । आर्द्धधातुकाधिकारोक्तस्यैवातिदेश इति मते यण् न । ससीतयो राघवयोरधीयन्निति भट्टिः । कु शब्दे । कौति । हन् हिंसागत्योः । प्रणिहन्ति । अनुदात्तोपदेशेति नस्य लोपः । हतः । जनहनेति उपधालोपः । हो हन्तेरिति कुत्वम् । घ्नन्ति ॥

वमोर्वा ८ । ४ । २३ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य हन्तेर्नस्य णो वा वमयोः। प्रहण्मि प्रहन्मि। एवं वस्मसोः। जघ्नतुः॥

अभ्यासाच्च ७। ३। ५५॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वम्। जघनिथ जघन्थ। हनिष्यति। हतात्॥

हन्तेर्जः ६। ४। ३६॥

हौ। आभीयत्वेन जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जहि। अहन्॥

आर्द्धधातुके २। ४। ३५॥

इत्यधिकृत्य॥

हनो वध लिङि २। ४। ४२॥

लुङि च २। ४। ४३॥

वधादेशोऽदन्तः। अतो लोपः। वध्यात्। अवधीत्। आङो यमहनः इति तङानौ। तत्र आहते। आघ्नाते। आघ्नते। आहसे। आहध्वे। आघ्ने। आहवहे। आजघ्ने। आघ्नीत। आवधिषीष्ट॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् २। ४। ४४॥

हनो वधादेशो वा लुङि आत्मनेपदेषु। आवधिष्ट। आवधिषाताम्॥

हनः सिच् १। २। १४॥

कित्। आहत। आहसाताम्। वच परिभाषणे। वक्ति। अयमन्तिपरो न प्रयुज्यते। बहुवचनपर इत्यन्ये। झिपर इत्यपरे। उवाच। वग्धि। उच्यात्॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ३। १। ५२॥

एभ्यश्च्लेरङ्॥

वच उम् ७। ४। २०॥

अङि। अवोचत्॥

चर्करीतं च * ॥

यङ्लुगन्तमदादौ परस्मैपदे बोध्यम् । ञिष्वप् शये । रुदादिः । स्वपिति । सुष्वाप । सुषुपतुः । सुष्वपिथ सुष्वप्थ । स्वप्ता । सुप्यात् ॥ इति परस्मैपदिनः ॥

इति ६७ अंशाः ।

आङ्शासु इच्छायाम् । आशास्ते । आशशासे । णिजि शुद्धौ। निङ्क्ते । वृजि वर्जने । वृङ्क्ते । शिजि अव्यक्ते शब्दे । वस आच्छादने । वस्से । पृची संपर्चने । ईर गतौ कम्पने च । शीङ् स्वप्ने ॥

शीङः सार्वधातुके गुणः ७ । ४ । २१ ॥

क्ङिति चेत्यस्यापवादः । शेते । शयाते ॥

शीङो रुट् ७ । १ । ६ ॥

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः । शेरते । शयिता । आस उपवेशने । आसाञ्चक्रे । आध्वम् । ईड स्तुतौ । ईट्टे ॥

ईशः से ७ । २ । ७७ ॥

ईडजनोर्ध्वे च ७ । २ । ७८ ॥

ईशीड्जना सेध्वेशब्दयोस्सार्वधातुकयोरिट् । ईडिषे । ईडिध्वे । ईडिष्व । ईडिध्वम् । विकृतिग्रहणेन प्रकृतेरग्रहणात् लङि । ऐड्ढ्म् । ईश ऐश्वर्ये । ईशिषे । षूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते । सुषुवे । सोता सविता। भूसुवोस्तिङि । सुवै ॥ अथानिदः ॥ इङ् अध्ययने । अधीते ॥

गाङ् लिटि २ । ४ । ४९ ॥

इङो गाङ् लिटि लावस्थाया लिटि विवक्षिते वा । अधिजगे । अध्येता । अध्यये । गुणायादेशयोः कृतयोरुपसर्गस्य यण् । पूर्वं धातुरुपसर्गेणेति दर्शनेऽन्तरङ्गाछ्रुणात्पूर्वं सवर्णदीर्घः प्राप्तः। णेरध्ययने वृत्तमिति निर्देशान्न भवति । अध्यैत । परत्वादियङ् तत आट् वृद्धिः । अध्यैयाताम् । अध्यैयि ॥

विभाषा लुङ्लृङोः २ । ४ । ५० ॥

इडो गाङ् ॥

गाङ्कुटादिभ्योऽञ्णिन्ङित् १ । २ । १ ॥

गाङादेशात् कुटादिभ्यश्च परे ञित्णिद्भिन्नाः प्रत्यया ङितः स्युः ॥

घुमास्थागापाजहातिसां हलि ६ । ४ । ६६ ॥

एषामात ईत् हलादौ क्ङित्यार्द्धधातुके । अध्यगीष्ट अध्यैष्ट । अध्यगीष्यत अध्यैष्यत । ह्नुङ् अपनयने । ह्नुते । जुह्नुवे । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । चष्टे । इकारोऽनुदात्तो ङुजर्थः । विचक्षणः । नुम् तु न । अन्तेदित इति व्याख्यानात् ॥

चक्षिङः ख्याञ् २ । ४ । ५४ ॥

आर्द्धधातुके ॥

वा लिटि २ । ४ । ५५ ॥

अत्र भाष्ये खशादिरयमादेशः । असिद्धकाण्डे शस्य यो वेति स्थितम् । ञित्वात् पदद्वयम् । चख्यौ चख्ये । चक्शौ चक्शे । अस्यतिवक्तीति च्लेरङ् । अख्यत् अख्यत । अक्शासीत् अक्शास्त । वर्जने क्शाञ् नेष्यते । समचक्षिष्टेत्यादि ॥ इत्यात्मनेपदिनः ॥ ऊर्णुञ् आच्छादने ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ७ । ३ । ९० ॥

वा वृद्धिर्हलादौ पिति सार्वधातुके । ऊर्णौति ऊर्णोति । ऊर्णुते ॥

ऊर्णोतेराम् न ॥ ॥

नन्द्राः संयोगादयः ६ । १ । ३ ॥

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न । नुशब्दस्य द्वित्वम् । णत्वस्यासिद्धत्वात् । पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे इति त्वनित्यम् । उभौ साभ्यासस्येति लिङ्गात् । ऊर्णुनाव ॥

विभाषोर्णोः १ । २ । ३ ॥

इडादिः प्रत्ययो वा ङित् । ऊर्णुनुविथ ऊर्णुनविथ । ऊर्णुविता ऊर्णविता ॥

गुणोऽपृक्ते ७ । ३ । ९१ ॥

ऊर्णोतेर्गुणोऽपृक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके । वृद्ध्यपवादः । और्णोत् और्णोः । ऊर्णुयात् ऊर्णूयात् । ऊर्णविषीष्ट ऊर्णुविषीष्ट । और्णुवीत् ॥

ऊर्णोतेर्विभाषा ७ । २ । ६ ॥

इडादौ सिचि परस्मैपदे वा वृद्धिः । पक्षे गुणः । और्णावीत् । और्णाविष्टाम् । और्णवीत् ॥ अथानिटः ॥ ष्टुञ् स्तुतौ । स्तौति । स्तवीति । तुष्टव । तुष्टुम । स्तुसुधूञ्भ्यः इति इट् । अस्तावीत् । ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि ॥

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३ । ४ । ८४ ॥

ब्रुवो लटः परस्मैपदानामादितः पञ्चानां णलादयः पंच वा । ब्रुवः आहादेशश्च । आह ॥

आहस्थः ८ । २ । ३५ ॥

झलि । आत्थ ॥

ब्रुव ईट् ७ । ३ । ९३ ॥

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् । ब्रवीति । ब्रूते ॥

ब्रुवो वचिः २ । ४ । ५३ ॥

आर्द्धधातुके । उवाच । ऊचतुः । ऊचे । ब्रवीतु । ब्रूयात् । ङित्व पित्त्रेत्यपित्वात् ईट् न वक्ष्यति । वच उम् । अवोचत् । द्विष अप्रीतौ । द्वेष्टि । अद्वेट् ॥

द्विषश्च ३ । ४ । ११२ ॥

लङो झेर्जुस् वा । अद्विषुः अद्विषन् । द्विक्षीष्ट । दिह उपचये । मणिर्देग्धि । दिग्धे । धेक्षि । अधेक् । अधिक्षत् । अधिक्षत । क्सस्य लुक्पक्षे । अदिग्ध । अदिग्धाः । अदिह्वहि । एवं दुह प्रपू-

रणे । लिह आस्वादने । लेढि । लीढः ॥ इत्युभयपदिनः ॥ इत्यदादयः ॥

इति ६८ अंशाः ।

पॄ पालनपूरणयोः । दीर्घान्तः । ह्रस्वान्तः इति केचित् ॥

अर्तिपिपर्त्योश्च ७ । ४ । ७७ ॥

अभ्यासस्येकारोन्तादेशः श्लौ । पिपर्ति ॥

उदोष्ठ्यपूर्वस्य ७ । १ । १९ ॥

अङ्गावयवौष्ठ्यपूर्वो य ऋच्चदन्ताङ्गस्य उत् । गुणवृद्धी इमं वाधेते । पिपर्ति । पिपूर्तः । पिपुरति । पपार ॥

शॄदॄप्रांह्रस्वो वा ७ । ४ । १२ ॥

एषां किति लिटि ह्रस्वो वा पक्षे गुणः । पपरतुः पप्रतुः । अपिपः । अपिपरुः । शेषम् आर्द्धधातुके तॄवत् । इस्थले उत् । परीता परिता । अपारीत् । अग्रे सर्वेऽनिटः । पृ पालनपूरणयोः । ह्रस्वान्तः । पिपर्त्ति । पिपृतः । पिप्रति । प्रियात् । अपार्षीत् । ओहाक् त्यागे । जहाति । ईहल्यघोः ॥

जहातेश्च ६ । ४ । ११६ ॥

इद्वा हलादौ क्ङिति सार्वधातुके । पक्षे ईः । जहितः जहीतः ॥

आ च हौ ६ । ४ । ११७ ॥

जहातेर्हौ परे आ स्यात् चादिदीतौ । जहाहि जहिहि जहीहि ॥

लोपो यि ६ । ४ । ११८ ॥

जहातेरालोपो यादौ सार्वधातुके । जह्यात् हेयात् । ञिभी भये ॥

भियोऽन्यतरस्याम् ६ । ४ । ११९ ॥

इकारो वा हलादौ क्ङिति सार्वधातुके । बिभितः बिभीतः । बिभयाञ्चकार बिभाय । ह्री लज्जायाम् । जिह्रेति । ऋ गतौ । इयर्त्ति । इयृतः । इय्रति । गुणः । आर । आरतुः । थलीट् ।

आरिथ । अर्त्ता । इयराणि । ऐयः । ऐयृताम् । ऐयरुः । इयृतात् अर्यात् । अङ्ग गुणः । आरत् । आर्त्तिश्च इत्यात्मनेपदम् । तत्र समियृते । समियृाते । समियृते । समारे । समाराते । अङ्ग समारत । समारेताम् । मा समरत । मा समरताम् । इत्यादि । इति परस्मैपदिनः ॥ माङ् माने शब्दे च ॥

भृञामित् ७ । ४ । ७६ ॥

भृञ् माङ् ओहाङ् एषां त्रयाणामभ्यासस्य इत् श्लौ । माणे मिमीते । मिमाते । मातासे । ओहाङ् गतौ । जिहीते ॥ इत्यात्मनेपदिनौ ॥ डुदाञ् दाने । प्रणिददाति । दत्तः । ददति । दत्ते । दाता । देहि । देयात् । अदात् । अदित ॥

आङो दो नास्यविहरणे १ । ३ । २० ॥

आङो दाञो मुखविकसनादन्यत्र वर्त्तमानात्तङानौ । विद्यामादत्ते । नेह । मुखं व्याददाति । आस्येत्यविवक्षितम् । विपादिकां व्याददाति ॥

पराङ्गकर्मकान्न निषेधः ॥

व्यादत्ते परस्य मुखम् । डुधाञ् धारणपोषणयोः । प्रणिदधाति ।

दधस्तथोश्च ८ । २ । ३८ ॥

द्विरुक्तस्य झषन्तस्य धाञो बशो भष् तथयोः स्ध्वोश्च परतः धत्तः । दधति । धेहि । धेयात् । अधात् । अधित । डुभृञ् धारणपोषणयोः । बिभर्ति । बिभृव । णिजिर् शौचपोषणयोः ॥

णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ ७ । ४ । ७५ ॥

णिज्विज्विषामभ्यासस्य गुणः श्लौ । नेनेक्ति ॥

नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७ । ३ । ८७ ॥

लघूपधगुणो न । नेनिजानि । विजिर् पृथग्भावे । विष्लृ व्याप्तौ ॥ इति जुहोत्यादयः ॥

इति ६९ अंशाः ।

ष्णिम आर्द्रीभावे। व्रीड चोदने लज्जायां च। त्रसी उद्वेगे। वा भ्राशेति श्यन्वा। त्रस्यति त्रसति। त्रेसतुः तत्रसतुः। पुष्प विकसने। युट चक्यर्थे। तृप्तावित्यर्थः। क्लुष दाहे। कुथ पूतीभावे। पुथ हिंसायाम्। इष गतौ। इह तीषेति नेड्विकल्पः। जृष् वयोहानौ। जीर्यति। जजरतुः। जेरतुः। जरिता जरीता। जृस्तम्भ्विति वा च्लेरङ्। ऋदृशोऽङि गुणः। अजरत्। अजारीत्। अजारिष्टाम्। षिवु तन्तुसंताने। सीव्यति। ष्ठिवु निरसने। ष्ठीव्यति। केऽपीहेमं न पठन्ति॥ अथ नृतेः प्राक् पुषादयः॥ भ्रंशु अधःपतने। भ्रश्यति। पुषादीति च्लेरङ्। अभ्रशत्। असु क्षेपणे॥

अस्यतेस्थुक् ७। ४। १७॥

अङि। आस्थत्। पर्यास्थत्। उपसर्गादिति वा आत्मनेपदम्। अस्यतिवक्तीत्यङ्। पर्यास्थत। निरस्यति निरस्यते। यसु प्रयत्ने॥

यसोऽनुपसर्गात् ३। १। ७१॥

श्यन् वा॥

संयसश्च ३। १। ७२॥

यस्यति यसति। संयस्यति संयसति। क्षुभ संचलने। क्षुप दाहे। कुप क्रोधे। गुप व्याकुलत्वे। ऋधु वृद्धौ। गृधु अभिकांक्षायाम्। ञिलुप पिपासायाम्। हृष तुष्टौ। दसु उपक्षये। पुषादिष्वेव शमादयः। शमु उपशमे॥

शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ७। ३। ७४॥

प्रणिशाम्यति। अशमत्। भ्रमु अनवस्थाने। वा भ्राशेति वा श्यन् तत्र दीर्घः। भ्राम्यति। अन्यत्र भ्रमति। क्लमु ग्लानौ। क्लाम्यति। श्यनभावे ष्ठिवुक्लम्विति दीर्घः। क्लामति। तमु कांक्षायाम्। दमु उपशमे। श्रमु तपसि खेदे च। मदी हर्षे॥ अथ वेटः॥ क्षमू सहने। अषित्। क्षान्तिः। भ्रादिस्तु षित्। क्षमा।

क्षाम्यति । चक्षण्व चक्षमिव । इति शमाद्याः । पुषादिषु क्लिदू आर्द्रीभावे । रुष हिंसायाम् । लुभ गार्ध्ये । तीषेति वेट् । रोषिता रोष्टा । लोभिता लोब्धा । अथ पुषादिष्वेव रधादयो वेटः । तृपदृपी अनुदात्तौ । रध हिंसासंराध्योः ॥

रधादिभ्यश्च ७ । २ । ४५ ॥

वलाद्यार्द्धधातुकस्य वेट् । रध्यति । अचि नुम् । ररन्ध । ररन्धतुः । ररन्धिथ ररद्ध । ररन्धिव रेध्व ॥

नेट्यलिटि रधेः ७ । १ । ६२ ॥

लिड्वर्जे इटि रधेर्नुम्न । रधिता रद्धा । अरधत् । णश अदर्शने । नेशिथ ॥

मस्जिनशोर्झलि ७ । १ । ६० ॥

नुम् । ननंष्ठ । नेशिव नेश्व ॥

नशेः षान्तस्य ८ । ४ । ३६ ॥

णत्वं न । प्रनंष्टा । तृप प्रीणने । ततर्पिथ तत्रप्थ ततर्प्थ । लिटि सेडेवेति परे । त्रप्ता तर्प्ता तर्पिता । स्पृशमृशेति सिज् वा । अताप्सीत् अतर्पीत् अत्राप्सीत् । अतृपत् । एवं दृप् हर्षमोहनयोः । अदार्प्सीदित्यादि । द्रुह जिघांसायाम् । वा द्रुहेति वा घः । दुद्रोग्ध दुद्रोढ । अद्रुहत् । एवं मुह वैचित्ये । ष्णिह प्रीतौ । ष्णुह उद्गिरणे । एषु वा ढः ॥ इति रधादयः ॥ नृती गात्रविक्षेपे ॥

सेऽसिचि कृतचृतछृदतृदनृतः ७ । २ । ५७ ॥

एभ्यः परस्य सिज्भिन्नस्य सादेरार्द्धधातुकस्येड्वा । नर्तिष्यति नर्त्स्यति ॥ अथानिटः ॥ क्षिप प्रेरणे । क्षिप्यति । क्षेप्ता । छो छेदने ॥

ओतः श्यनि ७ । ३ । ७१ ॥

लोपः । छ्यति । छाता । सिचो वा लुक् । अच्छात् । अच्छा-

सीत् । दो अवखण्डने । प्रणिद्यति । देयात् । अदात् । शो तनूकरणे । अशासीत् । षोऽन्तकर्मणि । अभिष्यति । अभिससौ । प्रणिष्यति । सेयात् । असात् । असासीत् ॥

इति ७० अंशाः । इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ।

राध संसिद्धौ ॥

राधोऽकर्मकाद्वृद्धावेव * ॥

राधधातोरकर्मकादेव श्यन् । वृद्धावित्युदाहरणमात्रम् । राध्यति । रराधतुः । हिंसार्थस्य सकर्मकत्वादत्र राधो हिंसायामित्येत्वाभ्यासलोपौ न । रराधिथ । राद्धा । व्यध ताडने । ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । विध्यति । विव्याध । विविधतुः । विव्यधिथ विव्यद्ध ॥ अथ वाश्रृतः प्राक् पुषादयः ॥ पुष पुष्टौ । पोष्टा । पुषादीत्यङ् । अपुषत् । क्षुध बुभुक्षायाम् । क्षोद्धा । क्षुधित इति तु वसतिक्षुधोरिट् । श्लिष आलिङ्गने ॥

श्लिषः ३ । १ । ४६ ॥

अस्मात्परस्य अनिटश्च्लेः क्सः ॥

आलिङ्गने ३ । १ । ४६ ॥

श्लिषश्च्लेरालिङ्गन एव क्सो नान्यत्र । आश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः । नेह । समाश्लिषज्जतु काष्ठम् । अङ्मत्यासत्ताविह श्लिषिः । कर्मण्यनालिङ्गने सिजेव न तु क्सः । एकवचने चिण् । अश्लेषि । अश्लिक्षाताम् । अश्लिक्षत।आश्लिष्ठाः । आश्लिढ्वम् । ष्विदा-ञिष्विदा गात्रप्रक्षरणे । षिधु संराद्धौ । क्रुध क्रोधे । शुध शौचे । तुष प्रीतौ । दुष वैकृत्ये । शुष शोषणे ॥ इति परस्मैपदिनः ॥ वाश्रृ शब्दे । काश्रृ दीप्तौ । तुरी गतित्वरणहिंसनयोः । क्लिश उपतापे । वृतु-वावृतु वरणे । वृत्यते । वावृत्यते । वावर्तोश्यके । दीपी दीप्तौ । दीपजनेति वा चिण् । अदीपि । अदीपिष्ट । एवं पूरी आप्यायने । गूरी हिंसागत्योः । जनी प्रादुर्भावे ॥

ज्ञाजनोर्जा ७ । ३ । ७९ ॥

अनयोर्जादेशः शिति । जायते । जज्ञे ॥

जनिवध्योश्च ७ । ३ । ३५ ॥

अनयोः उपधाया न वृद्धिश्चिणि ञ्णिति कृति च । अजनि । अजनिष्ट । अथ स्वादिरोदित् । डीङ् विहायसा गतौ । डीयते । दूङ् परितापे । अथ स्वादिरोदित् वेट् । षूङ् प्राणिप्रसवे । सूयते । लिटि नित्यमिट् । सुषुविषे । स्वरतीति वेट् । सोता सविता ॥ अथानिटः ॥ माङ् माने शब्दे च । ईङ् गतौ । ईयते । अयांचक्रे । प्रीङ् प्रीतौ । पिप्रिये । पीङ् पाने । मन ज्ञाने । खिद दैन्ये । विद सत्तायाम् । युज समाधौ । युध संप्रहारे । अनोरुध कामे । पद गतौ । प्रणिपद्यते ॥

चिण् ते पदः ३ । १ । ६० ॥

पदेश्च्लेश्चिण् स्यात्तशब्दे । अपादि । तप ऐश्वर्ये वा । अयमैश्वर्ये वा तङ्श्यनौ लभते । अन्यत्र शप् परस्मैपदवान् । तप्यते । तप्ता । बुध अवगमने । भुत्सीष्ट । अबोधि । अबुद्ध । सृज विसर्गे । सृजिदृशोरित्यम् । स्रष्टा । सृक्षीष्ट । असृष्ट।अथ स्वादिष्वोदित्सु । दीङ् क्षये ॥

दीङो युडचि क्ङिति ६ । ४ । ३६ ॥

दीङः परस्याजादेः क्ङितः आर्द्धधातुकस्य युट् ॥

वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ ॥

दिदीये ॥

मीनातिमिनोतिदीङां ल्यपि च ६ । ४ । ५० ॥

एषामात्वं ल्यपि चकारात् अशित्येज्निमित्ते । दाता । दास्यते । धीङ् आधारे । मीङ् हिंसायाम् । रीङ् स्रवणे । लीङ् श्लेषणे ॥

विभाषा लीयतेः ६ । १ । ५१ ॥

लीलीङोरात्वं वा अशित्येज्विषये ल्यपि च । लेता । लाता ॥

इत्यात्मनेपदिनः। पुषादिः। शक विभाषितोऽमर्षणे। उभयपदीत्यर्थः। अयं सेट् इत्येके। शेकिथ। अनिट् इत्यन्ये। शेक्थ शशक्थ। मृष तितिक्षायाम्॥

परेर्मृषः १। ३। ८२॥

परस्मैपदम्। परिमृष्यति॥ अथानिटो॥ रञ्ज रागे। नलोपः। रज्यति रज्यते। रङ्क्ता। शप आक्रोशे। णह बन्धने। नहो धः। नेहिथ ननद्ध। दिवादिराकृतिगणः। तेन क्षीयते मृग्यतीत्यादि॥ इति दिवादयः॥

इति ७१ अंशः।

ञिधृषा प्रागल्भ्ये। परस्मैपदी सेट्। धृष्णोति। धृष्णुवन्ति। ऋधु वृद्धौ। आनर्द्ध। नुड्विधौ ऋकारैकदेशो रेफो हल्त्वेन गृह्यते तेनानेकहल्त्वान्नुट्। दम्भु दम्भने। दभ्नोति। ददम्भ। लिटो वा कित्वं नलोपः। तस्याभीयत्वेनासिद्धौ॥

दम्भेश्च एत्वाभ्यासलोपौ वाच्यौ ॐ॥

देभतुः ददम्भतुः। इदं कित्वं पिदपिद्विषयकमित्येके। अपिद्विषयकमित्यन्ये। दम्भिता। तृप प्रीणने। क्षुभ्नादित्वाण्णत्वन्न। तृप्नोति॥ अथानिटः॥ क्षि हिंसायाम्। दुदु उपतापे। पृ प्रीतौ। साध संसिद्धौ। शक्ल शक्तौ। आप्ल व्याप्तौ। हि गतौ वृद्धौ च॥

हेरचङि ७। ३। ५६॥

अभ्यासात्परस्य हिनोतेर्हस्य कुत्वं नतु चङि। जिघाय॥

हिनुमीना ८। ४। १५॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य एतयोर्नस्य णः। प्रहिणोति। राध संसिद्धौ॥

राधो हिंसायाम् ६। ४। १२३॥

एत्वाभ्यासलोपौ किति लिटि सेटि थलि च। अपरेधतुः। अपरेधुः॥ इति परस्मैपदिनः॥ अशू व्याप्तौ संघाते॥

अश्नोतेश्च ७। ४। ७२॥

दीर्घीभूतादभ्यासावर्णात्परस्य नुट् । आनशे । अशिता अष्टा॥ इत्यात्मनेपदी ॥ षुञ् प्रागुक्तः ॥

सुनोतेः स्यसनोः ८ । ३ । ११७ ॥

स्ये सनि च सुञः षो न।विसोष्यति।अभिषुणोति। अभ्यषुणोत्। अभिसुषाव । स्तृञ् आच्छादने । ऋतश्च संयोगादेः । स्तारिषीष्ट स्तृषीष्ट । अस्तारिष्ट अस्तृत । धूञ् कम्पने । वेट् । दुधविथ दुधोथ । वमयोस्तु परमपि स्वरत्यादिविकल्पं बाधित्वा पुरस्तात्प्रतिषेधकाण्डारंभसामर्थ्यात् श्र्युकः किताति निषेधे प्राप्ते क्रादिनियमान्नित्यमिट् । दुधुविव । धोता धविता । स्तुसुधूञ्भ्य इतीट्। अधावीत् । वृञ् वरणे ॥

बभूथाततंथजगृम्भववर्थेति निगमे ७ । २ । ६४ ॥

एषां वेदे इडभावो निपात्यते । तेन भाषायां थलीट् । ववरिथ। ववृव । वृतो वा । वरिता वरीता । लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु न लिङि । वरिषीष्ट वृषीष्ट । अवारीत् । सिचि च परस्मैपदेषु । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट अवरीष्ट अवृत ॥ अथानिटः ॥ चिञ् चयने । प्रणिचिनोति ॥

विभाषा चेः ७ । ३ । ५८ ॥

अभ्यासात्परस्य चिञः कुत्वं वा सनि लिटि च । चिकाय चिचाय । शिञ् निशाने। षिञ् बन्धने। धुञ् कम्पने । कृञ् हिंसायाम् । डुमिञ् प्रक्षेपणे । आत्वम् । ममौ । मिम्यतुः ॥ इत्युभयपदिनः ॥ इति सुनोत्यादयः ॥

इति ७२ अंशाः ।

चर्च परिभाषणभर्त्सनयोः । घूर्ण भ्रमणे । चल विलसने । मिष स्पर्द्धायाम् । हिल भावकरणे । शिल उञ्छे । मिल श्लेषणे । लिख अक्षरविन्यासे । पुण कर्मणि शुभे । शुभ शोभार्थे । घुर भीमार्थशब्दयोः । पुर अग्रगमने । दृभी ग्रन्थे । तृप तृप्तौ । दृप उत्क्लेशे । पृण प्रीणने । मृड सुखने । उब्ज आर्जवे । उज्झ उत्सर्गे । उच्छी

विवासे । उछि उञ्छे । विच्छ गतौ । विच्छायति । विच्छायांचकार । विविच्छ । स्पृशमृशेति सिज्विकल्पः पुषादेरेव । अत्र तु नित्यं सिच् । अतर्पीत् । ऋच्छ गतीन्द्रियमलयमूर्तिभावेषु । ऋच्छत्यृताम् । आनर्च्छतुः । समो गमृच्छिभ्याम् । समृच्छते । समृच्छिष्यते । व्यच व्याजीकरणे । ग्रहिज्या । विचाति । विव्याच । विविचतुः । अव्याचीत् अव्यचीत् । व्यचेः कुटादित्वमनसि इति तु कृत्येव न त्विह ॥ अथ तुम्फात्प्राक् कुटादयः ॥ कुट कौटिल्ये । कुटति । गाङ्कुटादिभ्य इति ङित्वम् । चुकुटिथ चुकोट । चुकुट । कुटिता । अकुटीत् । खुड-ग्रुड संवरणे॥ त्रुट छेदने । वा भ्राशेति श्यन् वा । त्रुटति त्रुट्यति । छुर छेदने । नमकुर्छुराम् । छुर्यात् । स्फुर संचलने । कुच संकोचने । चुट छेदने। पुट संश्लेषणे । मुट आक्षेपप्रमर्दनयोः। स्फुट विकसने । ध्रुव गतिस्थैर्ययोः। णू स्तवने । नुवति । अनुवीत्। धू विधूनने । धुवति । अधुवीत् । अथ तृम्फादौ । तुम्फ हिंसायाम् । अनिदितामिति नलोपे ॥

शे तृम्फादीनान्नुम् वाच्यः ॥

येऽत्र नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः । तुंफति । आशिषि । तुफ्यात् ।तृम्फ तृप्तौ।गुम्फ ग्रन्थने । उम्भ पूरणे ।अथ द्वौ किरादिषु। कॄ विक्षेपे । किरति । चकार । चकरतुः । करिता करीता। कीर्यात्। अकारीत् ॥

किरतौ लवने ६ । १ । १४० ॥

उपात् किरतेः सुट् छेदेऽर्थे । उपस्किरति ॥

अडभ्यासव्यवायेऽपि सुट् कात्पूर्व इति वक्तव्यम् ॥

उपास्किरत् । उपचस्कार ॥

हिंसायां प्रतेश्च ६ । १ । १४१ ॥

उपात् प्रतेश्च किरतेः सुट् हिंसायाम्।उपस्किरति।प्रतिस्किरति ॥

किरतेर्हर्षजीविकाकुलायककरणेष्वात्मनेपदमिति वाच्यम् ॥

हर्षादयो विषयाः । तत्र हर्षो विक्षेपस्य कारणम् । इतरे फले॥

अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ६ । १ । १४२ ॥

अपात् किरतेः सुट् ॥

सुडपि हर्षादिष्वेव वक्तव्यः * ॥

अपास्किरते वृषो हृष्टः । कुक्कुटो भक्षार्थी । श्वा आश्रयार्थी । हर्षादिषु किम् । अपकिरति कुसुमम् । इह तङ्सुटौ न । हर्षादिमात्रविवक्षायां यद्यपि तङ् प्राप्तस्तथापि सुडभावे नेष्यते इत्याहुः। गजोऽपकिरति । गॄ निगरणे ॥

अचि विभाषा ८ । २ । २१ ॥

गिरते रेफस्य लत्वं वाऽजादौ । गिरति गिलति ॥

अवाद् ग्रः १ । ३ । ५१ ॥

आत्मनेपदम् । अवगिरते । गृणातिस्त्ववपूर्वो न प्रयुज्यते ॥

समः प्रतिज्ञाने १ । ३ । ५२ ॥

शब्दं नित्यं सङ्गिरते ॥ अथ वेटः ॥ ओव्रश्चू च्छेदने । वृश्चति । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चिथ वव्रष्ठ । लिट्यभ्यासस्येति संप्रसारणे न रेफस्य ऋकारः । उरत् । तस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावाच्च संप्रसारण इति वस्योत्वन्न । व्रश्चिता व्रष्टा । व्रश्चिष्यति व्रक्ष्यति । वृश्च्यात् । अव्रश्चीत् अव्राक्षीत् । तृहू तृंहू स्तृहू हिंसायाम् । तर्हिता तर्ढा । अतृंहीत् अताङ्क्षीत् । अतार्ढाम् । स्तर्हिता स्तर्ढा । इषु इच्छायाम् । इच्छति । एषिता एष्टा । कृती छेदने । मुचादिः ॥

शे मुचादीनाम् ७ । १ । ५९ ॥

नुम् । कृन्तति । सेऽसिचीति वेट । कर्तिष्यति कर्त्स्यति । अकर्तीत् ॥

इति ७२ अंशाः ।

अथानिटः ॥ णुजो कौटिल्ये । रुजो भङ्गे । छुप स्पर्शे । टुमस्जो शुद्धौ । मस्जिनशोरिति नुम् । मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम् । ममंक्थ

ममज्जिथ । मङ्क्ता । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु । शद्लृ शातने । द्वौ भ्वादिवत् । विश प्रवेशने । विशति ॥

नेर्विशः १ । ३ । १७ ॥

आत्मनेपदम् । निविशते । स्पृश संस्पर्शने । स्प्रष्टा स्पर्ष्टा । अस्प्राक्षीत् अस्पार्क्षीदित्यादि । अस्पृक्षत् । मृश आमर्शने । अम्राक्षीत् अमार्क्षीत् । अमृक्षत् । सृज विसर्गे । थलि वेट् अम् । ससर्जिथ सस्रष्ठ । स्रष्टा । प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् । किरादिः । पृच्छति । पप्रच्छतुः । प्रष्टा । अप्राक्षीत् । आङि नुपृच्छयोः । आपृच्छते । विदिप्रच्छि इति तङानौ । तत्र संपृच्छते । समप्रष्ट । समप्रक्षाताम् । खिद परिघाते तुदादिः । खिन्दति ॥ अथ द्वौ कुटादी ॥ गु पुरीषोत्सर्गे । जुगुविथ जुगुथ । गुता । गुप्यति । अगुषीत् । अगुताम् । अगुषुः ॥ इति परस्मैपदिनः ॥ गुरी उद्यमने । ओलस्जी व्रीडने । लज्जते । जुषी प्रीतिसेवनयोः । ओविजी भयचलनयोः । उद्विजते ॥

विज इट् १ । २ । २ ॥

विजेरिडादिः प्रत्ययो ङिद्वत् । उद्विजिता । कूङ् शब्दे । कुटादिः । कुविता ॥ अथानिटः ॥ पृङ् व्यायामे । व्याप्रियते । व्यापर्ता । मृङ् प्राणत्यागे ॥

म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १ । ३ । ६१ ॥

लुङ्लिङोः शितश्च प्रकृतिभूतात् मृङस्तङ् नान्यत्र । ङित्वं स्वार्थम् । म्रियते । ममार । द्वौ किरादी । दृङ् आदरे । आद्रियते । धृङ् अवस्थाने । ध्रियते । कुङ् शब्दे । कुटादिः । कुता ॥ इत्यात्मनेपदिनः ॥ मिल सङ्गमे । मिलति मिलते ॥ अथानिटः ॥ दिश अतिसर्जने । देष्टा देक्ष्यति । णुद प्रेरणे । भ्रस्ज पाके । भृज्जति भृज्जते ॥

भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्याम् ६ । ४ । ४७ ॥

भ्रस्जे रेफस्योपधायाश्च स्थाने रमागमो वा आर्धधातुके । रोपधयोर्निवृत्तिः । बभर्ज । बभर्जतुः । बभ्रज्ज । भ्रष्टा भर्ष्टा ॥

क्ङिति रमागमं बाधित्वा संप्रसारणं पूर्वविप्रतिषेधेन ॥

भृज्ज्यात् । क्षिप प्रेरणे । क्षिपति क्षिपते ॥

अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः १ । ३ । ८० ॥

परस्मैपदम् । अभिक्षिपति । इत्यादि । कृष विलेखने । भ्वादिवत् क्सः अम् च वा । ताङि तु लिङ्सिचाविति कित्वादम् न । अकृष्ट । अकृक्षाताम् । अकृक्षन्त । हिंसितः माक् मुचादयः ॥ मुच्लृ मोक्षणे । मुञ्चति मुञ्चते । मोक्ता । विद्लृ लाभे । व्याघ्रभूत्यादिमते सेट्कः । वेदिता । भाष्यादिमतेऽनिट्कः । परिवेत्ता । लुप्लृ छेदने । लिप उपदेहे । लिपि सिचीत्यङ् ताङि तु वा । अलिपत् अलिपत अलिप्त । एवं पिच क्षरणे । सिंचति ॥ इति तुदादयः ॥

इति ७४ अंशाः ।

अथ रुधादयः ॥ हिसि हिंसायाम् ॥

श्नान्नलोपः ६ । १ । १२३ ॥

श्नमः परस्य नस्य लोपः । हिनस्ति । जिहिंस । तिप्यनस्तेः । अहिनत्-अहिनद् । सिपि धातो रुर्वा पक्षे जश्त्वेन दः । अहिनः अहिनत् । पृची संपर्के । पृणक्ति । पर्चिता । अपृणक् । वृजी वर्जने । ओविजी भयचलनयोः । विज इट् । विविजिथ । विजिता । अविनक् । अविजीत् । तृह हिंसायाम् ॥

तृणह इम् ७ । ३ । ९२ ॥

तृहः श्नमि कृते इमागमः हलादौ पिति । तृणेढि । तृण्ढः । अतृणेट् । उन्दी क्लेदने । उन्दाञ्चकार। औनत् ॥अथ वेटः॥ अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु । अनक्ति । अनजानि । आनक् ॥

अञ्जेः सिचि ७ । २ । ७१ ॥

अञ्जेः सिचो नित्यमिट् । आञ्जीत्। कृती वेष्टने । आर्द्धधातुके तुदादिवत् ॥ अथानिटः ॥ भंजो आमर्दने । भनक्ति । भङ्क्ता । पिष्लृ संचूर्णने । पिनष्टि । हेर्द्धिः । जश्त्वम् । झरो झरीति वा टलोपः। पिण्ढि पिण्ड्ढि । अपिनट् । ल्वेरङ् । अपिषत्। एवं शिष्लृ विशेषणे । भुज पालनाभ्यवहारयोः । भुनक्ति ॥

भुजोऽनवने १ । ३ । ३६ ॥

आत्मनेपदम् । ओदनं भुंक्ते ॥ इति परस्मैपदिनः ॥ ञिइन्धी दीप्तौ । इन्धे । इन्त्से । इन्धितासे ॥ अथानिटौ ॥ खिद दैन्ये । खिन्ते । विद विचारणे॥ इत्यात्मनेपदिनः ॥ अथोभयपदिनोऽनिटः॥ युजिर् योगे । युनक्ति । युङ्क्ते ॥

प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु १ । ३ । ६४ ॥

तङानौ ॥

स्वराद्यन्तोपसर्गादिति वाच्यम् ॥

प्रयुंक्ते । उपयुंक्ते । उद्युङ्क्ते । छिदिर् द्वैधीकरणे । भिदिर् विदारणे । विचिर् पृथग्भावे । रिचिर् विरेचने । क्षुदिर् संपेषणे ॥ इत्युभयपदिनः ॥ इति रुधादयः ॥ तनाद्याः कृञं विना सर्वे सेटः। वनु याचने । वनुते । अयं चान्द्रमते परस्मैपदी । वनोति । मनु अवबोधने । मनुते ॥ इत्यात्मनेपदी ॥ अथोभयपदिनः ॥ षणु दाने । ये विभाषा । सायात् सन्यात् ॥

जनसनखनां सञ्झलोः ६ । ४ । ४२ ॥

एषामाकारोन्तादेशो झलादौ सनि झलादौ क्ङिति च । असात । असनिष्टाक्षणु-क्षिणु हिंसायाम् । ह्ययन्तेति न वृद्धिः । अक्षणीत् । क्षेणोति । संज्ञापूर्वकत्वात् उमत्ययनिमित्त उपधागुणो न भवतीत्यात्रेयादयः। भवतीत्यन्ये । क्षिणोति । एवमग्रेऽपि । तृणु अदने । डुकृञ् करणे । मागुक्तः ॥

संपरिभ्यां करोतौ भूषणे ६ । १ । १३७ ॥

समवाये च ६ । १ । १३८ ॥

संपरिपूर्वस्य करोतेः सुट् भूषणे संघे चार्थे। संस्कुर्वन्ति । अलंकुर्वन्ति । संघीभवन्ति वा । संपूर्वस्य क्वचिदभूषणेऽपि सुट् । संस्कृतं भक्षा इति ज्ञापकात् ॥

उपात् प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु च ६।१।३९ ॥

उपात् कृञः सुट् एष्वर्थेषु चात् पूर्वोक्तार्थयोः । उपस्कृता कन्या । भूषिता उपस्कृताः समुदिताः एधोदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं भुंक्ते । विकृतमित्यर्थः । उपस्कृतं ब्रूते । वाक्याध्याहारेणेत्यर्थः ॥

सुट् कात् पूर्वः ६ । १ । ३५ ॥

अडभ्यासव्यवायेऽपि इत्युक्तम् । संचस्कार । संचस्करतुः । कृसृभसूत्रे ऋतो भारद्वाजस्येति सूत्रे च ॥

कृभोऽसुट इति वक्तव्यम् ॥

तेन ससुट्कात्परस्येट् । संचस्करिय । सुटि गुणोर्तीति गुणः । ऋतश्च संयोगादेरिति इट् च न । संस्क्रियात् । संस्कृषीष्ट । समस्कृत ॥

गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १ । ३ । ३२ ॥

आत्मनेपदम् । उत्कुरुते । सूचयतीत्यर्थः । श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते । हरिमुपकुरुते । परदारान् प्रकुरुते । एधोदकस्योपस्कुरुते । गाथाः प्रकुरुते । शतं प्रकुरुते ॥

अधेः प्रसहने १ । ३ । ३३ ॥

शत्रुमधिकुरुते । क्षमतेऽभिभवति वा ॥

वेः शब्दकर्मणः १ । ३ । ३४ ॥

स्वरान् विकुरुते । नेह । चित्तं विकरोति कामः ॥

अकर्मकाच्च १ । ३ । ३५ ॥

वेः कृञ इत्येव । छात्रा विकुर्वते ॥

अनुपराभ्यां कृञः १ । ३ । ७९ ॥

परस्मैपदम् । अनुकरोति । पराकरोति । भावकर्मणोः कर्मकर्त्तरि च न ॥ इति तनादयः ॥

इति ७५ अंशाः ।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये । प्रागुक्तः ॥

परिव्यवेभ्यः क्रियः १। ३। १८ ॥

अकर्त्रभिप्रायेऽप्यात्मनेपदम् । परिक्रीणीते इत्यादि । मन्थ विलोडने ॥

हलः श्नः शानज्झौ ३। १। ८२ ॥

हलः परस्य श्नः शानच् आदेशः हौ । मथान । खच भूतप्रादुर्भावे । अतिक्रान्तोत्पत्तावित्यर्थः । खच्नाति । वान्तोऽयमित्येके ॥

च्छ्वोः शूडनुनासिके च ६। ४। १९ ॥

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् श ऊठ् एतौ स्तः अनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति । खौनाति । चखाव । खविता । शानचः परत्वादूठि कृते हलन्तत्वाभावान्न शानच् । खौनीहि । कुन्थ-कुथ संक्लेषणे संक्लेशे च । पुष पुष्टौ । मुष स्तेये । मृद क्षोदे । अश भोजने । ग्रन्थ सन्दर्भे । नलोपः । ग्रथ्नाति । श्रन्थिग्रन्थीत्यादिना कित्वपक्षे ॥

एत्वाभ्यासलोपावप्यत्र वक्तव्यौ * ॥

इति हरदत्तादयः । ग्रेथतुः । ग्रेथुः । इदं कित्वं पितामपि इति सुधाकरपक्षे । ग्रेथिथ । ग्रंथिता । एवं श्रंथ विमोचनप्रतिहर्षणसंदर्भेषु । क्षुभ संचलने ॥

क्षुभ्नादिषु च ८। ४। ३९ ॥

णत्वन्न । क्षुभ्नाति । स्तम्भु रोधने स्तम्भे च । स्तुन्भु रोधने निष्कोषणे च । स्कन्भु रोधने स्तम्भे च । स्कुन्भु रोधने धारणे च ॥

स्तंभुस्तुन्भुस्कन्भुस्कुन्भुस्कुभ्यः श्नुश्च ३।१।८२॥

चात् श्ना । आद्याश्चत्वारः सौत्राः परस्मैपदिनः । विष्टभ्नोति विष्टभ्नाति । अवष्टभ्नोति अवष्टभ्नाति।अवतष्टंभ । जृस्तंभु इत्यङ् वा । अस्तभत् । अस्तंभीत्।व्यष्टभत । व्यष्टम्भीत् । स्तुभ्नोति स्तुभ्नाति ॥

वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ८ । ३ । ७७ ॥

सस्य षः । विष्कभ्नोति विष्कभ्नाति । स्कुभ्नोति । स्कुभ्नाति । अथ क्र्यादयः प्राक् प्वादयः॥ कॄ हिंसायाम् ॥

प्वादीनां ह्रस्वः ७ । ३ । ८० ॥

शिति । कृणाति । ऋच्छत्यॄताम् । चकार । चकरतुः । श्र्युकः किंतीत्यस्य क्रादिनियमेन बाधः । चकरिव । लिटं विनार्द्धधातुके तॄवत् । एवमन्येऽपि ॠदन्ताः । गॄ शब्दे । जॄ वयोहानौ । वॄ वरणे भरणे च । शॄ हिंसायाम् । अस्य किति लिटि शॄदॄप्रामिति ह्रस्वपक्षे यण् । अन्यत्र गुणः । शशरतुः शश्रतुः । शशरिव शश्रिव । एवं दॄ विदारणे ॥ अथ वेटः ॥ क्लिशू विबाधने । कुष निष्कोषणे ॥

निरः कुषः ७ । २ । ४६ ॥

निरः परस्य कुषो वलाद्यार्द्धधातुकस्येड् वा । निष्कोषिता निष्कोष्टा । निरकोषीत् । निरकुक्षत् । इष आभीक्ष्ण्ये । तीषेत्यत्र अस्य इषेर्न ग्रहणमिति केचित् । ग्रहणमिति परे । एषिता एष्टा ॥ अथानिटः ॥ बन्ध बन्धने । बध्नाति । भन्त्स्यति । अभान्त्सीत् । पूर्वत्रासिद्धमिति भष्भावात्पूर्वं झलो झलीति सिज्लोपः । प्रत्ययलक्षणेन सादिप्रत्ययमाश्रित्य भष्भावो न प्रत्ययलक्षणं प्रति सिज्लोपस्यासिद्धत्वात् । अबान्धाम् । अभान्त्सुः ॥ अथ द्वौ प्वादी ल्यादी च । ज्या वयोहानौ । ग्रहिज्येति कृते ॥

हलः ६ । ४ । २ ॥

अङ्गावयवाद्धलः परं यत् संप्रसारणं तदन्ताङ्गस्य दीर्घः । इति दीर्घे कृते प्वादीनामिति ह्रस्वः । जिनाति । जज्यौ । ज्ञा अवबोधने । जानाति । अतो दीर्घो यञीति सिद्धावपि जादेशे दीर्घनिर्देशसामर्थ्यात्र ह्रस्वः ॥

अपह्नवे ज्ञः १ । ३ । ४४ ॥

आत्मनेपदम् । शतमपजानीते ॥

***अकर्मकाच्च १ । ३ । ४५ ॥**

सर्पिषो जानीते ॥

संप्रतिभ्यामनाध्याने १।३।४६॥

शतं संजानीते। प्रतिजानीते। अनाध्याने इति योगो विभज्यते। तेन अकर्मकाच्चेत्यस्य प्राप्तिरपि वार्यते। मातरं मातुर्वा संजानाति। शेषत्वविवक्षायां षष्ठी॥

अनुपसर्गाज्ज्ञः १।३।७६॥

आत्मनेपदम्। गां जानीते। विभाषोपपदेन प्रतीयमाने। स्वं यज्ञं जानीते जानाति वा। सन्नन्तादात्मनेपदं वक्ष्यते। इति परस्मैपदिनः॥ वृङ् सम्भक्तौ। वृणीते। वव्रे। ववृषे। ववृढ्वे। वरिता वरीता। अवरिष्ट अवरीष्ट। अवृत॥ इत्यात्मनेपदी॥ क्रूञ् शब्दे। ग्रह उपादाने। गृह्णाति गृह्णीते॥

ग्रहो लिटि दीर्घः ७।२।३७॥

एकाचो ग्रहेर्विहितस्येटो दीर्घः नतु लिटि। ग्रहीता। लिटि। जग्रहिथ। गृह्यात्। ग्रहीषीष्ट। ह्म्यंतेति न वृद्धिः। अग्रहीत्।अग्रहीष्टाम्॥ अथ पट् प्वादयः। पञ्च ल्वादयः॥ पूञ् पवने। पुनाति। लूञ् छेदने। कॄञ् हिंसायाम्। धूञ् कम्पने। आर्द्धधातुके धूनोतिवत्। एवं स्तॄञ् आच्छादने। तथा वॄञ् वरणे। आशिषि वूर्यात्। वरिषीष्ट॥ अथानिटः॥ षिञ् बन्धने। प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। श्रीञ् पाके। मीञ् हिंसायाम्। मीनाति। प्रमीणाति। मीनातीत्येज्विषयमात्वम्। ममौ। मिम्यतुः॥ इत्युभयपदिनः॥ इति ऋयादयः॥

इति ७६ अंशाः।

पुल महत्त्वे संघाते च। चुर्वत। तुल उत्क्षेपे। मुद संसर्गे। चुद संचोदने। पुथ मापायाम्। भुट संचूर्णने। चुट छेदने। तिज् निशाने। अतीतिजत्। टकि बन्धने। टङ्केति पाठ्ये इदित्करणं सर्वेचुरादेर्णिचः पाक्षिकत्वे लिङ्गम्। तेन चिन्त्यात्। चिन्त्यते

इत्यादौ नलोपो नेत्याहुः। असंयोगोपधस्य इदितो णिज्विकल्पार्थमित्येके। तेषामपि नित्यं णिजिति परे। एवं इरित उदित ईदित ॠकारान्ताश्च पाक्षिकणिच इत्याहुः। पॄ पूरणे। पारयति परति। टङ्कयति। टङ्क्यात्। पचि विस्तारवचने। मडि भूषायां हर्षे च। खडि-काडि भेदने। वटि विभाजने। छदि संवरणे। तसि अलङ्करणे। चिति स्मृत्याम्। पिडि संघाते। कुठि-गुठि वेष्टने। यत्रि संकोचे। यन्त्रेति पाठ्यम्। एवन्तत्रिमन्त्रिप्रभृतौ। लक्ष दर्शनाङ्कनयोः। घट संघाते। नट अवस्यन्दने। पट भाषायाम्। तड आघाते। लड उपसेवायाम्। यत निकारोपस्कारयोः। बंध संयमने। कल क्षेपे। पश बंधने। वस स्नेहच्छेदापहरणेषु। चर संशये। पाल रक्षणे। अपीपलत्। क्षल शौचकर्मणि। अचिक्षलत्। क्षिप क्षेपणे। अशिक्षिपत्। स्फुट भेदने। अपुस्फुटत्। चर्च अध्ययने। अचचर्चत्।गर्ज शब्दे। घट्ट चलने। वर्ण प्रेरणे वर्णने च। छर्द वमने। गर्द्ध अभिकांक्षायाम्। वर्ध छेदनपूरणयोः। भक्ष अदने। वर्ह भाषार्थे हिंसायां च। मार्ज शब्दे। साम-सान्त्व सामप्रयोगे। वुक्क भषणे। कुट्ट छेदनभर्त्सनपूरणेषु। लुण्ठ स्तेये। भूष अलंकरणे। मूल रोहणे। शब्द उपसर्गादाविष्कारे। प्रतिशब्दयति। प्रतिश्रुतमाविष्करोतीत्यर्थः। अनुपसर्गाच्च। शब्दयति। पूद क्षरणे। चूर्ण संकोचने प्रेरणे च। पूज पूजायाम्। म्लेच्छ अव्यक्तायां वाचि। ऊर्ज बलप्राणनयोः। और्जिजत्। नन्द्राः संयोगादयः। ईड स्तुतौ। ऐडिडत्। तुल उन्माने। तोलयति। तुलयति इति तु अतुलोपमाभ्यामिति निपातनसिद्धात्तुलाशब्दात् तत्करोतीति णौ। श्रण दाने। प्रायेणायं विपूर्वः। विश्राणयति॥

काण्यादीनां वा उपधाया ह्रस्वः ॥

ण्यन्ताः कणरणभणश्रणलुपहेठह्वायिवाणिलोटिलोपयः चाणिलोठी चेति द्वादश काण्यादयः। व्यशश्राणत्। व्यशिश्रणत्। जसु हिंसायाम्। उदित्सामर्थ्यात्पाक्षिको णिच्। जासयति

जसति। एवमग्रेऽपि। घुषिर् विशब्दने। वा णिच्। घोषयति घो-षति। अङ् वा। अघुषत्। अघोषीत्। ज्ञा नियोगे॥

अर्त्तिह्रीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुग्णौ ७।३।३६॥

ज्ञापयति। अजिज्ञपत्। पॄ पूरणे। पारयति। वा णिच्। परति। नित्यमिति परे। ज्ञप ज्ञानज्ञापनयोः। ज्ञपमिच्॥

मितां ह्रस्वः॥

ज्ञपयति। अजिज्ञपत्। तज्ज्ञापयत्याचार्य इति तु ज्ञा नियोग इति प्रागुक्तस्य। यम च परिवेषणे। चान्मित्। परिवेषणमिह वेष्टनम्। न तु भोजना नापि वेष्टना। यमयति चन्द्रम्। परिवेष्टत इत्यर्थः। चह परिकल्कने। चहयति। अचीचहत्। अदन्तस्य तु अचचहत्। चपेत्येके। चपयति। बल प्राणने। बलयति। रह त्यागे। रहयति। अरीरहत्। अदन्तस्य अररहत्। चिञ् चयने॥

चिस्फुरोर्णौ ६।१।५४॥

आत्वं वा। अर्त्तिह्रीति पुक्। चपयति। चययति। नित्यसामर्थ्याण्णिज् वा। भणिचयति भनिचयति। इति ज्ञपादयः। नान्ये मितोऽहेतौ स्वार्थणिचि ज्ञपादिभ्योऽन्ये मितो नेत्यर्थः। घटादयोऽपि मितः। ते च केचित्पूर्वमुक्ताः। घटयति। विघटयति। उद्घाटनमिति तु घट संघाते इत्यस्य घाटं घाटं घटं घटम्। एवं प्रथव्यथम्रदश्नित्वरादयः॥

जनीजॄष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च ॥

मितः। जॄष् जरयति। जृणातेस्तु जारयति॥

न कम्यमिचमाम् ॥

मित्त्वम्। कामयते इत्यादि। अम रोगे। आमयति। एवं शमादीनाममन्तत्वादिमत्युक्तं मित्त्वञ्च। अम भ्वादौ तस्माद्धेतुमण्णौ न कम्यमिचमामिति निषेधः। आमयति। सर्वं मित्प्रकरणं णिजन्तेषु वक्ष्यते॥

इति ७७ अंशाः।

पीड अवगाहने ॥

भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् ७।४।३॥

एषामुपधाया ह्रस्वो वा चङ्परे णौ । अपीपिडत् । अपिपीडत् । कॄत संशब्दने ॥

उपधायाश्च ७ । १ । १०१ ॥

धातोरुपधाभूतस्य ऋत इत् रपरत्वम् । कीर्तयति ॥

उर्ऋत् ७ । ४ । ७ ॥

उपधाया ऋवर्णस्य स्थाने ऋद्वा चङ्परे णौ । इररारामपवाद'। अचीकृतत् अचिकीर्तत् । प्रथ प्रख्याने । मित्त्वन्न । प्राथयति ॥

अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम् ७ । ४ । ९५ ॥

एषामभ्यासस्याकारोन्तादेशश्चङ्परे णौ इत्वापवादः । अपप्रथत् । पृथ प्रक्षेपे । अपीपृथत् अपपर्थत् । सुबोऽवकल्कने । णिच् । मिश्रणे चिन्तने चेत्यर्थः । कृपू अवकल्कने । कल्पयति । अर्ज प्रतियत्ने द्रव्यार्जने च । अर्ह पूजायाम् ॥ आकुस्मादात्मनेपदिनः॥ मान स्तम्भे । मानयते । तर्ज-भर्त्स तर्जने । वञ्चु प्रलंभने।गूर उद्यमने । मन्त्रि गुप्तपरिभाषणे । शम आलोचने । शामयते । दशि दंशने । दंशयते । इदित्त्वाण्णिजभावे । दंशति । आकुस्मीयमात्मनेपदं णिच्सन्नियोगेनैव । नलोपे तु भ्वादे रेव ग्रहणम् । गल स्रवणे। भल आभंडने । लल ईप्सायाम् । मद तृप्तियोगे । चित संचेतने । विद चेतनाख्यानविवासेषु । त्रुट छेदने । कूट आप्रदानेऽवसादने च । कुस्म अवक्षेपणे ॥

कुस्मनाम्नो वा ❋ ॥

कुस्मेति प्रातिपदिकं तस्माद्धात्वर्थे णिच् वा । यद्वा कुस्म कुत्सितस्मयने । इति धातोर्वा णिच् । कुस्मयते । अचुकुस्मत । शेषा आकुस्मीया वक्ष्यन्ते ॥ इत्याकुस्मीयाः ॥ आस्वदः सकर्मकात णिच् । लोकृ-लोचृ भाषायाम् । लोकयति ग्रंथम् । नाग्लोपिशास्वृदिताम् । अलुलोकत् । तर्क भाषायाम् । वर्ह भाषार्थे हिंसाया च।

स्वाद आस्वादने। पूरी आप्यायने। धूप भाषार्थः। दल विदारणे। ष्वद आस्वादने। असिष्वदत्। शेषा आस्वदीया वक्ष्यन्ते॥ इत्यास्वदीयाः। आधृषाद्वा णिच्। प्रीञ् तर्पणे। प्रीणयति। धूञ्प्रीणोरिति हरदत्तपाठे तु माययति। मयति मयते। भृ मासा-त्मनेपदी उदाहृतः। णिच् सन्नियोग एवात्मनेपदमित्याहुः। वृञ् आवरणे। धृञ् धारणे। जॄ वयोहानौ। अर्च पूजायाम्। आधृ-षीयपाठेनैव गतार्थत्वात् अर्च अर्ह इत्यादीनां भ्वादिषु पाठोऽसा-म्प्रदायिक इति परे। अर्ह हिंसायाम्। स्वरितेत्। अर्हयति अर्हति अर्हते। अर्ह पूजायाम्। ईर क्षेपे। मान पूजायाम्। गर्ह निंदने। मार्ग अन्वेषणे। ग्रंथ संदर्भे बंधने च। हिंसि हिंसायाम्। छद अपवारणे। स्वरितेत्। वच परिभाषणे। वद संदेशवचने। स्वरितेत्। वादयति वदति वदते। अनुदात्तेदित्येके। ववदे। षह मर्षणे। युज संयमने। मृजू शौचालंकारयोः। वृजी वर्जने। आङ्षद पद्यर्थे। आसादयति आसीदति। असात्सीत्। तनु श्रद्धोपकरणयोः इत्येके। तानयति। उपसर्गाच्च दैर्घ्ये। वितानयति। तनति। वितनति। शिष असर्वोपयोगे। शेषयति। शेषति। शेष्टा। अशिक्षत्। अयं विपूर्वोऽतिशये। धृष प्रसहने। शेषा आधृषीया वक्ष्यन्ते॥ इत्याधृषीयाः। हन्त्यर्थाश्च। नवगण्यामुक्ता अपि हन्त्यर्थाः स्वार्थे णिचं लभन्ते॥

इति ७८ अंशाः।

अथादन्ताः॥ कल गतौ संख्याने च। अचकलत्। स्तन-गद देवशब्दे। छद अपवारणे। मह पूजायाम्। रह त्यागे। रस आ-स्वादनस्नेहनयोः। रच प्रतियत्ने। वस निवासे। वर ईप्सायाम्। कर्ण भेदने। वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु। ध्वन शब्दे। व्यय वित्तस-मुत्सर्गे। व्रण गात्रविचूर्णने। श्रथ दौर्बल्ये। दण्ड दण्डनिपातने। पार कर्मसमाप्तौ। भाज पृथक्कर्मणि। माम क्रोधे। वास उपसेवायाम्। चित्र चित्रीकरणे। छिद्र कर्णभेदने करणभेदने च। मिश्र संपर्के। शील उपधारणे। सुख-दुःख तत्क्रियायाम्। गुण आमंत्रणे केतने च।

कूट परितापे परिदाहे च । कूण संकोचने आमंत्रणे केतने च । सूत्र प्रस्रवणे । रूप रूपक्रियायाम् । सूत्र वेष्टने । सूच पैशुन्ये । स्पृह ईप्सायाम् । केत श्रावणे निमन्त्रणे च । स्तेन चौर्ये । गवेष मार्गणे । सभाज प्रीतिदर्शनसेवनेषु । कुमार क्रीडायाम् । सङ्केत आमन्त्रणे । निवास आच्छादने । मल धारणे । लल ईप्सायाम् । विडम्ब अनुकरणतिरस्कारयोः । अत्र अदन्तेष्वपठित्वा डम्बेति डवि इति च चान्तेषु वा पठ्यते । स्वन शब्दे । वीज व्यजने । स्फुट विशरणे । रूष विच्छुरणे । मृष सहने । प्रेङ्खोल चापले । आन्दोल दोल दोलायाम् । गोम उपलेपने । छेद द्वैधीकरणे । अवधीर अवज्ञायाम् । गण संख्याने । गणयति ॥

ई च गणः ७ । ४ । ९७ ॥

गणेरभ्यासस्य ई अच चङ्परे णौ । अजगणत् । अजीगणत् । सङ्ग्राम युद्धे । अयमनुदात्तेत् अकारप्रश्लेषात् । सङ्ग्रामयते । अससङ्ग्रामत ॥ आगर्वादात्मनेपदिनः ॥ अर्थ याच्ञायाम् । अर्थयते । ओः पुयण्ज्यपरे इत्यत्र पयोरिति वक्तव्ये वर्गप्रत्याहारजकारग्रहो लिङ्गम् । णिचि अच आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्त्तव्ये । यत्र द्विरुक्तावभ्यासोत्तरखण्डस्याद्योच्प्रक्रियायां परिनिष्ठिते रूपे वा अवर्णो लभ्यते तत्रैवायं निषेधः। ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वात् । तेन अचिकीर्त्तत् इति सिद्धम् । प्रकृते तु अल्लोपात् प्राक् थशब्दस्य द्वित्वम् । तत उत्तरखण्डेऽल्लोपः आर्तथत । एवमङ्कान्धोनादिधातुष्वपि अग्लोपित्वात्र दीर्घसन्वद्भावौ । द्वित्वप्रवृत्तिवेलायामवर्णपरत्वसम्पादकादेशस्याग्निनोऽचो णिच्निमित्तक आदेशो न स्याद् द्वित्वे कर्त्तव्ये इति ज्ञाप्यस्वरूपं वदताम्मते तु आर्चिथत इत्येव ॥

इति ७९ अंशाः ।

वीर विक्रान्तौ । गुह विस्मापने । शूर विक्रान्तौ । स्थूल परिबृंहणे । गृह ग्रहणे । मृग अन्वेषणे । सत्र संतानक्रियायाम् । गर्व

माने।गर्वयते । अदन्तत्वसामर्थ्याण्णिज्विकल्पः।धातोरन्त उदात्तो लिटि आम् च फलम् । एवमन्यत्रापि ॥ इत्यागर्वीयाः॥ अङ्क पदे लक्षणे च । अन्ध दृष्ट्युपघाते । ऊन परिहाणे । अंश विभाजने । अघ पापकरणे । लजि प्रकाशने । लंजयति । अदन्तेषु पाठबलाददन्तत्वे वृद्धिरित्यन्ये।लञ्जापयति । एवं वटि विभाजने इत्यत्रापि। शाकटायनस्तु अदन्तानां सर्वेषां पुकमाह । कथापयति । गणापयति । इत्यादि ॥

बहुलमेतन्निदर्शनम् ॥

अदन्तधातुनिदर्शनमित्यर्थः । तेनान्ये पर्णादयोऽपि बोध्याः । अन्ये तु दशगणीपाठो बहुलम् । तेनापठिता अपि सौत्रलौकिकवैदिका बोध्याः । अपरे तु नवगणीपाठो बहुलं तेनापठितेभ्योऽपि क्वचित्स्वार्थे णिच् । रामो राज्यमचीकरदिति यथा इत्याहुः चुरादिभ्य एव बहुलं णिजित्यर्थः इत्यन्ये ॥ इति चुरादयः ॥ मन्तु अपराधे । मन्तुञ् इत्येके । मन्तूयति मन्तूयते । असूञ् उपतापे । वल्गु पूजामाधुर्ययोः । केला-खेला विलासे । लेला दीप्तौ । भिषज् चिकित्सायाम् । महीङ् पूजायाम् । हृणीङ् लज्जायाम् । अगद नीरोगत्वे । गद्गद वाक्स्खलने । उषस् प्रभातीभावे । सपर पूजायाम् । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति कण्ड्वादयः ॥ लोकप्रसिद्धाः सुबन्ताः शब्दाः कर्तृलकारान्ताः तादृशाः पाठपठिता धातवश्च समाप्ताः । अथ तेभ्यो भावकर्मणोर्लकारा द्वितीयखण्डे वक्ष्यन्ते ॥

इति ८० अंशाः ।

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ।

द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

खण्डः सुगमकौमुद्याः प्रथमः पूर्णतां गतः ॥
एतत्पाठेन बालानां व्युत्पत्तिं कुरुताद्धरिः ॥ १ ॥

इति श्रीमद्भट्टोजिकृतकौमुद्याः प्रतिबिम्बरूपायां सुगमकौमुद्यां प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः खंडः।

श्रीशं नत्वा मध्यखण्डे भावादौ लानथो कृतः ॥
कारकाणि समासादीन् शेषार्थानभिदध्महे ॥ १ ॥
व्युत्पत्तिः पूर्णकल्पा स्यान्मध्यखण्डान्तपाठिनाम् ॥
ततोऽप्यधिकामिच्छाद्भिस्तृतीयः खण्ड ईक्ष्यताम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीयखण्डस्य प्रथमो भागः। तत्र यद्यपि प्राचा क्रमेण णिजन्तादयो योग्यास्तथापि अत्र बहूपयोगिन एव विषयाः प्रथममुच्यन्त इति कर्तृलान्तप्रकरणानन्तरं भावादिलान्ताना भूयानुपयोग.। प्रसङ्गश्च ततो बहूपयोगित्वात्कृत'। कारकाणि चेत्यादिक्रम उक्त अतो भावकर्मणोर्लडादयः भावकर्मणोरिति तङ् सार्वधातुके यक्। भावो भावना व्यापारो भावना सैवोत्पादना सैव च क्रिया। सा च धातुत्वेन सकलधातुवाच्या भावार्थकलकारेणानूद्यते। युष्मदस्मद्भ्या सामानाधिकरण्याभावात् प्रथमपुरुषः। तिङ्वाच्यभावनाया असत्त्वरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्न द्विवचनादि। किं त्वेकवचनमेव। तस्यौत्सर्गिकत्वेन संख्यानपेक्षत्वात्। अनभिहिते कर्तरि तृतीया। त्वया मयाऽन्यैश्च भूयते। बभूवे। स्यसिच्सीयुट् तासिषु इत्यादिना स्यादिषु चिण्वद्भाव इडागमश्च। अयमिट चिण्वद्भावसंन्नियोगशिष्टत्वात्तदभावे नाइहार्धधातुक इत्यधिकृतं सीयुटो विशेषणं नेतरेषामव्यभिचारात्। चिण्वद्भावाद्वृद्धिः।भाविता भविता इत्यादि। अनुपूर्वो भू' सकर्मकस्तस्मात्कर्मणि लकाराः। तिङोक्तत्वात्कर्मणि न द्वितीया। अनुभूयते आनंदश्चैत्रेण त्वया मया च। अनुभूयते। अनुभूयेते। त्वमनुभूयसे। अहमनुभूये। अन्वभावि। अन्वभाविषाताम् अन्वभविषाताम्। णिजन्तस्य तु णिलोपः। भाव्यते। भावयाचक्रे। भावयाबभूवे। भावयामासे। इह तशब्दस्य एशि इट एत्वे च कृते ह एतीति हत्वं न। तासि साहचर्यादस्तेरपि व्यतिहे इत्यादौ सार्वधातुके एति हत्वप्रवृत्तेरित्याहुः।भाविता। चिण्वदिट आभीयत्वेनासिद्धत्वाण्णिलोप.। पक्षे भावयिता। भावि-

ष्यते भावयिष्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत । भाविषी-
ष्ट भावयिषीष्ट । अभावि । अभाविषातां अभावयिषाताम् । बुभू-
ष्यते । बुभूषांचक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । बोभूष्यते।यङ्लुगंतात्तु।
बोभूयते । बोभवांचक्रे । बोभविता बोभाविता । अकृत्सार्वेति दीर्घः।
स्तूयते विष्णुः । तुष्टुवे । स्ताविता स्तोता । स्ताविष्यते स्तो-
ष्यते । अस्तावि । अस्ताविषातां अस्तोषाताम् । गुणोर्तीति गुणः ।
अर्यते । स्मर्यते । सस्मरे । परत्वान्नित्यत्वाच्च गुणे रपरे कृतेऽजंतत्वा-
भावेऽप्युपदेशग्रहणाच्चिण्वदिट् । आरिता अर्त्ता । स्मारिता स्मर्त्ता ।
गुणोर्त्तीत्यत्र नित्यग्रहणानुवृत्तेरुक्तत्वान्नेह गुणः । संस्क्रियते । अ-
निदितामिति नलोपः । स्रस्यते । इदितस्तु नंद्यते । संप्रसारणम् ।
इज्यते । अयङि क्ङिति । शय्यते ॥

तनोतेर्यकि ६ । ४ । ४४ ॥

आकारोंतादेशो वा । तायते तन्यते । ये विभाषा । जायते
जन्यते ॥

तपोऽनुपतापे च ३ । १ । ६४ ॥

तपश्च्लेश्चिण्न स्यात्कर्मकर्त्तरि अनुपतापे च । अन्वतप्त पापेन ।
पापं कर्तृ । तेनाभ्याहत इत्यर्थः । कर्मणि लुङ् । यद्वा पापेन पुंसा
कर्त्रा अशोचि । घुमास्थेतीत्वम् । दीयते । धीयते । आदेच इत्य-
त्राशितीति कर्मधारयादित्संज्ञकशकारादौ निषेधः । एश आदिशि-
त्त्वाभावात्तस्मिन्नात्वम् । जग्ले । आतो युक् चिण्कृतोः । दायिता
दाता । दायिषीष्ट दासीष्ट। अदायि । अदायिषाताम् अदिषाताम् ।
अधायिषाताम् अधिषाताम् । अग्लायिषाताम् अग्लासाताम् ।
हन्यते । अचिण्णलोरित्युक्तेर्हनस्तो न । हो हंतेरिति कुत्वम् । घानि-
ता हंता । घानिष्यते हनिष्यते । आशीर्लिङ् । वधादेशस्यापवाद-
श्चिण्वद्भावः। आर्द्धधातुके सीयुटीति विशेषविहितत्वात्। घानिषीष्ट ।
पक्षे वधिषीष्ट । अघानि । अघानिषाताम् अहसाताम् । पक्षे
वधादेशः । अवधि । अवधिषाताम् । आघनिष्यत अहनिष्यत ।

नच स्यादिषु चिण्वदित्यतिदेशाद्वधादेशः स्यादिति वाच्यम् । अंगस्येत्यधिकारादांगस्यैवातिदेशात् ॥

इति ८१ अंशाः ।

गृह्यते । चिण्वदिटो न दीर्घत्वम् । प्रकृतस्य वलादिलक्षणस्यैवेटो ग्रहो लिटीत्यनेन दीर्घविधानात् । ग्राहिता ग्रहीता । ग्राहिष्यते ग्रहीष्यते । ग्राहिषीष्ट ग्रहीषीष्ट । अग्राहि । अग्राहिषाताम् अग्रहीषाताम् । दृश्यते । अदर्शि । अदर्शिषाताम् । सिचः किस्त्वादम्न । अदृक्षाताम् । गिरतेर्लुङि ध्वमि चतुरधिकं शतम् । तथा हि चिण्वदिटो दीर्घो नेत्युक्तम् । अगारिध्वम् । द्वितीये त्विटि वृतो वेति वा दीर्घः । अगरीध्वम् अगरिध्वम् । एषां त्रयाणां लत्वं ढत्वं द्वित्वत्रयं चेति पंच वैकल्पिकानि । इत्थं षण्णवतिः । लिङ्सिचोरिति विकल्पादिडभावे उश्चेति कित्त्वम् इत्त्वं रपरत्वं हलि चेति दीर्घः । इणः षीध्वमिति नित्यं ढत्वम् । अगीर्ढ्वम् । ढवमानां द्वित्वविकल्पे अष्टौ । उक्तषण्णवत्या सह संकलने उक्ता संख्येति । इड् दीर्घश्चिण्वदिद् लत्वे ढत्वे द्वित्वत्रिकं तथा । इत्यष्टानां विकल्पेन चतुर्भिरधिकं शतम् ॥ हेतुमण्ण्यंतात्कर्मणि लः यक् णिलोपः । शम्यते मोहो मुकुंदेन । चिण्वदिटि मित्त्वात् चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् प्रकृतो मितां ह्रस्व एव तु न विकल्पितः । ण्यंताण्णौ ह्रस्वविकल्पासिद्धेः । दीर्घविधौ हि णिचो लोपो न स्थानिवदिति दीर्घः सिद्ध्यति । ह्रस्वविधौ तु स्थानिवत्त्वं दुर्वारम् । भाष्ये तु पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदित्यवष्टभ्य द्विर्वचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरः प्रत्याख्याताः । णाविति जातिपरो निर्देशः । दीर्घग्रहणं च मास्त्विति तदाशयः । शमिता शामिता शमयिता । शमिष्यते शामिष्यते शमयिष्यते । यङंताण्णिच् । शंशम्यते । शंशामिता [illegible] । शंशमयिता । यङ्लुगन्ताण्णिच्यप्येवम् । भाष्यमते यङंताच्चिण्वदिटि दीर्घो नास्तीति विशेषः । ण्यंतत्वाभावे । श[illegible] मुनिना ॥

नोदात्तोपदेशस्य मांतस्यानाचमेः ७ । ३ । ३४ ॥

उपधाया वृद्धिर्न स्याच्चिणि ञ्णिति कृति च । अशमि । उदात्तोपदेशस्येति किम् । अगामि । मान्तस्य किम् । अवादि । अनाचमेः किम् । आचामि ॥

अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम् ❀ ॥

चिणि आयादय इति णिङभावे अकामि ॥

णिङ्णिचोरप्येवम् ❀ ॥

अवामि । वध् हिंसायां हलंतः । जनिवध्योरिति न वृद्धिः । अवधि । जाग्रो विचिण्णल्ङित्स्वित्युक्तेर्न गुणः । अजागारि ॥

भंजेश्च चिणि ६ । ४ । ३३ ॥

नलोपो वा । अभाजि अभंजि ॥

विभाषा चिण्णमुलोः ७ । १ । ६९ ॥

लभेर्नुमागमो वा । अलंभि अलाभि । व्यवस्थितविकल्पत्वात् प्रादेर्नित्यं नुम् । प्रालंभि । द्विकर्मकाणां तु । गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् । बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया ॥ प्रयोज्यकर्मण्यन्येषां ण्यंतानां लादयो मताः ॥ गौर्दुह्यते पयः । अजा ग्रामं नीयते । ह्रियते । कृष्यते । उह्यते । बोध्यते माणवकं धर्मः । माणवको धर्ममिति वा । देवदत्तो ग्रामं गम्यते । अकर्मकाणां कालादिकर्मकाणां कर्मणि भावे च लकार इष्यते । मासो मासं वा आस्यते देवदत्तेन । णिजंतात्तु प्रयोज्ये प्रत्ययः । मासमास्यते माणवकः ॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

इति ८२ अंशाः ।

यदा सौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते तदा कारकांतराण्यपि कर्तृसंज्ञा लभंते स्वव्यापारे स्वतंत्रत्वात् । तेन पूर्वं करणत्वादिसत्त्वेऽपि संप्रति कर्तृत्वात्कर्तरि लकारः । साध्वसिश्छिनत्ति । काष्ठानि पचंति । स्थाली पचति । कर्मणस्तु कर्तृत्व-

विवक्षायां प्राक् सकर्मका अपि प्रायेणाकर्मकाः । तेभ्यो भावे कर्त्तरि च लकाराः । पच्यते ओदनेन । भिद्यते काष्ठेन । कर्तरि तु ॥

कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रियः ३ । १ । ८७ ॥

कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः । कर्तुरभिहितत्वात्प्रथमा । पच्यते ओदनः । भिद्यते काष्ठम् । अपाचि । अभेदि । ननु भावे लकारे कर्त्रीर्द्वनीया स्यात् । अस्मादतिदेशादिति चेन्न । लकारवाच्य एव कर्त्ता कर्मवत् । लिङ्याशिष्यङिति द्विलकारकात् ल इत्यनुवृत्तेः भावे प्रत्यये च कर्तुर्लकारेणानुपस्थितेः अत एव कृत्यक्तखलर्थाः कर्मकर्त्तरि न भवंति किंतु भावे एव । पक्तव्यमोदनेन । भेत्तव्यं कुसूलेन । ननु पचिभिचोः कर्मस्था क्रिया विक्लित्तिर्द्विधाभवनं च । सैवेदानीं कर्तृस्था नतु तत्तुल्या । सत्यम् । कर्मत्वकर्तृत्वावस्थाभेदोपाधिकं तत्समानाधिकरणक्रियाया भेदमाश्रित्य व्यवहारः । कर्मणेति किम् । करणाधिकरणाभ्यां तुल्यक्रिये पूर्वोक्ते साध्वसिरित्यादौ मा भूत् । किंच । कर्तृस्थक्रियेभ्यो मा भूत् । गच्छति ग्रामः । आरोहति हस्ती । अधिगच्छति शास्त्रार्थः स्मरति श्रद्दधाति च । यत्र कर्मणि क्रियाकृतो विशेषो दृश्यते । यथा पक्वेषु तंडुलेषु । यथा वा छिन्नेषु काष्ठेषु । तत्र कर्मस्था क्रिया नेतरत्र । नहि पक्वापक्वतंडुलेष्विव गतागतग्रामेषु वैलक्षण्यमुपलभ्यते । करोतिरुत्पादनार्थः । उत्पत्तिश्च कर्मस्था । तेन कारिष्यते घट इत्यादि । यत्नार्थत्वे तु नैतत् सिद्ध्येत् । ज्ञानेच्छादिवद्यत्नस्य कर्तृस्थत्वात् । एतेनानुव्यवस्यमानेऽर्थे इति व्याख्यातम् । कर्तृस्थत्वेन यगभावाच्छ्यनि कृते ओलोपे च रूपसिद्धेः ताच्छील्यादावयं चानश् नत्वात्मनेपदम् इति ॥

सकर्मकाणां प्रतिषेधो वक्तव्यः ❀ ॥

अन्योऽन्यं स्पृशतः । अजा ग्रामं नयति ॥

दुहिपच्योर्बहुलं सकर्मकयोरिति वाच्यम् ❀ ॥

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ३ । १ । ८९ ॥

एषां कर्मकर्त्तरि यक्चिणौ न स्तः । दुहेरनेन यक एव निषेधः। चिण् तु विकल्पिष्यते । शप् । लुक् । गौः पयो दुग्धे ॥

अचः कर्मकर्त्तरि ३ । १ । ६२ ॥

अजंतात् च्लेश्चिण्वा कर्मकर्त्तरि तशब्दे परे । अकारि अकृत ॥

दुहश्च ३ । १ । ६३ ॥

अदोहि । पक्षे क्सः । लुग्वेति पक्षे लुक् । अदुग्ध अधुक्षत । उदुंबरः फलं पच्यते । सृजियुज्योः श्यंस्तु अनयोः सकर्मकयोः । कर्त्ता बहुलं कर्मवत् यगपवादश्च श्यन्वाच्य इत्यर्थः ॥

सृजेः श्रद्धोपपन्ने कर्त्तर्य्येवेति वाच्यम् ॐ ॥

सृज्यते स्रजं भक्तः । श्रद्धया निष्पादयतीत्यर्थः । असर्जि । युज्यते ब्रह्मचारी योगम् ॥

भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात् ॐ ॥

भूषावाचिनां किरादीनां सन्नन्तानां च यक्चिणौ चिण्वदिट् च नेति वाच्यमित्यर्थः । अलंकुरुते कन्या । अलमकृत । अवकिरते हस्ती । अवाकीर्ष्ट । गिरते । अगीर्ष्ट । आद्रियते । आदृत । किरादिस्तुदाद्यन्तर्गणः । चिकीर्षते कटः । अचिकीर्षिष्ट । इच्छायाः कर्तृस्थत्वेऽपि करोतिक्रियापेक्षमिह कर्मस्थक्रियत्वम् ॥

न रुधः ३ । १ । ६४ ॥

अस्माच्च्लेश्चिण्न । अवारुद्ध गौः । कर्मकर्त्तरीत्येव । अवारोधि गौर्गोपेन ॥

तपस्तपःकर्मकस्यैव ३ । १ । ८८ ॥

कर्त्ता कर्मवत् । विध्यर्थमिदम् । एवकारस्तु व्यर्थ एवेति वृत्त्यनुसारिणः । तप्यते तपस्तापसः । अर्जयतीत्यर्थः । तपोऽनुतापे च इति चिण्निषेधात्सिच् । अतप्त । तपःकर्मकस्य इति किम् । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। न दुहस्नुनमां यक्चिणौ । प्रस्नुते । प्रास्ना-

विष्ट प्रास्नोष्ट । नमते दण्डः । अनंस्त । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र नमिः ॥

यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमण्णिश्रिब्रूञामुपसंख्यानम् ❀ ॥

कारयते । अचीकरत । उच्छ्रयते दण्डः । उदशिश्रियत । चिण्वदिट् तु स्यादेव । कारिष्यते । उच्छ्रायिष्यते । ब्रूते कथा । अवोचत । भारद्वाजीयाः पठन्ति ॥

णिश्रन्थिग्रन्थिब्रूञात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ❀ ॥

पुच्छमुदस्यति । उत्पुच्छयते गौः । अन्तर्भावितण्यर्थतायाम् । उत्पुच्छयते गाम् । पुनः कर्तृत्वविवक्षायाम् । उत्पुच्छयते गौः । उदपुपुच्छत । यक्चिणोः प्रतिषेधाच्छप्चङौ । श्रन्थिग्रन्थ्योराधृषीयत्वाण्णिजभावपक्षे ग्रहणम् । ग्रन्थति ग्रन्थम् । श्रन्थति मेखलां देवदत्तः । ग्रन्थते ग्रंथः । अग्रंथिष्ट । श्रन्थते । अश्रन्थिष्ट । क्रैयादिकयोस्तु श्रथ्नीते । ग्रथ्नीते स्वयमेव । विकुर्वते सैन्धवाः । वल्गन्तीत्यर्थः । वेः शब्दकर्मणः अकर्मकाच्च इति तङ् । अन्तर्भावितण्यर्थस्य पुनः प्रेषणत्यागे । विकुर्वते सैन्धवाः व्यकारिष्ट । व्यकारिषाताम् । व्यकारिषत । व्यकृत । व्यकृषाताम् । व्यकृषत ॥

कुषिरजोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च ३ । १ । ९० ॥

अनयोः कर्मकर्तरि न यक् किंतु श्यन् परस्मैपदं च । आत्मनेपदापवादः । कुष्यति कुष्यते पादः । रज्यति रज्यते वस्त्रम् । यगविषये तु नास्य प्रवृत्तिः । कोषिषीष्ट । रङ्क्षीष्ट ॥

इति ८३ अंशाः । इति कर्मकर्तृप्रकरणम् ॥

अथ कृतां शेषः । वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च । वसतीति वास्तव्यः । पचेलिमा माषाः पक्तव्याः । भिदेलिमाः सरलाः भेत्तव्याः । कर्मणि केलिमर् प्रत्ययः । वृत्तिकारस्तु कर्मकर्तरि चायमिष्यते इत्याह तद्भाष्यविरुद्धम् ॥

कृत्यचः ८।४।२९॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्याच उत्तरस्य कृत्स्थस्य नस्य णत्वम् प्रयाणीयम्। अचः किम्। प्रमग्नः॥

निर्विण्णस्योपसंख्यानम् ॥

अचः परत्वाभावान्नकारेण व्यवधानाच्चाप्राप्ते वचनम्। परस्य णत्वम्। पूर्वस्य ष्टुत्वम्। निर्विण्णः॥

णेर्विभाषा ८।४।३०॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य ण्यन्ताद्विहितो यः कृत्तत्स्थस्य नस्य णो वा। प्रयापणीयम् प्रयापनीयम्। विहितविशेषणं किम् यका व्यवधाने यथा स्यात्। प्रयाप्यमाणं पिबन्। णत्वे दुरः उपसर्गत्वं न इत्युक्तम्। दुर्यानम्। दुर्यापनम्॥

हलश्चेजुपधात् ८।४।३१॥

हलादेरिजुपधात्कृतस्याचः परस्य णो वा। प्रकोपणीयम् प्रकोपनीयम्। हलः किम्। प्रोहणीयम्। इजुपधात् किम्। प्रवपणीयम्॥

इजादेः सनुमः ८।४।३२॥

सनुमश्चेद्भवति तर्हि इजादेर्हलन्ताद्विहितो यः कृत्तत्स्थस्यैव। प्रेङ्खणीयम्। इजादेः किम्। मगि समर्पणे। प्रमङ्गनीयम्। नुमग्रहणमनुस्वारोपलक्षणम्। अट्कुप्वाङ् इति सूत्रेऽप्येवम्। तेनेह न। प्रेन्वनम्। इह तु स्यादेव। प्रोम्भणम्॥

वा निंसनिक्षनिन्दाम् ८।४।३३॥

एषां नस्य णो वा कृति परे। प्रणिंसितव्यम् प्रनिंसितव्यम्॥

न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् ८।४।३४॥

एभ्यः कृतस्य णो न। प्रभानीयम् प्रभवनीयम्। पूञ एवेह ग्रहणमिष्यते। पूङस्तु प्रपवणीयः सोमः॥

ण्यन्तभादीनामुपसंख्यानम् ॥

प्रभापनीयम्। क्षुभ्नादिषु नस्य णो न इत्युक्तम्। णत्वप्रकरणोपरि

तद्बोध्यम् । यत्वस्यासिद्धत्वेन शकारव्यवधानान्न णत्वम्। प्रख्यानीयम् । कृत्यल्युटो बहुलम् । स्नान्त्यनेन स्नानीयं चूर्णम् । दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः । अचो यत् । चेयम् । जेयम् । अज्ग्रहणं शक्यमकर्तुम् । योगविभागोऽप्येवम् । तव्यदादिष्वेव यतोऽपि सुपठत्वात् ॥

ईद्यति ६ । ४ । ६५ ॥

यति परे आत ईत् । गुणः । देयम् ॥

क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे ६ । १ । ८१ ॥

निपात्येते । अन्यत्र । क्षेयम् । जेयम् ॥

क्रय्यस्तदर्थे ३ । १ । ८२ ॥

क्रेतारः क्रीणीयुरिति बुद्ध्या आपणे प्रसारितं क्रय्यम् क्रेयमन्यत् । ग्लेयम् ॥

तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्यः * ॥

तक्यम् । शस्यम् । चत्यम् । यत्यम् । जन्यम् । जनेर्यद्विधिः स्वरार्थः । ण्यताऽपि रूपसिद्धेः । नच वृद्धिप्रसङ्गः । जनिवध्योश्च इति निषेधात् ॥

हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः * ॥

वध्यः । पक्षे वक्ष्यमाणो ण्यत् । घात्यः । पोरदुपधात् । शप्यम् । लभ्यम् ॥

नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥

अतो न ण्यत् । तव्यदादयस्तु स्युरेव ॥

आङो यि ७ । १ । ६५ ॥

आङः परस्य लभेर्नुम् यादौ प्रत्यये विवक्षिते । नुमि कृतेऽदुपधत्वाभावात् ण्यदेव । आलम्भ्यो गौः ॥

उपात्प्रशंसायाम् ७ । १ । ६६ ॥

उपलम्भ्यः साधुः । स्तुतौ किम् । उपलब्धुं शक्य उपलभ्यः ॥

शकिसहोश्च ३ । १ । ८८ ॥

शक्यम् । सह्यम् ॥

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ३ । १ । १०० ॥

गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् ॥

चरेराङि चागुरौ ॥

आचर्यो देशः । गन्तव्य इत्यर्थः । अगुरौ किम् । आचार्यो गुरुः । यमेर्नियमार्थम् । सोपसर्गान्मा भूदिति । प्रयाम्यम् । निपूर्वात्स्या-देव । तेन न तत्र भवेद्विनियम्यम् इति वार्तिकप्रयोगात् । एतेन अनियम्यस्य नायुक्तिः । त्वया नियम्या ननु दिव्यचक्षुषा इत्यादि व्याख्यातम् । नियमे साधुरिति वा ॥

अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्या निरोधेषु ३।१।१०१॥

वदेर्नञ्युपपदे वदः सुपि इति यत्क्यपोः प्राप्तयोर्यदेव सोऽपि गर्ह्यायामेवेत्युभयार्थं निपातनम् । अवद्यं पापम् । गर्ह्ये किम् । अनुद्यं गुरुनाम । तद्धि न गर्ह्यं वचनानर्हं च । आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च । श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥ इति स्मृतेः । पण्या गौः । व्यवहर्तव्येत्यर्थः । पाण्यमन्यत् । स्तुत्य-र्हमित्यर्थः । अनिरोधोऽप्रतिबन्धस्तस्मिन्विषये वृङो यत् । शतेन वर्या कन्या । वृत्याऽन्या ॥

वह्यं करणम् ३ । १ । १०२ ॥

वहन्त्यनेनेति वह्यं शकटम् । करणं किम् । वाह्यम् । वोढव्यम् ॥

अर्यः स्वामिवैश्ययोः ३ । १ । १०३ ॥

ऋ गतौ अस्माद्यत् । ण्यतोऽपवादः । अर्यः स्वामी वैश्यो वा । अनयोः किम् । आर्यो ब्राह्मणः । प्राप्तव्य इत्यर्थः ॥

उपसर्या काल्याप्रजने ३ । १ । १०४ ॥

गर्भग्रहणे प्राप्तकाला चेदित्यर्थः । उपसर्या गौः । गर्भाधानार्थं वृषभेणोपगन्तुं योग्येत्यर्थः । प्रजने काल्या इति किम् । उपसार्या काशी । प्राप्तव्येत्यर्थः ॥

अजर्यं संगतम् ३ । १ । १०५ ॥

नञ्पूर्वाज्जीर्यतेः कर्तरि यत्संगतं चेद्विशेष्यम् । न जीर्यतीत्यजर्यम् । तेन संगतमार्येण रामाजर्यं कुरु द्रुतम् । इति भट्टिः । मृगैरजर्यं जरसोपदिष्टमदेहबन्धाय पुनर्बबन्ध । इत्यत्र तु संगतमिति विशेष्यमध्याहार्यम् । संगतं किम् । अजरिता कम्बलः । भावे तु संगतकर्तृकेऽपि ण्यदेव । अजार्यं संगतेन ॥

वदः सुपि क्यप् च ३ । १ । १०६ ॥

उत्तरसूत्रादिह भाव इत्यपकृष्यते । वदेर्भावे क्यप्स्याद्यदनुपसर्गे सुप्युपपदे । ब्रह्मोद्यम् । ब्रह्मवद्यम् । ब्रह्म वेदः तस्य वदनमित्यर्थः । कर्मणि प्रत्ययावित्येके । उपसर्गे तु ण्यदेव । अनुवाद्यम् । अपवाद्यम् ॥

भुवो भावे ३ । १ । १०७ ॥

क्यप् स्यात् । ब्रह्मणो भावो ब्रह्मभूयम् । सुपीत्येव । भव्यम् । अनुपसर्ग इत्येव । प्रभव्यम् ॥

हनस्त च ३ । १ । १०८ ॥

अनुपसर्गे सुप्युपपदे हन्तेर्भावे क्यप् स्यात्तकारश्चान्तादेशः । ब्रह्मणो हननं ब्रह्महत्या । स्त्रीत्वं लोकात् ॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ३ । १ । १०९ ॥

एभ्यः क्यप् । ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् । इत्यः । स्तुत्यः । शास इदङ्हलोः । शिष्यः । वृ इति वृञो ग्रहणं न वृङः । वृत्यः । वृङस्तु वार्या ऋत्विजः । आदृत्यः । जुष्यः । पुनः क्यब्वचनं परस्यापि ण्यतो बाधनार्थम् । अवश्यस्तुत्यः । शंसिदुहिगुहिभ्यो वा इति काशिका । शस्यं शंस्यम् । दुह्यं दोह्यम् । गुह्यं गोह्यम् । प्रशस्यस्य श्रः । ईडवन्दवृशंसदुहां ण्यतः इति सूत्रद्वयबलाच्छंसेः सिद्धम् । इतरयोस्तु मूलं मृग्यम् ॥

आङ्पूर्वादञ्जेः संज्ञायामुपसंख्यानम् ॥

अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणादिषु । बाहुलकात्करणे क्यप् । अनिदिताम् इति नलोपः। आज्यम् । ऋदुपधाचाक्लृपिचृतेः । वृत् वृत्यम् । वृध् वृध्यम् । क्लृपिचृत्योस्तु । कल्प्यम् । चर्त्यम् । तपरकरणं किम् । कॄत् कीर्त्यम् । अनित्यण्यन्ताश्चुरादय इति णिजभावे ण्यत् । णिजन्तात्तु यदेव ॥

ई च खनः ३ । १ । १११ ॥

चात्क्यप् । आद्गुणः । खेयम् । इ च इति ह्रस्वः सुपठः ॥

भृञोऽसंज्ञायाम् ३ । १ । ११२ ॥

भृत्याः कर्मकराः। भर्तव्या इत्यर्थः । क्रियाशब्दोऽयं नतु संज्ञा । समश्च बहुलम् । संभृत्याः संभार्याः । असंज्ञायामेव विकल्पार्थमिदं वार्तिकम् । असंज्ञायां किम् । भार्या नाम क्षत्रियाः । अथ कथं भार्या वधूरिति । इह हि संज्ञायां समज इति क्यपा भाव्यम् । संज्ञापर्युदासस्तु पुंसि चरितार्थः। सत्यम् । बिभर्तेःभृ इति दीर्घान्तात्प्रचादेर्वा ण्यत् । क्यप् तु भरतेरेव । तदनुबन्धकग्रहणे इति परिभाषया॥

मृजेर्विभाषा ३ । १ । ११३ ॥

मृजेः क्यब्वा । पक्षे ण्यत् । मृज्यः । चजोः कुघिण्ण्यतोः ॥

निष्ठायामनिट इति वक्तव्यम् ❀ ॥

तेनेह न । गर्ज्यम् । मृजेर्वृद्धिः । मार्ग्यः ॥

न्यङ्क्वादीनां च ७ । ३ । ५३ ॥

कुत्वम् । न्यङ्कुः । नावञ्चेः इत्युप्रत्ययः ॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ३ । १ । ११४ ॥

एते सप्त क्यवन्ता निपात्यन्ते । राज्ञा सोतव्योऽभिषवद्वारा निष्पादयितव्यः । यद्वा । लतात्मकः सोमो राजा । स सूयते कण्ड्यतेऽत्रेत्यधिकरणे क्यन्निपातनाद्दीर्घः । राजसूयः राजसूयम् । अर्धर्चादिः । सरत्याकाशे सूर्यः । कर्तरि क्यन्निपातनादुत्वम् ।

यद्वा। पू प्रेरणे। तुदादिः। सुवति। कर्मणि लोके प्रेरयति। क्यपो रुट्। मृषोपपदाद्वदेः कर्मणि नित्यं क्यप्। मृषोद्यम्। विशेष्यनिघ्नोऽयम्। उच्चशायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः। रोचते रुच्यः। गुपेरादेः कुत्वं च संज्ञायाम्। सुवर्णरजतभिन्नं धनं कुप्यम्। गोप्यमन्यत्। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते कृष्टपच्याः कर्मकर्त्तरि। शुद्धे तु कर्मणि कृष्टपाक्याः। न व्यथन्तेऽव्यथ्याः॥

भिद्योद्ध्यौ नदे ३। १। ११५॥

भिदेरुज्झेश्च क्यप् उज्झेर्धत्वं च। भिनत्ति कूलं भिद्यः। उज्झत्युदकमुद्ध्यः। नदे किम्। भेत्ता। उज्झिता॥

पुष्यसिध्यौ नक्षत्रे ३। १। ११६॥

अधिकरणे क्यन्निपात्यते। पुष्यन्त्यस्मिन्नर्थाः पुष्यः। सिध्यन्त्यस्मिन्सिध्यः॥

इति ८४ अंशाः।

विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु ३। १।११७॥

पूञ्नीञ्जिभ्यः क्यप्। विपूयो मुञ्जः। रज्ज्वादिकरणाय शोधयितव्य इत्यर्थः। विनीयः कल्कः। पिष्ट औषधविशेष इत्यर्थः। पापमिति वा। जित्यो हलिः। बलेन क्रष्टव्य इत्यर्थः। कृष्टसमीकरणार्थं स्थूलकाष्ठम्। अन्यत्तु। विपव्यम्। विनेयम्। जेयम्॥

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ३। १। ११८॥

छन्दसीति वक्तव्यम् ❀॥

प्रतिगृह्यम्। अपिगृह्यम्। लोके तु। प्रतिग्राह्यम्। अपिग्राह्यम्॥

पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ३। १। ११९॥

अवगृह्यम्। प्रगृह्यं पदम्। अस्वैरी परतन्त्रः। गृह्यकाः शुकाः। पञ्जरादिबन्धनेन परतन्त्रीकृता इत्यर्थः। बाह्यायाम्। ग्रामगृह्या सेना। ग्रामबहिर्भूतेत्यर्थः। स्त्रीलिङ्गनिर्देशात्पुन्नपुंसकयोर्न। पक्षे

भवः पक्ष्यः । दिगादित्वाद्यत् । आर्यगृह्यत आर्यगृह्यः । तत्पक्षाश्रित इत्यर्थः ॥

विभाषा कृवृषोः ३ । १ । १२० ॥

क्यप् । कृत्यम् । वृष्यम । पक्षे ऋहलोर्ण्यत् । कार्यम् । वर्ष्यम्॥

युग्यं च पत्रे ३ । १ । १२१ ॥

पत्रं वाहनम् । युग्यो गौः । अत्र क्यप् कुत्वं च निपात्यते ॥

अमावस्यदन्यतरस्याम् ३ । १ । १२२ ॥

अमोपपदाद्वसेरधिकरणे ण्यत् । वृद्धौ सत्यां पाक्षिको ह्रस्वश्च निपात्यते । अमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्कावमावास्या अमावस्या । ऋहलोर्ण्यत् । चजोः इति कुत्वम् । पाक्यम् ॥

पाणौ सृजेर्ण्यद्वाच्यः ❀ ॥

ऋदुपधलक्षणस्य क्यपोऽपवादः । पाणिभ्यां सृज्यते पाणिसर्ग्या रज्जुः ॥

समवपूर्वाच्च ❀ ॥

समवसर्ग्या ॥

न क्वादेः ७ । ३ । ५९ ॥

क्वादेर्धातोश्चजोः कुत्वं न । गर्ज्यम् । वार्तिककारस्तु चजोः इति सूत्रे निष्ठायामनिटः इति पूरयित्वा न क्वादेः इत्यादि मत्याचर्यो। तेन अर्जितर्जिप्रभृतीनां न कुत्वं निष्ठायां सेट्त्वात् । ग्रुचुग्लुचुप्रभृतीनां तु क्वादित्वेऽपि कुत्वं स्यादेव । सूत्रमते तु यद्यपि विपरीतं मार्गं तथापि यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम् ॥

अजिवृज्योश्च ७ । ३ । ६० ॥

न कुत्वम् । समाजः । परिव्राजः ॥

भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः ७ । ३ । ६१ ॥

एतयोरेतौ निपात्यौ । भुज्यतेऽनेनेति भुजः पाणिः । हलश्च

इति घञ्। न्युब्जन्त्यस्मिन्निति न्युब्जः। उपतापो रोगः। पाण्युपतापयोः किम्। भोगः समुद्गः॥

प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे ७।३।६२॥

एतौ निपात्यौ यज्ञाङ्गे। पञ्च प्रयाजाः। त्रयोऽनुयाजाः। यज्ञाङ्गे किम्। प्रयागः। अनुयागः॥

वञ्चेर्गतौ ७।३।६३॥

कुत्वं न। वञ्च्यम्। गतौ किम्। वङ्क्यं काष्ठम्। कुटिलीकृतमित्यर्थः॥

ओक उचः के ७।३।६४॥

उचेर्गुणकुत्वे निपात्येते के परे। ओकः शकुन्तवृषलौ। इगुपधलक्षणः कः। घञा सिद्धे अन्तोदात्तार्थमिदम्॥

ण्य आवश्यके ७।३।६५॥

कुत्वं न। अवश्यपाच्यम्। लुम्पेदवश्यमः। कृत्ये तुं काममनसोरपि। समो वा हिततयोर्मांसस्य पचि युड्घञोः। कर्तुकामः। कर्तुमनाः। सहितं संहितम्। मांस्पचनी मांस्पाकः॥

यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ७।३।६६॥

ण्ये कुत्वं न। याज्यम्। याच्यम्। रोच्यम्। प्रवाच्यं ग्रन्थविशेषः। ऋच अर्च्यम्। ऋदुपधत्वेऽप्यत एव ज्ञापकाण्ण्यत्। त्यजेश्च त्याज्यम्। त्यजिपूज्योश्च इति काशिका। तत्र पूजेर्ग्रहणं चिन्त्यं भाष्यानुक्तत्वात्॥

ण्यत्प्रकरणे त्यजेरुपसंख्यानम् * ॥

इति हि भाष्यम्॥

वचोऽशब्दसंज्ञायाम् ७।३।६७॥

वाच्यम्। शब्दाख्याया तु वाक्यम्॥

प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे ७।३।६८॥

प्रयोक्तुं शक्यः प्रयोज्यः। नियोक्तुं शक्यो नियोज्यो भृत्यः॥

भोज्यं भक्ष्ये ७ । ३ । ६९ ॥

भोग्यमन्यत् ॥

ण्यत्प्रकरणे लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

लाप्यम् । दभिर्धातुष्वपठितोऽपि वार्तिकबलात् स्वीकार्यः। दाभ्यः। ओरावश्यके। लाव्यम्। पाव्यम् ॥

आसुयुवपिरपित्रपिचमश्च ३ । १ । १२६ ॥

षुञ्। आसाव्यम्। यु मिश्रणे। याव्यम्। वाप्यम्। राप्यम्। त्राप्यम्। चाप्यम् ॥

आनाय्योऽनित्ये ३ । १ । १२७ ॥

आङ्पूर्वान्नयतेर्ण्यदायादेशश्च निपात्यते। दक्षिणाग्निविशेष एवेदम्। स हि गार्हपत्यादानीयतेऽनित्यश्च सततमप्रज्वलनात्। आनेयोऽन्यः घटादिः। वैश्यकुलादेरानीतो दक्षिणाग्निश्च ॥

प्रणाय्योऽसंमतौ ३ । १ । १२८ ॥

संमतिः प्रीतिविषयीभवनं कर्म व्यापारः। तथा भोगेष्वादरोऽपि संमतिः। प्रणाय्यश्चोरः। प्रीत्यनर्ह इत्यर्थः। प्रणाय्योऽन्तेवासी। विरक्त इत्यर्थः। प्रणेयोऽन्यः ॥

पाय्यसांनाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ३ । १ । १२९ ॥

मीयतेऽनेन पाय्यं मानम्। ण्यद्धात्वादेः पत्वं च। आतो युक् इति युक्। सम्यक् नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति सांनाय्यं हविर्विशेषः। ण्यदायादेशः समो दीर्घश्च निपात्यते। निचीयतेऽस्मिन्धान्यादिकं निकाय्यो निवासः। अधिकरणे ण्यत् आयो धात्वादेः कुत्वं च निपात्यते। धीयतेऽनया समिदिति धाय्या ऋक् ॥

क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ३ । १ । १३० ॥

कुण्डेन पीयतेऽस्मिन्सोमः कुण्डपाय्यः क्रतुः। संचीयतेऽसौ संचाय्यः ॥

अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ३ । १ । १३१ ॥

अग्निधारणार्थे स्थलविशेष एते साधवः । अन्यत्र तु । परिचेयम् । उपचेयम् । संवाह्यम् ॥

चित्याग्निचित्ये च ३ । १ । १३२ ॥

चीयतेऽसौ चित्योऽग्निः । अग्नेश्चयनमग्निचित्या ॥

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥

त्वया गन्तव्यं गमनीयं गम्यम् । इह लोटा बाधा मा भूदिति पुनः कृत्यविधिः । स्त्र्यधिकारादूर्ध्वं वासरूपविधिः । क्वचिन्न इति ज्ञापयति । तेन क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु न इति सिद्धम् । अर्हे कृत्यतृचश्च । स्तोतुमर्हः स्तुत्यः । स्तुतिकर्मस्तोता स्तुतिकर्ता । लिङा बाधा मा भूदिति कृत्यतृचोर्विधिः ॥

भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ३ । ४ । ६८ ॥

एते कृत्यान्ताः कर्तरि वा निपात्यन्ते । पक्षे तयोरेवेति सकर्मकात्कर्मणि अकर्मकात्तु भावे ज्ञेयाः । भवतीति भव्यः भव्यमनेन वा । गायतीति गेयः साम्नामयं गेयं सामानेन वा इत्यादि । शकि लिङ् च । चात्कृत्याः । वोढुं शक्यो वोढव्यः । वहनीयो वाह्यः । लिङा बाधा मा भूदिति कृत्योक्तिः । लाघवादनेनैव ज्ञापनसंभवे प्रैषादिसूत्रे कृत्याश्च इति सुत्यजम् । अर्हे कृत्यतृचोर्ग्रहणं च इति कृत्यप्रकरणम् । ण्वुल्तृचौ कर्तरि कृत् इति कर्त्रर्थे । युवोरनाकौ । कारकः कर्ता । वोढुमर्हो वोढा । कारिका कर्त्री । गांकुटा इति ङित्त्वम् । कुटिता । अङ्णिदित्युक्तेर्न ङित्त्वम् । कोटकः । विज इट् । विजिता । हनस्तोऽचिण्णलोः । घातकः । आतो युक् । दायकः । नोदात्तोपदेशस्य इति न वृद्धिः । शमकः । दमकः । अनिटस्तु नियामकः । जनिवध्योश्च । जनकः । वध हिंसायाम् । वधकः । रधिजभोरचि । रंधकः । जम्भकः । नेट्यलिटि रधेः । रधिता रद्धा । मस्जिनशोः इति नुम् । मङ्क्ता । नंष्टा नाशिता । रभेरशब्लिटोः । रम्भकः रब्धा । लभेश्च ।

लम्भकः लब्धा । तीपसह । एपिता एषा । सहिता सोढा । दरिद्रातेरालोपः । दरिद्रिता । ण्वुलि न । दरिद्रायकः । कृत्यल्युटः इत्येव सूत्रमस्तु । यत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि स्युरित्यर्थात् । एवं च बहुलग्रहणं योगविभागेन कृन्मात्रस्यार्थव्यभिचारार्थम् । पादाभ्यां ह्रियते पादहारकः । कर्मणि ण्वुल् ॥

क्रमेः कर्तर्यात्मनेपदविषयात्कृत इण्निषेधो वाच्यः ॥

प्रक्रन्ता । कर्तरि इति किम् । प्रक्रमितव्यम् । आत्मनेपद इति किम् । संक्रमिता । अनन्यभावो विषयशब्दः । तेन अनुपसर्गाद्वा इति विकल्पार्हस्य न निषेधः । क्रमिता । तदर्हत्वमेव तद्विषयत्वम् । तेन क्रन्तेत्यपीति केचित् । गमेरिट् इत्यत्र परस्मैपदग्रहणं तङानयोरभावं लक्षयति । संजिगमिषिता । एवं न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः । विवृत्सिता । तङन्ताण्ण्वुल् । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्न वृद्धिः । पापचकः । यङ्लुगन्तात्तु । पापाचकः ॥

इति ८९ अंशः ।

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः । नन्दयतीति नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः मधुसूदनः । विशेषेण भीषयतीति विभीषणः। लवणः । नन्द्यादिगणे निपातनाण्णत्वम् । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विशयी । वृद्ध्यभावो निपातनात् । विषयी । इह पत्वमपि । परिभावी परिभवी । पाक्षिको वृद्ध्यभावो निपात्यते । पचादिराकृतिगणः। शिवशमरिष्टस्य करे, कर्मणि घटो ठच् इति सूत्रयोः करोतेर्घटेश्चाच्प्रयोगात् । अच्प्रत्यये परे यङ्लुग्विधानाच्च । अतः सर्वधातुभ्योऽच् । केषांचित् पाठस्त्वनुबन्धासंजनार्थः । केषांचित्प्रपञ्चार्थः । केषांचिद्बाधकबाधनार्थः । पचतीति पचः। नदट् चोरट् देवट् इत्यादयष्टितः । नदी । चोरी । देवी । दीव्यतेः इगुपध इति कः प्राप्तः।जारभरा । श्वपचा । अनयोः कर्मण्यण् प्राप्तः। न्यङ्क्वादिषु पाठाच्चुपाकोऽपि । यङोऽचि च इति लुक् न धातुलोपः इति गुणवृद्धिनिषेधः । चेक्रियः । नेन्यः । लोलुवः । पोपुवः । मरीमृजः॥

चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक्चाभ्यासस्येति वक्तव्यम् ॥

आगमस्य दीर्घत्वसामर्थ्यादभ्यासह्रस्वो हलादिः शेषश्च न । चराचरः । चलाचलः । पतापतः । वदावदः । हन्तेर्घत्वं च । घत्वमभ्यासस्योत्तरस्य तु अभ्यासाच्च इति कुत्वम् । घनाघनः । पाटेर्णिलुक्चोक्च दीर्घश्चाभ्यासस्य । पाटूपटः । पक्षे चरः । चलः । पतः । वदः । हनः । पाटः । रात्रेः कृति इति वा मुम् । रात्रिंचरो रात्रिचरः । इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः । क्षिपः । लिखः । बुधः । कृशः । ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः । वासरूपविधिना ण्वुल्तृचावपि । क्षेपकः । क्षेप्ता । आतश्चोपसर्गे श्याद्व्यधा इति ण्यस्यापवादः । सुग्लः । प्रज्ञः ॥

पाघ्राध्माधेड्दृशः शः ३ । १ । १३७ ॥

पिबतीति पिबः । जिघ्रः । धमः । धयः । धया कन्या । धेट-ष्टित्वात्स्तनंधयी इति खशीव ङीप्प्राप्तः । खशोऽन्यत्र नेष्यते इति हरदत्तः । पश्यतीति पश्यः । घ्रः संज्ञायां न । व्याघ्रादिभिः इति निर्देशात् ॥

अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ३ । १ । १३८ ॥

शः । लिम्पः । विन्दः । धारयः । पारयः । वेदयः उदेजयः । चेतयः । सातिः सुखार्थः सौत्रो हेतुमण्ण्यन्तः । सातयः । वासरूपन्यायेन क्विपि सात्परमात्मा । सात्वन्तो भक्ताः । षह मर्षणे । चुरादिः हेतुमण्ण्यन्तो वा । साहयः । अनुपसर्गात् किम् । प्रलिपः ॥

नौ लिम्पेर्वाच्यः ॥

निलिम्पा देवाः । गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् । गोविन्दः । अरविन्दः ॥

ददातिदधात्योर्विभाषा ३ । १ । १३९ ॥

शः। ददः। दधः। पक्षे वक्ष्यमाणो णः। अनुपसर्गादित्येव। प्रदः। प्रधः॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ३।१।१४०॥

इतिशब्द आद्यर्थः। ज्वलादिभ्यः कसन्तेभ्यो णः वा पक्षेऽच्। ज्वालः ज्वलः। चालः चलः। अनुपसर्गादित्येव। उज्ज्वलः॥

तनोतेरुपसंख्यानम् ॥

इहानुपसर्गादिति विभाषेति च न संबध्यते। अवतनोतीत्यवतानः॥

श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ३।१।१४१॥

श्यैङ्प्रभृतिभ्यो नित्यं णः। श्यैङोऽस्यतेश्चादन्तत्वात्सिद्धे पृथग्ग्रहणमुपसर्गेकं बाधितुम्। अवश्यायः। प्रतिश्यायः। आत् दायः। धायः। व्याधः। स्रु गतौ। आङ्पूर्वः संपूर्वश्च। आस्रावः। संस्रावः। अत्यायः। अवसायः। अवहारः। लेहः। श्लेषः। श्वासः॥

दुन्योरनुपसर्गे ३।१।१४२॥

णः। दुनोतीति दावः। नीसाहचर्यात्सानुबन्धकाद् दुनोतेरेव णः। दवतेस्तु पचाद्यच्। दवः। नयतीति नायः। उपसर्गे तु। प्रदवः। प्रणयः॥

विभाषा ग्रहः ३।१।१४३॥

णो वा पक्षेऽच्। व्यवस्थितविभाषेयम्। तेन जलचरे ग्राहः। ज्योतिषि ग्रहः। भवतेश्च इति काशिका। भवो देवः संसारश्च। भावाः पदार्थाः। भाष्यमते तु भास्यर्थोणुरादिण्यन्ताद्च्। भावः॥

गेहे कः ३।१।१४४॥

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्। तात्स्थ्याद्गृहा दाराः॥

शिल्पिनि ष्वुन् ३।१।१४५॥

क्रियाकौशलं शिल्पं तद्वति कर्तरि ष्वुन् । नृतिखनिरञ्जिभ्य एव । नर्तकः नर्तकी । खनकः खनकी ॥

असि अकेऽने च रञ्जेर्नलोपो वाच्यः ❀ ॥

रजकः रजकी । भाष्यमते तु नृतिखनिभ्यामेव ष्वुन् । रञ्जेस्तु क्वुन्शिल्पिसंज्ञयोः इति क्वुन् । टाप् । रजिका । पुंयोगे तु । रजकी ॥

गस्थकन् ३ । १ । १४६ ॥

गायतेस्थकन् शिल्पिनि कर्तरि । गाथकः ॥

ण्युट् च ३ । १ । १४७ ॥

गायनः । टित्त्वान्ङीप् गायनी ॥

हश्च व्रीहिकालयोः ३ । १ । १४८ ॥

हाको हाङश्च ण्युट् व्रीहौ काले च कर्तरि । जहात्युदकमिति हायनो व्रीहिः । जहाति भावानिति हायनो वर्षम् । जिहीते प्राप्नोतीति वा ॥

प्रसृल्वः समभिहारे वुन् ३ । १ । १४९ ॥

समभिहारग्रहणेन साधुकारित्वं लक्ष्यते । प्रवकः।सरकः। लवकः । आशिषि च । जीवतात् जीवकः । नन्दतात् नन्दकः । आशीःप्रयोक्तुर्धर्मः आशासितुः । पित्रादेरियमुक्तिः । कर्मण्यण् । कुम्भकारः । आदित्यं पश्यतीत्यादावनभिधानान्न । गङ्गाधरभूधरादौ तु कर्मणः शेषत्वविवक्षाया पचाद्यच् । एवं च धरतीति धरः ततो गङ्गाया धर इति षष्ठीसमास इत्याहुः । परे तु लक्ष्यानुरोधेन पचादिषु विशिष्टपाठकल्पनसामर्थ्यात् अणो बाधस्तेन गङ्गा धरतीत्येव विग्रह इत्याहुः ॥

शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः ❀ ॥

अणोऽपवादार्थं वार्तिकम्।मांसशीला । मांसकामा । मांसभक्षा । कल्याणाचारा ॥

ईक्षिक्षमिभ्यां च ❀ ॥

सुखप्रतीक्षा। बहुक्षमा॥

ह्वावामश्च ३। २। २॥

अण्। कापवादः। स्वर्गह्वायः। तन्तुवायः। धान्यमायः। आतोऽनुपसर्गे कः। गोदः पार्ष्णिनम्॥

कविधौ सर्वत्र संप्रसारणिभ्यो डः ॥

ब्रह्म जिनाति ब्रह्मज्यः।सर्वत्रग्रहणादातश्चोपसर्गे। आह्वः। प्रह्वः॥

सुपि स्थः ३। २। ४॥

सुपीति योगो विभज्यते। सुप्युपपदे आदन्तात्कः। द्वाभ्या पिबतीति द्विपः। समस्थः। विषमस्थः। ततस्थः। सुपि तिष्ठतेः कः। आरम्भसामर्थ्याद् भावे। आखूनामुत्थानमाखूत्थः॥

प्रष्ठोऽग्रगामिनि ८। ३। ९२॥

प्रतिष्ठत इति प्रष्ठो गौः। अग्रतो गच्छतीत्यर्थः। अग्र इति किम्। प्रस्थः॥

अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ८। ३। ९७॥

स्थः इति कप्रत्ययान्तस्यानुकरणम्। षष्ठ्यर्थे प्रथमा। एभ्यः स्थस्य सस्य षः। द्विष्ठः। त्रिष्ठः। इत ऊर्ध्वं कर्मणि सुपीति द्वयमप्यनुवर्तते। तत्राकर्मकेषु सुपीत्यस्य संबन्धः॥

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ३। २। ५॥

तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोराभ्यां कः॥

आलस्यसुखाहरणयोरिति वक्तव्यम् ॥

तुन्दं परिमार्ष्टीति तुन्दपरिमृजोऽलसः। शोकापनुदः। सुखस्याहर्ता। अलसादन्यत्र तुन्दपरिमार्ज एव। यश्च संसारासारत्वोपदेशेन शोकमपनुदति स शोकापनोदः॥

कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥

मूलानि विभुजाति मूलविभुजो रथः । आकृतिगणोऽयम् । महीध्रः । कुध्रः । गिलतीति गिलः ॥

प्रे दाज्ञः ३ । २ । ६ ॥

दारूपाज्ज्ञानातेश्च सोपसृष्टात्कर्मण्युपपदे कः । अणोऽपवादः । सर्वप्रदः । पथिप्रज्ञः । अनुपसर्गे इत्युक्तेः प्रादन्यस्मिन्सुपि न कः । गोसंप्रदायः ॥

समि ख्यः ३ । २ । ७ ॥

गोसंख्यः ॥

इति ८६ अंशाः ।

गापोष्टक् ३ । २ । ८ ॥

अनुपसृष्टाभ्यामाभ्यां टक् कर्मण्युपपदे । सामगः सामगी । उपसर्गे तु सामसङ्गायः ॥

पिबतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम् ॥

सुरापी । शीधुपी । अन्यत्र क्षीरपा ब्राह्मणी । सुरा पाति रक्षतीति सुरापा ॥

हरतेरनुद्यमनेऽच् ३ । २ । ९ ॥

अंशहरः । अनुद्यमने किम् भारहारः ॥

शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटीधनुःषु ग्रहेरुपसंख्यानम् ॥

शक्तिग्रहः । लाङ्गलग्रहः । सूत्रे च धार्येऽर्थे । सूत्रग्रहः । यस्तु सूत्रं केवलमुपादत्ते नतु धारयति तत्राणेव । सूत्रग्राहः ॥

वयसि च ३ । २ । १० ॥

उद्यमनार्थं सूत्रम् । कवचहरः कुमारः ॥

आङि ताच्छील्ये ३ । २ । ११ ॥

पुष्पाण्याहरति तच्छीलः पुष्पाहरः । ताच्छील्ये किम् । भाराहारः ॥

अर्हः ३ । २ । १२ ॥

अर्हतेरच् कर्मण्युपपदेऽणोऽपवादः । पूजार्हा ब्राह्मणी ॥

स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ३ । २ । १३ ॥

हस्तिसूचकयोरिति वक्तव्यम् ❀ ॥

स्तम्बे रमते स्तम्बेरमो हस्ती । तत्पुरुषे कृति इति हलदन्तात् इति वा ङेरलुक् । कर्णेजपः सूचकः ॥

शमिधातोः संज्ञायाम् ३ । २ । १४ ॥

शम्भवः । शम्वदः । पुनर्धातुग्रहणं बाधकविषयेऽपि प्रवृत्त्यर्थम् । कृञो हेत्वादिषु टो माभूत् । शङ्करा नाम परिव्राजिका तच्छीला ॥

अधिकरणे शेतेः ३ । २ । १५ ॥

खे शेते खशयः ॥

पार्श्वादिषूपसंख्यानम् ❀ ॥

पार्श्वाभ्यां शेते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरेण शेते उदरशयः । उत्तानादिषु कर्तृषु । उत्तानः शेते उत्तानशयः । अवमूर्धशयः । अवनतो मूर्धा यस्य सोऽवमूर्धा । अधोमुखः शेत इत्यर्थः ॥

गिरौ डश्छन्दसि ❀ ॥

गिरौ शेते गिरिशः । कथं तर्हि, गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी इति । गिरिरस्यास्तीति विग्रहे लोमादित्वाच्छः ॥

चरेष्टः ३ । २ । १६ ॥

अधिकरण उपपदे । कुरुचरः कुरुचरी ॥

भिक्षासेनादायेषु च ३ । २ । १७ ॥

भिक्षां चरतीति भिक्षाचरः । सेनाचरः । आदायेति ल्यबन्तम् ।

आदायचरः । कथम्, प्रेक्ष्य स्थिता सहचरीम् इति । पचादिषु चर-डिति पाठात् ॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः ३ । २ । १८ ॥

पुरःसरः । अग्रतःसरः । अग्रमग्रेणाग्रे वा सरतीत्यग्रेसरः । सूत्रेऽग्र इत्येदन्तत्वमपि निपात्यते । कथं तर्हि, यूयं तदग्रसरगर्वित-कृष्णसारम् इति । बाहुलकादिति हरदत्तः ॥

पूर्वे कर्तरि ३ । २ । १९ ॥

कर्तृवाचिनि पूर्वशब्द उपपदे सर्तेष्टः । पूर्वः सरतीति पूर्वसरः । कर्तरि किम् । पूर्वं देशं सरतीति पूर्वसारः ॥

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ३ । २ । २० ॥

एषु द्योत्येषु करोतेष्टः । अतः कृकमि इति सः । यशस्करी विद्या । श्राद्धकरः । वचनकरः ॥

दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुःषु ३ । २ । २१ ॥

एषु कृञष्टः अहेत्वादावपि । दिवाकरः । विभाकरः । निशाकरः। कस्कादित्वात्सः । भास्करः । बहुकरः । बहुशब्दस्य वैपुल्यार्थे संख्यापेक्षया पृथग्ग्रहणम् । लिपि-लिबिशब्दौ पर्यायौ । संख्याया एककरः । द्विकरः । कस्कादित्वादहस्करः । नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य इति षत्वम् । धनुष्करः । अरुष्करः ॥

कियत्तद्वहुषु कृञोऽज्विधानम् * ॥

इति वार्तिकम् । किंकरा । यत्करा । तत्करा । हेत्वादौ ट बाधित्वा परत्वादच् । पुयोगे ङीप् । किंकरी ॥

कर्मणि भृतौ ३ । २ । २२ ॥

कर्मशब्द उपपदे करोतेष्टः भृतौ । कर्मकरो भृतकः । कर्मकारोऽन्यः ॥

न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु३।२।२३॥

एषु कृञष्टो न । हेत्वादिषु प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शब्दकार इत्यादि ॥

स्तम्बशकृतोरिन् ३ । २ । २४ ॥

व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् ॥

स्तम्बकरिर्व्रीहिः । शकृत्करिर्वत्सः । व्रीहिवत्सयोः किम् । स्तम्बकारः । शकृत्कारः ॥

हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ३ । २ । २५ ॥

दृतिनाथयोरुपपदयोर्हृञ इन् पशौ कर्तरि । दृतिं हरतीति दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरतीति नाथहरिः । पशौ किम् । दृतिहारः । नाथहारः ॥

फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ३ । २ । २६ ॥

फलानि गृह्णाति फलेग्रहिः । उपपदस्य एदन्तत्वं ग्रहेरिन्प्रत्ययश्च निपात्यते । आत्मानं बिभर्तीति आत्मंभरिः । आत्मनो मुमागमः। भृञ इन् । चात्कुक्षिंभरिः । चान्द्रास्तु आत्मोदरकुक्षिष्विति पेठुः । ज्योत्स्नाकरम्भमुदरंभरयश्चकोराः इति मुरारिः ॥

एजेः खश् ३ । २ । २८ ॥

ण्यन्तादेजेः खश् ॥

अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६ । ३ । ६७ ॥

अरुषो द्विषतः अजन्तस्य च मुमागमः खिदन्त उत्तरपदे न त्वव्ययस्य । शित्वाच्छबादिः । जनमेजयतीति जनमेजयः ॥

वातशुनीतिलशर्धेष्वजधेट्तुदजहातिभ्यः खश उपसंख्यानम् ॥

वातमजा मृगाः ॥

खित्यनव्ययस्य ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः । ततो मुम् । शुनिंधयः । तिलंतुदः । शर्धंजहा माषाः । शर्धोऽपानशब्दस्तं जहातीति विग्रहः । जहातिरन्तर्भावितण्यर्थः ॥

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ३ । २ । २९ ॥

अत्र वार्तिकम् ॥

स्तने धेटो नासिकायां ध्मश्चेति वाच्यम् ❀ ॥

स्तनं धयतीति स्तनंधयः । धेटष्टित्वात्स्तनंधयी । नासिकंधमः । नासिकंधयः ॥

नाडीमुष्टचोश्च ३ । २ । ३० ॥

एतयोरुपपदयोः कर्मणोर्ध्माधेटोः खश् । यथासंख्यं नेष्यते । नाडिंधमः नाडिंधयः । मुष्टिंधमः मुष्टिंधयः ॥

घटीखारीखरीपूपसंख्यानम् ❀ ॥

घटिंधमः घटिंधय इत्यादि । खारी परिमाणविशेषः । खरी गर्दभी ॥

उदिकूले रुजिवहोः ३ । २ । ३१ ॥

उत्पूर्वाभ्यां रुजिवहिभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् । कूलमुद्रुजतीति कूलमुद्रुजः । कूलमुद्वहः ॥

वहाभ्रे लिहः ३ । २ । ३२ ॥

वहः स्कन्धस्तं लेढीति वहंलिहो गौः । अदादित्वाच्छपो लुक् । खशो ङित्त्वान्न गुणः । अभ्रंलिहो वायुः ॥

परिमाणे पचः ३ । २ । ३३ ॥

प्रस्थंपचा स्थाली । खारींपचः कटाहः ॥

मितनखे च ३ । २ । ३४ ॥

मितंपचा ब्राह्मणी । नखंपचा यवागूः । पचिरत्र तापवाची ॥

विध्वरुषोस्तुदः ३ । २ । ३५ ॥

विधुंतुदः । मुमि कृते संयोगान्तस्य लोपः । अरुंतुदः ॥

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ३ । २ । ३६ ॥

असूर्यमित्यसमर्थसमासः । दृशिना नञः संबंधात् । सूर्यं न पश्यन्तीत्यसूर्यंपश्या राजदाराः । ललाटंतपः सूर्यः ॥

उग्रंपश्येरंमदपाणिंधमाश्च ३ । २ । ३७ ॥

एते निपात्यन्ते । उग्रमिति क्रियाविशेषणं तस्मिन्नुपपदे दृशेः खश् । उग्रं पश्यतीत्युग्रंपश्यः । इरोदकं तेन माद्यति दीप्यतेऽग्नेन्धनत्वादिति इरम्मदो मेघज्योतिः।इह निपातनात् श्यन्न। पाणयो ध्मायंतेऽस्मिन्निति पाणिंधमोऽध्वा । अन्धकाराद्यावृत इत्यर्थः । तत्र हि सर्पाद्यपनोदनाय पाणयः शब्द्यन्ते ॥

प्रियवशे वदः खच् ३ । २ । ३८ ॥

प्रियंवदः । वशंवदः ॥

गमेः सुपि वाच्यः ❀ ॥

असंज्ञार्थमिदम् । मितंगमो हस्ती ॥

विहायसो विह इति वाच्यम् । खच्च डिद्वा वाच्यः ❀ ॥

विहंगमः विहंगः । भुजंगमः भुजंगः ॥

द्विषत्परयोस्तापेः ३ । २ । ३९ ॥

खच् ॥

खचि ह्रस्वः ६ । ४ । ९४ ॥

खच्परे णौ उपधाया ह्रस्वः । द्विषन्तं परं वा तापयतीति द्विषंतपः । परंतपः । घटघटीग्रहणाल्लिङ्गविशिष्टपरिभाषाऽनित्या । तेनेह न । द्विषतीं तापयतीति द्विषतीतापः ॥

इति ८७ संज्ञाः ।

वाचि यमो व्रते ३ । २ । ४० ॥

वाक्शब्द उपपदे यमेः खच् व्रते गम्ये ॥

वाचंयमपुरंदरौ च ६ । ३ । ६९ ॥

वाक्पुरोरमन्तत्वं निपात्यते । वाचंयमो मौनव्रती । व्रते किम् । अशक्त्यादिना वाचं यच्छतीति वाग्यामः ॥

पूःसर्वयोर्दारिसहोः ३ । २ । ४१ ॥

पुरं दारयतीति पुरंदरः । सर्वंसहः । सादिग्रहणमसंज्ञार्थम् । भगे च दारेः इति काशिका । बाहुलकेन लब्धमिदमित्याहु' । भगं दारयतीति भगंदरः ॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ३ । २ । ४२ ॥

सर्वंकषः खलः । कूलंकषा नदी । अभ्रंकषो वायुः । करीषंकषा वात्या ॥

मेघर्तिभयेषु कृञः ३ । २ । ४३ ॥

मेघंकरः । ऋतिंकरः । भयंकरः । भयशब्देन तदन्तविधिः । अभयंकरः ।

क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ३ । २ । ४४ ॥

एषु कृञोऽण् चात् खच् । क्षेमंकरः क्षेमकारः । प्रियंकरः प्रियकारः। मद्रंकरः मद्रकारः । वेति वाच्येऽण्ग्रहणं हेत्वादि पुटो माभूदिति । कथं तर्हि, अल्पारम्भा क्षेमकरा' इति । कर्मणः शेषत्वविवक्षायां पचाद्यच् ॥

आशिते भुवः करणभावयोः ३ । २ । ४५ ॥

आशितशब्द उपपदे भवतेः खच् । आशितो भवत्यनेनाशितंभव ओदनः । आशितस्य भवनमाशितंभवः ॥

संज्ञायां भृतॄवृजिधारिसहितपिदमः ३ । २ । ४६ ॥

विश्वं बिभर्तीति विश्वंभरः विश्वंभरा । रथंतरं साम । इह रथेन तरतीति व्युत्पत्तिमात्रं न त्ववयवार्थानुगमः । पतिंवरा कन्या । शत्रुंजयो हस्ती । युगंधरः पर्वतः । शत्रुंतपः। शत्रुंसहः । अरिंदमः। दमिः शमनायां तेन सकर्मक इत्युक्तम् । मतांतरे तु अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र दमिः ॥

गमश्च ३ । २ । ४७ ॥

सुतंगमः ॥

अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ३ । २ । ४८ ॥

संज्ञायामिति निवृत्तम् । एषु गमेर्डः । डित्त्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः । अन्तं गच्छतीत्यन्तग इत्यादि ॥

सर्वत्र पन्नयोरुपसंख्यानम् * ॥

सर्वत्रगः । पन्नं पतितं गच्छतीति पन्नगः । पन्नमिति पद्यतेः क्तान्तं क्रियाविशेषणम् ॥

उरसो लोपश्च * ॥

उरसा गच्छतीत्युरगः ॥

सुदुरोरधिकरणे * ॥

सुखेन गच्छत्यत्र सुगः । दुर्गः ॥

अन्यत्रापि दृश्यत इति वक्तव्यम् * ॥

ग्रामगः ॥

डे च विहायसो विहादेशो वक्तव्यः * ॥

विहगः ॥

आशिषि हनः ३ । २ । ४९ ॥

शत्रुं वध्याच्छत्रुहः । आशिषि किम् । शत्रुघातः ॥

दारावाहनोऽणन्तस्य च टः संज्ञायाम् * ॥

दारुशब्द उपपदे आङ्पूर्वाद्धन्तेरण्टकारश्चान्तादेशो वक्तव्य इत्यर्थः । दार्वाघाटः ॥

चारौ वा * ॥

चार्वाघाटः चार्वाघातः ॥

कर्मणि समि च * ॥

कर्मण्युपपदे संपूर्वाद्धन्तेरुक्तं वेत्यर्थः । वर्णान्संहंतीति वर्णसंघाटः । पदसंघाटः । वर्णसंघातः । पदसंघातः ॥

अपे क्लेशतमसोः ३ । २ । ५० ॥

अपपूर्वाद्धन्तेर्डः । अनाशीरर्थमिदम् । क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहः सूर्यः ॥

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ३ । २ । ५१ ॥

कुमारघाती । शिरसः शीर्षभावो निपात्यते । शीर्षघाती ॥

लक्षणे जायापत्योष्टक् ३ । २ । ५२ ॥

हन्तेष्टग्लक्षणवति कर्त्तरि । जायाघ्नो ना । पतिघ्नी स्त्री ॥

अमनुष्यकर्तृके च ३ । २ । ५३ ॥

जायाघ्नस्तिलकालकः । पतिघ्नी पाणिरेखा । पित्तघ्नं घृतम् । अमनुष्य इति किम् । आखुघातः शूद्रः । अथ कथं बलभद्रः प्रलम्बघ्नः शत्रुघ्नः कृतघ्न इत्यादि मूलविभुजादित्वात्सिद्धम् । चोरघाती नगरघाती हस्तीति तु बाहुलकादणि ॥

शक्तौ हस्तिकवाटयोः ३ । २ । ५४ ॥

हन्तेष्टक् शक्तौ द्योत्यायाम् । मनुष्यकर्तृकार्थमिदम् । हस्तिघ्नो ना । कवाटघ्नश्चोरः । कपाटेति पाठान्तरम् ॥

पाणिघताडघौ शिल्पिनि ३ । २ । ५५ ॥

हन्तेष्टक् टिलोपो घत्वं च निपात्यते । पाणिताडयोरुपपदयोः । पाणिघः । ताडघः । शिल्पिनि किम् । पाणिघातः । ताडघातः ॥

राजघ उपसंख्यानम् * ॥

राजानं हंति राजघः ॥

आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन् ३ । २ । ५६ ॥

एषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु कर्मसूपपदेषु कृञः ख्युन् । अनाढ्य-

माढ्यं कुर्वन्त्यनेन आढ्यंकरणम्। अच्वौ किम्। आढ्यीकुर्वन्त्यनेन। इह प्रतिषेधसामर्थ्याल्ल्युडपि नेति काशिका। भाष्यमते तु ल्युट् स्यादेव। अच्वावित्युत्तरार्थम्॥

कर्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ३। २। ५७॥

आढ्यादिषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु भवतेरेतौ स्तः। अनाढ्य आढ्यो भवतीति आढ्यंभविष्णुः। आढ्यंभावुकः। स्पृशोऽनुदके क्विन्। घृतस्पृक्। कर्मणीति निवृत्तम्। मन्त्रेण स्पृशतीति मन्त्रस्पृक्। ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च। व्याख्यातम्। त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च॥

समानान्ययोश्चेति वाच्यम् *॥

सदृक्। सदृशः। अन्यादृक्। अन्यादृशः॥

क्सोऽपि वाच्यः *॥

तादृक्षः। सदृक्षः। अन्यादृक्षः॥

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ३। २। ६१॥

एभ्यः क्विप् उपसर्गे सत्यसति च सुप्युपपदे। द्युसत्। उपनिषत्। अण्डसूः। प्रसूः। मित्रद्विट्। प्रद्विट्। मित्रध्रुक्। प्रध्रुक्। गोधुक्। प्रधुक्। अश्वयुक्। प्रयुक्। वेदवित्। निविदित्यादि॥

अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः *॥

अग्रणीः। ग्रामणीः॥

भजो ण्विः ३। २। ६२॥

सुप्युपसर्गे चोपपदे भजेर्ण्विः। अंशभाक्। प्रभाक्॥

अदोऽनन्ने ३। २। ६८॥

विट्। आममत्ति आमात्। सस्यात्। अनन्ने किम्। अन्नादः॥

क्रव्ये च ३। २। ६९॥

अदेर्विट् । पूर्वेण सिद्धे वचनमणबाधनार्थम् । क्रव्यात् आममांसभक्षकः । कथं तर्हि, क्रव्यादोऽस्रप आशरः इति । पक्वमांसशब्द उपपदेऽण् । उपपदस्य क्रव्यादेशः पृषोदरादित्वात् ॥

दुहः कब्घश्च ३ । २ । ७० ॥

कामदुघा ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३ । २ । ७५ ॥

छन्दसीति निवृत्तम् । मनिन्क्वनिब्वनिब्विच् एते प्रत्यया धातोः ॥

नेड्वशि कृति ७ । २ । ८ ॥

वशादेः कृत इण्न । शॄ सुशर्मा । प्रातरित्वा ॥

विड्वनोरनुनासिकस्यात् ६ । ४ । ४१ ॥

विजायत इति विजावा । ओणृ अवावा । विच् । रोट्, रेट्, सुगण् ॥

क्विप् च ३ । २ । ७६ ॥

अयमपि दृश्यते । सत्सूद्विष इति त्वस्यैव प्रपञ्चः । उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ॥

इति ८८ अंशाः ।

अन्तः ८ । ४ । २० ॥

पदान्तस्यानितेर्नस्य णत्वं स्यादुपसर्गस्थान्निमित्तात्परश्चेत् । हे प्राण् । शास इत् इतीत्त्वम् । मित्राणि शास्ति मित्रशीः ॥

आशासः क्वौ उपधाया इत्त्वं वाच्यम् ॥ ॥

आशीः । इत्त्वोत्त्वे । गीः । पूः ॥

इस्मन्त्रन्क्विपु च ६ । ४ । ९७ ॥

एषु छादेर्ह्रस्वः । तनुच्छत् । अनुनासिकस्य क्वि इति दीर्घः । मोनो धातोः । प्रतान् । प्रशान् । च्छ्वोः इत्यूठ् । अक्षद्यूः । ज्वरत्वर इत्यूठ् । जूः । जुरौ । जुरः । तूः । सूः । ऊठ् वृद्धिः । जना-

नवतीति जनौः । जनावौ । जनावः । मूः । भुवौ । भुवः । सुभूः । सुभ्वौ । सुभ्वः । राल्लोपः । मूर्च्छी । मूः । मुरौ । मुरः । धुर्वी धूः ॥

गमः क्वौ ६ । ४ । ४० ॥

अनुनासिकलोपः । अङ्गत् ॥

गमादीनामिति वक्तव्यम् ❋ ॥

परीतत् । संयत् । सुनत् ॥

ऊङ् च गमादीनामिति वक्तव्यं लोपश्च ❋ ॥

अग्रेगूः । अग्रेभूः ॥

स्थः क च ३ । २ । ७७ ॥

चात्क्किप् । संस्थः। संस्थाः। शमिधातोः इत्यचं बाधितुं सूत्रम् । सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये । उष्णभोजी । शीतभोजी । अजातौ किम् । ब्राह्मणानामन्त्रयिता । ताच्छील्ये किम् । उष्णं भुङ्क्ते कदाचित्।इह वृत्तिकारेणोपसर्गभिन्न एव सुपि णिनिरिति व्याख्याय उत्प्रतिभ्यामाङि सर्तेरुपसंख्यानमिति पठितम् । हरदत्तमाधवादिभिश्च तदेवानुसृतम् । एतच्च भाष्यविरोधादुपेक्ष्यम् । प्रसिद्धश्चोपसर्गेऽपि णिनिः । स बभूवोपजीविनाम् । अनुयायिवर्गः । पतत्यधो धाम विसारि । न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः इत्यादौ ॥

साधुकारिण्युपसंख्यानम् ❋ ॥

ब्रह्मणि वदः ❋ ॥

अताच्छील्यार्थं वार्तिकद्वयम् । साधुदायी । ब्रह्मवादी । कर्तर्युपमाने । उपपदार्थः कर्ता प्रत्ययार्थस्य कर्तुरुपमानम् । उष्ट्र इव क्रोशति उष्ट्रक्रोशी । ध्वाङ्क्षरावी । अताच्छील्यार्थं जात्यर्थं च सूत्रम् । कर्तरि किम् । अपूपानिव भक्षयति माषान् । उपमाने किम् । उष्ट्रः क्रोशति । व्रते । स्थण्डिलशायी । बहुलमाभीक्ष्ण्ये । क्षीरपायिण उशीनराः ॥

मनः ३ । २ । ८२ ॥

सुपि मन्यतेर्णिनिः । दर्शनीयमानी ॥

आत्ममाने खश्च ३ । २ । ८३ ॥

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् चाणिनिः। पण्डितमात्मानं मन्यते पण्डितंमन्यः । पण्डितमानी । खित्यनव्ययस्य। कालिंमन्या । अनव्ययस्य किम् । दिवामन्या ॥

इच एकाचोऽम्प्रत्ययवच्च ६ । ३ । ६८ ॥

इजन्तादेकाचोऽम्स च स्वाद्यम्वत्खिदन्ते परे । औतोम्शसोः । गांमन्यः । वाम्शसोः । स्त्रियंमन्यः स्त्रींमन्यः । नृ । नरंमन्यः । सुवंमन्यः । श्रियमात्मानं मन्यते श्रिमन्यं कुलम् । भाष्यकारवचनाच्छ्रीशब्दस्य ह्रस्वो मुममोरभावश्च ॥

भूते ३ । २ । ८४ ॥

अधिकारोऽयम् । वर्तमाने लट् इति यावत् ॥

करणे यजः ३ । २ । ८५ ॥

करण उपपदे भूतार्थाद्यजेर्णिनिः कर्तरि । सोमेनेष्टवान्सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ॥

कर्मणि हनः ३ । २ । ८६ ॥

पितृव्यघाती । कर्मणीत्येतत् सहे च इति यावदधिक्रियते ॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ३ । २ । ८७ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु हन्तेर्भूते क्विप् । ब्रह्महा । भ्रूणहा । वृत्रहा । क्विप् च इत्येव सिद्धे नियमार्थमिदम् । ब्रह्मादिष्वेव हन्तेरेव भूत एव क्विवेवेति चतुर्विधोऽत्र नियम इति काशिका । ब्रह्मादिष्वेव क्विवेवेति द्विविधो नियम इति भाष्यम् ॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ३ । २ । ८९ ॥

सुकर्मादिषु च कृञः क्विप् । त्रिविधोऽत्र नियम इति काशिका । सुकृत् । कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् । क्विवेवेति नियमात्कर्म कृतवानित्यनाण्न । कृञ एवेति नियमान्मन्त्रमधीत-

यान्मन्त्राध्यायः अत्र न क्विप् । भूत एवेति नियमान्मन्त्रं करोति करिष्यति वेति विवक्षायां न क्विप् । स्वादिष्वेवेति नियमाभावाद-न्यस्मिन्नप्युपपदे क्विप् । शास्त्रकृत् । भाष्यकृत् ॥

सोमे सुञः ३ । २ । ९० ॥

सोमसुत् । चतुर्विधोऽत्र नियम इति काशिका । एवमुत्तरसूत्रेऽपि ॥

अग्नौ चेः ३ । २ । ९१ ॥

अग्निचित् ॥

कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ३ । २ । ९२ ॥

कर्मण्युपपदे कर्मण्येव कारके चिनोतेः क्विप् अग्न्याधारस्थलविशेषस्याख्यायाम् । श्येन इव चितः श्येनचित् ॥

कर्मणीनिविक्रियः ३ । २ । ९३ ॥

कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीणातेरिनिः ॥

कुत्सितग्रहणं कर्तव्यम् * ॥

सोमविक्रयी । घृतविक्रयी ॥

दृशेः क्वनिप् ३ । २ । ९४ ॥

कर्मणि भूत इत्येव । पारं दृष्टवान् पारदृश्वा ॥

राजनि युधि कृञः ३ । २ । ९५ ॥

क्वनिप् । युधिरन्तर्भावितण्यर्थः । राजानं योधितवान् राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

सहे च ३ । २ । ९६ ॥

कर्मणीति निवृत्तम् । सहयुध्वा । सहकृत्वा ॥

सप्तम्यां जनेर्डः ३ । २ । ९७ ॥

सरसिजम् । मन्दुरायां जातो मन्दुरजः । ङ्याप्योः इति ह्रस्वः॥

पञ्चम्यामजातौ ३ । २ । ९८ ॥

जातिवाचिशब्दवर्जिते पञ्चम्यन्त उपपदे जनेर्डः । संस्कारजः । अदृष्टजः ॥

उपसर्गे च संज्ञायाम् ३ । २ । ९९॥

प्रजा स्यात्संततौ जने ॥

अनौ कर्मणि ३ । २ । १००॥

अनुपूर्वाज्जनेः कर्मण्युपपदे डः । पुमांसमनुरुध्य जाता पुमनुजा॥

अन्येष्वपि दृश्यते ३ । २ । १०१॥

अन्येष्वप्युपपदेषु जनेर्डः । अजः । द्विजः । ब्राह्मणजः । अपि-शब्दः सर्वोपाधिव्यभिचारार्थः । तेन धात्वन्तरादपि कारकान्तरे-ष्वपि क्वचित् । परितः खाता परिखा । क्तक्तवतू निष्ठा । निष्ठा । स्नातं मया । स्तुतस्त्वया विष्णुः । विष्णुर्विश्वं कृतवान् ॥

निष्ठायामण्यदर्थे ६ । ४ । ६० ॥

ण्यदर्थो भावकर्मणी ततोऽन्यत्र निष्ठायां क्षियो दीर्घः ॥

क्षियो दीर्घात् ८ । २ । ४६ ॥

दीर्घात् क्षियो निष्ठातस्य नः । क्षीणवान् । भावकर्मणोस्तु क्षितः कामो मया । श्र्युकः किति । श्रितः श्रितवान् । भृतः भृतवान् । क्षुतः ॥

ऊर्णोतेर्णुवद्भावो वाच्यः ॥

तेन एकाच्त्वान्नेट् । ऊर्णुतः । नुतः । नूतः ॥

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८ । २ । ४२॥

रेफदकाराभ्यां परस्य निष्ठातस्य नः निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दकारस्य च । शॄ ऋत इत् रपरः णत्वम् । शीर्णः । बहिरङ्ग-त्वेन वृद्धेरसिद्धत्वान्नेह । कृतस्यापत्यं कार्तिः । भिन्नः । छिन्नः ॥

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८ । २ । ४३ ॥

निष्ठातस्य नः । द्राणः । स्त्यानः । ग्लानः ॥

ल्वादिभ्यः ८ । २ । ४४ ॥

एकविंशतेर्लूञादिभ्यः प्राग्वत् । लूनः । ज्या॥ग्रहिज्या । जीनः।

दुग्वोर्दीर्घश्च । दु गतौ । दूनः । टुदु उपताप इत्ययं तु न गृह्यते । सानुबन्धकत्वात् । मृदुतया दुतया इति माघः । गूनः । पूञो विनाशे । पूना यवाः । विनष्ट इत्यर्थः । पूतमन्यत् । सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य । सिनो ग्रासः । ग्रास इति किम् । सिता पाशेन सूकरी । कर्मकर्तृक इति किम् । सितो ग्रासो देवदत्तेन ॥

ओदितश्च ८ । २ । ४५ ॥

भुजो भुग्नः । टुओश्वि उच्छूनः । ओहाक् प्रहीणः । स्वादय ओदितः इत्युक्तम् । सूनः सूनवान् । दूनः दूनवान् । ओदिन्मध्ये डीङः पाठसामर्थ्यान्नेट् । उड्डीनः ॥

द्रवमूर्तिस्पर्शयोः श्यः ६ । १ । २४ ॥

द्रवस्य मूर्तौ काठिन्ये स्पर्शे चार्थे श्यैङः संप्रसारणं निष्ठायाम्॥

श्योऽस्पर्शे ८ । २ । ४७ ॥

श्यैङो निष्ठातस्य नः स्यादस्पर्शेऽर्थे । हल इति दीर्घः । शीनं घृतम् । अस्पर्शे किम् । शीतं जलम् । द्रवमूर्तिस्पर्शयोः किम् । संश्यानो वृश्चिकः । शीतात्संकुचित इत्यर्थः ॥

प्रतेश्च ६ । १ । २५ ॥

प्रतिपूर्वस्य श्यः संप्रसारणं निष्ठायाम् । प्रतिशीनः ॥

विभाषाऽभ्यवपूर्वस्य ६ । १ । २६॥

श्यः संप्रसारणं वा । अभिश्यानं अभिशीनं घृतम् । अवश्यानोऽवशीनो वृश्चिकः । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनेह न । समवश्यानः ॥

इति ८९ अंशाः ।

अञ्चोऽनपादाने ८ । २ । ४८ ॥

अञ्चो निष्ठातस्य नः स्यान्नत्वपादाने ॥

यस्य विभाषा ७ । २ । १५ ॥

यस्य क्वचिद्विभाषयेड्विहितस्ततो निष्ठाया इण्न । उदितो वा

इति क्त्वायां वेट्त्वादिह नेट् । समक्नः । अनपादाने किम् । उद्क्तमुदकं कूपात् । नत्वस्यासिद्धत्वात् व्रश्च इति षत्वे प्राप्ते ॥

निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वाच्यः ॥

वृक्णः । वृक्णवान् ॥

परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ८ । ३ । ७५ ॥

पूर्वेण मूर्धन्ये प्राप्ते तदभावो निपात्यते । परिस्कन्दः । प्राच्येति किम् । परिष्कन्दः परिस्कन्दः । परेश्च इति विकल्पः । स्तन्भेः इति षत्वे प्राप्ते ॥

प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ८ । ३ । ११४ ॥

अत्र षत्वं न ॥

दिवोऽविजिगीषायाम् ८ । २ । ४९ ॥

दिवो निष्ठातस्य नः अविजिगीषायाम् । द्यूनः । विजिगीषायां तु द्यूतम् ॥

निर्वाणोऽवाते ८ । २ । ५० ॥

अवात इति च्छेदः । निःपूर्वाद्वातेर्निष्ठातस्य नत्वं वातश्चेत्कर्ता न । निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा । वाते तु निर्वातो वातः ॥

शुषः कः ८ । २ । ५१ ॥

निष्ठातस्य । शुष्कः ॥

पचो वः ८ । २ । ५२ ॥

पक्वः ॥

क्षायो मः ८ । २ । ५३ ॥

क्षामः ॥

स्त्यः प्रपूर्वस्य ६ । १ । २३ ॥

प्रात्स्त्यः । संप्रसारणं निष्ठायाम् ॥

प्रस्त्योऽन्यतरस्याम् ८ । २ । ५४ ॥

निष्ठातस्य मो वा । प्रस्तीमः । प्रस्तीतः । प्रात् । किम् स्त्यानः ॥

अनुपसर्गात्फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ८।२।५५॥

अफिला फुल्लः। निष्ठातस्य लत्वं निपात्यते। क्तवत्वेकदेशस्यापीदं निपातनमिष्यते। फुल्लवान्। क्षीवादिषु तु क्तमत्ययस्यैव तलोपः। तस्यासिद्धत्वात्प्राप्तस्येटोऽभावश्च निपात्यते। क्षीबो मत्तः। कृशस्तनुः। उल्लाघो नीरोगः। अनुपसर्गात् किम्॥

आदितश्च ७।२।१६॥

आकारेतो निष्ठाया इण्न॥

ति च ७।४।८९॥

चरफलोरत उत् तादौ किति। प्रफुल्तः। प्रक्षीबितः। प्रकृशितः। प्रोल्लाघितः। कथं तर्हि, लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् इति। फुल्ल विकसने। पचाद्यच्। सूत्रं तु फुल्तादिनिवृत्त्यर्थम्॥

उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम्*॥

नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ८।२।५६॥

एभ्यो निष्ठातस्य नो वा। नुन्नः नुत्तः। विद विचारणे। रौधादिक एव गृह्यते उन्दिना परेण साहचर्यात्। विन्नः वित्तः। वेत्तेस्तु विदितः। विद्यतेर्विन्नः। उन्दी॥

श्वीदितो निष्ठायाम् ७।२।१४॥

श्वयतेरीदितश्च निष्ठाया इण्न। उन्नः उत्तः। त्राणः त्रातः। घ्राणः घ्रातः। ह्रीणः ह्रीतः॥

न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् ८।२।५७॥

एभ्यो निष्ठातस्य नत्वं न। ध्यातः। ख्यातः। पूर्तः। राल्लोपः। मूर्तः। मत्तः॥

वित्तो भोगप्रत्यययोः ८।२।५८॥

विन्दतेर्निष्ठान्तस्य निपातोऽयं भोग्ये प्रतीते चार्थे। वित्तं धनम्। वित्तः पुरुषः। अनयोः किम्। विन्नः। विभाषा गमहन इति कर्मी वेट्त्वादिह नेट्॥

भित्तं शकलम् ८ । २ । ५९ ॥

भिन्नमन्यत् ॥

ऋणमाधमर्ण्ये ८ । २ । ६० ॥

ऋधातोः क्ते. तकारस्य नत्वं निपात्यते आधमर्ण्यव्यवहारे । ऋतमन्यत् ॥

स्फायः स्फी निष्ठायाम् ६ । १ । २२ ॥

स्फीतः ॥

इण् निष्ठायाम् ७ । २ । ४७ ॥

निरः कुषो निष्ठाया इट् । यस्य विभाषा इति निषेधे प्राप्ते पुनर्विधिः । निष्कुषितः ॥

वसतिक्षुधोरिट् ७ । २ । ५२ ॥

आभ्यां क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् । उषितः । क्षुधितः ॥

अञ्चेः पूजायाम् ७ । २ । ५३ ॥

पूजार्थादञ्चेः क्त्वानिष्ठयोरिट् । अञ्चितः । गतौ त्वक्तः ॥

लुभो विमोहने ७ । २ । ५४ ॥

लुभः क्त्वानिष्ठयोर्नित्यमिट् नतु गार्ध्ये । लुभितः । गार्ध्ये तु लुब्धः ॥

क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः ७ । २ । ५० ॥

इड्वा । क्लिश उपतापे । नित्यं प्राप्ते । क्लिशू विबाधने । अस्य क्त्वायां विकल्पे सिद्धेऽपि निष्ठायां निषेधे प्राप्ते विकल्पः । क्लिशितः क्लिष्टः ॥

पूङश्च ७ । २ । ५१ ॥

पूङः क्त्वानिष्ठयोरिड्वा ॥

पूङः क्त्वा च १ । २ । २२ ॥

पूङः क्त्वा निष्ठा च सेट् किन्न । पवितः । पूतः । क्त्वाग्रहणमुत्तरार्थम् । नोपधात इत्यत्र हि क्त्वैव संबध्यते ॥

निष्ठा शीङ्स्विदिमिदिक्ष्विदिधृषः १ । २ । १९ ॥

एभ्यः सेण्निष्ठा किन्न । शयितः शयितवान् । अनुबन्धनिर्देशो यङ्लुङ्निवृत्त्यर्थः । शेशयितः शेशयितवान् ॥

आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ❀ ॥

आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च ३ । ४ । ७१ ॥

आदिकर्मणि यः क्तः स कर्तरि चाद्भावकर्मणोः ॥

विभाषा भावादिकर्मणोः ७ । २ । १७ ॥

भाव आदिकर्मणि चादितो निष्ठाया इड्वा । प्रस्वेदितश्चैत्रः । प्रस्वेदितं तेन । ञिष्विदा इति भ्वादिरत्र गृह्यते । ञीङ्भिः साहचर्यात् । स्विद्यतेस्तु स्विदित इत्येव । ञिमिदा-ञिक्ष्विदा दिवादी भ्वादी च । प्रमेदितः प्रमेदितवान् । प्रक्ष्वेदितः प्रक्ष्वेदितवान् । प्रधर्षितः प्रधर्षितवान् । धर्षितं तेन । सेट् किम् । प्रस्विन्नः । प्रस्विन्नं तेनेत्यादि ॥

मृषस्तितिक्षायाम् १ । २ । २० ॥

सेण्निष्ठा किन्न । मर्षितः मर्षितवान् । क्षमायां किम् । अपमृषितं वाक्यम् । अविस्पष्टमित्यर्थः ॥

उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् १ । २ । २१ ॥

उदुपधात्परा भावादिकर्मणोः सेण्निष्ठा वा किन्न । द्युतितं द्योतितम् । मुदितं मोदितं साधुना । प्रद्युतितः प्रद्योतितः । प्रमुदितः प्रमोदितः साधुः । उदुपधात् किम् । विदितम् । भावेत्यादि किम् । रुचितं कार्षापणम् । सेट् किम् । कुष्टम् । शब्विकरणेभ्य एवेष्यते नेह । गुध्यतेर्गुधितम् ॥

निष्ठायां सेटि ६ । ४ । ५२ ॥

णेर्लोपः । भावितः भावितवान् । श्वीदितः इति नेट् संप्रसारणम् । शूनः । दीप्तः । गुहू गूढः । वनु वतः । तनु ततः । पतेः सनि वेट्त्वादिडभावे प्राप्ते द्वितीया श्रित इति सूत्रे निपातनादिट् ।

पतितः । सेऽसिचि इति वेद्वत्वात्सिद्धे कृन्तत्यादीनामीदित्त्वेनानित्यत्वज्ञापनाद्वा । तेन धावितमिभराजधिया इत्यादि । यस्य विभाषा इत्यत्रैकाच इत्येव । दरिद्रितः ॥

क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्धफाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्टस्वरानायासभृशेषु ७ । २ । १८ ॥

क्षुब्धादीन्यष्टावनिड्कानि निपात्यन्ते समुदायेन मन्थादिषु वाच्येषु । द्रवद्रव्यसंपृक्ताः सक्तवो मन्थः मन्थनदण्डश्च । क्षुब्धो मन्थश्चेत् । स्वान्तं मनः । ध्वान्तं तमः । लग्नं सक्तम् । निष्ठानत्वमपि निपातनात् । म्लिष्टमविस्पष्टम् । विरिब्धः स्वरः । म्लेच्छ रेभृ अनयोरुपधाया इत्वमपि निपात्यते । फाण्टमनायाससाध्यः कषायविशेषः । माधवस्तु नवनीतभावात्प्रागवस्थापन्नं द्रव्यं फाण्टमिति वेदभाष्य आह । बाढं भृशम् । अन्यत्र तु क्षुभितम् । क्षुब्धो राजेति त्वागमशास्त्रस्यानित्यत्वात् । स्वनितम् । ध्वनितम् । लगितम् । म्लेच्छितम् । विरेभितम् । फाणितम् । वाहितम् ॥

धृषिशसी वैयात्ये ७ । २ । १९ ॥

एतौ निष्ठायामविनय एवानिटौ । धृष्टः । विशस्तः । अन्यत्र धर्षितः । विशसितः । भावादिकर्मणोस्तु वैयात्ये धृषिर्नास्ति । अत एव नियमार्थमिदं सूत्रमिति वृत्तिः । धृषेरादित्त्वे फलं चिन्त्यमिति हरदत्तः । माधवस्तु भावादिकर्मणोरवैयात्ये विकल्पमाह । धृष्टं धर्षितम् । प्रधृष्टः प्रधर्षितः ॥

दृढस्थूलबलयोः ७ । २ । २० ॥

स्थूले बलवति च निपात्यते । दृह-दृहि वृद्धौ । क्तस्येडभावः तस्य ढत्वं हस्य लोपः इदितो नलोपः । दृहितः । दृंहितोऽन्यः ॥

प्रभौ परिवृढः ७ । २ । २१ ॥

वृह-वृहि वृद्धौ । निपातनं प्रागवत् । परिवृहितः । परिवृंहितोऽन्यः ॥

कृच्छ्रगहनयोः कषः ७ । २ । २२ ॥

कषो निष्ठाया इण्न एतयोरर्थयोः । कष्टं दुःखं तत्कारणं च । स्या-कष्टं कृच्छ्रमाभीलम् । कष्टो मोहः । कष्टं शास्त्रम् । दुरवगाहमित्यर्थः । कषितमन्यत् ॥

घुषिरविशब्दने ७ । २ । २३ ॥

घुषिर्निष्ठायामनिट् । घुष्टा रज्जुः । अविशब्दने किम् । घुषितं वाक्यम् । शब्देन प्रकटीकृताभिप्रायमित्यर्थः ॥

अर्देः संनिविभ्यः ७ । २ । २४ ॥

एतत्पूर्वादर्देर्निष्ठाया इण्न । समर्णः । न्यर्णः । व्यर्णः । अर्दितोऽन्यः ॥

अभेश्चाविदूर्ये ७ । २ । २५ ॥

अभ्यर्णम् । नातिदूरमासन्नं वा । अभ्यर्दितमन्यत् ॥

णेरध्ययने वृत्तम् ७ । २ । २६ ॥

ण्यन्ताद्वृतेः क्तस्येडभावो णिलुक्चाधीयमानेऽर्थे । वृत्तं छन्दश्छात्रेण संपादितम् अधीतमिति यावत् । अन्यत्र तु वर्तिता रज्जुः॥

शृतं पाके ६ । १ । २७॥

श्रातिश्रपयत्योः क्ते शृभावो निपात्यते क्षीरहविषोः पाके । शृतं क्षीरम् । स्वयमेव विक्लिन्नं पक्वं वेत्यर्थः । क्षीरहविर्भ्यामन्यत्तु । श्राणं श्रपितम् ॥

वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः ७ ।२।२७॥

एते णिचि निष्ठान्ता वा निपात्यन्ते । पक्षे, दमितः । शमितः । पूरितः । दासितः । स्पाशितः । छादितः । ज्ञपितः ॥

इति ९० अंशाः । इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पाद' ।

रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ७ । २ । २८ ॥

एभ्यो निष्ठाया इड्वा । रुषितः रुष्टः । आन्तः अमितः । तूर्णः त्वरितः । अस्यादिस्त्वे फलं मंदम् । संघुष्टः संघुषितः । आस्वान्तः आस्वनितः ॥

हृषेर्लोमसु ७ । २ । २९ ॥

हृषेर्निष्ठाया इड्वा लोमसु विषये । हृष्टं हृषितं लोम ॥

विस्मितप्रतिघातयोश्च * ॥

हृष्टो हृषितो मैत्रः । विस्मितः प्रतिहतो वेत्यर्थः । अन्यत्र तु । हृषु अलीके । उदित्त्वान्निष्ठायां नेट् । हृष तुष्टौ । इट् ॥

अपचितश्च ७ । २ । ३० ॥

चायतेर्निपातोऽयं वा । अपचितः अपचायितः ॥

प्यायः पी ६ । १ । २८ ॥

पी वा निष्ठायाम् । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन स्वाङ्गे नित्यम् । पीनं मुखम् । अन्यत्र । प्यानः पीनः स्वेदः । सोपसर्गस्य न । प्रप्यानः । आङ्पूर्वस्यान्धूधसोः स्यादेव । आपीनोऽन्धुः । आपीनमूधः ॥

ह्लादो निष्ठायाम् ६ । ४ । ९५ ॥

ह्रस्वः । प्रह्लन्नः ॥

द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति ७ । ४ । ४० ॥

एषामिकारोऽन्तादेशः तादौ किति । ईत्वदद्भावयोरपवादः । दितः । सितः । मा माङ् । मेङ् मितः । स्थितः ॥

शाच्छोरन्यतरस्याम् ७ । ४ । ४१ ॥

शितः शातः । छितः छातः । व्यवस्थितविभाषात्वात् व्रतविषये श्यतेर्नित्यम् । संशितं व्रतम् । सम्यक्संपादितमित्यर्थः । संशितो ब्राह्मणः । व्रतविषयकयत्नवानित्यर्थः ॥

दधातेर्हिः ७ । ४ । ४२ ॥

तादौ किति । अभिहितम् । निहितम् ॥

दो दद्घोः ७ । ४ । ४६ ॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात्तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः । घोः किम् । दातः । तान्तो वायमादेशः । न चैवं विदत्तमित्यादौ-

कषो निष्ठायां इण्न एतयोरर्थयोः । कष्टं दुःखं तत्कारणं च । स्यात्कष्टं कृच्छ्रमाभीलम् । कष्टो मोहः । कष्टं शास्त्रम् । दुरवगाहमित्यर्थः । कषितमन्यत् ॥

घुषिरविशब्दने ७ । २ । २३ ॥

घुषिर्निष्ठायामनिट् । घुष्टा रज्जुः । अविशब्दने किम् । घुषितं वाक्यम् । शब्देन प्रकटीकृताभिप्रायमित्यर्थः ॥

अर्देः संनिविभ्यः ७ । २ । २४ ॥

एतत्पूर्वादर्देर्निष्ठाया इण्न । समर्णः । न्यर्णः । व्यर्णः । अर्दितोऽन्यः ॥

अभेश्चाविदूर्ये ७ । २ । २५ ॥

अभ्यर्णम् । नातिदूरमासन्नं वा । अभ्यर्दितमन्यत् ॥

णेरध्ययने वृत्तम् ७ । २ । २६ ॥

ण्यन्ताद्वृतेः क्तस्येडभावो णिलुक्चाधीयमानेऽर्थे । वृत्तं छन्दश्छात्रेण संपादितम्।अधीतमिति यावत्। अन्यत्र तु वर्तिता रज्जुः॥

श्रृतं पाके ६ । १ । २७॥

श्रातिश्रपयत्योः क्ते श्रृभावो निपात्यते क्षीरहविषोः पाके । श्रृतं क्षीरम् । स्वयमेव विक्लिन्नं पक्वं वेत्यर्थः । क्षीरहविर्भ्यामन्यत्तु । श्राणं श्रपितम् ॥

वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः ७ ।२।२७॥

एते णिचि निष्ठान्ता वा निपात्यन्ते । पक्षे, दमितः । शमितः । पूरितः । दासितः । स्पाशितः । छादितः । ज्ञपितः ॥

इति ९० अंशाः । इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ७ । २ । २८ ॥

एभ्यो निष्ठाया इड्वा । रुषितः रुष्टः । आन्तः अमितः । तूर्णः त्वरितः । अस्यादित्वे फलं मंदम् । संघुष्टः संघुषितः । आस्वान्तः आस्वनितः ॥

हृषेर्लोमसु ७ । २ । २९ ॥

हृषेर्निष्ठाया इड्वा लोमसु विषये । हृष्टं हृषितं लोम ॥

विस्मितप्रतिघातयोश्च * ॥

हृष्टो हृषितो मैत्रः । विस्मितः प्रतिहतो वेत्यर्थः । अन्यत्र तु । हृषु अलीके । उदित्त्वान्निष्ठाया नेट् । हृष तुष्टौ । इट् ॥

अपचितश्च ७ । २ । ३० ॥

चायतेर्निपातोऽयं वा । अपचितः अपचायितः ॥

प्यायः पी ६ । १ । २८ ॥

पी वा निष्ठायाम् । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन स्वाङ्गे नित्यम् । पीनं मुखम् । अन्यत्र । प्यानः पीनः स्वेदः । सोपसर्गस्य न । प्रप्यानः । आङ्पूर्वस्यान्धूधसोः स्यादेव । आपीनोऽन्धुः । आपीनमूधः ॥

ह्लादो निष्ठायाम् ६ । ४ । ९५ ॥

ह्रस्वः । प्रह्लन्नः ॥

द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति ७ । ४ । ४० ॥

एषामिकारोऽन्तादेशः तादौ किति । ईत्वदद्भावयोरपवादः । दितः । सितः । मा माङ् । मेङ् मितः । स्थितः ॥

शाच्छोरन्यतरस्याम् ७ । ४ । ४१ ॥

शितः शातः । छितः छातः । व्यवस्थितविभाषात्वात् व्रतविषये श्यतेर्नित्यम् । संशितं व्रतम् । सम्यक्संपादितमित्यर्थः । संशितो ब्राह्मणः । व्रतविषयकयत्नवानित्यर्थः ॥

दधातेर्हिः ७ । ४ । ४२ ॥

तादौ किति । अभिहितम् । निहितम् ॥

दो दद्घोः ७ । ४ । ४६ ॥

घुसंज्ञकस्य दा इत्यस्य दद् स्यात्तादौ किति । चर्त्वम् । दत्तः । घोः किम् । दातः । तान्तो वायमादेशः । न चैवं विदत्तमित्यादा-

वुपसर्गस्य दस्ति इति दीर्घापत्तिः । तकारादौ तद्विधानात् दान्तो वा धान्तो वा । न च दान्तत्वे निष्ठानत्वं धान्तत्वे झषस्तथोः इति धत्वं शङ्कयम् । संनिपातपरिभाषाविरोधात् ॥

अच उपसर्गात्तः ७ । ४ । ४७ ॥

अजन्तादुपसर्गात्परस्य दा इत्यस्य घोरचस्तः तादौ किति । चर्त्वम् । प्रत्तः । अवत्तः । अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि । सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते ॥ चशब्दाद्यथाप्राप्तम् ॥

दस्ति ६ । ३ । १२४ ॥

इगन्तोपसर्गस्य दीर्घः दादेशो यस्तकारस्तदादावुत्तरपदे । खरि च इति चर्त्वमाश्रयात्सिद्धम् । नीत्तम् । सूत्तम् । घुमास्था इतीत्वम् । धेट् । धीतम् । गीतम् । पीतम् । जनसन इत्यात्वम् । जातम् । सातम् । खातम् ॥

अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति २ । ४ । ३६ ॥

ल्यबिति लुप्तसप्तमीकम् । अदो जग्धिः स्याल्ल्यपि तादौ किति च । इकार उच्चारणार्थः । धत्वम् । झरो झरि । जग्धः । आदिकर्मणि क्तः कर्तरि च । प्रकृतः कटं सः । प्रकृतः। कटः।तेन निष्ठायामण्यदर्थे इति दीर्घः । क्षियो दीर्घात् इति नत्वम् । प्रक्षीणः सः ॥

वा क्रोशदैन्ययोः ६ । ४ । ६१ ॥

क्षियो निष्ठायां दीर्घो वाऽऽक्रोशे दैन्ये च । क्षीणायुर्भव । क्षितायुर्वा । क्षीणोऽयं तपस्वी । क्षितो वा ॥

निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ८ । ३ । ८९ ॥

आभ्यां स्नातेः सस्य षः कौशले गम्ये । निष्णातः शास्त्रेषु । नद्यां स्नातीति नदीष्णः । सुपि इति कः॥

सूत्रं प्रतिष्णातम् ८ । ३ । ९० ॥

प्रतेः स्नातेः षत्वम् । प्रतिष्णातं सूत्रम् । शुद्धमित्यर्थः । अन्यत्र । प्रतिस्नातम् ॥

कपिष्ठलो गोत्रे ८ । ३ । ९१ ॥

कपिष्ठलो नाम यस्य कापिष्ठलिः पुत्रः । गोत्रे किम् । कपीनां स्थलं कपिस्थलम् ॥

विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ८ । ३ । ९६ ॥

एभ्यः स्थलस्य सस्य षः । विष्ठलम् । कुष्ठलम् । शमिष्ठलम् । परिष्ठलम् । गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च । गङ्गां गतः । गङ्गां प्राप्तः । ग्लानः सः । लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः । शेषमधिशयितः । वैकुण्ठमधिष्ठितः । शिवमुपासितः । हरिदिनमुपोषितः । राममनुजातः । गरुडमारूढः । विश्वमनुजीर्णः । पक्षे, प्राप्ता गङ्गा तेनेत्यादि ॥

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ३।४।७६॥

एभ्योऽधिकरणे क्तः चायथाप्राप्तम् । ध्रौव्यं स्थैर्यम् । मुकुन्दस्यासितमिदमिदं यातं रमापतेः । भुक्तमेतदनन्तस्येत्यूचुर्गोप्यो दिदृक्षवः ॥ पक्ष आसेरकर्मकत्वात्कर्तरि भावे च । आसितो मुकुन्दः । आसितं तेन । गत्यर्थेभ्यः कर्तरि कर्मणि च । रमापतिरिदं यातः । तेनेदं यातम् । भुजेः कर्मणि । अनन्तेनेदं भुक्तम् । कथं भुक्ता ब्राह्मणाः इति । भुक्तमेषामस्तीति मत्वर्थीयोऽच् । वर्तमान इत्यधिकृत्य ॥

ञीतः क्तः ३ । २ । १८७ ॥

ञिक्ष्विदा-क्ष्विन्नः । ञिइन्धी-इद्धः ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ३ । २ । १८८ ॥

मतिरिहेच्छा बुद्धेः पृथगुपादानात् । राज्ञां मतः इष्टः । इष्यमाण इत्यर्थः । बुद्धः । विदितः । पूजितः । अर्चितः । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । शीलितो रक्षितः । क्षान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यादि । नपुंसके भावे क्तः क्लीबत्वविशिष्टे भावे कालसामान्ये क्तल्युटौ स्युरिति । जल्पितम् । शयितम् । हसितम् । जल्पनम् । शयनम् । हसनम् ॥

सुयजोर्ङ्वनिप् ३ । २ । १०३ ॥

सुनोतेर्यजेश्च ङ्वनिप् भूते। सुत्वा। सुत्वानौ। यज्वा। यज्वानौ॥

जीर्यतेरतृन् ३ । २ । १०४ ॥

भूत इत्येव। जरन्। जरन्तौ। जरन्तः। वासरूपन्यायेन निष्ठापि। जीर्णो जीर्णवान्॥

छन्दसि लिट् ३ । २ । १०५ ॥

लिटः कानज्वा ३ । २ । १०६ ॥

क्वसुश्च ३ । २ । १०७ ॥

इह भूतसामान्ये छन्दसि लिट्। तस्य विधीयमानौ क्वसुकानचावपि छन्दसाविति त्रिमुनिमतम्। कवयस्तु बहुलं प्रयुञ्जते। तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते। इत्यादि॥

वस्वेकाजाद्घसाम् ७ । २ । ६७ ॥

कृतद्विर्वचनानामेकाचामादन्तानां घसेश्च वसोरिट् नान्येषाम्। एकाच् आदिवान्। आत्-ददिवान्। जक्षिवान्। एषां किम्। बभूवान्॥

भाषायां सदवसश्रुवः ३ । २ । १०८ ॥

सदादिभ्यो भूतसामान्ये भाषायां लिड्वा। तस्य च नित्यं क्वसुः। निषेदुषीमासनबन्धधीरः। अध्यूषुषस्तामभवज्जनस्य। शुश्रुवान्॥

उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ३ । २ । १०९ ॥

एते निपात्यन्ते। उपपूर्वादिणो भाषायामपि भूतमात्रे लिड्वा। तस्य नित्यं क्वसुः। इट्। उपेयिवान्। उपेयुषः स्वामपि मूर्तिमग्र्याम्। उपेयुषी। उपेत्यविवक्षितम्। ईयिवान्। समीयिवान्। नञ्पूर्वादश्नातेः क्वसुरिडभावश्च। धृतजयधृतेरनाशुषः इति भारविः। अनुपूर्वाद्वचेः कर्तरि कानच्। वेदस्यानुवचनं कृतवाननूचानः॥

विभाषा गमहनविदविशाम् ७ । २ । ६८ ॥

ऐभ्ये(वसोरिड्वा । जग्मिवान् जगन्वान् । जघ्निवान् जघन्वान् । विविदिवान् विविद्वान् । विविशिवान् विविश्वान् । विशिना साहचर्याद्विन्दतेर्ग्रहणम् । वेत्तेस्तु विविद्वान् । नेड्वशि कृति इतीण्निषेधः । दृशेश्च । ददृशिवान् ददृश्वान् । लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे । पचन्तं चैत्रं पश्य । आने मुक् । पचमानं चैत्रं पश्य । लडित्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणमधिकविधानार्थम् । तेन प्रथमा सामानाधिकरण्येऽपि क्वचित् । सन्ब्राह्मणः ॥

माङ्याक्रोश इति वाच्यम् ❀ ॥

मा जीवन्यः परावज्ञा दुःखदग्धोऽपि जीवति । माङि लुङ् इति प्राप्ते एतद्वचनसामर्थ्याल्लट् ॥

संबोधने च ३ । २ । १२५ ॥

हे पचन् हे पचमान ॥

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ३ । २ । १२६ ॥

क्रियायाः परिचायके हेतौ चार्थे वर्तमानाद्धातोर्लटः शतृशानचौ स्तः । शयाना भुञ्जते यवनाः । अर्जयन्वसति । हरिं पश्यन्मुच्यते । हेतुः फलं कारणं च । कृत्यचः । प्रपीयमाणः सोमः ॥

ईदासः ७ । २ । ८३ ॥

आसः परस्यानस्येत् । आदेः परस्य । आसीनः ॥

विदेः शतुर्वसुः ७ । १ । ३६ ॥

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा । विदन् विद्वान् विदुषी ॥

लटः सद्वा ३ । ३ । १४ ॥

व्यवस्थितविभाषेयम् । तेनाप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः संबोधने लक्षणहेत्वोश्च नित्यम् । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य । करिष्यतोऽपत्यं कारिष्यतः । करिष्यद्भक्तिः । हे करिष्यन् । अर्जयिष्यन्वसति । प्रथमासमानाधिकरणेऽपि क्वचित् । करिष्यतीति करिष्यन् ॥

पूङ्यजोः शानन् ३ । २ । १२८ ॥
वर्त्तमाने । पवमानः । यजमानः ॥
ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ३।२।१२९॥
एषु द्योत्येषु कर्तरि चानश् । भोगं भुञ्जानः। कवचं बिभ्राणः । शत्रुं निघ्नानः ॥
इङ्धार्योः शत्रकृच्छ्रिणि ३ । २ । १३० ॥
आभ्यां शतृ स्यादकृच्छ्रिणि कर्तरि । अधीयन् । धारयन् । अकृच्छ्रिणि किम् । कृच्छ्रेणाधीते धारयति ॥
द्विषोऽमित्रे ३ । २ । १३१ ॥
द्विषन्छत्रुः ॥
सुञो यज्ञसंयोगे ३ । २ । १३२ ॥
सर्वे सुन्वन्तः। सर्वे यजमानाः सत्रिणः ॥
अर्हः प्रशंसायाम् ३ । २ । १३३ ॥
अर्हन् ॥
इति ९१ अंशाः ।

आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । तृन् । कर्ता कटम् ॥
अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृत-वृधुसहचर इष्णुच् ३ । २ । १३६ ॥
अलंकरिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः । उत्पतिष्णुः उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्तिष्णुः । वर्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः ।
णेश्छन्दसि ३ । २ । १३७ ॥
वीरुधः पारयिष्णवः ॥
भुवश्च ३ । २ । १३८ ॥

छन्दसीत्येव । भविष्णुः । कथं तर्हि, जगत्प्रभोरप्रभविष्णु वैष्णवम् । इति निरङ्कुशाः कवयः । चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । भ्राजिष्णुरिति वृत्तिः । एवं क्षयिष्णुः । नैतद्भाष्ये दृष्टम् ॥

ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः ३ । २ । १३९॥

छन्दसीति निवृत्तम् । गिदयं नतु कित् । तेन स्थ ईत्वं न । ग्लास्नुः। गित्वान्न गुणः । जिष्णुः । स्थास्नुः । चाद्भुवः । श्र्युकः किति इत्यत्र गकारप्रश्लेषान्नेट् । भूष्णुः ॥

दंशेश्छन्दस्युपसंख्यानम् * ॥

दङ्क्ष्णवः पशवः ॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ३ । २ । १४० ॥

त्रस्नुः । गृध्नुः । धृष्णुः । क्षिप्नुः ॥

शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ३ । २ । १४१ ॥

उकार उच्चारणार्थ इति काशिका । अनुबन्ध इति भाष्यम् । तेन शमिनितरा शमिनीतरेत्यत्र उगितश्च इति ह्रस्वविकल्पः । न चैव शमी शमिनावित्यादौ नुम्प्रसङ्गः । झल्ग्रहणमपकृष्य झलन्तानामेव तद्विधानात् । नोदात्तोपदेशस्य इति वृद्धिनिषेधः । शमी। तमी । दमी । श्रमी । भ्रमी । क्लमी । प्रमादी । उत्पूर्वान्मदेः अलङ्कृञादिसूत्रेणेष्णुजुक्तो वासरूपविधिना घिनुणपि । उन्मादी। ताच्छीलिकेषु वासरूपविधिर्नास्ति इति तु प्रायिकम् ॥

संपृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याहनश्च ३ । २ । १४२ ॥

घिनुण् । सम्पर्की । अनुरोधी । आयामी । आयासी । परिसारी। संसर्गी । परिदेवी । संज्वारी । परिक्षेपी । परिराटी । परिवादी । परिदाही । परिमोही । दोषी । द्वेषी । द्रोही । दोही । योगी ।

आक्रीडी । विवेकी । त्यागी । रागी । भागी । अतिचारी । अपचारी । आमोषी । अभ्याघाती ॥

वौ कषलसकत्थस्रम्भः ३ । २ । १४३ ॥

विकाषी । विलासी । विकत्थी । विस्रम्भी ॥

अपे च लषः ३ । २ । १४४ ॥

चाद्वौ । अपलाषी ।विलाषी ॥

प्रेलपसृद्रुमथवदवसः ३ । २ । १४५ ॥

प्रलापी । प्रसारी । प्रद्रावी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी ॥

निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयो वुञ् ३ । २ । १४६ ॥

पञ्चम्यर्थे प्रथमा एभ्यो वुञ् । निन्दकः । हिंसक इत्यादि । ण्वुला सिद्धे वुञ्वचनं ज्ञापकं तच्छीलादिषु वासरूपन्यायेन तृजादयो नेति ॥

देविक्रुशोश्चोपसर्गे ३ । २ । १४७ ॥

आदेवकः। आक्रोशकः। उपसर्गे किम् । देवयिता । क्रोष्टा । चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् चलनः । चोपनः । कम्पनः । शब्दनः । रवणः । अकर्मकात् किम् । पठिता विद्याम् । अनुदात्तेतश्च हलादेः । वर्तनः । वर्धनः । अनुदात्तेतः किम् । भविता । हलादेः किम् । एधिता । अकर्मकात् किम् । वसिता वस्त्रम् ॥

जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ३ । २ । १५० ॥

जु इति सौत्रो धातुर्गतौ वेगे च । जवनः । चङ्क्रमणः । दन्द्रमणः । सरणः । पूर्वेण सिद्धे पदग्रहणं लषपतपद इत्युकञा बाधा मा भूदिति । तेन ताच्छीलिकेषु परस्परं वासरूपविधिर्नास्तीति तेनालंकृञस्तृन् । क्रुधमण्डार्थेभ्यः । क्रोधनः । रोषणः । मण्डनः । भूषणः ॥

सृघस्यदः क्मरच् ३ । २ । १६० ॥

सृमरः । घस्मरः । अद्मरः ॥

भञ्जभासमिदो घुरच् ३ । २ । १६१ ॥

भङ्गुरः । भासुरः । मेदुरः ॥

विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ३ । २ । १६२ ॥

विदुरः । भिदुरम् । छिदुरम् ॥

इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप् ३ । २ । १६३ ॥

इत्वरः इत्वरी । नश्वरः । जित्वरः । सृत्वरः ॥

गत्वरश्च ३ । २ । १६४ ॥

गमेरनुनासिकलोपोऽपि निपात्यते । गत्वरी ॥

जागुरूकः ३ । २ । १६५ ॥

जागर्तेरूकः । जागरूकः ॥

यजजपदशां यङः ३ । २ । १६६ ॥

एभ्यो यङन्तेभ्य ऊकः । दशामिति भाविना नलोपेन निर्देशः। यायजूकः । जञ्जपूकः । दन्दशूकः ॥

नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ३ । २।१६७ ॥

नम्रः । कम्प्रः । स्मेरः जसिर्नञ्पूर्वः क्रियासातत्ये वर्तते । अजस्रं संततमित्यर्थः । कम्रः । हिंस्रः । दीप्रः । सनाशंसभिक्ष उः । चिकीर्षुः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

विन्दुरिच्छुः ३ । २ । १६९ ॥

वेत्तेर्नुमिषेश्छत्वं च निपात्यते । वेत्ति तच्छीलो विन्दुः । इच्छति इच्छुः ॥

क्याच्छन्दसि ३ । २ । १७० ॥

देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥

आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ३ । २ । १७१ ॥

आदन्तादृदन्तादृमादिभ्यश्च किकिनौ स्तश्छन्दसि तौ च लिड्वत्। पपिः सोमम् । ददिर्गाः । बभ्रिर्वज्रम् । जग्मिर्युवा । जघ्निर्वृत्रममित्रियम् । जज्ञिः । भाषायां धाञ्कृसृगमिजानेनमिभ्यः । दधिः । चक्रिः । सस्रिः । जग्मिः । जज्ञिः । नेमिः ॥

सासहिवावहिचाचलिपापतीनामुपसंख्यानम् ❋ ॥

यङन्तेभ्यः सहेत्यादिभ्यः किकिनौ पतेर्नीगमावश्च निपात्यते ॥

स्वपितृषोर्नजिङ् ३ । २ । १७२ ॥

स्वप्नक् । तृष्णक् । तृष्णजौ । तृष्णजः । धृषेश्च इति वाच्यमिति काशिकादौ । धृष्णक् ॥

शॄवन्द्योरारुः ३ । २ । १७३ ॥

शरारुः । वन्दारुः ॥

भियः क्रुक्लुकनौ ३ । २ । १७४ ॥

भीरुः । भीलुकः ॥

क्रुकन्नपि वाच्यः ❋ ॥

भीरुकः ॥

स्थेशभासपिसकसो वरच् ३ । २ । १७५ ॥

स्थावरः । ईश्वरः । भास्वरः । पेस्वरः । कस्वरः ॥

यश्च यङः ३ । २ । १७६ ॥

यातेर्यङन्ताद्वरच् । अतो लोपः । नस्य अचः परस्मिन् इति स्थानिवद्भावे प्राप्ते न पदान्तेति तस्य यलोपं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधात् लोपो व्योः इति यलोपः । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वमाश्रित्यातो लोपे प्राप्ते वरे लुप्तं न स्थानिवत् । यायावरः ॥

इति ९२ अंशाः ।

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ३ । २ । १७७ ॥

विभ्राट्। भाः। भासौ। धूः। धुरौ। विद्युत्। ऊर्क्। पूः। पुरौ। दृशिग्रहणस्यापकर्षाज्जवतेर्दीर्घः। जूः। जुवौ। जुवः।ग्रावश-ब्दस्य धातुना समासः सूत्रे निपात्यते। ततः क्विप्। ग्रावस्तुत्॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ३। २। १७८॥

क्विप्। छित् भिद् दृशिग्रहणं विध्यन्तरोपसंग्रहार्थम्। क्वचिद्दीर्घः। क्वचिदसंप्रसारणं क्वचिद्द्वे क्वचिद्ध्रस्वः। तथा च वार्तिकम्॥

क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ❀॥

क्विब्वचीत्यादिनौणादिसूत्रेण केषांचित्सिद्धे तच्छीलादौ तृना बाधा मा भूदिति वार्तिके ग्रहणम्। वक्तीति वाक्। पृच्छतीति प्राट्। प्राशौ। आयतं स्तौति आयतस्तूः। कटं प्रवते कटप्रूः। जुरुक्तः श्रयति हरिं श्रीः। द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च। दृशिग्रहणादभ्याससंज्ञा दिद्युत्। जगत्। जुहोतेर्दीर्घश्च। जुहूः। दृ भये। अस्य ह्रस्वश्च। दीर्यति ददृत्। ध्यायतेः संप्रसारणं च। धीः॥

भुवः संज्ञान्तरयोः ३। २। १७९॥

मित्रभूर्नाम कश्चित् धनिकाधमर्णयोरन्तरे यस्तिष्ठति विश्वासार्थं स प्रतिभूः॥

विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ३। २। १८०॥

एभ्यो भुवो डुः न तु संज्ञायाम्। विभुर्व्यापकः। प्रभुः स्वामी संभुर्जनिता। संज्ञायां तु विभूर्नाम कश्चित्॥

मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानम् ❀॥

मितं द्रवतीति मितद्रुः। शतद्रुः। शंभुः। अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र भवतिः॥

धः कर्मणि ष्ट्रन् ३। २। १८१॥

धेटो धाञश्च कर्मण्यर्थे ष्ट्रन्। धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु॥

दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३ । २ । १८२ ॥

दाम्न्यादे. ष्ट्रन्करणेऽर्थे । दान्त्यनेन दात्रम् । नेत्रम् । तितुत्रथेति नेट् । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्त्रम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् । सेक्त्रम् । मेढ्रम् । पत्रम् । दंष्ट्रा । नध्री ॥

हलसूकरयोः पुवः ३ । २ । १८३ ॥

पूङ्पूञोः करणे ष्ट्रन् । तच्चेत्करणं हलसूकरयोरवयवः । हलस्य सूकरस्य वा पोत्रम् । मुखमित्यर्थः ॥

अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ३ । २ । १८४ ॥

अरित्रम् । लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

पुवः संज्ञायाम् ३ । २ । १८५ ॥

पवित्रम् । येनाज्यमुत्पूयते यथानामिकावेष्टनम् ॥

कर्तरि चर्षिदेवतयोः ३ । २ । १८६ ॥

पुव इत्रः ऋषौ करणे देवतायां कर्तरि । ऋषिर्वेदमन्त्रः । तदुक्तमृषिणेति दर्शनात् । पूयतेऽनेनेति पवित्रम् । देवताया तु अग्निः पवित्र समा पुनातु ॥

उणादयो बहुलम् ३ । ३ । १ ॥

एते वर्तमाने संज्ञायां च बहुलं केचिदविहिता अप्यूह्याः । संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे । कार्याद्विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ३ । ३ । २ ॥

भविष्यति गम्यादयः ३ । ३ । ३ ॥

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ३ । ४ । ७३ ॥

एतौ संप्रदाने कारके निपात्येते । दाशन्ति तस्मै दाश. । गा हन्ति तस्मै गोघ्नोऽतिथि. ॥

भीमादयोऽपादाने ३ । ४ । ७४ ॥

भीमः । भीष्मः । प्रस्कन्दनः । प्रक्षः । मूर्खः । खलतिः ॥

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदानापादानपरामर्शार्थं ताभ्यामिति । ततोऽसौ भवति तन्तुः। तं तदिति वर्त्म।चरितं तदिति चर्म। तुमुन्ण्वुलौ क्रियाया क्रियार्था ाम् । कृष्णं द्रष्टुं याति कृष्णं दर्शको याति । अत्र वासरूपेण ृजादयो न पुनर्ण्वुलुक्तेः । समानकर्तृकेषु तुमुन् । अक्रियार्थोपपदा- र्थमेतत् । इच्छति भोक्तुम् । वष्टि वाञ्छति वा ॥

शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन् ३ । ४ । ६५ ॥

एषूपपदेषु धातोस्तुमुन् । शक्नोति भोक्तुम् । एवं धृष्णोत्यादौ । अर्थग्रहणमस्तिनैव संबध्यते अनन्तरत्वात् । अस्ति भवति विद्यते वा भोक्तुम् ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ३ । ४ । ६६ ॥

पर्याप्तिः पूर्णता तद्वाचिषु सामर्थ्यवचनेषूपपदेषु तुमुन् । पर्याप्तो भोक्तुं प्रवीणः । कुशलः । पटुरित्यादि । पर्याप्तिवचनेषु किम् । अलं भुक्त्वा । अलमर्थेषु किम् । पर्याप्तं भुङ्क्ते । प्रभूततेह गम्यते । ननु भोक्तुः सामर्थ्यम् ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ३ । ३ । १६७ ॥

पर्यायोपादानमर्थोपलक्षणार्थम् । कालार्थेषूपपदेषु तुमुन् । कालः समयो वेलानेहा वा भोक्तुम् । प्रेषादिग्रहणमिहानुवर्तते । तेनेह न । भूतानि कालः पचतीति वार्ता ॥

भाववचनाश्च ३ । ३ । ११ ॥

भाव इत्यधिकृत्य वक्ष्यमाणा घञादयः क्रियार्थायां क्रियाया भविष्यति स्युः । यागाय याति ॥

अण् कर्मणि च ३ । ३ । १२ ॥

कर्मण्युपपदे क्रियार्थायां क्रियायां चाण् । ण्वुलोऽपवादः । काण्डलावो व्रजति । परत्वादयं कादीन् बाधते । कम्बलदायो व्रजति ॥

पदरुजविशस्पृशो घञ् ३ । ३ । १६ ॥

भविष्यतीति निवृत्तम् । पद्यतेऽसौ पादः । रुजतीति रोगः । विशतीति वेशः । स्पृशतीति स्पर्शः ॥

सृ स्थिरे ३ । ३ । १७ ॥

सृ इति लुप्तविभक्तिकं सतः स्थिरे कर्तरि घञ् । सरति कालान्तरमिति सारः ॥

व्याधिमत्स्यबलेषु चेति वाच्यम् * ॥

अतीसारो व्याधिः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र सरतिः । रुधिरादिकमतिशयेन सारयतीत्यर्थः । विसारो मत्स्यः । सारो बले दृढांशे च । भावे । पाकः पाकः ॥

स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ६ । १ । ४७ ॥

अनयोरेच आत्वं घञि । स्फारः । स्फालः । उपसर्गस्य घञि इति वक्ष्यमाणेन दीर्घः । परीहारः । इकः काशे । नीकाशः । नोदात्तोपदेश इति न वृद्धिः । शमः । आचमादेस्तु । आचामः । कामः । वामः । विश्राम इति त्वपाणिनीयम् ॥

स्यदो जवे ६ । ४ । २८ ॥

स्यन्देर्घञि नलोपो वृद्ध्यभावश्च निपात्यते । स्यदो वेगः । अन्यत्र स्यन्दः ॥

अवोदैधौद्मप्रश्रथहिमश्रथाः ६ । ४ । २९ ॥

अवोदोऽवक्लेदनम् । एध इन्धनम् । ओद्म उन्दनम् । अन्येनंलोपो वृद्ध्यभावश्च । अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥

घञि च भावकरणयोः ६ । ४ । २७ ॥

रञ्जेर्नलोपः । रागः । अनयोः किम् । रज्यत्यास्मिन् रङ्गः ।

नास्यत इति प्रासः । संज्ञायाम् इति प्रायिकम् । को भवता लाभो लब्धः । इत उत्तरं माने अकर्तरि कारके इति कृत्यल्युटो बहुलम् इति यावद्द्वयमप्यनुवर्तते ॥

परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ३ । ३ । २० ॥

घञ् । अजपोर्बाधनार्थमिदम् । एकस्तण्डुलनिचायः । द्वौ शूर्पनिष्पावौ । द्वौ कारौ ॥

दारजारौ कर्तरि णिलुक्च ❋ ॥

दारयन्तीति दाराः । जारयन्तीति जाराः ॥

इङश्च ३ । ३ । २१ ॥

घञ् । अचोऽपवादः । उपेत्यस्मादधीयते उपाध्यायः ॥

अपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीप् ❋ ॥

उपाध्याया उपाध्यायी ॥

शृ वायुवर्णनिवृतेषु ❋ ॥

शृ इत्यविभक्तिको निर्देशः । शारो वायुः । करणे घञ् । शारो वर्णः । चित्रीकरणमिह धात्वर्थः । निव्रियते आव्रियतेऽनेनेति निवृतमावरणम् । बाहुलकात् करणे क्तः। गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कृशः । अकृतमावरण इत्यर्थः ॥

उपसर्गे रुवः ३ । ३ । २२ ॥

घञ् । संरावः । उपसर्गे किम् । रवः ॥

अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् ८ । ३ । ८६ ॥

अस्मात्स्तनः सस्य मूर्धन्यः । अभिनिष्टानो वर्णः । शब्दसंज्ञायां किम् । अभिनिःस्तनति मृदङ्गः ॥

समियुद्रुदुवः ३ । ३ । २३ ॥

संयूयते मिश्रीक्रियते गुडादिभिरिति संयावः पिष्टविकारोऽपूपविशेषः । संद्रावः । संदावः ॥

श्रिणी भुवोऽनुपसर्गे ३ । ३ । २४ ॥

श्रायः । नायः । भावः । अनुपसर्गे किम् । प्रश्रयः । प्रणयः । प्रभवः । कथं प्रभावो राज्ञः । इति प्रकृष्टो भाव इति प्रादिसमासः । कथं राज्ञो नय इति बाहुलकात् ॥

वौ क्षुश्रुवः ३ । ३ । २५ ॥

विक्षावः । विश्रावः । वौ किम् । क्षवः । श्रवः ॥

अवोदोर्नियः ३ । ३ । २६ ॥

अवनायोऽधोनयनम् । उन्नायः ऊर्ध्वनयनम् । कथम् उन्नयः । उत्प्रेक्षा इति बाहुलकात ॥

प्रे द्रुस्तुस्रुवः ३ । ३ । २७ ॥

प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रे इति किम् । द्रवः । स्तवः । स्रवः ॥

निरभ्योः पूल्वोः ३ । ३ । २८ ॥

निष्पूयते शूर्पादिभिरिति निष्पावो धान्यविशेषः । अभिलावः निरभ्योः किम् । पवः । लवः ॥

इति ९३ अंशाः ।

उन्न्योर्ग्रः ३ । ३ । २९ ॥

उद्गारः । निगारः । उन्न्योः किम् । गरः ॥

कॄ धान्ये ३ । ३ । ३० ॥

कॄ इत्यस्माद्धान्यविषयकादुन्न्योर्घञ् । उत्कारो निकारो धान्यस्य विक्षेप इत्यर्थः । धान्ये किम् । भिक्षोत्करः । पुष्पनिकरः ॥

यज्ञे समिस्तुवः ३ । ३ । ३१ ॥

समेत्य स्तुवन्ति यस्मिन्देशे छन्दोगाः स देशः । संस्तावः । यज्ञे किम् । संस्तवः परिचयः ॥

प्रेस्त्रोऽयज्ञे ३ । ३ । ३२ ॥

अयज्ञे इति छेदः । यज्ञे इति प्रकृतत्वात् प्रस्तारः । अयज्ञे किम् । बार्हिषः प्रस्तारो मुष्टिविशेषः ॥

प्रथने वावशब्दे ३ । ३ । ३३ ॥

विपूर्वात्स्तृणातेर्घञ् । अशब्दविषये प्रथने । पटस्य विस्तरः । प्रथने किम् । तृणविस्तरः । अशब्दे किम् । ग्रन्थविस्तारः ॥

छन्दोनाम्नि च ३ । ३ । ३४ ॥

स्तृः इत्यनुवर्तते । विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः । विस्तीर्यन्तेऽस्मिन्नक्षराणीत्यधिकरणे घञ् ततः कर्मधारयः ॥

छन्दोनाम्नि च ८ । ३ । ९४ ॥

विपूर्वात्स्तृणातेर्घञन्तस्य सस्य षत्वं छन्दोनाम्नि । इति षत्वम् ॥

उदि ग्रहः ३ । ३ । ३५ ॥

उद्ग्राहः ॥

समि मुष्टौ ३ । ३ । ३६ ॥

मल्लस्य संग्राहः । मुष्टौ किम् । द्रव्यस्य संग्रहः ॥

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ३ । ३ । ३७ ॥

परीपूर्वान्नयतेर्निपूर्वादिणश्च घञ् क्रमेण द्यूतेऽभ्रेषे च विषये । परिणायेन शारान्हन्ति । समन्तान्नयनेनेत्यर्थः। एषोऽत्र न्यायः उचितमित्यर्थः। द्यूताभ्रेषयोः किम् । परिणयो विवाहः। न्ययो नाशः॥

परावनुपात्यय इणः ३ । ३ । ३८ ॥

क्रमप्राप्तस्यानतिपातोऽनुपात्ययः । तव पर्यायः । अनुपात्यये किम् । कालस्य पर्ययः । अतिपात इत्यर्थः ॥

व्युपयोः शेतेः पर्याये ३ । ३ । ३९ ॥

तव विशायः । तव राजोपशायः । पर्याये किम् । विशयः । संशयः । उपशयः समीपशयनम् ॥

हस्तादाने चेरस्तेये ३ । ३ । ४० ॥

हस्तादान इत्यनेन प्रत्यासत्तिरादेयस्य लक्ष्यते । पुष्पप्रचायः । हस्तादाने किम् । वृक्षाग्रस्थानां फलानां यष्ट्या प्रचयं करोति । अस्तेये किम् । पुष्पप्रचयश्चौर्येण ॥

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३।३।४१ ॥

एषु चिनोतेर्घञ्स्यात् आदेश्च ककारः । उपसमाधानं राशीकरणं तच्च धात्वर्थः । अन्ये प्रत्ययार्थस्य कारकस्योपाधिभूताः । निवासे—काशीनिकायः । चितौ—आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरे—चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति कायः । समूहे—गोमयनिकायः । एषु किम् । चयः । चः क इति वक्तव्ये आदेरित्युक्तेर्यङ्लुक्यादेरेव इति । गोमयानां निकेचायः। पुनःपुना राशीकरणमित्यर्थः ॥

संघे चानौत्तराधर्ये ३ । ३ । ४२ ॥

चेर्घञादेश्च कः। भिक्षुनिकायः । प्राणिनां समूहः संघः । अनौत्तराधर्ये किम् सूकर निचयः । संघे किम् । ज्ञानकर्मसमुच्चयः ॥

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ३ । ३ । ४३ ॥

स्त्रीलिङ्गे भावे णच् ॥

णचः स्त्रियामञ् ५ । ४ । १४ ॥

न कर्मव्यतिहारे ७ । ३ । ६ ॥

अन ऐज्न । व्यावक्रोशी । व्यावहासी ।

अभिविधौ भाव इनुण् ३ । ३ । ४४ ॥

अणिनुणः ५ । ४ । १५ ॥

इनण्यनपत्ये इति वक्ष्यमाणः प्रकृतिभावः । सांराविणं वर्तते ॥

आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ३। ३ । ४५ ॥

अवनि पतयोर्ग्रहेर्घञ् शापे । अवग्राहस्ते भूयात् । अभिभव इत्यर्थः । निग्राहस्ते भूयात् । बाध इत्यर्थः । आक्रोशे किम् । अवग्रहः पदस्य । निग्रहश्चोरस्य ॥

प्रे लिप्सायाम् ३ । ३ । ४६ ॥

पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुः ॥

परौ यज्ञे ३ । ३ । ४७ ॥

उत्तरः परिग्राहः। स्फ्येन वेदेः स्वीकरणम् ॥

नौ वृ धान्ये ३ । ३ । ४८॥

वृ इति लुप्तपञ्चमीकम्।नीवाराः । धान्ये किम् । निवरा कन्या । क्विन्विषयेऽपि बाहुलकादप् । प्रवरा सेतिवत् ॥

उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ३ । ३। ४९ ॥

उच्छ्रायः । उद्यावः । उत्पावः । उद्द्रावः । कथं पतनान्ताः । समुच्छ्रयाः इति बाहुलकात् ॥

विभाषा ङि रुप्लुवोः ३ । ३ । ५० ॥

आरावः आरवः । आप्लावः आप्लवः ॥

अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ३ । ३ । ५१ ॥

विभाषेति वर्तते । अवग्रहः अवग्राहः । वर्षप्रतिबन्धे किम् । अवग्रहः पदस्य ॥

प्रे वणिजाम् ३ । ३ । ५२ ॥

प्रे ग्रहेर्घञ्वा वणिजां संबन्धी चेत्प्रत्ययार्थः । तुलासूत्रमिति यावत् । तुलाप्रग्राहेण चरति तुलाप्रग्रहेण ॥

रश्मौ च ३ । ३ । ५३ ॥

प्रग्रहः प्रग्राहः ॥

वृणोतेराच्छादने ३ । ३ । ५४ ॥

विभाषा प्र इत्येव । प्रवारः ॥

परौ भुवोऽवज्ञाने ३ । ३ । ५५ ॥

परिभावः परिभवः। अवज्ञाने किम् । सर्वतो भवनं परिभवः। एरच् । चयः । जयः ॥

भयादीनामुपसंख्यानं नपुंसके क्तादिनिवृत्त्यर्थम् ॥ ॥

भयम् । वर्षम् । ऋदोरप् । करः । गरः । शरः । यवः । लवः । स्तवः । पवः ॥

वृक्षासनयोर्विष्टरः ८ । ३ । ९३ ॥

अनयोर्विपूर्वस्य स्तः षत्वं निपात्यते । विष्टरो वृक्ष आसनं च । वृक्ष इति किम् । वाक्यस्य विस्तरः ॥

ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ३ । ३ । ५८ ॥

अप् । घञचोरपवादः । ग्रहः । वरः । दरः । निश्चयः । गमः ॥

वशिरण्योरुपसंख्यानम् ❀ ॥

वशः । रणः ॥

घञर्थे कविधानम् ❀ ॥

प्रस्थः । विघ्नः ॥

द्वित्वप्रकरणे के कृञादीनामिति वक्तव्यम् ❀ ॥

चक्रम् । चिक्लिदम् । चक्नसः ॥

उपसर्गेऽदः ३ । ३ । ५९ ॥

अप् ॥

घञपोश्च २ । ४ । ३८ ॥

अदेर्घस्लृ स्याद् घञ्यपि च । प्रघसः । विघसः । उपसर्गे किम् । घासः ॥

नौ ण च ३ । ३ । ६० ॥

नौ उपपदे अदेर्णः अप्च । न्यादः । निघसः ॥

व्यधजपोरनुपसर्गे ३ । ३ । ६१ ॥

अप् । व्यधः । जपः । उपसर्गे तु, आव्याधः । उपजापः ॥

स्वनहसोर्वा ३ । ३ । ६२ ॥

अप् । पक्षे घञ् । स्वनः स्वानः । हसः हासः । अनुपसर्गे इत्येव । प्रस्वानः । प्रहासः ॥

यमः समुपनिविषु च ३ । ३ । ६३ ॥

एष्वनुपसर्गे च यमेरप्वा । संयमः । संयामः उपयमः । उपयामः । नियमः नियामः । वियमः । वियामः यमः यामः ॥

नौ गदनदपठस्वनः ३ । ३ । ६४ ॥

अब्वा । निगदः निगादः । निनदः निनादः । निपठः निपाठः । निस्वनः निस्वानः ॥

क्वणो वीणायां च ३ । ३ । ६५ ॥

नावनुपसर्गे च वीणाविषयाच्च क्वणतेरब्वा । वीणाग्रहणं प्रायिम् । निक्वणः निक्वाणः । क्वणः क्वाणः । वीणायां तु । प्रक्वणः प्रक्वाणः ॥

नित्यं पणः परिमाणे ३ । ३ । ६६ ॥

अप् । मूलकपणः । शाकपणः । व्यवहारार्थं मूलकादीनां परिमितो मुष्टिर्बध्यते सोऽस्य विषयः । परिमाणे किम् । पाणः ॥

मदोऽनुपसर्गे ३ । ३ । ६७ ॥

धनमदः । उपसर्गे तु, उन्मादः ॥

प्रमदसंमदौ हर्षे ३ । ३ । ६८ ॥

हर्षे किम् । प्रमादः । संमादः ॥

समुदोरजः पशुषु ३ । ३ । ६९ ॥

संपूर्वोऽजिः समुदाये उत्पूर्वश्च प्रेरणे तस्मात्पशुविषयकादप् । घञपोः इत्युक्तेर्वीभावो न । समजः पशूनां संघः । उदजः पशूनां प्रेरणम् । पशुषु किम् । समाजो ब्राह्मणानाम् । उदाजः क्षत्रियाणाम् ॥

अक्षेषु ग्लहः ३ । ३ । ७० ॥

अक्षशब्देन देवनं लक्ष्यते । तत्र यत्पणरूपेण ग्राह्यं तत्र ग्लहः इति निपात्यते । अक्षस्य ग्लहः । व्यात्युक्षीमभिसरणग्लहामदीव्यन् । अक्षेषु किम् । पादस्य ग्रहः ॥

प्रजने सर्तेः ३ । ३ । ७१ ॥

डुपचष्-पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप्-उप्त्रिमम् । ट्वितोऽथुच् । ट्वेपृ वेपथुः-श्वयथुः ॥

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोऽनङ् ३ । ३ । ९० ॥

यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । प्रश्ने चासन्न इति ज्ञापकान्न संप्रसारणम् । ङित्त्वं तु विश्न इत्यत्र गुणनिषेधाय । रक्ष्णः ॥

स्वपो नन् ३ । ३ । ९१ ॥

स्वप्नः ॥

उपसर्गे घोः किः ३ । ३ । ९२ ॥

प्रधिः । अन्तर्धिः । उपाधीयतेऽनेनेत्युपाधिः ॥

कर्मण्यधिकरणे च ३ । ३ । ९३ ॥

कर्मण्युपपदे घोः किः अधिकरणेऽर्थे । जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः । स्त्रियां क्तिन् । घञोऽपवादः । अजपौ तु परत्वाद्बाधते । कृतिः । चितिः । स्तुतिः । स्फायी । स्फातिः । स्फीतिकामः इति तु प्रामादिकम् । क्तान्ताद्धात्वर्थे णिचि अच इः इति वा समाधेयम् ॥

श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे * ॥

श्रूयतेऽनया श्रुतिः । यजेरिषेश्च । इष्टिः । स्तुतिः ॥

ऋल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्वाच्यः * ॥

तेन नत्वम् । गीर्णिः । लूनिः । धूनिः । शूनिः । ह्लादः इति योगविभागात् क्तिनि ह्रस्वः । प्रह्लत्तिः । ति च । चूर्तिः । फुल्तिः ॥

चायतेः क्तिनि चिभावो वाच्यः * ॥

अपचितिः । संपदादिभ्यः क्विप् । संपत् । विपत् । क्तिन्नपीष्यते । संपत्तिः । विपत्तिः ॥

स्थागापापचो भावे ३ । ३ । ९५ ॥

क्तिन्स्यादङोऽपवादः । प्रस्थितिः । उपस्थितिः । संगीतिः ।

संप्रीतिः । पक्तिः । कथम् अवस्था संस्था इति । व्यवस्थायाम् इति ज्ञापकात् ॥

ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३ । ३ । ९७ ॥

अवतेः ज्वर त्वर इत्यूठ् । ऊतिः स्वरार्थं वचनम् । उदात्त इति हि वर्तते । यूतिः । जूतिः । अनयोर्दीर्घत्वं च निपात्यते । स्यतेः सातिः । घतिस्यतिमास्था इतीत्वे प्राप्त इत्वाभावो निपात्यते । सनोतेर्वा जनसन इत्यात्वे कृते स्वरार्थं निपातनम् । हन्तेर्हिनोतेर्वा । हेतिः । कीर्तिः ॥

व्रजयजोर्भावे क्यप् ३ । ३ । ९८ ॥

व्रज्या । इज्या ॥

संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ३ । ३ । ९९ ॥

समजादिभ्यः स्त्रियां भावादौ क्यप् स चोदात्तः संज्ञायाम् ॥

अजेः क्यपि वीभावो नेति वाच्यम् ॥

समजन्त्यस्यामिति समज्या सभा । निषीदन्त्यस्यामिति निषद्या आपणः । निपतन्त्यस्यामिति निपत्या पिच्छिला भूमिः । मन्यतेऽनयेति मन्या गलपार्श्वशिरा । विदन्त्यनया विद्या । सुत्याभिषवः । शय्या । भृत्या । ईयतेऽनया इत्या शिबिका ॥

कृञः श च ३ । ३ । १०० ॥

कृञः इति योगविभागः । कृञः क्यप् कृत्या श च । चात्क्तिन् । क्रिया कृतिः ॥

इच्छा ३ । ३ । १०१ ॥

इषेर्भावे शो यगभावश्च निपात्यते । इच्छा ॥

परिचर्यापरिसर्यामृगयाटाट्यानामुपसंख्यानम् ॥

शो यक्च निपात्यते । परिचर्या पूजा । परिसर्या परिसरणम् । अत्र गुणोऽपि । मृग अन्वेषणे । चुरादावदन्तः । अतो लोपाभा-

वोऽपि । शे यकि णिलोपः । मृगया । अटतेः शे यकि टचशब्दस्य द्वित्वं पूर्वभागे यकारनिवृत्तिर्दीर्घश्च । अटाट्या ॥

जागर्तेरकारो वा ❀ ॥

पक्षे शः । जागरा जागर्या । अप्रत्ययात् । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या । गुरोश्च हलः । ईहा । ऊहा । गुरोः किम् । भक्तिः । हल किम् । नीतिः ॥

निष्ठायां सेट इति वक्तव्यम् ❀ ॥

नेह । आप्तिः । तितुत्र इति नेट् । दीप्तिः ॥

तितुत्रेष्वग्रहादीनामिति वाच्यम् ❀ ॥

निगृहीतिः । निपठितिः । षिद्भिदादिभ्योऽङ् । जॄष् । ऋदृशोऽङि गुणः । जरा । त्रपूष् त्रपा । भिदा । विदारण एवायम् । भित्तिरन्या । छिदा । मृजा ॥

कृपेः संप्रसारणं च ❀ ॥

कृपा ॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ३ । ३ । १०५ ॥

अङ् युचोऽपवादः । चिन्ता । पूजा । कथा । कुम्बा । चर्चा । आतश्चोपसर्गे । प्रदा । उपदा ॥

श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः ❀ ॥

श्रद्धा । अन्तर्धा । उपसर्गे घोः किः इत्यनेन किः । अन्तर्धिण्यासश्रन्थो युच् । कारणा । हारणा । आसना । श्रन्थना ॥

घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम् ❀ ॥

घट्टना । वन्दना । वेदना ॥

इषेरनिच्छार्थस्य ❀ ॥

अन्वेषणा ॥

परेर्वा ❀ ॥

पर्येषणा । परीष्टिः ॥

रोगाख्यायां ण्वुल्बहुलम् ❀ ॥

प्रच्छर्दिका । प्रवाहिका । विचर्चिका ॥

क्वचिन्न ❀ ॥

शिरोर्तिः ॥

धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल्वक्तव्यः ❀ ॥

आसिका । शायिका । इक्श्तिपादय उक्ताः । पचिः पचतिः । अकारः ककारः । रादिफः रेफः । मत्वर्थीयः । आजिः । आतिः । वापिः । वासिः । कृपिः । गिरिः ॥

संज्ञायाम् ३ । ३ । १०९ ॥

अत्र धातोर्ण्वुल् । उद्दालकपुष्पभञ्जिका ॥

विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ३ । ३ । ११० ॥

परिप्रश्न आख्याने च गम्य इञ् चाण्वुल् विभाषोक्तेर्यथाप्राप्त मन्येऽपि । का त्वं कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वाकार्षीः । सर्वां कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वाकार्षम् । एवं गणिं गणिकां गणनाम् । पाचिं पाचिकां पचां पक्तिम् ॥

पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ३ । ३ । १११ ॥

पर्यायः । परिपाटी क्रमः । अर्हणमर्हः योग्यता । पर्यायादिषु द्योत्येषु ण्वुच्वा । भवत आसिका । शायिका । अग्रगामिका । भवानिक्षुभक्षिकामर्हति । ऋणे–इक्षुभक्षिका मे धारयति । उत्पत्तौ-इक्षुभक्षिका उदपादि । आक्रोशे नञ्यनिः अजीवनिस्ते शठ भूयात् । अप्रयाणिः । कृत्यल्युटो बहुलम् । भावे । कर्तरि च कारके संज्ञायामिति च निवृत्तम् । राज्ञा भुज्यन्ते राजभोजनाः शालयः । नपुंसके भावे क्तः। ल्युट् च । हसितं हसनम्। योगविभाग उत्तरार्थः॥

कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्तुः शरीरसुखम् ३ । ३ । ११६ ॥

येन स्पृश्यमानस्य कर्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन्कर्मण्युपपदे ल्युट् । पूर्वेण सिद्धे नित्यसमासार्थं वचनम् । पयःपानं सुखम् । कर्तरि इति किम् । गुरोः स्नापनं सुखम् । नेह गुरुः कर्ता किंतु कर्म ॥

इति ९८ अंशाः ।

वायौ २ । ४ । ५७ ॥

अजेर्वी वायौ । प्रवयणम् । प्राजनम् । करणाधिकरणयोश्च । ल्युट् । इध्मप्रव्रश्चनः कुठारः । गोदोहनी स्थाली । खलः। माकरणाधिकरणयोरित्यधिकारः ॥

अन्तरदेशे ८ । ४ । २४ ॥

अन्तःशब्दाद्धन्तेर्नस्य णः । अन्तर्हणनम् । देशे तु अन्तर्हननो देशः । अत्पूर्वस्येत्येव । अन्तर्घ्नन्ति । तपरः किम् । अन्तरघानि ॥

अयनं च ८ । ४ । २५ ॥

अयनस्य णोऽन्तःशब्दात्परस्य । अन्तरयणम् । अदेश इत्येव । अन्तरयनो देशः ॥

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३ । ३ । ११८ ॥

छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६ । ४ । ९६ ॥

द्विप्रभृत्युपसर्गहीनस्य छादेर्ह्रस्वः घे परे । दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मिन्नाकरः ॥

गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ३ । ३।११९ ॥

घान्ता निपात्यन्ते । हलश्च इति वक्ष्यमाणस्य घञोऽपवादः । गावश्चरन्त्यस्मिन्निति गोचरो देशः । संचरन्तेऽनेन संचरो मार्गः । वहन्त्यनेन वहः स्कन्धः व्रजः । व्यजस्तालवृन्तम् । निपातनाद्वीभावो न । आपणः पण्यस्थानम् । निगच्छन्त्यनेन निगमश्छन्दः। चात्कषः । निकषः ॥

अवे तॄस्त्रोर्घञ् ३ । ३ । १२० ॥

अवतारः कूपादेः । अवस्तारो जवनिका । हलश्च । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति रामः । अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरित्यपामार्गः । विमार्गः । समूहनी ॥

अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ३ । ३ । १२२ ॥

अधीयतेऽस्मिन्नध्यायः।नियन्त्युद्युवन्ति संहरन्त्यनेनेति विग्रहः॥

अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ॥

उदङ्कोऽनुदके ३ । ३ । १२३ ॥

उत्पूर्वादञ्चतेर्घञ् नतूदके । घृतमुदच्यते उद्ध्रियतेऽस्मिन्निति घृतोदङ्कश्चर्ममयं भाण्डम् । अनुदके किम् । उदकोदञ्चनः ॥

जालमानायः ३ । ३ । १२४ ॥

आनीयन्ते मत्स्यादयोऽनेनेत्यानायः । जालम् इति किम् । आनयः ॥

खनो घ च ३ । ३ । १२५ ॥

चाद्घञ् । आखनः आखानः । घित्करणमन्यतोऽप्ययमिति ज्ञापनार्थम् । तेन भगः पदमित्यादि ॥

खनेर्डडरेकेकवका वाच्याः ॥

आखः । आखरः ।आखनिक आखनिकवकः।एते खनित्रवचनाः। ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् । करणाधिकरणयोरिति निवृत्तम् । कृच्छ्रे-दुष्करः कटो भवता । अकृच्छ्रे-ईषत्करः सुकरः ॥

निमिमीलियां खलचोरात्वं नेति वाच्यम् ॥

ईषन्निमयः । दुष्प्रमयः । सुविलयः । निमयः । मयः । लयः॥

उपसर्गात् खल्घञोः ७ । १ । ६७ ॥

उपसर्गादेव लभेर्नुम् । ईषत्प्रलम्भः । दुष्प्रलम्भः । सुप्रलम्भः । उपालम्भः । उपसर्गात् किम् । ईषल्लभः लाभः ॥

न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् ७ । १ । ६८ ॥

उपसर्गान्तररहिताभ्यां सुदुर्भ्यां लभेर्नुम्न खलघञोः । सुलभम् । दुर्लभम् । केवलाभ्यां किम् । सुप्रलम्भः । अतिदुर्लम्भः । कथं तर्हि अतिसुलभमतिदुर्लभमिति । यदा स्वतौ कर्मप्रवचनीयौ तदा भविष्यति ॥

कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ३ । ३ । १२७ ॥

कर्तृकर्मणोरीषदादिषु चोपपदेषु भूकृञोः खल् यथासंख्यं न ष्यते कर्तृकर्मणी च धातोरव्यवधानेन प्रयोज्ये । ईषदादयस्तु ततः प्राक् ॥

कर्तृकर्मणोश्च्व्यर्थयोरिति वाच्यम् ॥

खित्त्वान्मुम् । अनाढ्येन दुःखेन भूयते दुराढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यम्भवम् । स्वाढ्यम्भवम् । ईषदाढ्यङ्करः । दुराढ्यङ्करः । स्वाढ्यङ्करः । च्व्यर्थयोः किम् । आढ्येन सुभूयते । आतो युच् । खलोऽपवादः । ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः ॥

भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युज्वाच्यः ॥

दुःशासनः । दुर्योधन इत्यादि ॥

पात्पदान्तात् ८ । ४ । ३४ ॥

नस्य णो न । निष्पानम् । सर्पिष्पानम् । पात् किम् । निर्णयः। पदान्तात् किम् । पुष्णाति । पदेऽन्तः पदान्तोऽयमिति सप्तमीसमासोऽयम् । तेनेह न । सुसर्पिष्केण । आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः। अवश्यंकारी । शतंदायी । कृत्याश्च । आवश्यकाधमर्ण्ययोरित्येव । अवश्यं हरिः सेव्यः । शतं देयम् । क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् । तितुत्र इति नेट् । भवताद्भूतिः ॥

न क्तिचि दीर्घश्च ६ । ४ । ३९ ॥

आनिटां वनतितनोत्यादीनां च दीर्घानुनासिकलोपौ न स्तः क्तिचि परे । यान्तिः । रन्तिः । वन्तिः । तन्तिः ॥

सनः क्तिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ६ । ४ । ४५ ॥

सनोतेः क्त्व्यात्वं वा लोपश्च वा । सनुतात् । सातिः सतिः मन्तिः । देवा एनं देयासुर्देवदत्तः । अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा । प्राचां ग्रहणं पूजार्थम् । अमैवाव्ययेन इति नियमान्नोपपद-समासः । दोदद्धो' । अलं दत्त्वा । घुमास्था । पीत्वा खलु । अलं-खल्वोः किम् । माकार्षीत् । प्रतिषेधयोः किम् । अलंकारः ॥

उदीचां माङो व्यतीहारे ३ । ४ । १९ ॥

व्यतीहारेऽर्थे माङः क्त्वा । अपूर्वकालार्थमिदम् ॥

मयतेरिदन्यतरस्याम् ६ । ४ । ७० ॥

मेङ इकारोऽन्तादेशः वा ल्यपि । अपमित्य याचते अपमाय । उदीचाग्रहणाद्यथाप्राप्तमपि । याचित्वा अपमयते ॥

परावरयोगे च ३ । ४ । २० ॥

परेण पूर्वस्यावरेण परस्य योगे गम्ये धातोः क्त्वा । अप्राप्य नदीं पर्वतः । परनदी योगोऽत्र पर्वतस्य । अतिक्रम्य पर्वतं स्थिता नदी । अवरपर्वतयोगोऽत्र नद्याः । समानकर्तृकयोः पूर्वकाले । भुक्त्वा व्रजति । द्वित्वमतन्त्रम् । स्नात्वा भुक्त्वा पीत्वा व्रजति । अनुदात्त इत्यनुनासिकलोपः । विष्णुं नत्वा स्तौति ॥

स्वरत्यादेः श्युकः किति इति नित्यमिडभावः पूर्वविप्रतिषेधेन ❀ ॥

स्वृत्वा । सूत्वा । धूत्वा ॥

क्त्वि स्कन्दिस्यन्दोः ६ । ४ । ३१ ॥

एतयोर्नलोपे न स्यात्क्त्वि परे । स्कन्त्वा । ऊदित्वादिड्वा । स्यन्त्वा स्यन्दित्वा ॥

न क्त्वा सेट् १ । २ । १८ ॥

सेट् क्त्वा कित्र । शयित्वा । सेट् किम् । कृत्वा ॥

मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा १ । २ । ७ ॥

एभ्यः सेट् क्त्वा कित् । मृडित्वा । क्लिश॰ क्त्वा इति वेट् । क्लिशित्वा क्लिष्ट्वा । उदित्वा । उषित्वा । रुदविद इति कित्वम् । रुदित्वा । विदित्वा । मुषित्वा । गृहीत्वा ॥

नोपधात्थफान्ताद्वा १ । २ । २३ ॥

सेट् क्त्वा कित्स्याद्वा । ग्रथित्वा ग्रन्थित्वा । गुफित्वा गुम्फित्वा । नोपधात् किम् । रेथित्वा । रेफित्वा ॥

वञ्चिलुञ्च्यृतश्च १ । २ । २४ ॥

सेट् क्त्वा किद्वा । वचित्वा वञ्चित्वा । लुचित्वा लुञ्चित्वा । ऋतित्वा अर्तित्वा ॥

तृषिमृषिकृशेः काश्यपस्य १ । २ । २५ ॥

एभ्यः सेट् क्त्वा किद्वा । तृषित्वा तर्षित्वा । मृषित्वा मर्षित्वा । कृशित्वा कर्शित्वा । रलो व्युपधात् इति वा कित्वम् । द्युतित्वा द्योतित्वा । लिखित्वा लेखित्वा । रलः किम् । सेवित्वा । व्युपधात् किम् । वर्तित्वा । हलादेः किम् । एषित्वा । सेट् किम् । भुक्त्वा । वसतिक्षुधोरिट् । उषित्वा । क्षुधित्वा क्षोधित्वा । अञ्चेः पूजायाम् इति नित्यमिट् । अञ्चित्वा । गतौ तु अक्त्वेत्यपि । लुभित्वा लोभित्वा । लुभो विमोहने इतीट् । विमोहने तु । लुब्ध्वा ॥

जॄव्रश्च्योः क्त्वि ७ । २ । ५५ ॥

आभ्यां परस्य क्त्व इट् । जरीत्वा जरित्वा । व्रश्चित्वा ॥

उदितो वा ७ । २ । ५६ ॥

उदितः परस्य क्त्व इड्वा । शमित्वा । अनुनासिकस्य क्वि इति दीर्घः । शान्त्वा । दृत्वा देवित्वा ॥

इति ९६ अंशः ।

क्रमश्च क्त्वि ६ । ४ । १८ ॥

क्रमउपधाया वा दीर्घः । झलादौ क्त्वि परे । क्रान्त्वा क्रन्त्वा । झलि किम् । क्रमित्वा । पूङश्च इति वेट् । पवित्वा पूत्वा ॥

जान्तनशां विभाषा ६ । ४ । ३२ ॥

जान्तानां नशेश्च नलोपो वा क्त्वि परे। मक्त्वा भङ्क्त्वा । रक्त्वा रङ्क्त्वा । मस्जिनशोः इति नुम् । तस्य पक्षे लोपः । नष्ट्वा नंष्ट्वा । रधादिभ्यश्च इतीट्पक्षे । नशित्वा ॥

झलादाविति वाच्यम् ॥

नेह । अञ्जित्वा । ऊदित्वाद्वेट्पक्षे । अक्त्वा अङ्क्त्वा । जनसन इत्यात्वम् । खात्वा खनित्वा । द्यतिस्यति इतीत्वम् । दित्वा । सित्वा । मित्वा । स्थित्वा । दधातेर्हिः । हित्वा ॥

जहातेश्च क्त्वि ७ । ४ । ४३ ॥

हित्वा । हाङस्तु हात्वा । अदो जग्धिः । जग्ध्वा । समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् तुक । प्रकृत्य । अनञ् किम् । अकृत्वा । पर्युदासाश्रयणान्नेह । परमकृत्वा ॥

षत्वतुकोरसिद्धः ६ । १ । ८६ ॥

षत्वे तुकि च कर्तव्ये एकादेशशास्त्रमसिद्धम् कोऽसिचत् । इह षत्वं न । अधीत्य । प्रेत्य । ह्रस्वस्य इति तुक् ॥

वा ल्यपि ६ । ४ । ३८ ॥

अनुदात्तोपदेशानां वनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो वा स्याल्ल्यपि । व्यवस्थितविभाषेयम् । तेन मान्तानिटां वा नान्तानिटां वनादीनां च नित्यम् । आगत्य । आगम्य । प्रणत्य । प्रणम्य । प्रहत्य । प्रमत्य । प्रवत्य । वितत्य । अदो जग्धिः ॥

अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यब्बाधते ॥

जग्धिविधौ ल्यब्ग्रहणात् तेन हित्वदत्वात्वे त्वदीर्घत्वशूटिटो ल्यपि न । विधाय । प्रदाय । प्रखन्य । प्रस्थाय । प्रक्रम्य । आपृच्छ्य । प्रदीव्य ॥

न ल्यपि ६ । ४ । ६९ ॥

ल्यपि परे घुमास्थादेरीत्वं न । धेट् । प्रधाय । प्रमाय । प्रगाय ।

प्रपाय । प्रहाय । प्रसाय । मीनातिमिनोति इत्यात्वम् । प्रमाय । निमाय । उपदाय । विभाषा लीयतेः। विलाय विलीय । णिलोपः। उत्तार्य । विचार्य ॥

ल्यपि लघुपूर्वात् ६ । ४ । ५६ ॥

लघुपूर्वात्परस्य णेरयादेशो ल्यपि । विगणय्य । प्रणमय्य । प्रवेभिदय्य । लघुपूर्वात् किम् । संप्रधार्य ॥

विभाषापः ६ । ४ । ५७॥

आप्नोतेर्णेरयादेशो वा ल्यपि । प्रापय्य प्राप्य ॥

क्षियः ६ । ४ । ५९ ॥

क्षियो ल्यपि दीर्घः । प्रक्षीय ॥

ल्यपि च ६ । १ । ४१ ॥

वेञो ल्यपि संप्रसारणं न । प्रवाय ॥

ज्यश्च ६ । १ । ४२ ॥

प्रज्याय ॥

व्यश्च ६ । १ । ४३ ॥

उपव्याय ॥

विभाषा परेः ६ । १ । ४४ ॥

परेर्व्येञो वा संप्रसारणं ल्यपि । तुकं बाधित्वा परत्वात् हलः इति दीर्घः । परिवीय परिव्याय । कथं मुखं व्यादाय स्वपिति नेत्रे निमील्य हसति इति । व्यादानसंमीलनोत्तरकालेऽपि स्वापहासयोरनुवृत्तेस्तदंशविवक्षया भविष्यति । आभीक्ष्ण्ये णमुल्च । स्मारं स्मारं नमति शिवम् । स्मृत्वा स्मृत्वा । पायं पायम् । भोजं भोजम् । श्रावं श्रावम् । चिण्णमुलोः इति णमुल्परे णौ वा दीर्घः । गामं गामम् । गमं गमम् । विभाषा चिण्णमुलोः इति नुम्वा । लम्भं लम्भम् । लाभं लाभम् । व्यवस्थितविभाषयोपसृष्टस्य नित्यं नुम् । प्रलम्भं प्रलम्भम् । जाग्रोऽविचिण् इति गुणः। जागरं जागरम् । ण्यन्तस्याप्येवम् ॥

न यद्यनाकाङ्क्षे ३ । ४ । २३ ॥

यच्छब्द उपपदे पूर्वकाले यत्प्राप्तं तन्न । यत्र पूर्वोत्तरे क्रिये तद्वाक्यमपरं नाकांक्षते चेत् । यदयं भुङ्क्ते ततः पठति । इह क्त्वाणमुलौ न । अनाकांक्षे किम् । यदयं भुक्त्वा व्रजति ततोऽधीते ॥

विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ३ । ४ । २४ ॥

आभीक्ष्ण्य इति नानुवर्तते । एषूपपदेषु समानकर्तृकयोः पूर्वकाले क्त्वाणमुलौ वा । अग्रेभोजं व्रजति । अग्रेभुक्त्वा । प्रथमं भोजम् । प्रथमं भुक्त्वा । पूर्वं भोजम् । पूर्वं भुक्त्वा । पक्षे लडादयः । अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति । आभीक्ष्ण्ये तु । पूर्वविप्रतिषेधेन नित्यमेव विधिः । अग्रे भोजं भोजं व्रजति । भुक्त्वा भुक्त्वा ॥

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ३ । ४ । २५ ॥

कर्मण्युपपद आक्रोशे गम्ये चौरंकारमाक्रोशति । करोतिरुच्चारणे । चौरशब्दमुच्चार्येत्यर्थः ॥

स्वादुमि णमुल् ३ । ४ । २६ ॥

स्वाद्वर्थेषु कृञो णमुल् । एककर्तृकयोः पूर्वकाले पूर्वपदस्य मान्तत्वं निपात्यते । अस्वादुं स्वादुं कृत्वा भुङ्क्ते स्वादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नंकारम् । लवणंकारम् । संपन्नलवणशब्दौ स्वादुपर्यायौ । वासरूपेण क्त्वापि । स्वादुंकृत्वा भुङ्क्ते ॥

अन्यथैवंकथमित्थंसुसिद्धाप्रयोगश्चेत् ३ । ४ । २७ ॥

एषु कृञो णमुल् । सिद्धोऽप्रयोगोऽस्यैवंभूतश्चेत्कृञ्व्यर्थत्वात्प्रयोगानर्ह इत्यर्थः । अन्यथाकारम् । एवंकारम् । कथंकारम् । इत्थंकारं भुङ्क्ते । इत्थं भुङ्क्त इत्यर्थः । सिद्ध इति किम् । शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ॥

यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ३ । ४ । २८ ॥

कृञः सिद्धाप्रयोग इत्येव । असूयया प्रतिवचने । यथाकारमहं भोक्ष्ये । तथाकारं भोक्ष्ये । किं तवानेन ॥

कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ३ । ४ । २९ ॥

कर्मण्युपपदे णमुल् कन्यादर्शं वरयति । सर्वाः कन्या इत्यर्थः । ब्राह्मणवेदं भोजयति । यं यं ब्राह्मणं जानाति लभते विचारयति वा तं सर्वं भोजयतीत्यर्थः ॥

यावति विन्दजीवोः ३ । ४ । ३० ॥

यावद्वेदं भुङ्क्ते । यावल्लभते तावदित्यर्थः । यावज्जीवमधीते ॥

चर्मोदरयोः पूरेः ३ । ४ । ३१ ॥

कर्मणीत्येव । चर्मपूरं स्तृणाति । उदरपूरं भुङ्क्ते ॥

वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ३ । ४ । ३२ ॥

कर्मण्युपपदे पूरेर्णमुल् स्यादूकारलोपश्च वा । समुदायेन वर्षमाणे गम्ये । गोष्पदप्रं वृष्टो देवः । गोष्पदपूरं वृष्टो देवः । अस्य इति किम् । उपपदस्य मा भूत् । मूषिकाबिलप्रम् ॥

चेले क्नोपेः ३ । ४ । ३३ ॥

चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु क्नोपेर्णमुल् वर्षप्रमाणे । चेलक्नोपं वृष्टो देवः । वस्त्रक्नोपम् । वसनक्नोपम् ॥

निमूलसमूलयोः कषः ३ । ४ । ३४ ॥

कर्मणीत्येव कषादिष्वनुप्रयोगं वक्ष्यति । अत्र प्रकरणे पूर्वकाल इति न संबध्यते । निमूलकापं कषति । समूलकापं कषति । निमूलं समूलं कषतीत्यर्थः । एकस्यापि धात्वर्थस्य निमूलादिविशेषणसंबन्धाद्भेदः । तेन सामान्यविशेषभावेन विशेषणविशेष्यभावः ॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ३ । ४ । ३५ ॥

एषु कर्मसु पिषेर्णमुल् । शुष्कपेषं पिनष्टि । शुष्कं पिनष्टीत्यर्थः । चूर्णपेषम् । रूक्षपेषम् ॥

समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ३ । ४ । ३६ ॥

कर्मणीत्येव । समूलघातं हन्ति । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं

गृह्णाति । जीवतीति जीवः । इगुपधलक्षणः कः । जीवन्तं गृह्णातीत्यर्थः ॥

करणे हनः ३ । ४ । ३७ ॥

पादघातं हन्ति । पादेन हन्तीत्यर्थः । यथाविध्यनुप्रयोगार्थः । नित्यसमासार्थोऽयं योगः । भिन्नधातुसंबन्धे तु हिंसार्थानां च इति वक्ष्यते ॥

स्नेहने पिषः ३ । ४ । ३८ ॥

स्निह्यते येन तस्मिन्करणे पिषेर्णमुल् । उदपेषं पिनष्टि । उदकेन पिनष्टीत्यर्थः ॥

हस्ते वर्तिग्रहोः ३ । ४ । ३९ ॥

हस्तार्थे करणे । हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्तम् । हस्तेन गुलिकां करोतीत्यर्थः । हस्तग्राहं गृह्णाति । करग्राहम् । पाणिग्राहम् ॥

स्वे पुषः ३ । ४ । ४० ॥

करण इत्येव । स्व इत्यर्थग्रहणं तेन स्वरूपे पर्याये विशेषे च णमुल् । स्वपोषं पुष्णाति । धनपोषम् । गोपोषम् ॥

अधिकरणे बन्धः ३ । ४ । ४१ ॥

चक्रबन्धं बध्नाति । चक्रे बध्नातीत्यर्थः ॥

इति ९७ अंशाः ।

संज्ञायाम् ३ । ४ । ४२ ॥

बध्नातेर्णमुलसंज्ञायाम् । क्रौञ्चबन्धं बद्धः । मयूरिकाबन्धम् । अट्टालिकाबन्धम् । बंधविशेषाणां संज्ञा एताः ॥

कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ३ । ४ । ४३ ॥

जीवनाशं नश्यति । जीवो नश्यतीत्यर्थः । पुरुषवाहं वहति । पुरुषो वहतीत्यर्थः ॥

ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ३ । ४ । ४४ ॥

ऊर्ध्वे कर्तरि । ऊर्ध्वशोषं शुष्यति । वृक्षादिरूर्ध्व एव तिष्ठञ्छुष्यतीत्यर्थः । ऊर्ध्वपूरं पूर्यते । ऊर्ध्वमुख एव घटादि वर्षोदकादिना पूर्णो भवतीत्यर्थः ॥

उपमाने कर्मणि च ३ । ४ । ४५ ॥

चात्कर्तरि । घृतनिधायं निहितं जलम् । घृतमिव सुरक्षितमित्यर्थः । अजकनाशं नष्टः । अजक इव नष्ट इत्यर्थः ॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ३ । ४ । ४६ ॥

यस्माण्णमुलुक्तः । स एवानुप्रयोक्तव्य इत्यर्थः । तथैवोदाहृतम्॥

उपदंशस्तृतीयायाम् ३ । ४ । ४७ ॥

इतः प्रभृति पूर्वकाल इति संबध्यते । तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् इति वा समासः । मूलकोपदंशं भुङ्क्ते । मूलकेनोपदंशम् । दश्यमानस्य मूलकस्य भुजिं प्रति करणत्वात्तृतीया।यद्यप्युपदंशिना सह न शाब्दः संबन्धस्तथाप्यार्थोऽस्त्येव कर्मत्वात् । एतावतैव सामर्थ्येन प्रत्ययः समासश्च तृतीयायामिति वचनसामर्थ्यात् ॥

हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ३ । ४ । ४८ ॥

तृतीयान्त उपपदेऽनुप्रयोगधातुना समानकर्मकाद्धिंसार्थात् णमुल् । दण्डोपघातं गाः कालयति । दण्डेनोपघातम् । दण्डताडम् । समानकर्मकाणाम् इति किम् । दण्डेन चोरमाहत्य गाः कालयति ॥

सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ३ । ४ । ४९ ॥

उपपूर्वेभ्यः पीडादिभ्यः सप्तम्यन्ते तृतीयान्ते चोपपदे णमुल् । पार्श्वोपपीडं शेते । पार्श्वयोरुपपीडम् । पार्श्वाभ्यामुपपीडम् । व्रजोपरोधं गाः स्थापयति । व्रजेन व्रजे उपरोधं वा । पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति । पाणावुपकर्षम् । पाणिनोपकर्षम् ॥

समासत्तौ ३ । ४ । ५० ॥

तृतीया सप्तम्योर्धातोर्णमुल् संनिकर्षे गम्यमाने । केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु गृहीत्वा । हस्तग्राहम् । हस्तेन गृहीत्वा ॥

प्रमाणे च ३ । ४ । ५१ ॥

तृतीयासप्तम्योरित्येव । द्व्यंगुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति । द्व्यंगुलेन द्व्यंगुले चोत्कर्षम् ॥

अपादाने परीप्सायाम् ३ । ४ । ५२ ॥

परीप्सा त्वरा । शय्योत्थायं धावति ॥

द्वितीयायां च ३ । ४ । ५३ ॥

परीप्सायामित्येव । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहम् ॥

अपगुरो णमुलि ६ । १ । ५३ ॥

गुरी उद्यमने इत्यस्यैचोवात् णमुलि । अस्यपगोरं युध्यन्ते । अस्यपगारम् ॥

स्वाङ्गेऽध्रुवे ३ । ४ । ५४ ॥

द्वितीयायामित्येव । अध्रुवे स्वाङ्गे द्वितीयान्ते धातोर्णमुल् । भ्रूविक्षेपं कथयति । भ्रुवं विक्षेपम् । अध्रुवे किम् । शिर उत्क्षिप्य येन विना न जीवनं तद् ध्रुवम् ॥

परिक्लिश्यमाने च ३ । ४ । ५५ ॥

सर्वतो विबाध्यमाने स्वाङ्गे द्वितीयान्ते णमुल् । उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । कृत्स्नमुरः पीडयन्त इत्यर्थः । उरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः । ध्रुवार्थमिदम् ॥

विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ३ । ४ । ५६ ॥

द्वितीयायामित्येव । द्वितीयान्त उपपदे विश्यादिभ्यो णमुल् । व्याप्यमान आसेव्यमाने चार्थे गम्ये गेहादिद्रव्याणां विश्यादिक्रियाभिः साकल्येन संबन्धो व्याप्तिः । क्रियायाः पौनःपुन्यमासेवा । नित्यवीप्सयोः इति द्वित्वं तु न भवति । समासेनैव स्वभावतस्तयोरुक्तत्वात् । यद्यप्याभीक्ष्ण्ये णमुलुक्त एव तथापि उपपदसंज्ञार्थमासेवायामिह पुनर्विधिः । गेहानुप्रवेशमास्ते गेहं गेहमनु-

प्रवेशम् । गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशम् । एवं गेहानुप्रपातम् । गेहानुप्रपादम् । गेहानुस्कन्दम् । असमासे तु गेहस्य णमुलन्तस्य च पर्यायेण द्वित्वम् ॥

अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ३ । ४ । ५७ ॥

क्रियामन्तरयति व्यवधत्त इति क्रियान्तरः तस्मिन्धात्वर्थे वर्तमानादस्यतेस्तृष्यतेश्च कालवाचिषु द्वितीयान्तेषूपपदेषु णमुल् । द्व्यहात्यासंगाः पाययति द्व्यहमत्यासम् । द्व्यहतर्षम् द्व्यहन्तर्षम् । अत्यसनेन तर्षणेन च गवां पानक्रिया व्यवधीयते । अद्य पाययित्वा। द्व्यहमतिक्रम्य पुनः पाययतीत्यर्थः ॥

नाम्न्यादिशिग्रहोः ३ । ४ । ५८ ॥

द्वितीयायामित्येव । नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाह्वयति ॥

अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ३।४।५९॥

अयथाभिप्रेताख्यानं नाम । अप्रियस्योच्चैः प्रियस्य च नीचैः कथनम् । उच्चैःकृत्य । उच्चैःकृत्वा । उच्चैः कारमप्रियमाचष्टे । नीचैःकृत्य । नीचैःकृत्वा । नीचैःकारं प्रियं ब्रूते ॥

तिर्यच्यपवर्गे ३ । ४ । ६० ॥

तिर्यक्शब्दे उपपदे कृञः क्त्वाणमुलौ समाप्तौ गम्यायाम् । तिर्यक्कृत्य तिर्यक्कृत्वा गतः तिर्यक्कारम् । समाप्य गत इत्यर्थः । अपवर्गे किम् । तिर्यक्कृत्वा काष्ठं गतः ॥

स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ३ । ४ । ६१ ॥

मुखतः कृत्य गतः मुखतः कृत्वा। मुखतःकारम् । मुखतोभूय । मुखतोभूत्वा । मुखतोभावम् ॥

नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ३ । ४ । ६२ ॥

नाधार्थप्रत्ययान्ते च्व्यर्थविषये उपपदे कृभुवोः क्त्वाणमुलौ । अनाना नानाकृत्वा नानाकृत्य नानाकारम् । विनाकृत्य विनाकृत्वा विनाकारम् । नानाभूय नानाभूत्वा नानाभावम् । अनेकं द्रव्यमेकं

कृत्वा एकधाभूय एकधाभूत्वा एकधाभावम् । एकधाकृत्य एकधाकृत्वा एकधाकारम् ॥

तूष्णीमि भुवः ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णींशब्दे उपपदे भुवः क्त्वाणमुलौ । तूष्णीभूय तूष्णीभूत्वा तूष्णींभावम् ॥

अन्वच्यानुलोम्ये ३ । ४ । ६४ ॥

अन्वक्शब्द उपपदे आनुकूल्ये गम्ये भुवः क्त्वाणमुलौ। अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वा अन्वग्भावम् । अग्रतः पार्श्वतः पृष्ठतो वाऽनुकूलो भूत्वा आस्त इत्यर्थः । आनुलोम्ये किम् । अन्वग्भूत्वा-तिष्ठति । पृष्ठतो भूत्वेत्यर्थः । इति कृत् ॥

इति ९८ अंशाः ।

अनभिहिते कर्मादौ द्वितीयादय उक्ताः । अभिहिते तु कर्मादौ प्रातिपदिकार्थे इति प्रथमैव । अभिधानं तु प्रायेण तिङ्कृत्तद्धित-समासैः। तिङ्-हरिः सेव्यते । कृत्-लक्ष्म्या सेवितः। तद्धितः-शतेन क्रीतः शत्यः । समासः-प्राप्त आनन्दो यं प्राप्तानन्दः । क्वचिन्निपातेनाभिधानम् । यथा, विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम् । असांप्रतमित्यस्यनयुज्यत इत्यर्थः ॥

तथायुक्तं चानीप्सितम् १ । ४ । ५० ॥

ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसंज्ञम् । ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति । ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते ॥

अकथितं च १ । ४ । ५१ ॥

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञम् । दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् । कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥ दुहादीनां द्वादशानां नीप्रभृतीनां चतुर्णां च कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्म इति परिगणनं कर्तव्यमित्यर्थः । गां दोग्धि पयः । बलिं याचते वसुधाम् । अविनीतं विनयं याचते । तण्डुलानोदनं पचति । गर्गाञ्छतं दण्डयति । व्रजमवरु-

णाद्धि गाम् । माणवकं पन्थानं पृच्छति । वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति । ग्राममजां नयति हरति कर्षति वहति वा । अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा । बलिं भिक्षते वसुधाम् । माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्तीत्यादि । कारकं किम् । माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति ॥

अकर्मकधातुभियोंगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् ❋ ॥

कुरून्स्वपिति । मासमास्ते । गोदोहमास्ते । क्रोशमास्ते ॥

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ १।४।५२ ॥

गत्याद्यर्थानां शब्दकर्मणामकर्मकाणां चाणौ यः कर्ता स णौ कर्म स्यात् । शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत् । आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम् ॥ आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः । गति इत्यादि किम् । पाचयत्योदनं देवदत्तेन । अण्यन्तानां किम् । गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं तमपरः प्रयुङ्क्ते । गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः ॥

नीवह्योर्न ❋ ॥

नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन ॥

नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः ❋ ॥

वाहयति रथं वाहान्सूतः ॥

आदिखाद्योर्न ❋ ॥

आदयति खादयति वान्नं वटुना ॥

भक्षेरहिंसार्थस्य न ❋ ॥

भक्षयत्यन्नं वटुना । अहिंसार्थस्य किम् । भक्षयति बलीवर्दान्सस्यम् ॥

जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् * ॥

जल्पयति भाषयति वा धर्मं पुत्रं देवदत्तः ॥

दृशेश्च * ॥

दर्शयति हरिं भक्तान्। सूत्रे ज्ञानसामान्यार्थानामेव ग्रहणं नतु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रति इत्यादीनां न। स्मारयति घ्रापयति देवदत्तेन ॥

शब्दायतेर्न * ॥

शब्दाययति देवदत्तेन। धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेनाकर्मकत्वात्प्राप्तिः। येषां देशकालादिभिन्नं कर्म न संभवति तेऽत्राकर्मकाः नत्वविवक्षितकर्माणोऽपि। तेन मासमासयति देवदत्तम् इत्यादौ कर्मत्वं भवति। देवदत्तेन पाचयति इत्यादौ तु न ॥

हृक्रोरन्यतरस्याम् १।४।५३ ॥

हृक्रोरणौ यः कर्ता स णौ वा कर्मसंज्ञः। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम् ॥

अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् * ॥

अभिवादयते दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा ॥

अधिशीङ्स्थासां कर्म १।४।४६ ॥

अधिपूर्वाणामेषामाधारः कर्म स्यात्। अधिशेते अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः ॥

अभिनिविशश्च १।४।४७ ॥

अभिनीत्येतत्संघातपूर्वस्य विशतेराधारः कर्म स्यात्। अभिनिविशते सन्मार्गम्। परिक्रयणे संप्रदानम् इति सूत्रादिह मण्डूकप्लुत्यान्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणात्क्वचिन्न। पापेऽभिनिवेशः ॥

उपान्वध्याङ्वसः १।४।४८ ॥

उपादिपूर्वस्य वसतेराधारः कर्म स्यात्। उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा वैकुण्ठं हरिः ॥

अभुक्त्यर्थस्य न * ॥

वने उपवसति । उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु । द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥ उभयतः कृष्णं गोपाः। सर्वतः कृष्णम् । धिक् कृष्णाभक्तम् । उपर्युपरि लोकं हरिः । अध्यधिलोकम् । अधोऽधोलोकम् । अभितःपरितःसमयानिकषा हाप्रतियोगेऽपि। अभितः कृष्णम् । परितः कृष्णम् । समया ग्रामम्। निकषा लङ्काम् । हा कृष्णाभक्तम् । तस्य शोच्यत इत्यर्थः । बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित् ॥

इति ९९ अंशाः ।

अन्तरान्तरेण युक्ते २ । ३ । ४ ॥

आभ्यां योगे द्वितीया । अन्तरा त्वां मां हरिः । अन्तरेण हरिं न सुखम् ॥

कर्मप्रवचनीयाः १ । ४ । ८३ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

अनुर्लक्षणे १ । ४ । ८४ ॥

लक्षणे द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः । गत्युपसर्गसंज्ञापवादः ॥

कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया २ । ३ । ८ ॥

एतेन योगे द्वितीया । जपमनुप्रावर्षत् । हेतुभूतजपोपलक्षितं वर्षणमित्यर्थः । परापि हेतौ तृतीयानेन बाध्यते । लक्षणेत्थम्भूत इत्यादिना सिद्धे पुनः संज्ञाविधानसामर्थ्यात् ॥

तृतीयार्थे १ । ४ । ८५ ॥

अस्मिन्द्योत्येऽनुरुक्तसंज्ञः । नदीमन्ववसिता सेना । नद्या सह संबद्धेत्यर्थः । षिञ् बन्धने क्तः ॥

हीने १ । ४ । ८६ ॥

हीने द्योत्येऽनुः प्राग्वत् । अनुहरिं सुराः । हरेर्हीना इत्यर्थः ॥

उपोऽधिके च १ । ४ । ८७ ॥

आधिके हीने च द्योत्य उपेत्यव्ययं प्राक्संज्ञम् आधिके सप्तमी वक्ष्यते । हीने उपहरिं सुराः ॥

लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः १।४।९०॥

एष्वर्थेषु विषयभूतेषु प्रत्यादय उक्तसंज्ञाः । लक्षणे वृक्षं-प्रति परि नु वा विद्योतते विद्युत् । इत्थंभूताख्याने भक्तो विष्णुं प्रति परि नु वा । भागे लक्ष्मीर्हरिं प्रति परि अनु वा । हरेर्भाग इत्यर्थः । प्सायां वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चति । अत्रोपसर्गत्वाभा- त्वम् । एषु किम् । परिषिञ्चति ॥

अभिरभागे १ । ४ । ९१ ॥

भागवर्जे लक्षणादावभिरुक्तसंज्ञः स्यात् । हरिमभिवर्तते भक्तो मभि । देवं देवमभिसिञ्चति । अभागे किम् । यदत्र ममाभि- त्तद्दीयताम् ॥

अधिपरी अनर्थकौ १ । ४ । ९३ ॥

उक्तसंज्ञौ । कुतोऽध्यागच्छति । कुतः पर्यागच्छति । गतिसं- बाधात् । गतिर्गतौ इति निघातो न ॥

सुः पूजायाम् १ । ४ । ९४ ॥

सुसिक्तम् । सुस्तुतम् । अनुपसर्गत्वान्न षः । पूजायां किम् । षिक्तं किं तवात्र । आक्षेपोऽयम् ॥

अतिरतिक्रमणे च १ । ४ । ९५ ॥

अतिक्रमणे पूजायां चाति उक्तसंज्ञः । अतिदेवान्कृष्णः ॥

अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु १।४।९६॥

एषु द्योत्येष्वपिरुक्तसंज्ञः । सर्पिषोऽपि स्यात् । अनुपसर्गत्वान्न संभावनाया लिङ् । तस्या एव विषयभूते भवने कर्तृदौर्लभ्यम- क्तं दौर्लभ्यं द्योतयन्नपिशब्दः स्यादित्यनेन संबध्यते । सर्पिषः त षष्ठी त्वपिशब्दबलेन गम्यमानस्य बिन्दोरवयवावयविभावसं- धे इयमेव ह्यपिशब्दस्य पदार्थद्योतकता नाम । द्वितीया तु नेह

प्रवर्तेते । सर्पिषो बिन्दुना योगो न त्वपि नेत्युक्तत्वात् । अपि स्तुयाद्विष्णुम् । संभावनं शक्त्युत्कर्षमाविष्कर्तुमत्युक्तिः । अपि स्तुहि । अन्ववसर्गः कामचारानुज्ञा । धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद्वृषलम् । गर्हा । अपिषिञ्च । अपिस्तुहि । समुच्चये ॥

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २ । ३ । ५ ॥

इह द्वितीया मासं कल्याणी मासमधीते । मासं गुडधानाः । क्रोशं कुटिला नदी । क्रोशमधीते । क्रोशं गिरिः । अत्यन्तसंयोगे किम् । मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः ॥

दिवः कर्म च १ । ४ । ४३ ॥

दिवः साधकतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्याच्चात्करणसंज्ञम् । अक्षैरक्षान्वा दीव्यति ॥

अपवर्गे तृतीया २ । ३ । ६ ॥

अपवर्गः फलप्राप्तिः तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया । अह्ना क्रोशेन वानुवाकोऽधीतः अपवर्गे किम् । मासमधीतो नायातः ॥

येनांगविकारः २ । ३ । २० ॥

येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनो विकारो लक्ष्यते ततस्तृतीया । अक्ष्णा काणः । अक्षिसंबंधिकाणत्वविशिष्ट इत्यर्थः । अङ्गविकारः किम् । अक्षिकाणमस्य ॥

इत्थंभूतलक्षणे २ । ३ । २१ ॥

कंचित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्षणे तृतीया । जटाभिस्तापसः । जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इत्यर्थः ॥

संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि २ । ३ । २२ ॥

संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीया वा । पित्रा पितरं वा संजानीते ॥

हेतौ २ । ३ । २३ ॥

किम् । पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति । ईप्सितमात्र इयं संज्ञा । प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मसंज्ञा । पुष्पाणि स्पृहयति ॥

क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः १ । ४ । ३७॥

क्रुधाद्यर्थानां प्रयोगे यं प्रति कोपः स उक्तसंज्ञः। हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति । यं प्रति कोपः किम् । भार्यामीर्ष्यति । मैनामन्योऽद्राक्षीदिति । क्रोधोऽमर्षः। द्रोहोऽपकारः । ईर्ष्याऽक्षमा । असूया गुणेषु दोषाविष्करणम् । द्रोहादयोऽपि कोपप्रभवा एव गृह्यन्ते । अतो विशेषणं सामान्येन यं प्रति कोपः इति ॥

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म १ । ४ । ३८ ॥

सोपसर्गयोरनयोर्योगे यं प्रति कोपस्तत्कारकं कर्मसंज्ञम् । क्रूरमभिक्रुध्यति । अभिद्रुह्यति ॥

राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः १ । ४ । ३९ ॥

एतयोः कारकं संप्रदानम् । यदीयो विविधः प्रश्नः क्रियते । कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा । पृष्टो गर्गः । शुभाशुभं पर्यालोचयतीत्यर्थः ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता १ । ४ । ४० ॥

आभ्यां परस्य शृणोतेर्योगे पूर्वस्य प्रवर्तनरूपव्यापारस्य कर्ता संप्रदानम् । विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा । विप्रेण मह्यं देहीति प्रवर्तितस्तत्प्रतिजानीत इत्यर्थः ॥

अनुप्रतिगृणश्च १ । ४ । ४१ ॥

आभ्यां गृणातेः कारकं पूर्वव्यापारस्य कर्तृभूतमुक्तसंज्ञम् । होत्रेऽनुगृणाति । प्रतिगृणाति । होता प्रथमं शंसति । तमध्वर्युः प्रोत्साहयतीत्यर्थः ॥

परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम् १ । ४ । ४४ ॥

नियतकालं भृत्या स्वीकरणं परिक्रयणं तस्मिन् साधकतमं कारकं संप्रदानसंज्ञं वा । शतेन शताय वा परिक्रीतः ॥

तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या ॥

मुक्तये हरिं भजति ॥

क्लृपि संपद्यमाने च ॥

भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते संपद्यते जायत इत्यादि ॥

उत्पातेन ज्ञापिते च ॥

वाताय कपिला विद्युत् ॥

हितयोगे च ॥

ब्राह्मणाय हितम् ॥

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः २ । ३।१४ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपदं यस्य तस्य स्थानिनोऽप्रयुज्यमानस्य तुमुनः कर्मणि चतुर्थी। फलेभ्यो याति । फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थः। नमस्कुर्मो नृसिंहाय । नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः । एवं स्वयंभुवे नमस्कृत्य इत्यादावपि ॥

तुमर्थाच्च भाववचनात् २ । ३ । १५ ॥

भाववचनाश्च इति सूत्रेण यो विहितस्तदन्ताच्चतुर्थी स्यात् । यागाय याति । यष्टुं यातीत्यर्थः ॥

उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी ॥

नमस्करोति देवान् । प्रजाभ्यः स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा।अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्। तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि । प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यापि साधुः । तस्मै प्रभवति । स एषां ग्रामणीः इति निर्देशात् । तेन 'प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य' इति सिद्धम् । वषडिन्द्राय । चकारः पुनर्विधानार्थः । तेनाशीर्विवक्षायां परामपि चतुर्थी चाशिषि इति षष्ठीं बाधित्वा चतुर्थ्येव भवति । स्वस्ति गोभ्यो भूयात् ॥

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु २ । ३ । १७ ॥

प्राणिवर्जे मन्यतेः कर्मणि चतुर्थी वा स्यात्तिरस्कारे । न त्वां

तृणं मन्ये तृणाय वा । श्यना निर्देशात्तानादिकयोगे न । न त्वां तृणं मन्ये ॥

अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम् * ॥

तेन न त्वां नावं मन्य इत्यत्राप्राणित्वेऽपि चतुर्थी न । न त्वां शुने मन्य इत्यत्र प्राणित्वेऽपि भवत्येव ॥

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि २ । ३ । १२ ॥

अध्वभिन्ने गत्यर्थानां कर्मण्येते स्तश्चेष्टायाम् । ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति । चेष्टायाम् किम् । मनसा हरिं व्रजति । अनध्वनि इति किम् । पन्थानं गच्छति । गन्त्राधिष्ठितेऽध्वन्येवायं निषेधः । यदा तूत्पथात्पन्था एवाक्रमितुमिष्यते तदा चतुर्थी भवत्येव । उत्पथेन पथे गच्छति ॥

इति १०१ अंशाः ।

ध्रुवमपायेऽपादानम् । कारकमित्येव । नेह । वृक्षस्य पर्णं पतति ॥

जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् * ॥

पापाज्जुगुप्सते विरमति । धर्मात्प्रमाद्यति ॥

भीत्रार्थानां भयहेतुः १ । ४ । २५ ॥

भयार्थानां त्राणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानम् । चौराद्बिभेति । चौरात्त्रायते । भयहेतुः किम् । अरण्ये बिभेति त्रायते वा ॥

पराजेरसोढः १ । ४ । २६ ॥

पराजेः प्रयोगेऽसह्योऽर्थोऽपादानम् । अध्ययनात्पराजयते । ग्लायतीत्यर्थः । असोढः किम् । शत्रून्पराजयते । अभिभवतीत्यर्थः ॥

वारणार्थानामीप्सितः १ । ४ । २७ ॥

प्रवृत्तिविघातो वारणम् । वारणार्थानां धातूनां प्रयोग ईप्सितोऽ-

थांऽपादानम् । यवेभ्यो गां वारयति । ईप्सितः किम् । यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे ॥

अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति १ । ४ । २८ ॥

व्यवधाने सति यत्कर्तृकस्यात्मनो दर्शनस्याभावमिच्छति तदपादानम् । मातुर्निलीयते कृष्णः । अन्तर्धौ किम् । चौरान्न दिदृक्षते । इच्छतिग्रहणं किम् । अदर्शनेच्छायां सत्यां सत्यपि दर्शने यथा स्यात् । देवदत्ताद्यज्ञदत्तो निलीयते ॥

आख्यातोपयोगे १ । ४ । २९ ॥

नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ता प्राक्संज्ञः । उपाध्यायादधीते । उपयोगे किम् । नटस्य गाथां शृणोति ॥

जनिकर्तुः प्रकृतिः १ । ४ । ३० ॥

जायमानस्य हेतुरपादानम् । ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते ॥

भुवः प्रभवः १ । ४ । ३१ ॥

भवनं भूः भूकर्तुः प्रभवस्तथा । हिमवतो गङ्गा प्रभवति । तत्र प्रथमं प्रकाशत इत्यर्थः ॥

ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च ॥

प्रासादात्प्रेक्षते । आसनात्प्रेक्षते । प्रासादमारुह्य आसने उपविश्य प्रेक्षत इत्यर्थः । श्वशुराज्जिह्रेति । श्वशुरं वीक्ष्येत्यर्थः । गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम् । कस्मात्त्वं नद्याः ॥

यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी । तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ । कालात्सप्तमी च वक्तव्या ❀ ॥

वनाद्ग्रामो योजनं योजने वा । कार्तिक्या आग्रहायणी मासे । अन्यारादितरर्ते इत्यादिभिर्योगे पञ्चमी विहिता तत्र अन्य इत्यर्थग्रहणम् । इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थम् । अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात् । आराद्वनात् । ऋते कृष्णात् । पूर्वो ग्रामात् । दिशि दृष्टः शब्दो दिक्शब्दः । तेन संप्रति देशकालवृत्तिना योगेऽपि भवति । चैत्रा-

त्पूर्वः फाल्गुनः। अवयववाचियोगे तु न। तस्य परमाम्रेडितम् इति निर्देशात्। पूर्वं कायस्य। अञ्चूत्तरपदस्य तु दिक्शब्दत्वेऽपि पञ्चम्यतसर्थ इति षष्ठीं बाधितुं पृथग्ग्रहणम्। प्राक् प्रत्यग्वा ग्रामात्। आच् दक्षिणा ग्रामात्। आहि-दक्षिणाहि ग्रामात्। अपादाने पञ्चमी इति सूत्रे कार्तिक्याः प्रभृति इति भाष्यप्रयोगात्प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमी। भवात्प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः। अपपरिबहिः इति समासविधानाज्ज्ञापकाद्बहिर्योगे पञ्चमी। ग्रामाद्बहिः॥

अपपरी वर्जने १।४।८८॥

एतौ वर्जने कर्मप्रवचनीयौ॥

आङ् मर्यादावचने १।४।८९॥

आङ् मर्यादायामुक्तसञ्ज्ञः। वचनग्रहणादभिविधावपि॥

पञ्चम्यपाङ्परिभिः २।३।१०॥

एतैः कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी। अप हरेः परि हरेः संसारः। परिरत्र वर्जने। लक्षणादौ तु। हरिं परि। आमुक्तेः संसारः। आसकलाद्ब्रह्म॥

प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः १।४।९२॥

एतयोरर्थयोः प्रतिरुक्तसञ्ज्ञः॥

प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात् २।३।११॥

अत्र कर्मप्रवचनीयैर्योगे पञ्चमी। प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्॥

अकर्तर्यृणे पञ्चमी २।३।२४॥

कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पञ्चमी। शताद्बद्धः। अकर्तरि किम्। शतेन बन्धितः॥

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् २।३।२५॥

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमी वा। जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः। गुणे किम्। धनेन कुलम्। अस्त्रियां किम्। बुद्ध्या मुक्तः। वि-

भापा इति योगविभागादगुणे स्त्रियां च क्वचित् । धूमादग्निमान् । नास्ति घटोऽनुपलब्धेः ॥

पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २।३।३२ ॥

एभिर्योगे तृतीया स्यात् । पञ्चमी द्वितीये च ।अन्यतरस्यांग्रहणं समुच्चयार्थम् । पञ्चमीद्वितीये चाऽनुवर्तेते पृथग्रामेण रामात् रामं वा । एवं विना नाना ॥

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य २ । ३ । ३३ ॥

एभ्योऽद्रव्यवचनेभ्यः करणे तृतीयापञ्चम्यौ स्तः । स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः । द्रव्ये तु, स्तोकेन विषेण हतः ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे २ । ३ । २६ ॥

हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी । अन्नस्य हेतोर्वसति ॥

सर्वनाम्नस्तृतीया च २ । ३ । २७ ॥

सर्वनाम्नो हेतुशब्दस्य च प्रयोगे हेतौ द्योत्ये तृतीया षष्ठी च । केन हेतुना वसति । कस्य हेतोः ॥

निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् ❀ ॥

किं निमित्तं वसति । केन निमित्तेन । कस्मै निमित्तायेत्यादि । एवं किंकारणम् । को हेतुः। किं प्रयोजनम् इत्यादि । प्रायग्रहणाद॰ सर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीये न स्तः । ज्ञानेन निमित्तेन हरिः सेव्यः । ज्ञानाय निमित्तायेत्यादि ॥

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन २ । ३ । ३० ॥

एतद्योगे षष्ठी । दिक्शब्द इति पञ्चम्या अपवादः । ग्रामस्य दक्षिणतः । पुरः पुरस्तात् । उपरि उपरिष्टात् ॥

एनपा द्वितीया २ । ३ । ३१ ॥

एनबन्तेन योगे द्वितीया । एनपा इति योगविभागात्षष्ठ्यपि। दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा । एवमुत्तरेण ॥

दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् २।३।३४॥

एतैर्योगे षष्ठी पञ्चमी च। दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा॥

इति १०२ अंशाः।

ज्ञोऽविदर्थस्य करणे २।३।५१॥

जानातेरज्ञानार्थस्य करणे शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठी। सर्पिषो ज्ञानम्। शेषे षष्ठीति षष्ठीसिद्धावपि प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते। इति समासनिवृत्तये प्रकरणम्। अत एव तिङन्तं नोदाह्रियते। सर्पिषो जानीते, इत्यादौ तु शेषे षष्ठ्येवेति षष्ठीत्याहुः। काशिकादौ तु ज्ञोऽविदर्थेत्यादौ तिङन्तमुदाहृतम्। अन्येऽपि बहवस्तिङन्तमुदाहरन्ति॥

अधीगर्थदयेशां कर्मणि २।३।५२॥

एषां कर्मणि शेषे षष्ठी। मातुः स्मरणम्। सर्पिषो दयनमीशनं वा॥

कृञः प्रतियत्ने २।३।५३॥

प्रतियत्नो गुणाधानं कृञः कर्मणि शेषे षष्ठी स्याद्गुणाधाने। एधोदकस्योपस्करणम्॥

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः २।३।५४॥

भावकर्तृकाणां ज्वरिवर्जितानां रुजार्थानां कर्मणि शेषे षष्ठी। चौरस्य रोगस्य रुजा॥

अज्वरिसंताप्योरिति वाच्यम् ॥

रोगस्य चौरज्वरः चौरसंतापो वा। रोगकर्तृकं चौरसंबन्धि ज्वरादिकमित्यर्थः॥

आशिषि नाथः २।३।५५॥

आशीरर्थस्य नाथतेः शेषे कर्मणि षष्ठी। सर्पिषो नाथनम्। आशिषि इति किम्। माणवकनाथनम्। तत्संबन्धिनी याच्ञेत्यर्थः॥

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् २।३।५६॥

हिंसार्थानामेषां शेषे, कर्मणि षष्ठी। चौरस्योज्जासनम्। निप्रो संहतौ विपर्यस्तौ व्यस्तो वा। चौरस्य निप्रहणनं प्रणिहननं निहननं प्रहणनं वा। नट अवस्यन्दने चुरादिः। चौरस्योन्नाटनम्। चौरस्य क्राथनम्। वृषलस्य पेषणम्। हिंसायां किम्। धानापेषणम्॥

व्यवहृपणोः समर्थयोः २।३।५७॥

शेषे कर्मणि षष्ठी। द्यूते क्रयविक्रयव्यवहारे चानयोस्तुल्यार्थता। शतस्य व्यवहरणं पणनं वा। समर्थयोः किम्। शलाकाव्यवहारः। गणनेत्यर्थः। ब्राह्मणपणनं स्तुतिरित्यर्थः॥

दिवस्तदर्थस्य २।३।५८॥

द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि षष्ठी। शतस्य दीव्यति। तदर्थस्य किम्। ब्राह्मणं दीव्यति। स्तौतीत्यर्थः॥

विभाषोपसर्गे २।३।५९॥

पूर्वयोगापवादः। शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति॥

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने २।३।६१॥

देवतासंप्रदानकेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणो हविर्विशेषस्य वाचकाच्छब्दात्षष्ठी। अग्नये छागस्य हविषो वपाया मेदसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा॥

कृत्वोर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे २।३।६४॥

कृत्वोर्थानां प्रयोगे कालवाचिन्यधिकरणे शेषे षष्ठी। पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्। शेषे किम्। द्विरहन्यध्ययनम्। कर्तृकर्मणोः कृति। गुणकर्मणि वेष्यते। नेताश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा। कृति किम्। तद्धिते मा भूत्। कृतपूर्वी कटम्॥

उभयप्राप्तौ कर्मणि २।३।६६॥

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठी । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन । स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नायं नियमः । भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः । शेषे विभाषा । स्त्रीप्रत्यय इत्येके । विचित्रा जगतः कृतिर्हरेः हरिणा वा । केचिदविशेषेण विभाषामिच्छन्ति । शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा ॥

क्तस्य च वर्तमाने २ । ३ । ६७ ॥

वर्तमानार्थस्य क्तस्य योगे षष्ठी । न लोक इति निषेधस्यापवादः। राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा ॥

अधिकरणवाचिनश्च २ । ३ । ६८ ॥

क्तस्य योगे षष्ठी । इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा ॥

अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः २ । ३ । ७० ॥

भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेनश्च योगे षष्ठी न । सतः पालकोऽवतरति । व्रजंगामी । शतंदायी ॥

कृत्यानां कर्तरि वा २ । ३ । ७१ ॥

षष्ठी । मया मम वा सेव्यो हरिः । कर्तरि इति किम् । गेयो माणवकः साम्नाम् । भव्यगेय इति कर्तरि यद्विधानादनभिहितं कर्म । अत्र योगो विभज्यते कृत्यानाम् । उभयप्राप्तौ इति न इति चानुवर्तते । तेन नेतव्या व्रजं गावः कृष्णेन । ततः कर्तरि वा उक्तोऽर्थः ॥

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् २।३।७२॥

तुल्यार्थैर्योगे तृतीया वा स्यात्पक्षे षष्ठी । तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा । अतुलोपमाभ्यां किम् । तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति ॥

इति १०३ अंशाः ।

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः २ । ३ । ७३ ॥

एतदर्थैर्योगे चतुर्थी वा पक्षे षष्ठी आशिषि । आयुष्यं चिरं जीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात् एवं मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शम् अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात् आशिषि किम् । देवदत्तस्यायुष्यमस्ति । व्याख्यानात्सर्वत्रार्थग्रहणम् । मद्रभद्रयोः पर्यायत्वादन्यतरो न पठनीयः ॥

क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् ❀ ॥

अधीती व्याकरणे । अधीतमनेनेति विग्रहे इष्टादिभ्यश्च इति कर्तरीनिः ॥

साध्वसाधुप्रयोगे च ❀ ॥

साधुः कृष्णो मातरि । असाधुर्मातुले । निमित्तात्कर्मयोगे निमित्तमिह फलम् । योगः संयोगसमवायात्मकः । चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥ हेतौ तृतीयात्र प्राप्ता । सीमाण्डकोशः । पुष्कलको गन्धमृगः । योगविशेषे किम् । वेतनेन धान्यं लुनाति । यस्य च भावेनेति सप्तम्युक्ता । अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च । सत्सु तरत्सु असन्त आसते । असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति । सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति । असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति ॥

षष्ठी चानादरे २ । ३ । ३८ ॥

अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ । रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् । रुदन्तं पुत्रादिकमनादृत्य संन्यस्तवानित्यर्थः ॥

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च२।३।३९॥

एतैः सप्तभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ । षष्ठ्यामेव प्राप्तायां पाक्षिकसप्तम्यर्थं वचनम् । गवां गोषु वा स्वामी । गवां गोषु वा प्रसूतः । गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः ॥

आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम् २ । ३ । ४० ॥

आभ्यां योगे षष्ठीसप्तम्यौ स्तस्तात्पर्येऽर्थे । आयुक्तो व्यापारितः आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा । आसेवायाम् किम् । आयुक्तो गौः शकटे । ईषद्युक्त इत्यर्थः ॥

पञ्चमी विभक्ते २ । ३ । ४२ ॥

विभागो विभक्तं निर्धार्यमाणस्य यत्र भेद एव तत्र पञ्चमी । माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः ॥

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः २ । ३ । ४३ ॥

आभ्यां योगे सप्तमी स्यादर्चायाम् नतु प्रतेः प्रयोगे । मातरि साधुर्निपुणो वा । अर्चायां किम् । निपुणो राज्ञो भृत्यः । इह तत्त्वकथने तात्पर्यम् ॥

अप्रत्यादिभिरिति वक्तव्यम् ॥

साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा ॥

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च २ । ३ । ४४ ॥

आभ्यां योगे तृतीया स्याच्चात्सप्तमी । प्रसित उत्सुको हरिणा हरौ वा ॥

नक्षत्रे च लुपि २ । ३ । ४५ ॥

नक्षत्रे प्रकृत्यर्थे यो लुप्संज्ञया लुप्यमानस्य प्रत्ययस्यार्थस्तत्र वर्तमानात्तृतीयासप्तम्यौ । अधिकरणे—मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् । मूले श्रवण इति वा । लुपि किम् । पुष्ये शनिः ॥

सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये २ । ३ । ७ ॥

शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्यामेते स्तः । अद्य भुक्त्वायं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता । कर्तृशक्त्योर्मध्येऽयं कालः । इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत् । कर्तृकर्मशक्त्योर्मध्येऽयं देशः । अधिकशब्देन योगे सप्तमीपञ्चम्याविष्येते । तदस्मिन्नधिकम् इति यस्मादधिकम् इति च सूत्रनिर्देशात् । लोके लोकाद्वाधिको हरिः ॥

अधिरीश्वरे १ । ४ । ९७ ॥

रुपः । तिङा–पर्यभूषयत् । नाम्ना–कुम्भकारः । धातुना–कटप्रूः । अजस्रम् । तिङां तिङा–पिबतखादता खादतमोदता । तिङां सुपा–कृन्तविचक्षणेति यस्यां क्रियायां सा कृन्तविचक्षणा । एहीडादयोऽन्यपदार्थे इति मयूरव्यंसकादौ पाठात्समासः । समर्थः पदविधिः इति प्राग्व्याख्यातमनुसन्धेयम् ॥

प्राक्कडारात्समासः २ । १ । ३ ॥

कडाराः कर्मधारये इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ॥

सह सुपा २ । १ । ४ ॥

सह इति योगो विभज्यते । सुबन्तं समर्थेन सह समस्यते । *योगविभागस्येष्टसिद्ध्यर्थत्वात्कतिपयतिङन्तोत्तरपदोऽयं समासः* । स च छन्दस्येव । पर्यभूषयत् । अनुव्यचलत् । सुपा सुप्सुपा सह सस्यते । समासत्वात्प्रातिपदिकत्वम् । सुपो धात्विति सुपो लुक् । भूतपूर्वे चरट् इति निर्देशाद् भूतशब्दस्य पूर्वनिपातः । पूर्वं भूतो भूतपूर्वः । इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च । जीमूतस्येव ॥

अव्ययीभावः २ । १ । ५ ॥

अधिकारोऽयम् । अव्ययं विभक्तीति सूत्रेऽव्ययमिति योगो विभज्यते । अव्ययं समर्थेन समस्यते सोऽव्ययीभावः । दिशयोर्मध्यमपदिशम् । क्लीबाव्ययं त्वपदिशं दिशोर्मध्ये विदिक् स्त्रियामित्यमरः । अथ विभक्त्यर्थादिषु । हरौ इत्यधि हरि । सप्तम्यर्थस्येवात्र द्योतकोऽधिः । अत्र निपातेनाभिहितेऽप्यधिकरणे वचनसामर्थ्यात्सप्तमी । समीपे–कृष्णस्य समीपमुपकृष्णम् । समया ग्रामम् । निकषा लङ्काम् । आराद्वनादित्यत्र तु नाव्ययीभावः । अभितः परित: अन्यारात् इति द्वितीयापञ्चम्योर्विधानसामर्थ्यात् । मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम् । बहुलग्रहणात्सुमद्रसुन्मत्तगङ्गमित्यादौ सप्तम्या नित्यमम्भावः । यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम् । विगता ऋद्धिर्व्यृद्धिः । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । अत्ययो ध्वंसः निद्रा संप्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश

अपविष्णु संसारः अपविष्णोः । परिविष्णु परिविष्णोः । बहिर्वनं बहिर्वनात् । प्राग्वनं प्राग्वनात् ॥

इति १०५ अंशाः ।

आङ्मर्यादाभिविध्योः २ । १ । १३ ॥

एतयोराङ् पञ्चम्यन्तेन वा समस्यते सोऽव्ययीभावः । आमुक्ति संसारः आमुक्तेः । आबालं हरिभक्तिः आबालेभ्यः ॥

लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये २ । १ । १४ ॥

आभिमुख्यद्योतकावभिप्रती चिह्नवाचिना सह प्राग्वत् । अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति अग्निमभि । प्रत्यग्नि अग्निं प्रति ॥

पारे मध्ये षष्ठ्या वा २ । १ । १८ ॥

पारमध्यशब्दौ षष्ठ्यन्तेन सह वा समस्येते । एदन्तत्वं चानयोर्निपात्यते । पक्षे षष्ठीतत्पुरुषः । पारेगङ्गादानय गङ्गापारात् । मध्येगङ्गात् गङ्गामध्यात् । महाविभाषया वाक्यमपि । गङ्गायाः पारात् । गङ्गाया मध्यात् ॥

समासान्ताः ५ । ४ । ६८ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५ । ४ । १०७ ॥

शरदादिभ्यष्टच्स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे । शरदः समीपमुपशरदम् । प्रतिविपाशम् । शरद् विपाश् अनस् मनस् उपानह् दिव् हिमवत् अनडुह् दिश् दृश् विश् चेतस् चतुर् त्यद् तद् यद् कियत् जराया जरस् च उपजरसम् । प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः यस्येति च प्रत्यक्षम् । अक्ष्णः परम् इति विग्रहे समासान्तविधानसामर्थ्यादव्ययीभावः । परोऽक्षे लिट् इति निपातनात्परस्यौकारादेशः । परोक्षम् । परोक्षा क्रिया इत्यादि तु अर्श आद्यचि । समक्षम् । अन्वक्षम् ॥

अनश्च ५ । ४ । १०८ ॥

अन्नन्तादव्ययीभावाट्टच् ॥

नस्तद्धिते ६ । ४ । १४४ ॥

नान्तस्य भस्य टेर्लोपस्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ॥

नपुंसकादन्यतरस्याम् ५ । ४ । १०९ ॥

अन्नन्तं यत्क्लीबं तदन्तादव्ययीभावाट्टज्वा । उपचर्मम् उपचर्म ॥

झयः ५ । ४ । १११ ॥

झयन्तादव्ययीभावाट्टज्वा । उपसमिधं उपसमित् ॥

गिरेश्च सेनकस्य २ । ४ । ११२ ॥

गिर्यन्तादव्ययीभावाट्टज्वा । उपगिरं उपगिरि । इत्यव्ययीभावः ॥

तत्पुरुषः २ । १ । २२ ॥

प्राग्बहुव्रीहेरधिकारः ॥

द्विगुश्च २ । १ । २३ ॥

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञः । इदं सूत्रं त्यक्तुं शक्यम् । संख्यापूर्वो द्विगुश्चेति पठित्वा चकारबलेन संज्ञाद्वयसमावेशस्य सुवचत्वात् । समासान्तः प्रयोजनम् । पञ्चराजम् ॥

द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २ । १ । २४ ॥

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते स तत्पुरुषः । कृष्णं श्रितः कृष्णश्रितः । दुःखमतीतो दुःखातीतः ॥

गम्यादीनामुपसंख्यानम् * ॥

ग्रामं गमी ग्रामगमी । अन्नं बुभुक्षुरन्नबुभुक्षुः ॥

पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः २।३।३१ ॥

तृतीयान्तमेतैः प्राग्वत् । मासपूर्वः । मातृसदृशः । पितृसमः । ऊनार्थे माषोनं कार्षापणम् । माषविकलम् । वाक्कलहः । आचारनिपुणः । गुडमिश्रः । आचारश्लक्ष्णः । मिश्रग्रहणे सोपसर्गस्यापि

ग्रहणम् । मिश्रं चानुपसर्गमसंधौ इत्यत्रानुपसर्गग्रहणात् । गुडसंमिश्रा धानाः ॥

अवरस्योपसंख्यानम् ❀ ॥

मासेनावरो मासावरः । कर्तृकरणे कृता बहुलम् । हरित्रातः । नखभिन्नः । कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् । नखनिर्भिन्नः । कर्तृकरणे इति किम् । भिक्षाभिरुषितः । हेतावेषा तृतीया । बहुलग्रहणं सर्वोपाधिव्यभिचारार्थम् । तेन दात्रेण लूनवान् इत्यादौ न । कृता किम् । काष्ठैः पचतितराम् ॥

अन्नेन व्यञ्जनम् २ । १ । ३४ ॥

संस्कारकद्रव्यवाचकं तृतीयान्तमन्नेन प्राग्वत् । दध्ना ओदनो दध्योदनः । इहान्तर्भूतोपसेकक्रियाद्वारा सामर्थ्यम् ॥

भक्ष्येण मिश्रीकरणम् २ । १ । ३५ ॥

गुडेन धाना गुडधानाः । मिश्रणक्रियाद्वारा सामर्थ्यम् ॥

चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः २ । १ । ३६ ॥

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिनार्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एव । बलिरक्षितग्रहणाज्ज्ञापकात् । यूपाय दारु यूपदारु । नेह । रन्धनाय स्थाली । अश्वघासादयस्तु षष्ठीसमासाः ॥

अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् ❀ ॥

द्विजायायं द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ॥

पञ्चमी भयेन २ । १ । ३७ ॥

चोराद् भयं चोरभयम् । षष्ठी–राजपुरुषः ॥

भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम् ❀ ॥

वृकभीतः ॥

स्तोकान्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन २ । १ । ३९ ॥

स्तोकान्मुक्तः । अल्पान्मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्याशादागतः । दूरादागतः । विप्रकृष्टादागतः । कृच्छ्रादागतः । पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः इत्यलुक् ॥

याजकादिभिश्च २ । २ । ९ ॥

एभिः षष्ठ्यन्तं समस्यते । तृजकाभ्यां कर्तरि इत्यस्य प्रतिप्रसवोऽयम् । ब्राह्मणयाजकः । देवपूजकः ॥

गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम् ॥

तरबन्तं यद्गुणवाचि तेन सह समासस्तरलोपश्च । न निर्धारणे इति पूरणगुण इति च निषेधस्य प्रतिप्रसवोऽयम् । सर्वेषां श्वेततरः सर्वश्वेतः । सर्वेषां महत्तरः सर्वमहान् ॥

इति १०६ अंशाः ।

कृद्योगा च षष्ठी समस्यत इति वाच्यम् ॥

इध्मस्य व्रश्चन इध्मव्रश्चनः ॥

न निर्धारणे २ । २ । १० ॥

निर्धारणे या षष्ठी सा न समस्यते । नृणां द्विजः श्रेष्ठः ॥

प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यत इति वाच्यम् ॥

सर्पिषो ज्ञानम् ॥

पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणे न २ । २ । ११ ॥

पूरणार्थैः सदादिभिश्च षष्ठी न समस्यते । पूरणे-सतां षष्ठः । गुणे-काकस्य कार्ष्ण्यम् । ब्राह्मणस्य शुक्लाः । यदा प्रकरणादिना दन्ता इति विशेष्यं ज्ञातं तदेदमुदाहरणम् । अनित्योऽयं गुणेन निषेधः । तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात् इत्यादिनिर्देशात् । तेन अर्थगौरवं बुद्धिमान्द्यं इत्यादि सिद्धम् । सुहितार्थास्तृप्त्यर्थाः । फलानां सुहितः । तृतीयासमासस्तु स्यादेव । स्वरे विशेषः । सत्-द्विजस्य

कुर्वन् कुर्वाणो वा । किंकर इत्यर्थः । अव्ययम्—ब्राह्मणस्य कृत्वा । पूर्वोत्तरसाहचर्यात्कृदव्ययमेव-गृह्यते । तेन तदुपरि इत्यादिसिद्ध-मिति रक्षितः। तव्यः—ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् । तव्यता तु भवत्येव । स्वकर्त्तव्यम् । स्वरे भेदः समानाधिकरणे । तक्षकस्य सर्पस्य विशेषणसमासस्त्विह बहुलग्रहणान्न । गोर्धेनोः इत्यादिषु पोटायुवति इत्यादीना विभक्त्यन्तरे चरितार्थानां परत्वाद्बाधकः षष्ठीसमासः प्राप्तः सोऽप्यनेन वार्यते ॥

क्तेन च पूजायाम् २ । २ । १२ ॥

मतिबुद्धि इति सूत्रेण विहितो यः क्तस्तदन्तेन षष्ठी न समस्यते । राज्ञा मतो बुद्धः पूजितो वा । राजपूजितः इत्यादौ तु भूते क्तान्तेन सह तृतीयान्तस्य समासः ॥

अधिकरणवाचिना च २ । २ । १३ ॥

क्तेन षष्ठी न समस्यते । इदमेषामासितं गतं भुक्तं वा ॥

कर्मणि च २ । २ । १४ ॥

उभयप्राप्तौ कर्मणि इति या षष्ठी सा न स मस्यते । आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ॥

तृजकाभ्यां कर्त्तरि २ । २ । १५ ॥

कर्त्रर्थतृजकाभ्या षष्ठ्या न समासः । अपां स्रष्टा । व्रजस्य भर्ता । ओदनस्य पाचकः । कर्त्तरि किम् । इक्षूणां भक्षणमिक्षुभक्षिका । पत्यर्थभर्तृशब्दस्य याजकादित्वात्समासः । भूभर्ता । कथं तर्हि, घटाना निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः इति । शेषषष्ठ्या समासः इति कैयटः ॥

कर्तरि च २ । २ । १६ ॥

कर्त्तरि षष्ठ्या अकेन न समासः । भवतः शायिका । नेह तृजनुवर्तते । तद्योगे कर्तुरभिहितत्वेन कर्तृषष्ठ्या अभावात् ॥

नित्यं क्रीडाजीविकयोः २ । २ । १७ ॥

एतयोरर्थयोरकेन नित्यं षष्ठी समस्यते । उद्दालकपुष्पभञ्जिका। क्रीडाविशेषस्य संज्ञा । संज्ञायाम् इति भावे ण्वुल् । जीविकायां दन्तलेखकः । तत्र क्रीडायां विकल्पे जीविकायां तृजकाभ्यां कर्तरि इति निषेधे प्राप्ते वचनम् ॥

पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे २ । २ । १ ॥

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते । एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेद् वयवी । षष्ठीसमासापवादः । पूर्वं कायस्य पूर्वकायः । अपरकायः। एकदेशिना किम् । पूर्वं नाभेः कायस्य । एकाधिकरणे किम् । पूर्वश्छात्राणाम्। सर्वोऽप्येकदेशोऽह्ना समस्यते । संख्याविसाय इति ज्ञापकात् । मध्याह्नः । सायाह्नः । केचित्तु सर्व एकदेशः कालेन समस्यते न त्वह्नैव ज्ञापकस्य सामान्यापेक्षत्वात् । तेन मध्यरात्रः । उपारताः पश्चिमरात्रगोचरात् इत्यादि सिद्धम् इत्याहुः ॥

अर्धं नपुंसकम् २ । २। २ ॥

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे प्राग्वत् ॥

एकविभक्तावषष्ठ्यन्तवचनम् ॥

एकदेशिसमासविषयकोऽयमुपसर्जनसंज्ञानिषेधः । तेन पञ्चखट्टी इत्यादि सिध्यति । अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली । क्लीबे किम् । ग्रामार्धः । द्रव्यैक्य एव । अर्धं पिप्पलीनाम् ॥

सप्तमी शौण्डैः २ । १ । ४० ॥

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वद्वा । अक्षेषु शौण्डोऽक्षशौण्डः । अधिशब्दोऽत्र पठ्यते । अपडक्षेत्यादिना अध्युत्तरपदात् खः। ईश्वराधीनः ॥

संज्ञायाम् २ । १ । ४४ ॥

सप्तम्यन्तं सुपा प्राग्वत्संज्ञायाम् । वाक्येन संज्ञानवगमान्नित्य-समासोऽयम्। अरण्ये तिलकाः। वने कसेरुकाः। हलदन्तात्सप्तम्याः इत्यलुक् ॥

क्षेपे २ । १ । ४७ ॥

मप्तम्यन्तं क्तान्तेन प्राग्वन्निन्दायाम्। अवतप्ते नकुलस्थितं त एतत्॥

पात्रे समितादयश्च २।१।४८॥

एते निपात्यन्ते क्षेपे। पात्रे समिताः भोजनसमय एव संगता न तु कार्ये। गेहे शूरः। गेहे नर्दी। आकृतिगणोऽयम्। चकारोऽवधारणार्थः। तेनैषां समासान्तरे घटकतया प्रवेशो न। परमाः पात्रे समिताः॥

पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन २।१।४९॥

विशेषणं विशेष्येण इति सिद्धे पूर्वनिपातनियमार्थं सूत्रम्। एकशब्दस्य दिक्संख्ये संज्ञायाम् इति नियमबाधनार्थं च। पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः स्नातानुलिप्तः। एकनाथः। सर्वयाज्ञिकाः। जरन्नैकायिकाः। पुराणमीमांसकाः। नवपाठकाः। केवलवैयाकरणाः॥

इति १०७ अंशाः।

दिक्संख्ये संज्ञायाम् २।१।५०॥

समानाधिकरणेन इत्यापादपरिसमाप्तेरधिकारः। संज्ञायामेव इति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः। नेह। उत्तरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः॥

तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च २।१।५१॥

तद्धितार्थे विषयउत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये, दिक्संख्ये प्राग्वद्वा। पूर्वस्यां शालायां भवः पौर्वशालः। समासे कृते दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां ञः इति ञः॥

सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः ॥

अपरशालः। पूर्वा शाला प्रिया यस्येति त्रिपदेबहुव्रीहौ कृते प्रियाशब्द उत्तरपदे पूर्वयोस्तत्पुरुषः। तेन शालाशब्द आकार उदात्त.। पूर्वशालाप्रिय। दिक्षु समाहारो नास्त्यनभिधानात्।

ख्यायास्तद्धितार्थे। पण्णां मातॄणामपत्यं पाण्मातुरः । पञ्च गावो नं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहाववान्तरतत्पुरुषस्य विकल्पे प्राप्ते द्वन्द्व-त्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥

गोरतद्धितलुकि ५ । ४ । ९२ ॥

गोऽन्तात्तत्पुरुषाट्टच्स्यात्समासान्तो न तद्धितलुकि । पञ्चगव-नः । उत्तरपदे त्रयाणां लोकानां नाथस्त्रिलोकनाथ इत्यप्युदाह-न्ति । तादृशान्यन्ये न मन्यन्ते । पञ्चानां गवां समाहारः । ख्यापूर्वो द्विगुः । द्विगुरेकवचनम् । स नपुंसकम् । पञ्चगवम् । द्विगोरिति ङीप् । पञ्चपात्रम् । विशेषणं विशेष्येण बहुलम् । लमुत्पलं नीलोत्पलम् । बहुलग्रहणात् क्वचिन्नित्यम् । कृष्णसर्पः। वचिन्न । रामो जामदग्न्यः ॥

पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमानमध्यमध्यमवीराश्च २। । ५८ ॥

पूर्वनिपातनियमार्थमिदम् । पूर्ववैयाकरणः । अपराध्यापकः ॥

अपरस्यार्धे पश्चभावो वक्तव्यः ॥

अपरश्चासावर्धश्च पश्चार्धः । कथम् एकवीर इति । पूर्वकालैक ति बाधित्वा परत्वादनेन समासे वीरैक इति हि स्यात् । बहुलग्र-णाद् भविष्यति ॥

श्रेण्यादयः कृतादिभिः २ । १ । ५९ ॥

श्रेण्यादिषु च्व्यर्थवचनं कर्तव्यम् ॥

अश्रेणयः श्रेणयः कृताः श्रेणीकृताः ॥

क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ् २ । १ । ६० ॥

नञ्विशिष्टेन क्तान्तेनानञ्क्तान्तं समस्यते । कृतं च तदकृतं च कृताकृतम् ॥

शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्या-नम् ॥

शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः । देवब्राह्मणः ॥

सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः २ । १ । ६१ ॥

सद्वैद्यः । वक्ष्यमाणेन महत आकारः । महावैयाकरणः । पूज्यमानैः किम् । उत्कृष्टो गौः । पङ्कादुद्धृत इत्यर्थः ॥

किं क्षेपे २ । १ । ६४ ॥

कुत्सितो राजा किंराजा यो न रक्षति । पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु पूरणीप्रियादिष्वप्राप्तः पुंवद्भावोऽनेन विधीयते । महानवमी । कृष्णचतुर्दशी । महाप्रिया । तथा कोपधादेः प्रतिषिद्धः पुंवद्भावः कर्मधारयादौ प्रतिप्रसूयते । पाचकस्त्री । दत्तभार्या । पञ्चमभार्या । स्रौघ्नभार्या । सुकेशभार्या । ब्राह्मणभार्या । एवं पाचकजातीया । पाचकदेशीया इत्यादि ॥

प्रशंसावचनैश्च २ । १ । ६६ ॥

एतैः सह जातिः प्राग्वत् । गोमतल्लिका । गोमचर्चिका । गोप्रकाण्डम् । गवोद्धः । गोतल्लजः । प्रशस्ता गौरित्यर्थः । मतल्लिकादयो नियतलिङ्गा न तु विशेष्यनिघ्नाः । जातिः किम् । कुमारी मतल्लिका ॥

मयूरव्यंसकादयश्च २ । १ । ७२ ॥

एते निपात्यन्ते । मयूरो व्यंसकः मयूरव्यंसकः । व्यंसको धूर्तः । उदक् चावाक् चोच्चावचम् । निश्चितं च प्रचितं च निश्चप्रचम् । नास्ति किंचन यस्य सोऽकिंचनः । नास्ति कुतोऽपि भयं यस्य सोऽकुतोभयः । अन्यो राजा राजान्तरम् । चिदेव चिन्मात्रम् ॥

आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये ॥

अश्नीत पिबतेत्येवं सततं यत्राभिधीयते साश्नीतपिबता । पचतभृज्जता । खादतमोदता ॥

एहीडादयोऽन्यपदार्थे ॥

एहीड इति यस्मिन्कर्मणि तदेहीडम् । एहियवम् । उद्धर चो-

प्रादुत्सृज देहीति यस्यां क्रियायां सोद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । असातत्यार्थमिह पाठः ॥

जहिकर्मणा बहुलमाभीक्ष्ण्ये कर्तारं चाभिदधाति ॥

जहीत्येतत्कर्मणा बहुलं समस्यते आभीक्ष्ण्ये गम्ये । समासेन चेत्कर्ताभिधीयत इत्यर्थः । जहिजोडः । जहिस्तम्बः । नञ् । अब्राह्मणः । अनश्वः । अर्थामात्रेऽव्ययीभावेन सहार्थं विकल्प्यते । रक्षोहागमलब्धसंदेहाः प्रयोजनम् इति । अद्भुतायामसंहितम् इति च भाष्यवार्तिकप्रयोगात् । तेन अनुपलब्धिः । अविवादः । अविघ्नम् । इत्यादि सिद्धम् । नञो नलोपस्तिङि क्षेपे । अपचसि त्वं जाल्म । नैकधा इत्यादौ तु नशब्देन सह सुपा इति समासः ॥

नभ्राण्नपान्नवेदानासत्यानमुचिनकुलनखनपुंसकनक्षत्रनक्रनाकेषु प्रकृत्या ६ । ३ । ७५ ॥

पाद् इति शत्रन्तः । वेदाः इत्यसुन्नन्तः । न सत्या असत्याः न असत्या नासत्याः । न मुञ्चतीति नमुचिः । न कुलमस्य । न खमस्य । न स्त्री पुमान् । स्त्रीपुंसयोः पुंसकभावो निपातनात् । न क्षरतीति नक्षत्रम् । क्षीयतेः क्षरतेर्वा क्षत्रमिति निपात्यते । न क्रामतीति नक्रः । क्रमेर्डः । न अकमस्मिन्निति नाकः ॥

नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् ६ । ३ । ७७ ॥

नग इत्यत्र नञ्प्रकृत्या वा । नगाः अगाः पर्वताः । अप्राणिषु इति किम् । अगो वृषलः शीते न ॥

इति १०८ अंशाः ।

कुगतिप्रादयः । कुपुरुषः । ऊर्यादिच्विडाचश्च । ऊरीकृत्य । शुक्लीकृत्य । पटपटाकृत्य ॥

कारिकाशब्दस्योपसंख्यानम् ॥

कारिका क्रिया कारिकाकृत्य ॥

अनुकरणं चानितिपरम् १ । ४ । ६२ ॥

खाट्कृत्य अनितिपरं किम् । खाडिति कृत्वा निरष्ठीवत् ॥

आदरानादरयोः सदसती १ । ४ । ६३ ॥

सत्कृत्य । असत्कृत्य ॥

भूषणेऽलम् १ । ४ । ६४ ॥

अलंकृत्य । भूषणे किम् । अलं कृत्वौदनं गतः । पर्याप्तमित्यर्थः । अनुकरणम् इत्यादित्रिसूत्री स्वभावात्कृञ्विषया ॥

पुरोऽव्ययम् १ । ४ । ६७ ॥

पुरस्कृत्य ॥

तिरोऽन्तर्धौ १ । ४ । ७१ ॥

तिरोभूय ॥

विभाषा कृञि १ । ४ । ७२ ॥

तिरस्कृत्य तिरःकृत्य तिरःकृत्वा ॥

साक्षात्प्रभृतीनि च १ । ४ । ७४ ॥

कृञि वा गतिसंज्ञानि स्युः ॥

च्व्यर्थ इति वाच्यम् ॥

साक्षात्कृत्य साक्षात्कृत्वा । लवणं कृत्य लवणं कृत्वा । मान्तत्वं निपातनात् ॥

अनत्याधान उरसिमनसी १ । ४ । ७५ ॥

उरसिकृत्य उरसिकृत्वा । अभ्युपगम्येत्यर्थः । मनसिकृत्य मनसिकृत्वा । निश्चित्येत्यर्थः । अत्याधानमुपश्लेषणं तत्र न । उरसि कृत्वा पाणिं शेते ॥

नित्यं हस्ते पाणावुपयमने १ । ४ । ७७ ॥

कृञि । उपयमनं विवाहः। स्वीकारमात्रम् इत्यन्ये । हस्ते कृत्य । पाणौ कृत्य । कुगतीत्यत्र प्रादिग्रहणमगत्यर्थम् । सुपुरुषः । अत्र वार्तिकानि। प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया । प्रगत आचार्यः प्राचार्यः। अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया । अतिक्रान्तो मालामतिमालः ।

अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया । अवक्रुष्टः कोकिलयावकोकिलः । पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या । परिग्लानोऽध्ययनाय पर्यध्ययनः । निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या । निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः निष्कौशाम्बिः । कर्मप्रवचनीयानां प्रतिषेधः। वृक्षं प्रति । उपपदमतिङ् । कुम्भकारः । गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः । व्याघ्री । अश्वक्रीती । कच्छपी। इदं परिभाषासु स्फुटीभविष्यति ॥

अमैवाव्ययेन २ । २ । २० ॥

अमैव तुल्यविधानं यदुपपदं तदेवाव्ययेन सह समस्यते । स्वादुंकारम्। नेह। कालसमयवेलासु तुमुन् । कालः समयो वेला वा भोक्तुम् । अमैव इति किम् । अग्रेभोजम् । अग्रे भुक्त्वा । विभाषाग्रे प्रथमपूर्वेषु इति क्त्वाणमुलौ । अमा चान्येन च तुल्यविधानमेतत् ॥

तृतीयाप्रभृतीन्यन्यतरस्याम् २ । २ । २१ ॥

उपदंशस्तृतीयायाम् इत्यादीन्युपपदान्यमन्तेनाव्ययेन सह वा समस्यन्ते । मूलकेनोपदंशं भुंक्ते मूलकोपदंशम् ॥

क्त्वा च २ । २ । २२ ॥

तृतीयाप्रभृतीन्युपपदानि क्त्वान्तेन सह वा समस्यन्ते । उच्चैःकृत्य उच्चैः कृत्वा । अव्ययेऽयथाभिप्रेत इति क्त्वा । तृतीयाप्रभृतीनि इति किम् । अलंकृत्वा । खलुकृत्वा ॥

तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः ५ । ४ । ८६ ॥

संख्याव्ययादेरंगुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच्स्यात् । द्वे अंगुली प्रमाणमस्य व्यंगुलं दारु । निर्गतमंगुलिभ्यो निरंगुलम् ॥

अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः ५ । ४ । ८७ ॥

एभ्यो रात्रेरच्स्याच्चात्संख्याव्ययादेः । अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् । अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः । सर्वा रात्रिः सर्वरात्रः । पूर्वं रात्रेः पूर्वरात्रः ।

संख्यातरात्रः । पुण्यरात्रः । द्वयो रात्र्योः समाहारो द्विरात्रम् । अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः ॥

राजाहःसखिभ्यष्टच् ५ । ४ । ९१ ॥

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्टच् । परमराजः । अतिराजी । कृष्णसखः ॥

अह्नष्टखोरेव ६ । ४ । १४५ ॥

एतयोरेव परतोऽह्नष्टिलोपः स्यान्नान्यत्र । उत्तमाहः । द्वे अहनी भृतो व्यहीनः क्रतुः । तद्धितार्थे द्विगुः । तमधीष्टः इत्यधिकारे द्विगोर्वा इत्यनुवृत्तौ रात्र्यहःसंवत्सराच्च इति खः । लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वान्नेह । मद्राणां राज्ञी मद्रराज्ञी ॥

अह्नोऽह्न एतेभ्यः ५ । ४ । ८८ ॥

सर्वादिभ्यः परस्याहन्शब्दस्याह्नादेशः स्यात्समासान्तेपरे ॥

अह्नोऽदन्तात् ८ । ४ । ७ ॥

अदन्तपूर्वपदस्थाद्रेफात्परस्याह्नोऽह्नादेशस्य नस्य णः । सर्वाह्णः । पूर्वाह्णः । संख्याताह्नः । द्वयोरह्नोर्भवः । कालाट्ठञ् । द्विगोर्लुगनपत्ये इति ठञो लुक् । द्व्यह्नः । स्त्रियामदन्तत्वाट्टाप् । द्व्यह्ना । द्व्यह्नप्रियः । अत्यह्नः ॥

क्षुभ्नादिषु च ८ । ४ । ३९ ॥

एषु णत्वं न स्यात् । दीर्घाह्नी प्रावृट् । एवं चैतदर्थमह्न इत्यदन्तानुकरणक्लेशो न कर्तव्यः । प्रातिपदिकान्त इति णत्ववारणाय । क्षुभ्नादिषु पाठस्यावश्यकत्वात् । अत. इति तपरकरणान्नेह । परागतमहः पराह्णः ॥

न संख्यादेः समाहारे ५ । ४ । ८९ ॥

समाहारे वर्तमानस्य संख्यादेरह्नादेशो न । संख्यादेः इति स्पष्टार्थम् । द्वयोरह्नोः समाहारो द्व्यहः । त्र्यहः ॥

इति १०९ अंशाः ।

उत्तमैकाभ्यां च ५।४।९०॥

आभ्यामह्नादेशो न । उत्तमशब्दोऽन्त्यार्थः पुण्यशब्दमाह । पुण्यैकाभ्याम् इत्येव सूत्रयितुमुचितम् । पुण्याहम् । सुदिनाहम् । सुदिनशब्दः प्रशस्तवाची । एकाहः । उत्तमग्रहणमुपान्त्यस्यापि संग्रहार्थम् इत्येके । संख्याताहः ॥

अनोऽश्मायःसरसां जातिसंज्ञयोः ५।४।९४॥

टच्स्याज्जातौ संज्ञायां च । उपानसम् । अमृताश्मः । कालायसम् । मण्डूकसरसम् । इति जातिः । महानसम् । पिण्डाश्मः । लोहितायसम् । जलसरसम् । इति संज्ञा ॥

ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः ५।४।९५॥

ग्रामस्य तक्षा ग्रामतक्षः । साधारण इत्यर्थः । कुट्यां भवः कौटः स्वतन्त्रः । स चासौ तक्षा च कौटतक्षः ॥

अतेः शुनः ५।४।९६॥

अतिश्वो वराहः । अतिश्वी सेना ॥

उपमानादप्राणिषु ५।४।९७॥

अप्राणिविषयकोपमानवाचिनः शुनष्टच् । आकर्षः श्वेवाकर्षश्वः । अप्राणिषु किम् । वानरः श्वेव वानरश्वा ॥

उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः ५।४।९८॥

चादुपमानात् । उत्तरसक्थम् । मृगसक्थम् । पूर्वसक्थम् । फलकमिव सक्थि फलकसक्थम् ॥

नावो द्विगोः ५।४।९९॥

नौशब्दान्ताद्द्विगोष्टच् न तु तद्धितलुकि । द्वाभ्यां नौभ्यामागतो द्विनावरूप्यः । द्विगोर्लुगनपत्ये इत्यत्र अचि इत्यस्यापकर्षणाद्दलादेर्न लुक् । पञ्चनावप्रियः । द्विनावम् । त्रिनावम् । अतद्धितलुकि इति किम् । पञ्चभिर्नौभिः क्रीतः पञ्चनौः ॥

अर्धाच्च ५।४।१००॥

अर्धांत्रावष्टच्। नावोऽर्धम् अर्धनावम्। क्लीबत्वं लोकात्॥

खार्याः प्राचाम् ५।४।१०१॥

द्विगोरर्धाच्च खार्याष्टज्वा। द्विखारम् द्विखारि। अर्धखारम् अर्धखारि॥

द्वित्रिभ्यामञ्जलेः ५।४।१०२॥

टज्वा द्विगौ। द्व्यञ्जलम् द्व्यञ्जलि। अतद्धितलुकि इत्येव। द्वाभ्यामञ्जलिभ्यां क्रीतो द्व्यञ्जलिः॥

आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ६।३।४६॥

महत आकारोन्तादेशः समानाधिकरण उत्तरपदे जातीये च परे। महादेवः। महाजातीयः। समानाधिकरणे किम्। महतः सेवा महत्सेवा। लाक्षणिकं विहाय प्रतिपदोक्तः सन्महत इति समासो ग्रहीष्यत इति चेत् महाबाहुर्न स्यात्तस्मात् लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्य इति परिभाषा नेह प्रवर्तते समानाधिकरणग्रहणसामर्थ्यात्। आत् इति योगविभागादात्वं प्रागेकादशभ्यः इति निर्देशाद्वा। एकादश। महतीशब्दस्य पुंवत्कर्मधारय इति पुंवद्भावे कृत आत्वम्। महाजातीया॥

महदात्वे घासकरविशिष्टेषूपसंख्यानं पुंवद्भावश्च॥

असमानाधिकरणार्थमिदम्। महतो महत्या वा घासो महाघासः। महाकरः। महाविशिष्टः। अष्टनः कपाले हविषि। अष्टाकपालः। गवि च युक्ते। गोशब्दे परे युक्त इत्यर्थे गम्येऽष्टन आत्वम्। अष्टागवं शकटम्। अच्प्रत्यन्वव इत्यत्र अच् इति योगविभागाद्बहुव्रीहावप्यच्। अष्टानां गवां समाहारोऽष्टागवम्। तद्युक्तत्वाच्छकटमष्टागवमिति वा॥

द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ६।३।४७॥

आत्। द्वौ च दश च द्वादश द्व्यधिकादशेति वा। द्वाविंशतिः। अष्टादश। अष्टाविंशतिः। अबहुव्रीह्यशीत्योः किम्। द्वित्राः। द्व्यशीतिः॥

प्राक्शताद्वक्तव्यम् ❀ ॥

नेह । द्विशतम् । द्विसहस्रम् ॥

त्रेस्त्रयः ६ । ३ । ४८ ॥

त्रिशब्दस्य त्रयस् स्यात्पूर्वविषये । त्रयोदश । त्रयोविंशतिः । बहुव्रीहौ तु त्रिदश त्रिदशाः । सुजर्थे बहुव्रीहिः । अशीतौ तु त्र्यशीतिः । प्राक्शतात् इत्येव । त्रिशतम् । त्रिसहस्रम् ॥

विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम् ६ । ३ । ४९ ॥

द्व्यष्टनोस्त्रेश्च प्रागुक्तं वा स्याच्चत्वारिंशदादौ परे । द्विचत्वारिंशत् द्वाचत्वारिंशत् । अष्टचत्वारिंशत् अष्टाचत्वारिंशत् । त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत् । एवं पञ्चाशत्षष्टिसप्ततिनवतिषु ॥

एकादिश्चैकस्य चादुक् ६ । ३ । ७६ ॥

एकादिर्नञ् प्रकृत्या स्यादेकस्य चादुगागमश्च । नञो विंशत्या समासे कृत एकशब्देन सह तृतीया इति योगविभागात्समासः । अनुनासिकाविकल्पः । एकेन न विंशतिः एकान्नविंशतिः। एकादून-विंशतिः । एकोनविंशतिरित्यर्थः ॥

षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च धासु वेति वाच्यम् ❀ ॥

षोडन् षोडश । षोढा षड्धा । समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च । नपुंसक-मित्युक्तम्।पञ्चगवम् । अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः । पञ्च-मूली । आबन्तो वा । पञ्चखट्वी पञ्चखट्वम् । अनो नलोपश्च वा च द्विगुः स्त्रियाम् । पञ्चतक्षी पञ्चतक्षम् ॥

पात्राद्यन्तस्य न ❀ ॥

पञ्चपात्रम् । त्रिभुवनम् । चतुर्युगमित्याद्यन्यदपि लिङ्गानुशा-सने ज्ञेयम् । सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् । इति तत्पुरुषः॥

इति ११० अंशाः । इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ।

दोषो बहुव्रीहिः । अनेकमन्यपदार्थे । प्राप्तोदको ग्राम इत्यादि । प्रथमार्थे तु न । वृष्टे देवे गतः । व्यधिकरणानामपि न । पञ्चभिर्भुक्तमस्य ॥

प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वाचोत्तरपदलोपः ॥

अविद्यमानपुत्रोऽपुत्रः । अस्ति इति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् । अस्तिक्षीरा गौः । स्त्रियाः पुंवदित्यादिना पुंवद्भावः । चित्रा गावो यस्येति लौकिकविग्रहे चित्रगुः । रूपवद्भार्यः । चित्रा जरती गौर्यस्येति विग्रहेऽनेकोक्तेर्बहूनामपि बहुव्रीहिः । अत्र केचित् । चित्रा जरतीगुः जरती चित्रागुर्वा । एवं दीर्घातन्वी जङ्घः । तन्वीदीर्घा जङ्घः । त्रिपदे बहुव्रीहौ प्रथमं न पुंवत् । उत्तरपदस्य मध्यमेन व्यवधानात् । द्वितीयमपि न पुंवत् । पूर्वपदत्वाभावात् । उत्तरपदशब्दो हि समासस्य चरमावयवे रूढः । पूर्वपदशब्दस्तु प्रथमावयवे इति वदन्ति । वस्तुतस्तु नेह पूर्वपदमाक्षिप्यते । आनङ् ऋतः इत्यत्र यथा तेनोपान्त्यस्य पुंवदेव चित्रा जरद्गुः इत्यादि। अत एव चित्राजरत्यौ गावौ यस्येति द्वन्द्वगर्भेऽपि चित्राजरद्गुः इति भाष्यम् । कर्मधारयपूर्वपदे तु द्वयोरपि पुंवत् । जरच्चित्रगुः । कर्मधारयोत्तरपदे तु चित्रजरद्गवीकः । पूरण्यां तु ॥

अप्पूरणीप्रमाण्योः ५ । ४ । ११६ ॥

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप् । कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । स्त्रीप्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः । पुंवद्भावप्रतिषेधोऽप्प्रत्ययश्च प्रधानपूरण्यामेव । रात्रिः पूरणी वाच्या चेत्युक्तोदाहरणे मुख्या । अन्यत्र तु नद्यृतश्चेति कप् । कल्याणी पञ्चमी यत्र स कल्याणपञ्चमीकः पक्षः । अत्र तिरोहितावयवभेदस्य पक्षस्यान्यपदार्थतया रात्रिरप्रधानम् । बहुकर्तृकः। अप्रियादिषु किम् । कल्याणीप्रियः । प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भक्तिः । सचिवा । स्वसा । कान्ता । क्षान्ता । समा । चपला । दुहिता ।

वामा । अवला । तनया । सामान्ये नपुंसकम् । दृढं भक्तिर्यस्य स दृढभक्तिः स्त्री ॥

तसिलादिष्वाकृत्वसुचः ६ । ३ । ३५ ॥

तसिलादिष्वाकृत्वसुजन्तेषु परेषु स्त्रियाः पुंवत्। परिगणनं कर्तव्यम् । अव्याप्त्यतिव्याप्तिपरिहाराय त्रतसौ । तरप्तमपौ । चरट्जातीयरौ । कल्पप्देशीयरौ । रूपप्पाशपौ । थाल् । तिल्थ्यनौ । बह्वीषु बहुत्र बहुतः । दर्शनीयतरा दर्शनीयतमा । घरूप इति वक्ष्यमाणो ह्रस्वः परत्वात्पुंवद्भावं, बाधते । पट्वितरा पट्वितमा । पटुचरी पटुजातीया । दर्शनीयकल्पा दर्शनीयदेशीया । दर्शनीयरूपा । दर्शनीयपाशा । बहुथा । प्रशस्ता वृकी वृकतिः । अजाभ्यो हिता अजथ्या ॥

शसि बह्वल्पार्थस्य पुंवद्भावो वक्तव्यः * ॥

बह्वीभ्यो देहि बहुशः । अल्पाभ्यो देहि अल्पशः । त्वतलोर्गुणवचनस्य । शुक्लाया भावः शुक्लत्वम् । गुणवचनस्य किम् । कर्त्र्या भावः कर्त्रीत्वम् । शरदः कृतार्थता इत्यादौ तु सामान्ये नपुंसकम् । भस्याढे तद्धिते । हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम् । अढे किम् । रौहिणेयः । स्त्रीभ्यो ढक् इति ढोऽत्र गृह्यते । अग्नेर्ढक् इति ढकि तु पुंवदेव । अग्नायी देवतास्य स्थालीपाकस्याग्नेयः । सपत्नीशब्दस्त्रिधा । शत्रुपर्यायात्सपत्नशब्दाच्छार्ङ्गरवादित्वान्ङीन्येकः । समानः पतिर्यस्या इति विग्रहे विवाहनिबन्धनं पतिशब्दमाश्रित्य नित्यस्त्रीलिङ्गो द्वितीयः । स्वामिपर्यायपतिशब्देन भाषितपुंस्कस्तृतीयः । आद्ययोः शिवाद्यण् । सपत्न्या अपत्यं सापत्नः। तृतीयात्तु लिङ्गविशिष्टपरिभाषया पत्युत्तरपदलक्षणो ण्य एव न त्वण् ।, शिवादौ रूढयोरेव ग्रहणात्सापत्यः । ठक्छसोश्च । भवत्याश्छात्रा भावत्काः भवदीयाः । एतद्वार्तिकम् एकतद्धिते च इति सूत्रं च न कर्तव्यम् । सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः इति भाष्यकारेष्ट्या गतार्थत्वात् । सर्वकाम्यति । सर्विका भार्या यस्य

सर्वकभार्यः । सर्वप्रिय इत्यादि । पूर्वस्यैवेदम् । मर्त्वपाजाद्गाद्वा इति लिङ्गात् । तेनाकच्येकशेषवृत्तौ च न । सर्विका सर्वाः। कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु । कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम् । मृग्याः पदं मृगपदम् । मृगक्षीरम् । काकशावः ॥

क्यङ् मानिनोश्च ६ । ३ । ३६ ॥

एतयोः परतः पुंवत् । एनीवाचरत्येतायते । श्येनीवाचरति श्येतायते । स्वभिन्नां कांचिद्दर्शनीयां मन्यते दर्शनीयमानिनी । दर्शनीयां स्त्रियं मन्यते दर्शनीयमानी चैत्रः ॥

न कोपधायाः ६ । ३ । ३७ ॥

कोपधायाः स्त्रियाः न पुंवत् । पाचिकाभार्यः । रसिकाभार्यः । मद्रिकायते । मद्रिकामानिनी ॥

कोपधप्रतिषेधे तद्धितवुग्ग्रहणम् ॥

नेह । पाका भार्या यस्य स पाकभार्यः ॥

इति १११ अंशाः ।

संज्ञापूरण्योश्च ६ । ३ । ३८ ॥

अनयोर्न पुंवत् । दत्ताभार्यः । दत्तामानिनी । दानक्रियानिमित्तः स्त्रियां पुंसि च संज्ञाभूतोऽयमिति भाषितपुंस्कत्वमस्ति । पञ्चमीभार्यः । पञ्चमीपाशा ॥

वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे ६।३।३९॥

वृद्धिशब्देन विहिता या वृद्धिस्तद्धेतुर्यस्तद्धितोऽरक्तविकारार्थस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् । स्रौघ्नीभार्यः। माथुरीयते । माथुरीमानिनी। वृद्धिनिमित्तस्य किम् । मध्यमभार्यः। तद्धितस्य किम् । काण्डलावभार्यः । वृद्धिशब्देन किम् । तावद्भार्यः । रक्ते तु, काषायी कन्या यस्य स काषायकन्यः । विकारे तु, हैमी मुद्रिका यस्येति हैममुद्रिकः । वृद्धिशब्देन वृद्धिं प्रति फलोपधानाभावादिह पुंवत् । वैयाकरणभार्यः । सौवश्वभार्यः ॥

स्वाङ्गाच्चेतः ६ । ३ । ४० ॥

स्वाङ्गाद्य ईकारस्तदन्ता स्त्री न पुंवत् । सुकेशीभार्यः । स्वाङ्गात् किम् । पटुभार्यः । ईतः किम् । अकेशभार्यः ॥

अमानिनीति वक्तव्यम् * ॥

सुकेशमानिनी ॥

जातेश्च ६ । ३ । ४१ ॥

जातेः परो यः स्त्रीप्रत्ययस्तदन्तं न पुंवत् । शूद्राभार्यः । ब्राह्मणीभार्यः । सौत्रस्यैवायं निषेधः तेन हस्तिनीनां समूहो हास्तिकमित्यत्र भस्याढे इति तु भवत्येव ॥

संख्ययाव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये२।२।२५॥

संख्येयार्थया संख्ययाव्ययादयः समस्यन्ते स बहुव्रीहिः । दशानां समीपे ये सन्ति त उपदशाः । नव एकादश वेत्यर्थः । बहुव्रीहौ संख्येये इति वक्ष्यमाणो डच् ॥

तिविंशतेर्डिति ६ । ४ । १४२ ॥

विंशतेर्भस्य तिशब्दस्य लोपः स्याड्डिति । आसन्नविंशाः । विंशतेरासन्ना इत्यर्थः । अदूरत्रिंशाः । अधिकचत्वारिंशाः । द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः । द्विरावृत्ता दश द्विदशाः । विंशतिरित्यर्थः ॥

दिङ्नामान्यन्तराले २ । २ । २६ ॥

दिशो नामान्यंतराले वाच्ये प्राग्वत् । दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं दक्षिणपूर्वा । नामग्रहणाद्यौगिकानां न । ऐन्द्र्याश्च कौबेर्याश्चान्तरालं दिक् ॥

तत्र तेनेदमिति सरूपे २ । २ । २७ ॥

सप्तम्यन्ते ग्रहणविषये सरूपे पदे तृतीयान्ते च प्रहरणविषय इदं युद्धं प्रवृत्तमित्यर्थे समस्येते कर्मव्यतिहारे द्योत्ये स बहुव्रीहिः । इतिशब्दादयं विषयविशेषो लभ्यते । इच्समासान्तो वक्ष्यते । तिष्ठद्गुप्रभृतिष्विच्प्रत्ययस्य पाठादव्ययीभावत्वमव्य-

यत्वं च । अन्येषामपि दृश्यते इति दीर्घः । केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि । दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तं दण्डादण्डि । मुष्टीमुष्टि। ओर्गुणः। अवादेशः। बाहूबाहवि । ओर्गुण इत्यत्र ओरोत् इति वक्तव्ये गुणोक्तिः । संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः इति ज्ञापयितुम् । तेन स्वायंभुवः इत्यादि सिद्धम् । सरूपे इति किम् । हलेन मुसलेन । तेन सहेति तुल्ययोगे वोपसर्जनस्य सपुत्रः सहपुत्रः । तुल्ययोगवचनं प्रायिकम् । सकर्मकः । सलोमकः ॥

प्रकृत्याशिषि ६ । ३ । ८३ ॥

सहशब्दः प्रकृत्या स्यादाशिषि । स्वस्तिराज्ञे सहपुत्राय । सहामात्याय ॥

अगोवत्सहलेष्विति वाच्यम् ❀ ॥

सगवे । सवत्साय । सहलाय ॥

बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् ५ । ४ । ७३ ॥

संख्येये यो बहुव्रीहिस्तस्माड्डच् । उपदशाः । अबहुगणात् किम् । उपबहवः । उपगणाः । अत्र स्वरे विशेषः ॥

संख्यायास्तत्पुरुषस्य वाच्यः ❀ ॥

निर्गतानि त्रिंशतो निस्त्रिंशानि वर्षाणि चैत्रस्य । निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यो निस्त्रिंशः खड्गः॥

बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच् ५ । ४ । ११३ ॥

व्यत्ययेन षष्ठी । स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् । दीर्घे सक्थिनी यस्य स दीर्घसक्थः । जलजाक्षी । स्वाङ्गात् किम् । दीर्घसक्थि शकटम् । स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । अक्ष्णोऽदर्शनात् इत्यच् ॥

अंगुलेर्दारुणि ५ । ४ । ११४ ॥

अंगुल्यन्ताद्बहुव्रीहेः षच् दारुण्यर्थे । पञ्चांगुलयो यस्य तत् पञ्चांगुलं दारु । अंगुलिसदृशावयवं धान्यादिविक्षेपणकाष्ठमुच्यते ।

बहुव्रीहेः किम् । द्वे अंगुली प्रमाणमस्या द्व्यंगुला यष्टिः । तद्धितार्थे तत्पुरुषे तत्पुरुषस्यांगुलेः इत्यच् । दारुणि किम् । पञ्चांगुलिर्हस्तः ॥

द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः ५ । ४ । ११५ ॥

आभ्यां मूर्ध्नः षः बहुव्रीहौ । द्विमूर्धः । त्रिमूर्धः ॥

नेतुर्नक्षत्रे अब्वक्तव्यः ❀ ॥

मृगो नेता यासां ता मृगनेत्रा रात्रयः । पुष्यनेत्राः ॥

अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः ५ । ४ । ११७ ॥

आभ्यां लोम्नोऽप् बहुव्रीहौ । अन्तर्लोमः बहिर्लोमः ॥

इति ११२ अंशः ।

अञ्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात् ५।४।११८॥

नासिकान्ताद्बहुव्रीहेरच् । नासिकाशब्दश्च नसं प्राप्नोति नतु स्थूलपूर्वात् ॥

पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८ । ४ । ३ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात्संज्ञायां नतु गकारव्यवधाने । द्रुरिव नासिकास्य द्रुणसः । खरणसः । अगः किम् । ऋचामयनमृगयनम् । अणृगयनादिभ्यः इति निपातनाण्णत्वाभावमाश्रित्य अगः इति प्रत्याख्यातं भाष्ये । अस्थूलात् किम् । स्थूलनासिकः ॥

खुरखराभ्यां वा नस् ❀ ॥

खुरणाः खरणाः । पक्षेऽजपीष्यते । खुरणसः ॥

उपसर्गाच्च ५ । ४ । ११९ ॥

प्रादेर्यो नासिकाशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरच् नासिकाया नसादेशश्च । असंज्ञार्थं वचनम् । उन्नता नासिका यस्य स उन्नसः । उपसर्गादनोत्परः इति सूत्रं तद् भङ्क्त्वा भाष्यकार आह ॥

उपसर्गाद्बहुलम् ८ । ४ । २८ ॥

उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य नसो नस्य णः बहुलम् । प्रणसः ॥

वेर्ग्रो वक्तव्यः ❀ ॥

विगता नासिकास्य विग्रः ॥

ख्यश्च ❀ ॥

विख्यः । कथं तर्हि, विनसा हतवान्धवा इति भट्टिः । विगतया नासिकयोपलक्षितेति व्याख्येयम् ॥

सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः ५ । ४ । १२० ॥

एते बहुव्रीहयोऽच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शोभनं प्रातरस्य सुप्रातः । शोभनं श्वोऽस्य सुश्वः । शोभनं दिवास्य सुदिवः । शारेरिव कुक्षिरस्य शारिकुक्षः । चतस्रोऽश्रयोऽस्य चतुरश्रः । एण्या इव पादावस्यैणीपदः । अजपदः । प्रोष्ठो गौस्तस्येव पादावस्य प्रोष्ठपदः ॥

नित्यमसिच्प्रजामेधयोः ५ । ४ । १२२ ॥

नञ्दुःसुभ्यः इत्येव । अप्रजाः । दुष्प्रजाः । सुप्रजाः । अमेधाः । दुर्मेधाः । सुमेधाः ॥

धर्मादनिच् केवलात् ५ । ४ । १२४ ॥

केवलात्पूर्वपदात्परो यो धर्मशब्दस्तदन्ताद्बहुव्रीहेरनिच् । कल्याणधर्मा । केवलात् किम् । परमः स्वो धर्मो यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ मा भूत् । स्वशब्दो ह्यत्र न केवलं पूर्वपदं किन्तु मध्यमत्वादापेक्षिकम् । संदिग्धसाध्यधर्मा इत्यादौ तु कर्मधारयपूर्वपदो बहुव्रीहिः । एवं च परमस्वधर्मा इत्यपि साध्वेव । निवृत्तिधर्मा । अनुच्छित्तिधर्मा इत्यादिवत् । पूर्वपदं तु बहुव्रीहिणा क्षिप्यते ॥

दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे ५ । ४ । १२६ ॥

दक्षिणे ईर्मं व्रणं यस्य दक्षिणेर्मा मृगः । व्याधेन कृतव्रण इत्यर्थः ॥

इच् कर्मव्यतिहारे ५ । ४ । १२७ ॥

कर्मव्यतिहारे यो बहुव्रीहिस्तस्मादिच्समासान्तः । केशाकेशि । मुसलामुसलि ॥

द्विदण्ड्यादिभ्यश्च ५ । ४ । १२८ ॥

तादर्थ्ये चतुर्थ्येषा एषां सिद्ध्यर्थमिच्प्रत्ययः । द्वौ दण्डौ यस्मिन्प्रहरणे तद्द्विदण्डि प्रहरणम् । द्विमुसलि । उभाहस्ति । उभयाहस्ति ॥

प्रसंभ्यां जानुनोर्ज्ञुः ५ । ४ । १२९ ॥

आभ्यां परयोर्जानुशब्दयोर्ज्ञुरादेशो बहुव्रीहौ । प्रगते जानुनी यस्य प्रज्ञुः । संज्ञुः ॥

ऊर्ध्वाद्विभाषा ५ । ४ । १३० ॥

ऊर्ध्वज्ञुः । ऊर्ध्वजानुः ॥

धनुषश्च ५ । ४ । १३२ ॥

धनुरन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः । शार्ङ्गधन्वा ॥

वा संज्ञायाम् ५ । ४ । १३३ ॥

शतधन्वा । शतधनुः ॥

जायाया निङ् ५ । ४ । १३४ ॥

जायान्तस्य बहुव्रीहेर्निङादेशः । लोपो व्योर्वलि । पुंवद्भावः । युवतिर्जायास्य युवजानिः ॥

गंधस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ५ । ४ । १३५ ॥

एभ्यो गन्धस्येकारोऽन्तादेशः । उद्गंधिः । पूतिगन्धिः । सुगन्धिः । सुरभिगन्धिः ॥

गंधस्येत्वे तदेकान्तग्रहणम् * ॥

एकान्त एकदेश इवाविभागेन लक्ष्यमाण इत्यर्थः । अत्र गुणवाचिनो गन्धशब्दस्य ग्रहणमित्याशयः । सुगंधि पुष्पं सलिलं च ।

विशेष्यभूतान्यपदार्थगतगंधस्यैव ग्रहणामिति वृत्त्यादिमते तु सुगन्धि पुष्पमित्येव साधु सुगंधि सलिलम् । अयुक्च्छदगुच्छसुगन्धयः इत्यादित्वसाधु । अत एव भट्टिः । आघ्रायिवान् गन्धवहः सुगन्ध इति । तदेकान्तेति किम् । शोभना गंधा द्रव्याण्यस्य स सुगंधः । आपणिकः ॥

अल्पाख्यायाम् ५ । ४ । १३६ ॥

सूपस्य गंधो लेशो यस्मिंस्तत्सूपगन्धि भोजनम् । घृतगन्धि । गन्धो गन्धक आमोदे लेशे संबंधगर्वयोः । इति विश्वः ॥

उपमानाच्च ५ । ४ । १३७ ॥

पद्मस्येव गन्धोऽस्य पद्मगंधिः ॥

पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ५ । ४ । १३८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपो बहुव्रीहौ । स्थानिद्वारेणायं समासान्तः । व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम् । हस्तिपादः । कुसूलपादः ॥

संख्यासुपूर्वस्य ५ । ४ । १४० ॥

पादस्य लोपः समासान्तो बहुव्रीहौ । द्विपात् । सुपात् ॥

वयसि दन्तस्य दतृ ५ । ४ । १४१ ॥

संख्यासुपूर्वस्य दन्तस्य दतृ इत्यादेशो वयसि । द्विदन् । चतुर्दन् । षट् दन्ता अस्य षोडन् । सुदन् । सुदती । वयसि किम् । द्विदन्तः करी । सुदन्तो नटः ॥

इति ११३ अंशाः ।

सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ५ । ४ । १५० ॥

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते । सुहृन्मित्रम् । दुर्हृदमित्रः । अन्यत्र सुहृदयः । दुर्हृदयः ॥

उरःप्रभृतिभ्यः कप् ५ । ४ । १५१ ॥

व्यूढोरस्कः। प्रियसर्पिष्कः। इह पुमान् । अनड्वान् । पयः। नौः। लक्ष्मीः । इत्येकवचनान्तानि पठ्यन्ते । द्विवचनबहुवचनान्तेभ्यस्तु

शेषाद्विभाषा इति विकल्पेन कप् । द्विपुमान् । द्विपुंस्कः । अर्थान्नञः । अनर्थकम् । नञः किम् । अपार्थम् । अपार्थकम् ॥

इनः स्त्रियाम् ५ । ४ । १५२ ॥

बहुदण्डिका नगरी ॥

अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेनापि तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥

बहुवाग्मिका । स्त्रियाम् किम् । बहुदण्डी । बहुदण्डिको ग्रामः॥

शेषाद्विभाषा ५ । ४ । १५४ ॥

अनुक्तसमासान्ताच्छेषाधिकारस्थाद्बहुव्रीहेः कब्वा । महायशस्कः । महायशाः । अनुक्त इत्यादि किम् । व्याघ्रपात् । सुगंधिः प्रियपथः । शेषाधिकारस्थात् किम् । उपबहवः । उत्तरपूर्वा । सपुत्रः । तन्त्रादिना शेषशब्दोऽर्थद्वयपरः ॥

आपोऽन्यतरस्याम् ७ । ४ । १५ ॥

कप्यावन्तस्य ह्रस्वो वा । बहुमालाकः बहुमालकः । कबभावे बहुमालः ॥

न संज्ञायाम् ५ । ४ । १५५ ॥

शेषात् इति प्राप्तः कप् संज्ञायाम् । विश्वे देवा अस्य विश्वेदेवः॥

ईयसश्च ५ । ४ । १५६ ॥

ईयसन्तोत्तरपदान्न कप् । बहवः श्रेयांसोऽस्य बहुश्रेयान् । गोस्त्रियोः इति ह्रस्वत्वे प्राप्ते ॥

ईयसो बहुव्रीहेर्नेति वाच्यम् * ॥

बह्व्यः श्रेयस्योऽस्य बहुश्रेयसी । बहुव्रीहेः किम् । अतिश्रेयसिः॥

निष्प्रवाणिश्च ५ । ४ । १६० ॥

कबभावोऽत्र निपात्यते । प्रपूर्वाद्वयतेर्ल्युट् । प्रवाणी तन्तुवायशलाका । निर्गता प्रवाण्यस्य निष्प्रवाणिः पटः । समाप्तवानः । नव इत्यर्थः ॥

सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ २ । २ । ३५ ॥

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं प्रयोज्यम् । कण्ठेकालः । अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः । चित्रगुः ॥

सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम् ❀ ॥

सर्वश्वेतः । द्विशुक्लः । मिथोऽनयोः समासे संख्यापूर्वं शब्दपरविप्रतिषेधात् । द्व्यन्यः । संख्याया अल्पीयस्याः । द्वित्राः । द्वन्द्वेपि द्वादश वा प्रियस्य । गुडप्रियः । प्रियगुडः ॥

गड्वादेः परा सप्तमी ❀ ॥

गडुकण्ठः । क्वचिन्न । वहेगडुः ॥

निष्ठा २ । २ । ३६ ॥

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वम् । कृतकृत्यः ॥

जातिकालसुखादिभ्यः परा निष्ठा वाच्या ❀ ॥

सारङ्गजग्धी । मासजाता । सुखजाता। प्रायिकं चेदम् । कृतकटः । पीतोदकः ॥

वाहिताग्न्यादिषु २ । २ । ३७ ॥

आहिताग्निः अग्न्याहितः । आकृतिगणोऽयम् ॥

प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ ❀ ॥

अस्युद्यतः। दण्डपाणिः । क्वचिन्न । विवृतासिःइति बहुव्रीहिः।

चार्थे द्वन्द्वः। समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । अन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेऽन्वाचयः। मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः।समूहः समाहारः। तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्व इति समुच्चये भिक्षामट गां चानय इत्यन्वाचये च न समासोऽसामर्थ्यात् । धवखदिरौ । संज्ञापरिभाषम् । अनेकोक्तेः होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । द्वयोर्द्वयोर्द्वंद्वं कृत्वा पुनर्द्वंद्वे तु आनङ् ऋत इति वक्ष्यमाणे आनङि होता पोता नेष्टोद्गातारः ॥

राजदन्तादिषु परम् २ । २ । ३२ ॥

एषु पूर्वप्रयोगार्ह परम् । दन्तानां राजा राजदन्तः ॥

धर्मादिष्वनियमः ❋ ॥

अर्थधर्मौ धर्मार्थौ । दम्पती । जम्पती जायापती । जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च वा निपात्यते । आकृतिगणोऽयम् ॥

द्वन्द्वे घि २ । २ । ३२ ॥

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वम् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ॥

अनेकप्राप्तावेकत्र नियमोऽनियमः शेषे ❋ ॥

हरिगुरुहराः । हरिहरगुरवः ॥

अजाद्यदन्तम् २ । २ । ३३ ॥

इदं द्वन्द्वे पूर्वम् । ईशकृष्णौ । बहुष्वनियमः । अश्वरथेन्द्राः इन्द्राश्वरथाः । घ्यन्तादजाद्यदन्तं विप्रतिषेधेन । इन्द्राग्नी ॥

अल्पाच्तरम् २ । २ । ३४ ॥

शिवकेशवौ । ऋतुनक्षत्राणां समाक्षराणामानुपूर्व्येण । हेमन्तशिशिरवसन्ताः । कृत्तिकारोहिण्यौ । समाक्षराणां किम् । ग्रीष्मवसन्तौ । लघ्वक्षरं पूर्वम् । कुशकाशम् । अभ्यर्हितं च । तापसपर्वतौ । वर्णानामानुपूर्व्येण । ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः । भ्रातुर्ज्यायसः । युधिष्ठिरार्जुनौ ॥

द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् २ । ४ । २ ॥

एषां द्वन्द्व एकवत् । पाणिपादम् । मार्दङ्गिकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम् । समाहारस्यैकत्वादेकत्वे सिद्धे नियमार्थं प्रकरणम् । प्राण्यङ्गादीनां समाहार एव यथा स्यात् ॥

इति ११४ अंशाः ।

गवाश्वप्रभृतीनि च २ । ४ । ११ ॥

यथोच्चारितानि साधूनि स्युः । गवाश्वम् । दासीदासमित्यादि ॥

न दधिपयआदीनि २ । ४ । १४ ॥

एतानि नैकवत्स्युः । दधिपयसी । इध्माबर्हिषी । निपातनाद्दीर्घः । ऋक्सामे । वाङ्मनसे ॥

आनङ् ऋतो द्वन्द्वे ६ । ३ । २५ ॥

विद्यायोनिसंबंधवाचिनामृदन्तानां द्वन्द्वे आनङ् स्यादुत्तरपदे परे । होतापोतारौ । होतृपोतृनेष्टोद्गातारः । मातापितरौ । पुत्रेऽन्यतरस्याम् इत्यतो मण्डूकप्लुत्या पुत्रे इत्यनुवृत्तेः । पितापुत्रौ ॥

देवताद्वन्द्वे च ६ । ३ । २६ ॥

इहोत्तरपदे परे आनङ् । मित्रावरुणौ । वायुशब्दप्रयोगे प्रतिषेधः । अग्निवायू । वाय्वग्नी । पुनर्द्वन्द्वग्रहणं प्रसिद्धसाहचर्यस्य परिग्रहार्थम् । तेन ब्रह्मप्रजापती इत्यादौ नानङ् । एतद्धि नैकहविर्भागत्वेन श्रुतं नापि लोके प्रसिद्धसाहचर्यम् ॥

ईदग्नेः सोमवरुणयोः ६ । ३ । २७ ॥

देवताद्वन्द्वे ॥

अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ८ । ३ । ८२ ॥

अग्नेः परेषामेषां सस्य षः समासे । अग्निष्टुत् अग्निष्टोमः । अग्नीषोमौ । अग्नीवरुणौ ॥

इद्वृद्धौ ६ । ३ । २८ ॥

वृद्धिमत्युत्तरपदे अग्नेरिदादेशो देवताद्वन्द्वे । अग्नामरुतौ देवते अस्य आग्निमारुतं कर्म । अग्नीवरुणौ देवते अस्य आग्निवारुणम् । देवताद्वन्द्वे च इत्युभयपदवृद्धिः । अलौकिकवाक्य आनङमीत्वं च बाधित्वा इत् । वृद्धौ किम् । आग्नेन्द्रः । नेन्द्रस्य परस्य इत्युत्तरपदवृद्धिप्रतिषेधः । विष्णौ न । आग्नावैष्णवम् ॥

दिवो द्यावा ६ । ३ । २९ ॥

देवताद्वन्द्वे उत्तरपदे । द्यावाभूमी । द्यावाक्षमे ॥

दिवसश्च पृथिव्याम् ६ । ३ । ३० ॥

दिवः इत्येव चाद्यावा । आदेशेऽकारोच्चारणं सकारस्य रुत्वं मा भूदित्येतदर्थम् । द्यौश्च पृथिवी च दिवस्पृथिव्यौ द्यावापृथिव्यौ । छन्दसि दृष्टानुविधिः । द्यावाचिदस्मै पृथिवी दिवस्पृथिव्योररतिः इत्यत्र पदकारा विसर्गं पठन्ति ॥

उषासोषसः ६ । ३ । ३१ ॥

उषस्शब्दस्योषासादेशो देवताद्वन्द्वे । उषासा सूर्यम् ॥

मातरपितरावुदीचाम् ६ । ३ । ३२ ॥

मातरपितरौ । उदीचां किम् । मातापितरौ ॥

द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे ५ । ४ । १०६ ॥

चवर्गान्ताद्दषहान्ताच्च द्वन्द्वाट्टच्समाहारे । वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम् । त्वक्स्रजम् । शमीदृषदम् । वाक्त्विषम् । छत्रोपानहम् । समाहारे किम् । प्रावृट्शरदौ । इति द्वन्द्वसमासः ॥

सरूपाणामेकशेषः । रामौ । रामाः । विरूपाणामपि समानार्थानाम् । वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च वक्रदण्डौ कुटिलदण्डौ ॥

वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः १ । २ । ६५ ॥

यूना सहोक्तौ गोत्रं शिष्यते गोत्रयुवप्रत्ययमात्रकृतं चेत्तयोः कृत्स्नं वैरूप्यम् । गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च गार्ग्यौ । वृद्धः किम् । गर्गगार्ग्यायणौ । यूना किम् । गार्ग्यगर्गौ । तल्लक्षणः किम् । भागवित्तिभागवित्तिकौ । कृत्स्नं किम् । गार्ग्यवात्स्यायनौ ॥

स्त्री पुंवच्च १ । २ । ६६ ॥

यूना सहोक्तौ वृद्धा स्त्री शिष्यते तदर्थश्च पुंवत् । गार्गी च गार्ग्यायणश्च गर्गाः । अस्त्रियाम् इत्यनुवर्तमाने यञञोश्च इति लुक् । दाक्षी च दाक्षायणश्च दाक्षी ॥

पुमान् स्त्रिया १ । २ । ६७ ॥

स्त्रिया सहोक्तौ पुमाञ्छिष्यते तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । हंसी च हंसश्च हंसौ ॥

भ्रातृपुत्रौ स्वसृदुहितृभ्याम् २ । १ । ६८ ॥

भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ । पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ ॥

नपुंसकमनपुंसके नैकवच्चास्यान्यतरस्याम् १।२।६९॥

अक्लीवेन सहोक्तौ क्लीबं शिष्यते तच्च वा एकवत्तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । शुक्लः पटः । शुक्ला शाटी । शुक्लं वस्त्रम् । तदिदं शुक्लम् । तानीमानि शुक्लानि ॥

पिता मात्रा १ । २ । ७० ॥

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते । माता च पिता च पितरौ मातापितरौ वा ॥

श्वशुरः श्वश्र्वा १ । २ । ७१ ॥

श्वश्र्वा सहोक्तौ श्वशुरो वा शिष्यते तल्लक्षण एव विशेषश्चेत् । श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ श्वश्रूश्वशुरौ ॥

त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम् १ । २ । ७२ ॥

सर्वैः सहोक्तौ त्यदादीनि नित्यं शिष्यन्ते । स च देवदत्तश्च तौ । त्यदादीनां मिथः सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते । स च यश्च यौ । पूर्वशेषोऽपि दृश्यते इति भाष्यम् । स च यश्च तौ । त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवचनानि । सा च देवदत्तश्च तौ । तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि । पुंनपुंसकयोस्तु परत्वान्नपुंसकं शिष्यते । तच्च देवदत्तश्च ते ॥

अद्वन्द्वतत्पुरुषविशेषणानामिति वक्तव्यम् ❀ ॥

कुक्कुटमयूर्याविमे । मयूरीकुक्कुटाविमौ । तच्च सा च अर्धपिप्पल्यौ ते ॥

ग्राम्यपशुसंघेष्वतरुणेषु स्त्री १ । २ । ७३ ॥

एषु सहविवक्षायां स्त्री शिष्यते । पुमान्स्त्रिया इत्यस्यापवादः । गावः इमाः । ग्राम्य इति किम् । रुरव इमे । पशुग्रहणं किम् । ब्राह्मणा इमे । सङ्घेषु किम् । एतौ गावौ । अतरुणेषु किम् । वत्सा इमे ॥

अनेकशेषेष्विति वाच्यम् ॥

अश्वा इमे । इह सर्वत्रैकशेषे कृतेऽनेकसुबन्ताभावाद्द्वन्द्वो न । तेन शिरसी शिरांसि इत्यादौ समासस्येत्यन्तोदात्तः । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावश्च न । पन्थानौ पन्थानः इत्यादौ समासान्तो न । इत्येकशेषः ॥

इति ११९ अंशाः ।

ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ५ । ४ । ७४ ॥

अ अनक्ष इति च्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवः । अक्षे या धूस्तदन्तस्य तु न । अर्धर्चः । अनृचबह्वृचावध्येतर्येव । नेह । अनृक् साम । बह्वृक् सूक्तम् । विष्णोः पूर्विष्णुपुरम् । क्लीवत्वं लोकात् । विमलापं सरः ॥

द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत् ६ । ३ । ९७ ॥

अप इति कृतसमासान्तस्यानुकरणम् । षष्ठ्यर्थे प्रथमा एभ्योऽपस्य ईत् । द्विर्गता आपो यस्मिन्निति द्वीपम् । अन्तरीपम् । प्रतीपम् । समीपम् । समापो देवयजनमिति तु समा आपो यस्मिन्निति बोध्यम् । कृतसमासान्तग्रहणान्नेह । स्वप् । स्वपी । अवर्णान्ताद्वा । प्रेपम् परेपम् । प्रापम् । परापम् ॥

ऊदनोर्देशे ६ । ३ । ९८ ॥

अनो' परस्यापस्य ऊद्देशे अनूपो देशः । राजधुरा । अक्षे तु अक्षधूः । दृढधूरक्षः । सखिपथो रम्यपथो देशः ॥

अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्नः ५ । ४ । ७५ ॥

एतत्पूर्वात्सामलोमान्तात्समासादच् । प्रतिसामम् । अनुसामम् । अवसामम् । प्रतिलोमम् । अनुलोमम् ॥

कृष्णोदक्पाण्डुसंख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते ॥

कृष्णभूमः । उदग्भूमः । पाण्डुभूमः । द्विभूमः प्रासादः । संख्याया नदीगोदावरीभ्यां च । पञ्चनदम् । सप्तगोदावरम् । अच् इति योगविभागादन्यत्रापि । पद्मनाभः ॥

अक्ष्णोऽदर्शनात् ५ । ४ । ७६ ॥

अचक्षुःपर्यायादक्ष्णोऽच् समासान्तः । गवामक्षीव गवाक्षः ॥

अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः ५ । ४ । ७७ ॥

एते पञ्चविंशतिरजन्ता निपात्यन्ते । आद्यास्त्रयो बहुव्रीहयः । अविद्यमानानि चत्वार्यस्य अचतुरः । विचतुरः । सुचतुरः ॥

त्र्युपाभ्यां चतुरोऽजिष्यते ॥

त्रिचतुराः । चतुर्णां समीपे उपचतुराः । तत एकादश द्वन्द्वाः । स्त्रीपुंसौ । धेन्वनडुहौ । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । अक्षिणी च भ्रुवौ चाक्षिभ्रुवम् । दाराश्च गावश्च दारगवम् । ऊरू च अष्ठीवन्तौ च ऊर्वष्ठीवम् । निपातनाट्टिलोपः । पदष्ठीवम् । निपातनात्पादशब्दस्य पद्भावः । नक्तं च दिवा च नक्तंदिवम् । रात्रौ च दिवा च रात्रिंदिवम् । रात्रेर्मान्तत्वं निपात्यते । अहनि च दिवा चाहर्दिवम् । वीप्सायां द्वन्द्वो निपात्यते । अहन्यहनीत्यर्थः । सरजसमिति साकल्येऽव्ययीभावः । बहुव्रीहौ तु सरजः पङ्कजम् । निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम् । तत्पुरुष एव नेह । निःश्रेयान्पुरुषः । पुरुषस्यायुः पुरुषायुषम् । ततो द्विगुः । द्व्यायुषम् । त्र्यायुषम् । ततो द्वन्द्वः । ऋग्यजुषम् । ततस्त्रयः कर्मधारयाः । जातोक्षः । महोक्षः । वृद्धोक्षः । शुनः समीपमुपशुनम् । टिलोपाभावः संप्रसारणं च निपात्यते । गोष्ठेऽश्वा गोष्ठश्वः ॥

ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ५ । ४ । ७८ ॥

अच् । ब्रह्मवर्चसम् । हस्तिवर्चसम् ॥

पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

पल्यवर्चसम् । राजवर्चसम् ॥

अवसमन्धेभ्यस्तमसः ५ । ४ । ७९ ॥

अवतमसम् । सन्तमसम् । अन्धयतीत्यन्धम् । पचाद्यच् । अन्धं तमोऽन्धतमसम् ॥

श्वसो वसीयःश्रेयसः ५ । ४ । ८० ॥

वसुशब्दः प्रशस्तवाची तत ईयसुनि वसीयः । श्वसशब्द उत्तरपदार्थप्रशंसामाशीर्विषयतामाह । मयूरव्यंसकादित्वात् समासः । श्वोवसीयसम् । श्वःश्रेयसं ते भूयात् ॥

अन्ववतप्ताद्रहसः ५ । ४ । ८१ ॥

अनुरहसम् । अवरहसम् । तप्तरहसम् ॥

प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात् ५ । ४ । ८२ ॥

उरसि इति प्रत्युरसम् । विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः ॥

अनुगवमायामे ५ । ४ । ८३ ॥

एतन्निपात्यते दीर्घत्वे । अनुगवं यानम् । यस्य चायामः इति समासः ॥

द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः ५ । ४ । ८४ ॥

अच्प्रत्ययष्टिलोपः समासश्च निपात्यते । यावती प्रकृतौ वेदिस्ततो द्विगुणा त्रिगुणा वाश्वमेधादौ तत्रेदं निपातनम् । वेदिः इति किम् । द्विस्तावती त्रिस्तावती रज्जुः ॥

उपसर्गादध्वनः ५ । ४ । ८५ ॥

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ॥

न पूजनात् ५ । ४ । ६९ ॥

पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता न स्युः । सुराजा । अतिराजा । स्वतिभ्यामेव नेह । परमराजः । पूजनात् किम् । गामतिक्रान्तोऽतिगवः । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः इत्यतः प्रागेवायं निषेधः । नेह । सुसक्थः । स्वक्षः ॥

किमः क्षेपे ५ । ४ । ७० ॥

क्षेपे यः किंशब्दस्ततः परं यत्तदन्तात्समासान्ता न स्युः । कुत्सितो राजा किंराजा । किंसखा । किंगौः । क्षेपे किम् । किंराजः । किंसखः । किंगवः ॥

नञस्तत्पुरुषात् ५ । ४ । ७१ ॥

समासान्तो न । अराजा । असखा । तत्पुरुषात् किम् । अधुरं शकटम् ॥

पथो विभाषा ५ । ४ । ७२ ॥

नञ्पूर्वात्पथो वा समासान्तः । अपथम् । अपन्थाः । तत्पुरुषादित्येव । अपथो देशः । अपथं वर्तते । इति सर्वसमासान्ताः ॥

अलुगुत्तरपदे ६ । ३ । १ ॥

अलुगधिकारः प्रागानङः उत्तरपदाधिकारस्त्वापादसमाप्तेः ॥

पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६ । ३ । २ ॥

एभ्यः पञ्चम्या अलुक् उत्तरपदे । स्तोकान्मुक्तः । एवमन्तिकार्थदूरार्थकृच्छ्रेभ्यः । उत्तरपदे किम् । निष्क्रान्तः स्तोकान्निस्तोकः ॥

ब्राह्मणाच्छंसिन उपसंख्यानम् * ॥

ब्राह्मणे विहितानि शस्त्राण्युपचारात् ब्राह्मणानि तानि शंसतीति ब्राह्मणाच्छंसी ऋत्विग्विशेषः । द्वितीयार्थे पञ्चम्युपसंख्यानादेव ॥

ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः ६ । ३ । ३ ॥

ओजसा कृतमित्यादि ॥

अञ्जस उपसंख्यानम् * ॥

अञ्जसा कृतम् । आर्जवेन कृतमित्यर्थः ॥

पुंसानुजो जनुषान्ध इति च * ॥

यस्याग्रजः पुमान् स पुंसानुजः । जनुषान्धो जात्यन्धः ॥

इति ११६ अंशाः ।

मनसः संज्ञायाम् ६ । ३ । ४ ॥

मनसा गुप्ता ॥

आज्ञायिनि च ६ । ३ । ५ ॥

मनसः इत्येव । मनसा ज्ञातुं शीलमस्य मनसाज्ञायी ॥

आत्मनश्च ६ । ३ । ६ ॥

आत्मनस्तृतीयाया अलुक् ॥

पूरण इति वक्तव्यम् ❀ ॥

पूरणप्रत्ययान्त उत्तरपद इत्यर्थः । आत्मना पञ्चमः । जनार्दनस्त्वात्मचतुर्थ एव । इति बहुव्रीहिर्बोध्यः । पूरणे किम् । आत्मकृतम् ॥

वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः ६ । ३ । ७ ॥

आत्मनः इत्येव । आत्मनेपदम् । आत्मनेभाषा । तादर्थ्ये चतुर्थी । चतुर्थी इति योगविभागात्समासः ॥

परस्य च ६ । ३ । ८ ॥

परस्मैपदम् । परस्मैभाषा ॥

हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम् ६ । ३ । ९ ॥

हलन्താददन्ताच्च सप्तम्या अलुक् संज्ञायाम् । त्वचिसारः ॥

गवियुधिभ्यां स्थिरः ८ । ३ । ९५ ॥

आभ्यां स्थिरस्य सस्य षः । गविष्ठिरः । अत्र गवीति वचनादेवालुक् । युधिष्ठिरः । अरण्येतिलकः । अत्र संज्ञायाम् इति सप्तमीसमासः । हद्युभ्यां च । हृदिस्पृक् । दिविस्पृक् ॥

अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे ६ । ३ । १२ ॥

कण्ठेकालः । उरसिलोमा । अमूर्धमस्तकात् किम् । मूर्धशिखः । मस्तकशिखः । अकामे किम् । मुखे कामोऽस्य मुखकामः ॥

तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६ । ३ । १४ ॥

स्तम्बेरमः स्तम्बरमः। कर्णेजपः कर्णजपः । क्वचिन्न । कुरुचरः॥

प्रावृट्शरत्कालदिवां जे ६ । ३ । १५ ॥

प्रावृषिजः । शरदिजः । कालेजः । दिविजः । पूर्वस्यायं प्रपञ्चः ॥

घकालतनेषु कालनाम्नः ६ । ३ । १७ ॥

सप्तम्या विभाषया लुक् । घः—पूर्वाह्णेतरे पूर्वाह्णतरे । पूर्वाह्णेतमे पूर्वाह्णतमे । कालः—पूर्वाह्णेकाले पूर्वाह्णकाले । तनः—पूर्वाह्णेतने पूर्वाह्णतने ॥

शयवासवासिष्वकालात् ६ । ३ । १८ ॥

खेशयः खशयः । ग्रामेवासः ग्रामवासः । ग्रामेवासी ग्रामवासी । हलदन्तात् इत्येव । भूमिशयः । अपो योनियन्मतुपु । अप्सु योनिरुत्पत्तिर्यस्य सोऽप्सुयोनिः। अप्सु भवोऽप्सव्यः । अप्सुमन्ताज्यभागौ । अत्र मतुपु इत्यत्र मतिपु इति शुद्धः पाठ इति परे॥

नेन्सिद्धबध्नातिषु च ६ । ३ । १९ ॥

इन्नन्तादिषु सप्तम्या अलुग् । स्थण्डिलशायी । सांकाश्यसिद्धः । चक्रबन्धः ॥

स्थे च भाषायाम् ६ । ३ । २० ॥

सप्तम्या अलुग्। समस्थः। भाषायां किम् । कृष्णोऽस्या खरेष्ठः॥

षष्ठ्या आक्रोशे ६ । ३ । २१ ॥

चौरस्य कुलम् । आक्रोशे किम् । ब्राह्मणकुलम् ॥

वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु ॥

वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतोहरः ॥

आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति च ॥

अमुष्यापत्यमामुष्यायणः । नडादित्वात्फक् । अमुष्य पुत्रस्य भाव आमुष्यपुत्रिका । मनोज्ञादित्वाद्वुञ् । एवमामुष्यकुलिका ॥

देवानां प्रिय इति च मूर्खे ॥

अन्यत्र देवप्रियः ॥

शेपपुच्छलांगूलेषु शुनः ❀ ॥

शुनःशेपः। शुनःपुच्छः। शुनोलांगूलः॥

दिवश्च दासे ❀ ॥

दिवोदासः॥

पुत्रेऽन्यतरस्याम् ६। ३। २२॥

षष्ठ्याः पुत्रे परेऽलुग्वा निन्दायाम्। दास्याः पुत्रः दासीपुत्रः। निन्दायां किम्। ब्राह्मणीपुत्रः॥

ऋतो विद्यायोनिसंबन्धेभ्यः ६। ३। २३॥

विद्यासंबंधयोनिसंबंधवाचिन ऋदन्तात्षष्ठ्या अलुक्। होतुरन्तेवासी होतुःपुत्रः। पितुरन्तेवासी पितुःपुत्रः॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्यस्तत्पूर्वोत्तरपदग्रहणम् ❀ ॥

नेह। होतृधनम्॥

विभाषा स्वसृपत्योः ६। ३। २४॥

ऋदन्तात्षष्ठ्या अलुग् वा स्वसृपत्योः परयोः॥

मातुःपितुभ्यामन्यतरस्याम् ८। ३। ८५॥

आभ्यां स्वसुः सस्य षो वा। समासे मातुःष्वसा मातुःस्वसा। पितुःष्वसा पितुःस्वसा। लुक्पक्षे तु॥

मातृपितृभ्यां स्वसा ८। ३। ८४॥

आभ्यां परस्य स्वसुः सस्य षः समासे। मातृष्वसा। पितृष्वसा। असमासे तु मातुः स्वसा। पितुः स्वसा। इत्यलुक्समासाः॥

घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषु ङ्योऽनेकाचो ह्रस्वः ६। ३। ४३॥

भाषितपुंस्काद्यो ङी तदन्तस्यानेकाचो ह्रस्वः। घरूपकल्पप्प्रत्ययेषु परेषु चेलडादिषु चोत्तरपदेषु। ब्राह्मणितरा। ब्राह्मणितमा। ब्राह्मणिरूपा। ब्राह्मणिकल्पा। ब्राह्मणिचेली। ब्राह्मणिब्रुवा।

ब्राह्मणिगोत्रेत्यादि । ब्रूञः पचाद्यचि वच्यादेशगुणयोरभावोऽपि निपात्यते । चेलडादीनि वृत्तिविषये कुत्सनवाचीनि तैः कुत्सितानि कुत्सनैः इति समासः । ङ्यः किम् । दत्तातरा । भाषितपुंस्कात् किम् । आमलकीतरा । कुवलीतरा ॥

नद्याः शेषस्यान्यतरस्याम् ६ । ३ । ४४ ॥

अङ्यन्तनद्या ङ्यन्तस्यैकाचश्च घादिषु ह्रस्वो वा । ब्रह्मबन्धुतरा ब्रह्मबंधूतरा । स्त्रितरा स्त्रीतरा । कृन्नद्या न । लक्ष्मीतरा ॥

उगितश्च ६ । ३ । ४५ ॥

उगितः परा या नदी तदन्तस्य घादिषु ह्रस्वो वा । विदुषितरा । ह्रस्वाभावपक्षे तु तसिलादिषु इति पुंवत् । विद्वत्तरा । वृत्त्यादिषु विदुषीतरा । इत्यप्युदाहृतं तन्निर्मूलम् ॥

उदकस्योदः संज्ञायाम् ६ । ३ । ५७ ॥

उदमेघः ॥

उत्तरपदस्य चेति वक्तव्यम् ॐ ॥

क्षीरोदः ॥

पेषं वासवाहनधिषु च ६ । ३ । ५८ ॥

उदपेषं पिनष्टि उदवासः । उदवाहनः । उदधिर्घटः । समुद्रे तु पूर्वेण सिद्धम् ॥

इति ११७ अंशाः ।

इको ह्रस्वोऽङ्यो गालवस्य ६ । ३ । ६१ ॥

इगन्तस्याङ्यन्तस्य ह्रस्वो वा उत्तरपदे । ग्रामणिपुत्रः ग्रामणीपुत्रः । इकः किम् । रमापतिः । अङ्यः इति किम् । गौरीपतिः । गालवग्रहणं पूजार्थम् । अन्यतरस्याम् इत्यनुवृत्तेः ॥

इयङुवङ्भाविनामव्ययानां च नेति वाच्यम् ॐ ॥

श्रीमदः । भ्रूभङ्गः । शुक्रीभावः ॥

अभ्रुकुंसादीनामिति वक्तव्यम् ❀ ॥

भ्रुकुंसः भ्रूकुंसः । भ्रुकुटिः भ्रूकुटिः । अकारोऽनेन विधीयत इति व्याख्यान्तरम् । भ्रकुंसः । भ्रकुटिः । भ्रुवा कुंसो भाषणं शोभा वा यस्य स स्त्रीवेषधारी नर्तकः । भ्रुवः कुटिः कौटिल्यम् ॥

ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम् ६ । ३ । ६३ ॥

रेवतिपुत्रः । अजक्षीरम् ॥

त्वे च ६ । ३ । ६४ ॥

त्वप्रत्यये ङ्यापोर्वा ह्रस्वः । अजत्वम् अजात्वम् । रोहिणित्वम् रोहिणीत्वम् ॥

इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु ❀ ॥

इष्टकादीनां तदन्तानां च पूर्वपदानां चितादिषु क्रमादुत्तरपदेषु ह्रस्वः स्यात् । इष्टकचितम् पक्वेष्टकचितम् । इषीकतूलम् मुञ्जेषीकतूलम् । मालभारी उत्पलमालभारी ॥

कारे सत्यागदस्य ६ । ३ । ७० ॥

मुम् । सत्यंकारः । अगदंकारः ॥

अस्तोश्चेति वक्तव्यम् ❀ ॥

अस्तुंकारः ॥

धेनोर्भव्यायाम् ❀ ॥

धेनुंभव्या ॥

लोकस्य पृणे ❀ ॥

लोकंपृणः । पृणः इति मूलविभुजादित्वात्कः ॥

इत्येऽनभ्याशस्य ❀ ॥

अनभ्याशमित्यः । दूरतः परिहर्तव्य इत्यर्थः ॥

भ्राष्ट्राग्न्योरिन्धे ❀ ॥

भ्राष्ट्रमिन्धः । अग्निमिन्धः ॥

गिलेऽगिलस्य ॥

तिमिंगिलः । अगिलस्य किम् । गिलगिलः ॥

गिलगिले च ॥

तिमिंगिलगिलः ॥

उष्णभद्रयोः करणे ॥

उष्णंकरणम् । भद्रंकरणम् ॥

रात्रेः कृति विभाषा ६ । ३ । ७२ ॥

रात्रिंचरः रात्रिचरः । रात्रिमटः राज्यटः । अखिदर्थमिदं सूत्रम् । खिति तु अरुर्द्विषत् इति नित्यमेव वक्ष्यते । रात्रिम्मन्यः ॥

समानस्य च्छन्दस्य मूर्धप्रभृत्युदर्केषु ६ । ३ । ८४ ॥

समानस्य सः उत्तरपदे नतु मूर्धादिषु । अनुभ्राता सगर्भ्यः । अनुसखा सयूथ्यः । योनः सनुत्यः । तत्र भव इत्यर्थे सगर्भसयूथसनुताद्यत् । अमूर्धादिषु किम् । समानमूर्धा । समानप्रभृतयः । समानोदर्काः । समानस्य इति योगो विभज्यते । तेन सपक्षः साधर्म्यं सजातीयमित्यादि सिद्धमिति काशिका । अथवा सहशब्दः सदृशवचनोऽस्ति । सदृशः सख्या ससखीति यथा । तेनायमस्पदविग्रहो बहुव्रीहिः । समानः पक्षोऽस्येत्यादि ॥

ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु ६ । ३ । ८५ ॥

एषु द्वादशसूत्तरपदेषु समानस्य सः । सज्योतिः । सजनपद इत्यादि ॥

चरणे ब्रह्मचारिणि ६ । ३ । ८६ ॥

ब्रह्मचारिण्युत्तरपदे समानस्य सः चरणे समानत्वेन गम्यमाने । चरणं शाखा ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी । समानः सः सब्रह्मचारी ॥

तीर्थे ये ६ । ३ । ८७ ॥

तीर्थ उत्तरपदे यादौ प्रत्यये विवक्षिते समानस्य सः । सतीर्थ्यः एकगुरुकः । समानतीर्थेवासी इति यत्प्रत्ययः ॥

विभाषोदरे ६ । ३ । ८८ ॥

यादौ प्रत्यये विवक्षित इत्येव । सोदर्यः समानोदर्यः ॥

दृग्दृशवतुषु ६ । ३ । ८९ ॥

सदृक् सदृशः ॥

दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥

सदृक्षः । वतुरुत्तरार्थः ॥

इदंकिमोरीश्की ६ । ३ । ९० ॥

दृग्दृशवतुषु इदम ईश् किमः की । ईदृक् ईदृशः । कीदृक् कीदृशः । वतूदाहरणं वक्ष्यते ॥

दृक्षे चेति वक्तव्यम् ॥

ईदृक्षः । कीदृक्षः । आसर्वनाम्नः दृक्षे च । तादृक् तादृशः तावान् तादृक्षः । दीर्घः मत्वोत्वे । अमूदृशः अमूदृक् अमूदृक्षः ॥

ज्योतिरायुषः स्तोमः ८ । ३ । ८३ ॥

आभ्या स्तोमस्य सस्य मूर्धन्यः समासे । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासे किम् । ज्योतिषः स्तोमः ॥

सुषामादिषु च ८ । ३ । ९८ ॥

सस्य मूर्धन्यः । शोभनं साम यस्य सुषामा । सुषन्धिः ॥

एतिसंज्ञायामगात् ८ । ३ । ९९ ॥

सस्य मूर्द्धन्यः। हरिषेणः । एति किम् । हरिसक्थम् । संज्ञाया किम् । पृथुसेनः । अगकारात्किम् । विष्वक्सेनः । इण्कोरित्येव । सर्वसेनः ॥

नक्षत्राद्वा ८ । ३ । १०० ॥

एतिसस्य संज्ञायामगकारान्मूर्द्धन्यो वा । रोहिणीषेणः । रोहिणीसेनः । गकारात्तु शतभिषक्सेनः । आकृतिगणोऽयम् ॥

अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु ६ । ३ । ९९ ॥

अन्यशब्दस्य दुगागमः आशीरादिषु परेषु । अन्यदाशीः । अन्यदाशा । अन्यदास्था । अन्यदास्थितः । अन्यदुत्सुकः । अन्यदूतिः । अन्यद्रागः । अन्यदीयः । अषष्ठी इत्यादि किम् । अन्यस्यान्येन वाशीरन्याशीः । कारके छे च नायं निषेधः । अन्यस्य कारकोऽन्यत्कारकः । अन्यस्यायमन्यदीयः । गहादेराकृतिगणात्वाच्छः ॥

अर्थे विभाषा ६ । ३ । १०० ॥

अन्यदर्थः अन्यार्थः ॥

इति ११८ अंशाः ।

कोः कत्तत्पुरुषेऽचि ६ । ३ । १०१ ॥

अजादावुत्तरपदे । कुत्सितोऽश्वः कदश्वः । कदन्नम् । तत्पुरुषे किम् । कूष्ट्री राजा ॥

त्रौ च ॥

कुत्सितास्त्रयः कत्रयः ॥

रथवदयोश्च ६ । ३ । १०२ ॥

कद्रथः । कद्वदः ॥

तृणे च जातौ ६ । ३ । १०३ ॥

कत्तृणम् ॥

कापथ्यक्षयोः ६ । ३ । १०४ ॥

कापथम् । काक्षः । अक्षशब्देन तत्पुरुषः । अक्षिशब्देन बहुव्रीहिर्वा ॥

ईषदर्थे ६ । ३ । १०५ ॥

ईषज्जलं काजलम् । अजादावपि परत्वात्कादेशः । काम्लः ॥

विभाषा पुरुषे ६ । ३ । १०६ ॥

कापुरुषः । कुपुरुषः । अप्राप्तविभाषेयम् । ईषदर्थे हि परत्वात्प्रतिषेधान्नित्यमेव । ईषत्पुरुषः कापुरुषः ॥

कवं चोष्णे ६ । ३ । १०७ ॥

उष्णशब्द उत्तरपदे कवं का च वा । कवोष्णम् । कोष्णम् । कदुष्णम् ॥

पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् ६ । ३ । १०९ ॥

पृषोदरप्रकाराणि शिष्टैर्यथोच्चारितानि तथैव साधूनि । पृषदुदरं पृषोदरम् । तलोपः । वारिवाहको बलाहकः । पूर्वपदस्य वः । उत्तरपदादेश्च लत्वम् । भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् । गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात् पृषोदरम् ॥ दिक्शब्देभ्यस्तीरस्य तारभावो वा । दक्षिणतारम् दक्षिणतीरम् । उत्तरतारम् उत्तरतीरम्॥

दुरोदाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वं च ॥

दुःखेन दाश्यते दूडाशः । दुःखेन नाश्यते दूणाशः । दुःखेन दभ्यते दूडभः । खल्त्रिभ्यः दंभेर्नलोपो निपात्यते । दुःखेन ध्यायतीति दूढ्यः । आतश्च इति कः । भ्रुवन्तोऽस्यां सीदन्तीति वृसी । भ्रुवच्छब्दस्य वृ आदेशः । सदेरधिकरणे डट् । आकृतिगणोऽयम् ॥

नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ ६।३।११६॥

क्विबन्तेषु परेषु पूर्वपदस्य दीर्घः । उपानत् । नीवृत् । प्रावृट् । मर्मावित् । नीरुक् । अभीरुक् । ऋतीषट् । परीतत् । क्वौ इति किम् । परिणहनम् । विभाषा पुरुषे इत्यतो मण्डूकप्लुत्या विभाषा अनुवर्तते । सा च व्यवस्थिता । तेन गतिकारकयोरेव नेह । पटुरुक् । तिग्मरुक् ॥

वले ६ । ३ । ११८ ॥

वलप्रत्यये परे दीर्घः संज्ञायाम् । कृषीवलः ॥

मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ६ । ३ । ११९ ॥

अमरावती । अनजिरादीनां किम् । अजिरवती । बह्वचः किम् । व्रीहिमती । संज्ञायाम् इत्येव नेह । वलयवती ॥

शरादीनां च ६ । ३ । १२० ॥

शरावती ॥

उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् ६ । ३ । १२२ ॥

उपसर्गस्य बहुलं दीर्घः घञन्ते परे नतु मनुष्ये । परीपाकः परिपाकः । अमनुष्ये किम् । निषादः ॥

इकः काशे ६ । ३ । १२३ ॥

इगन्तस्योपसर्गस्यैव दीर्घः काशे । वीकाशः । नीकाशः । इकः किम् । प्रकाशः ॥

अष्टनः संज्ञायाम् ६ । ३ । १२५ ॥

उत्तरपदे दीर्घः । अष्टापदम् । संज्ञायां किम् । अष्टपुत्रः ॥

नरे संज्ञायाम् ६ । ३ । १२९ ॥

विश्वानरः ॥

मित्रे चर्षौ ६ । ३ । १३० ॥

विश्वामित्रः । ऋषौ किम् । विश्वमित्रो माणवकः ॥

पानं देशे ८ । ४ । ९ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य पानस्य नस्य णत्वं देशे गम्ये । क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः । सुरापाणाः प्राच्याः । पीयत इति पानम् । कर्मणि ल्युट् ॥

वा भावकरणयोः ८ । ४ । १० ॥

पानस्य इत्येव । क्षीरपानम् क्षीरपाणम् ॥

गिरिनद्यादीनां वा ॥

गिरिनदी गिरीणदी । चक्रनितम्बा चक्रणितम्बा ॥

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ८ । ४ । ११ ॥

पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य एषु स्थितस्य नस्य णो वा । प्रातिपदिकान्ते–माषवापिणौ । नुमि–व्रीहिवापाणि । विभक्तौ–माषवापेण । पक्षे माषवापिनावित्यादि । उत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तदन्तस्यैव णत्वं नेह । गर्गाणां भगिनी गर्गभगिनी । अत एव नुम्ग्रहणं कृतम् । अङ्गस्य नुम्विधानात्तद्भक्तो हि नुम् न तूत्तरपदस्य । किं च प्रहिण्वन् इत्यादौ हिवेर्नुमो णत्वार्थमपि नुम्ग्रहणम् । प्रेन्वनम् इत्यादौ तु क्षुभ्नादित्वान्न ॥

युवादेर्न ॥

रम्ययूना । परिपक्वानि । एकाजुत्तरपदे णः । नित्यम् इत्युक्तम् । वृत्रहणौ । हरिं मानयतीति हरिमाणी । नुमि–क्षीरपाणि । विभक्तौ–क्षीरपेण रम्यविणा ॥

कुमति च ८ । ४ । १३ ॥

कवर्गवत्युत्तरपदे प्राग्वत् । हरिकामिणौ । हरिकामाणि । हरिकामेण ॥

पदव्यवायेऽपि ८ । ४ । ३८ ॥

पदेन व्यवधानेऽपि णत्वं न । माषकुम्भवापेन । चतुरङ्गयोगेन ॥

अतद्धित इति वाच्यम् ॥

आर्द्रगोमयेण । शुष्कगोमयेण ॥

कुस्तुम्बुरूणि जातिः ६ । १ । १४३ ॥

अत्र सुण् निपात्यते । कुस्तुम्बुरुर्धान्याकम् । क्लीबत्वमतन्त्रम् । जाति किम् । कुतुम्बुरूणि । कुत्सितानि तिन्दुकीफलानीत्यर्थ ॥

अपरस्पराः क्रियासातत्ये ६ । १ । १४४ ॥

सुण् निपात्यते । अपरस्परा सार्थाः गच्छन्ति । सततमविच्छे-

टेन गच्छन्तीत्यर्थः। क्रिया इति किम्। अपरपरा गच्छंति। अपरे च परे च सकृदेव गच्छन्तीत्यर्थः॥

गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु ६।१।१४५॥

सुट् सस्य षत्वं च निपात्यते गावः पद्यन्तेऽस्मिन्देशे स गोभिः सेवितो गोष्पदः। असेविते अगोष्पदान्यरण्यानि। प्रमाणे। गोष्पदमात्रं क्षेत्रम्। सेवित इत्यादि किम्। गोः पदं गोपदम्॥

आस्पदं प्रतिष्ठायाम् ६।१।१४६॥

आत्मयापनायस्थाने सुट् निपात्यते। आस्पदम्। प्र इति किम्। आपदापदम्॥

आश्चर्यमनित्ये ६।१।१४७॥

अद्भुते सुट्। आश्चर्यं यदि स भुञ्जीत। अनित्ये किम्। आचर्यं कर्म शोभनम्॥

वर्चस्केऽवस्करः ६।१।१४८॥

कुत्सितं वर्चो वर्चस्कमन्नमलम्। तस्मिन् सुट्। अवकीर्यत इत्यवस्करः। वर्चस्के किम्। अवकरः॥

अपस्करो रथाङ्गम् ६।१।१४९॥

अपकरोऽन्यः॥

विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा ६।१।१५०॥

पक्षे विकिरः। वावचनेनैव सुड्विकल्पे सिद्धे विकिरग्रहणं तस्यापि शकुनेरन्यत्र प्रयोगो मा भूदिति वृत्तिस्तच्च भाष्यविरोधात्॥

प्रतिष्कशश्च कशेः ६।१।१५२॥

कश गतिशासनयोः इत्यस्य प्रतिपूर्वस्य पचाद्यचि सुट् निपात्यते षत्वं च। सहायः पुरोयायी वा। प्रतिष्कश इत्युच्यते। कशेः किम्। प्रतिगतः कशां प्रतिकशोऽश्वः। यद्यपि कशेरेव कशा तथापि कशेरिति धातोर्ग्रहणमुपसर्गस्य प्रतेर्ग्रहणार्थम्। तेन धात्वन्तरोपसर्गान्न॥

प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी ६ । १ । १५३ ॥

हरिश्चन्द्रग्रहणममन्त्रार्थम् । ऋषी इति किम् । प्रकण्वो देशः । हरिचन्द्रो माणवकः ॥

मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः ६ । १ । १५४॥

मकरशब्दोऽव्युत्पन्नस्तस्य सुडिनिश्च निपात्यते । वेणु इति किम् । मकरो ग्राहः । मकरी समुद्रः ॥

कारस्करो वृक्षः ६ । १ । १५६ ॥

कारं करोतीति कारस्करो वृक्षः । अन्यत्र कारकरः । केचित्तु कस्कादिष्विदं पठन्ति न सूत्रेषु ॥

पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम् ६ । १ । १५७ ॥

एतानि ससुदकानि निपात्यंते नाम्नि । पारस्करः किष्किन्धा ॥

तद्बृहतोः करपत्योश्चौरदेवतयोः सुट् तलोपश्च ※ ॥

तात्पूर्वं चर्त्वेन दकारो बोध्यः । तद्बृहतोर्दकारतकारौ लुप्येते । करपत्योस्तु सुट् चौरदेवतयोः इति समुदायोपाधिः । तस्करः । बृहस्पतिः ॥

प्रायस्य चित्तिचित्तयोः ॥

प्रायश्चित्तिः । प्रायश्चित्तम् । वनस्पतिरित्यादि । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति समासाश्रया विधयः ॥

इति ११९ अंशाः ।

सर्वस्य द्वे ८ । १ । १ ॥

इत्यधिकृत्य ॥

नित्यवीप्सयोः ८ । १ । ४ ॥

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्विर्वचनम् । आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च । पचति पचति । भुक्त्वा भुक्त्वा । वीप्सायाम् । वृक्षं वृक्षं सिञ्चति । ग्रामो ग्रामो रमणीयः ॥

परेर्वर्जने ८ । १ । ५ ॥

परि परि वङ्गेभ्यो वृष्टो देवः । वङ्गान्परिहृत्येत्यर्थः ॥

परेर्वर्जने वावचनम् ॥

परि वङ्गेभ्यः ॥

उपर्यध्यधसः सामीप्ये ८ । १ । ७ ॥

उपर्युपरि ग्रामम् । ग्रामस्योपरिष्टात्समीपे देश इत्यर्थः । अध्यधि सुखम् । सुखस्योपरिष्टात् समीपकाले दुःखमित्यर्थः । अधोऽधो लोकम् लोकस्याधस्तात्समीपे देश इत्यर्थः ॥

वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु ८ । १ । ८ ॥

असूयायाम्–सुन्दर सुन्दर वृथा ते सौन्दर्यम् । संमतौ–देव देव वन्द्योऽसि । कोपे–दुर्विनीत दुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि । कुत्सने–धानुष्क धानुष्क वृथा ते धनुः । भर्त्सने–चोर चोर घातयिष्यामि त्वाम् ॥

एकं बहुव्रीहिवत् ८ । १ । ९ ॥

द्विरुक्त एकशब्दो बहुव्रीहिवत् । तेन सुब्लोपपुंवद्भावौ एकैकमक्षरम् । इह द्वयोरपि सुपोर्लुकि कृते बहुव्रीहिवद्भावादेव प्रातिपदिकत्वात् समुदायात्सुप् । एकैकयाहुत्या इह पूर्वभागे पुंवद्भावाद्विग्रहे विशेषः । न बहुव्रीहौ इत्यत्र पुनर्बहुव्रीहिग्रहणं मुख्यबहुव्रीहिलाभार्थम् । तेनातिदिष्टबहुव्रीहौ सर्वनामतास्त्येवेति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु भाष्यमते प्रत्याख्यातमेतत् । सूत्रमतेऽपि बहुव्रीह्यर्थेऽलौकिके विग्रहे निषेधकं ननु बहुव्रीहावितीहातिदेशशङ्कैव नास्ति । एकैकस्मै देहि ॥

आबाधे च ८ । १ । १० ॥

पीडाया द्योत्यायां द्वे स्तो बहुव्रीहिवच्च । गतगतः विरहात्पीड्यमानस्येयमुक्तिः । बहुव्रीहिवद्भावात्सुब्लुक् । गतगता । इह पुंवद्भावः ॥

कर्मधारयवदुत्तरेषु ८ । १ । ११ ॥

इत उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत् कार्यम् । प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि ॥

प्रकारे गुणवचनस्य ८ । १ । १२ ॥

सादृश्ये द्योत्ये गुणवचनस्य द्वे स्तस्तच कर्मधारयवत । कर्मधारयवदुत्तरेषु इत्यधिकारात् तेन पूर्वभागस्य पुंवद्भावः । समासस्य इत्यन्तोदात्तत्वं च । पटुपट्वी पटुपटुः । पटुसदृशः । ईषत्पटुरिति यावत् । गुणोपसर्जनद्रव्यवाचिनः केवलगुणवाचिनश्चेह गृह्यन्ते । शुक्लशुक्लं रूपम् । शुक्लशुक्लः पटः ॥

आनुपूर्व्ये द्वे वाच्ये ॥ ॥

मूले मूले स्थूलः । संभ्रमेण प्रवृत्तौ यथेष्टमनेकधाप्रयोगो न्यायसिद्धः । सर्प सर्प बुध्यस्व बुध्यस्व । सर्प सर्प सर्प बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व ॥

क्रियासमभिहारे च ॥ ॥

लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति । नित्यवीप्सयोः इति सिद्धे भृशार्थे द्वित्वार्थमिदम् । पौनःपुन्येऽपि लोटा सह समुच्चित्य द्योतकतां लब्धुं वा ॥

कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये । समासवच्च बहुलम् ॥ ॥

बहुलग्रहणादन्यपरयोर्न समासवत् । इतरशब्दस्य तु नित्यम् ॥

असमासवद्भावे पूर्वपदस्थस्य सुपः सुर्वक्तव्यः ॥ ॥

अन्योन्यं विप्रा नमन्ति । अन्योन्यौ । अन्योन्यान् । अन्योऽन्येन कृतम् । अन्योन्यस्मै दत्तमित्यादि । अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्त इति माघः । एवं परस्परम् । अत्र कस्कादित्वाद्विसर्गस्य सः । इतरेतरम् । इतरेतरेणेत्यादि ॥

स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः ॥ ॥

अन्योन्याम् । अन्योन्यम् । परस्पराम् । परस्परम् । इतरेतराम् । इतरेतरं वा । इमे ब्राह्मण्यौ कुले वा भोजयतः । अत्र केचित् । आमादेशो द्वितीयाया एव भाष्यादौ तथैवोदाहृतत्वात् तेन स्त्रीनपुंसकयोरपि तृतीयादिषु पुंवदेव रूपमित्याहुः । अन्ये तूदाहरणस्य दिङ्मात्रत्वात्सर्वविभक्तीनामादेशमाहुः । दलद्वये टाबभावः । क्लीबे चाद्ड्डिरहः स्वमोः समासे सोरलुक् चेति सिद्धं बाहुलकाश्रयम् । तथाहि । अन्योन्यं परस्परमित्यत्र दलद्वयेऽपि टाप् प्राप्तः नच सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे इति पुंवद्भावः । अन्यपरयोरसमासवद्भावात् । नच द्विर्वचनमेव वृत्तिः । यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा इत्यादावतिप्रसङ्गात् । अन्योन्यमितरेतरम् इत्यत्र च अद्ड्डतरादिभ्यः इत्यद्ड् प्राप्तः । अन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम् । अन्योन्याश्रयः परस्पराक्षिसादृश्यम् । अदृष्टपरस्परैः इत्यादौ सोर्लुक्च प्राप्तः । सर्वं बाहुलकबलेन समाधेयम् । प्रकृतवार्तिकभाष्योदाहरणं स्त्रियाम् सूत्रे अन्योन्यसंश्रयम् त्वेतादिति भाष्यं चात्र प्रमाणमिति ॥

अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् ८ । १ । १३ ॥

प्रियप्रियेण ददाति प्रियेण वा । सुखसुखेन ददाति सुखेन वा । द्विर्वचने कर्मधारयवद्भावात्सुपि लुकि तदेव वचनम् । अतिप्रियमपि वस्त्वनायासेन ददातीत्यर्थः ॥

यथास्वे यथायथम् ८ । १ । १४ ॥

यथास्वम् इति वीप्सायामव्ययीभावः । योऽयमात्मा यदात्मीयं तद्यथास्वम् । तस्मिन् यथाशब्दस्य द्वे क्लीबत्वं च निपात्यते । यथायथं ज्ञाता । यथास्वभावमित्यर्थः । यथात्मीयमिति वा ॥

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु ८ । १ । १५ ॥

द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्याम्भावोऽत्वं चोत्तरपदस्य नपुंसकत्वं च निपात्यते एष्वर्थेषु । तत्र रहस्यं द्वन्द्वशब्दस्य वाच्यम् । इतरे विषयभूताः द्वन्द्वं मन्त्रयते । रहस्यमित्यर्थः । मर्यादास्थित्य-

नातिक्रमः । आचतुरं ह्रीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते । माता पुत्रेण मिथुनं गच्छति । पौत्रेण प्रपौत्रेणापीति मर्यादार्थः । व्युत्क्रमणं पृथगवस्थानं द्वंद्वं व्युत्क्रान्ताद्विवर्गसंबन्धेन पृथगवस्थिताः । द्वन्द्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति । द्वंद्वं संकर्षणवासुदेवौ अभिव्यक्तौ । साहचर्येणेत्यर्थः । योगविभागादन्यत्रापि द्वन्द्व इष्यते । इति द्विरुक्तिप्रक्रिया ॥

इति १२० अंशाः ।

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।

इति द्वितीयखण्डस्य प्रथमो भागः ।

अथ द्वितीयो भागः । तत्रादौ बहूपकारकत्वात्पाणिन्यष्टकपठिताः परिभाषा लिख्यन्ते । काश्चित्तु परैः परिभाषात्वेनानुल्लिखिता अपि तत्साम्यं मत्वामंदबुद्धिना मया तासु न्यस्यन्ते । तत्र, उरण् रपरः। एच् इग्घ्रस्वादेशे । अलोन्त्यस्य । आदेः परस्य । ङिच्च । अनेकाल्शित्सर्वस्य । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । न लुमताङ्गस्य । पूर्वत्रासिद्धम् । मिदचोऽन्त्यात्परः । एताः स्वस्वस्थलेषु व्याख्याताः । अथ पूर्वत्र व्याख्याता अपि विशेषप्रदर्शनार्थं लिख्यन्ते । स्थानेऽन्तरतमः । तेन सुध्युपास्य इत्यत्र इकारस्य यकार एव सोऽपि प्राप्यमाणानां मध्य एव । तेन तत्रानुनासिको न । तथा जलौघ इत्यत्र त्रिमात्र औकारो न । स्थानार्थगुणप्रमाणैरान्तर्यं चतुर्द्धा । स्थानतः सुध्युपास्यः इत्यादौ । अर्थतः तृज्वत् क्रोष्टुः इत्यत्र । क्रोष्टुशब्दस्य क्रोष्टृ एव नतु तृजन्तोऽपि वक्रादिः।गुणतः प्रयत्नादेः। झयो ह इत्यत्र प्रयत्नसाम्यात् हस्य वर्गचतुर्थः । विद्वान् लिखतीत्यत्रानुनासिकनस्य 'तादृशो लः । प्रमाणतः अदसो मेरित्यत्र ह्रस्वव्यञ्जनयोर्ह्रस्वः दीर्घस्य दीर्घः । स्थानत आन्तर्यं बलीयः। तेन चेता इत्यत्र गुणे कार्ये स्थानसाम्यात् इकारस्यैकार एव नतु प्रमाणतोऽकारः । तमब्ग्रहणं किम् । वाग्घरिरित्यत्र महाप्राणमात्रसाम्येन द्वितीयो न नादमात्रसाम्येन तृतीयश्च न किन्तूभयसा-

म्येन चतुर्थ एव । यथासंख्यमनुदेशः समानाम् । तेन एचोऽयवा-याव इति चतुर्णामेचां क्रमेणायादयः । अन्यथा एचां प्रत्येकं पर्यायेण ते स्युः । अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः । तेन इको यणचीत्यादौ इग्भिरज्भिश्च स्वस्वसवर्णा दीर्घा अपि संगृह्यन्तेऽतः सुध्युपास्यः सुध्याशय इत्यादावपि यण् । अविधीयमानः किम् । अस्मै इत्यादौ त्यदादीनाम इत्यनेन अनुनासिकोऽकारो यथा न स्यात् । तपरस्तत्कालस्य । तेन रमायै इत्यत्र अतो गुण इत्यनेन याडाकारस्य पररूपं न । गङ्गोदकमित्यत्र अदेङ्गुण इत्यत्रातग्रह-णादाद्गुण इति त्रिमात्र ओकारो न । द्विर्वचनेऽचि । ईर्ष्यधातौ व्याख्यातम् । परे तु द्वित्वनिमित्तेऽचि अजादेशः स्थानिरूपमाप-द्यते द्वित्व एव कर्त्तव्ये इति व्याचक्षते । तत्र यणादेशे कृतेऽपि पुनः कृभावो भवति ततो द्वित्वे कृते तु पुनर्यणादेशरूपमवतिष्ठते इति तुल्यं फलम् ॥

असिद्धवदत्राभात् ॥

तेन एधि शाधीत्यादौ एत्वशाभावयोः कृतयोरपि तयोरसिद्ध-त्वेन झलन्तत्वात् हुझल्भ्य इति हेर्धिः । समानाश्रये किम् । वपुपः । अत्र पाधातोः वसोर्वत्संप्रसारणं तदातो लोप इटि च इत्यालोपे कर्त्तव्ये नासिद्धम् । आलोपो हि वसौ सम्प्रसारणं तु विभक्ताविति व्याश्रयत्वात् ॥

आद्यन्तौ टकितौ ॥

ङमो ह्रस्वादित्यत्र व्याख्यातम् । अवयवत्वं चात्र समीपे सदृशे वा उपचारात् ॥

स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥

ङेर्य इत्यत्र व्याख्यातम् । तथा सुध्युपास्य इत्यत्र यकारस्य स्थानिवद्भावेनाऽच्त्वमाश्रित्याऽनचि चेति द्वित्वनिषेधो न शङ्क्यो-ऽल्विधित्वात् । अल्विधिश्चतुर्द्धा । तत्राला विधौ यथा । व्यूढोर-स्केन । अत्र सकारस्य स्थानिवत्त्वेन विसर्गवदत्त्वमाश्रित्याड्व्य-

वाय इति णत्वं न । अलः परस्य यथाद्यौः पन्थाः इह हल्ङ्या-दिलोपो न । अलो विधौ यथा । द्युकामः । इह लोपो व्योर्वलीति लोपो न । न चोत्त्वविधिसामर्थ्यम् । द्युयानमित्यादौ वस्य सावकाशत्वात् । अलि विधौ यथा । यजेः क्तः । क इष्टः । इह हशि चेत्युत्वं न ॥

आकडारादेका संज्ञा ॥

हलन्तेषु राजन्शब्दे व्याख्यातम् । आकडारीयप्रकरणादन्यत्र तु यथोचितमनेकसंज्ञानां समावेशोऽपि भवति । यथा सर्वशब्दे सर्वनामप्रातिपदिकसंज्ञयोः तथा तव्यदादौ कृत्कृत्यप्रत्ययसंज्ञानां समावेशः ॥

अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥

तत्र पूर्वविधावित्यत्र द्विधा समासः । पूर्वस्य विधाविति समासे कथयतीत्यत्र न वृद्धिरिति व्याख्यातम् । पूर्वस्माद्विधाविति समासे तन्वन्ति तन्वते । इह यणादेशस्य स्थानिवद्भावान्नेट् । अत्र हि तनित्यङ्गं निमित्तं तच्च स्थानिभूतादुकारात्पूर्वमिति ॥

न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ॥

तेन राजाश्व इत्यादौ सवर्णे दीर्घे कर्त्तव्ये नलोपो सिद्धो न भवति।सुबाश्रितो विधिः सुब्विधिः । तेन राजभ्याम् राजभ्यः राजभिरित्यात्रात्वमेत्वमैस्त्वं च न । स्वरविधौ पञ्चार्मम् । दिक्संख्ये संज्ञायामिति समासे नलोपे कृते अवर्णान्तं पूर्वपदं जातमित्यर्मे चावर्णे द्यच् त्र्यच् इति पूर्वपदाद्युदात्तत्वं प्राप्तं नलोपस्यासिद्धत्वान्न भवति । संज्ञाविधौ पञ्चनार्य इत्यादौ नलोपे कृतेऽपि ष्णान्ता षडिति षट्संज्ञा प्रति नलोपस्यासिद्धत्वान्न षट् । स्वस्रादिभ्य इति टाप् न भवति । कृति तुग्विधौ तु वृत्रहभ्याम् इत्यत्र ब्रह्मभ्रूणेति विहितं क्विपमाश्रित्य ह्रस्वस्येति तुङ् नाकृतीति किम् । वृत्रहच्छत्रामित्यादौ छे चेति तुक् स्यादेव ॥

इति १२१ अंशाः ।

न मुने ॥

तेन अमुना इत्यत्र मुभावस्य सिद्धत्वेन घित्वात् आङो नाभावः सिद्ध्यति । कृते च नाभावे मुभावः सिद्ध एव । तेन सुपि चेति दीर्घोऽपि न भवति । परे तु कृते इति न व्याख्येयम् । तत्र हि सन्निपातपरिभाषया दीर्घत्ववारणसंभवादित्याहुः ॥

वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥

तेन ऋहलोर्ण्यत् इत्यादयोऽपवादाः नव्यदादीनां विकल्पेन बाधकाः । अतस्तव्यदादयोऽपि पक्षे स्युरेव । कार्यम् । कर्तव्यम् । करणीयम् । असरूपः किम् । पोरदुपधादित्यादयो ण्यदादीनां नित्यबाधका एव । लभ्यम् । शप्यम् । अस्त्रिया किम् । भृजा इत्यादौ षिद्भिदादिभ्योऽङित्यादिभिः क्तिन्बाध्यत एव ॥

स्वंरूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा १ । १ । ६८ ॥

शब्दस्य स्वं रूपं संज्ञि शब्दशास्त्रे या संज्ञा ता विना । तेन अग्नेर्ढक् इत्यग्निशब्दादेव ढक् न वह्न्यादिशब्दात् । अशब्दसंज्ञेति किम् । उपसर्गे घोः किरिति दाधाभ्य एव किः यथा स्यात् । घुङ् शब्द इत्यतो मा भूत् ॥

षष्ठी स्थानेयोगा १ । १ । ४९ ॥

अनिर्द्धारितसंबन्धविशेषा षष्ठी स्थानेयोगा बोध्या । स्थानं च प्रसङ्गः । तथा च इको यणचीत्यादौ षष्ठीप्रसङ्गार्थका । तथा च अच्परकस्येक उच्चारणप्रसङ्गे यणुच्चार्य इत्यादिरर्थः ॥

येन विधिस्तदन्तस्य १ । १ । ७२ ॥

विशेषणं तदन्तस्य संज्ञा स्वस्य च रूपस्य । तेन एरच् इत्यनेन इकारान्तादिकाररूपाच्च धातोरच् । तेन, चयः । जयः । अयः॥

समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः ॥

तेन द्वितीयाश्रितेत्यनेन कृष्णाश्रित इत्यत्रैव समासो नतु कृष्णमुपाश्रित इत्यत्र नडादिभ्य फक् इति । नडस्यापत्यं नाडायन इत्यत्रैव स्यान्नतु सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिरित्यत्रेति ॥

उगिद्वर्णग्रहणवर्जम् ॥

महान्तमतिक्रान्ता अतिमहती । महच्छब्दस्य गौरादित्वेऽप्युपसर्जने षिद्गौरेति ङीषोऽप्रवृत्ते रुगितश्चेत्युगिदन्तान् ङीप् । एवं वर्णग्रहणे । अत इञ् । दाक्षिः ॥

इको गुणवृद्धी १ । १ । ३ ॥

गुणवृद्धिशब्दाभ्या यत्र गुणवृद्धी विधीयेते तत्रेक इति षष्ठ्यन्त पदमुपतिष्ठते । यत्र साक्षात्स्थानी न निर्दिष्टः सार्वधातुकार्धधातुकयोः सिचि वृद्धिरित्यादौ तत्रैवेयं परिभाषा प्रवर्तते न त्वचोञ्णितीत्यादौ स्थानिनिर्देशात् । गुणवृद्धिशब्दाभ्यामिति किम् । त्यदादीनामः । इमे । दिव औत् । द्यौः । विधीयत इति किम् । यत्र त्वनुवादो वृद्धिर्यस्याचामादिरित्यादौ तत्रेक इति नोपतिष्ठते । अनुवादे परिभाषाणामनुपस्थितेरिति भावः ॥

अचश्च १ । २ । २८ ॥

ह्रस्वदीर्घप्लुतशब्दैर्यत्राज्विधीयते तत्राच इति षष्ठ्यन्तं पदमुपतिष्ठते । तेन ह्रस्वो नपुंसके इत्यादौ प्रातिपदिकान्तस्य अचो ह्रस्वः । श्रीप कुलम् । नतु सुवाग् ब्राह्मणकुलम् इत्यादौ । ह्रस्वेत्यादि किम् । दिव उत् । द्युभ्याम् ॥

तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य १ । १ । ६६ ॥

सप्तमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्य वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् । यथा दध्युदकम् । अत्रोकारस्य मा भूत् । अव्यवहितस्यैवेति किम् । अग्निचिदत्र । सोमसुदत्र ॥

तस्मादित्युत्तरस्य १ । १ । ६७ ॥

पञ्चमीनिर्देशेन क्रियमाण कार्य वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य परस्य ज्ञेयम् । तेन तिङ्ङतिङ इति निघात उत्तरस्यैव । अग्निमीडे । नेह । ईडे अग्निम् । अव्यवहितस्येति किम् । उत्संस्थान उत्संस्तम्भनमित्यादौ उदस्थेति पूर्वसवर्णो न प्रवर्तते ॥

स्वरितेनाधिकारः १ । ३ । ११ ॥

स्वरितत्वयुक्तं शब्दस्वरूपमधिकृतं बोध्यम् । प्रतिज्ञास्वरिताः पाणिनीयाः । कियद्दूरमधिकार इत्यत्र तु व्याख्यानमेव शरणम् । यद्वा स्वरिते दृष्टे सति नाधिकारः अधिकारो निवर्तते इत्यर्थः । कः स्वरितोऽधिकारार्थः कश्च तन्निवृत्त्यर्थ इत्यत्रापि व्याख्यानमेव शरणम् । यद्वा अधिकः कारोऽधिकारः । अधिकं कार्यं गौणेऽपि शास्त्रप्रवृत्तिरित्यर्थः । तथा च गौणमुख्यन्यायो यत्र नेष्यते अपादानाधिकरणादौ तत्र स्वरितः पाठ्यः किञ्च अधिकः कारः कृतिरियं यत्पूर्वः सन् परं बाधते । तथा च तुमर्थिरवज्वद्भावेभ्यो नुडित्यादि वक्ष्यमाणपूर्वविप्रतिषेधाः सर्वे संगृहीता भवन्ति । तत्र स्वरितपाठेनैव गतार्थत्वादित्यादि ॥

न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु १ । १ । ५८ ॥

पदस्य चरमावयवे द्विर्वचनादौ च कर्त्तव्ये परनिमित्तोऽजादेशो न स्थानिवत् । अचः परस्मिन्नित्यस्यायं निषेधः । पदान्ते—कानि सन्तीत्यत्र अस्तेरल्लोपस्याच्त्वमाश्रित्य यण् न । द्विर्वचने—सुद्द्युपास्यः । यस्य इत्वमाश्रित्यानचि चेति द्वित्वनिषेधो न । वरे—यायावरः । यातेर्यङन्ताद् यश्च यङ इति वरच् । अतो लोप. तस्य अचः परस्मिन्निति स्थानिवद्भावे प्राप्ते यलोपं प्रति स्थानिवद्भावनिषेधात् लोपो व्योरिति यलोपः । स च आतो लोप इटि चेत्याल्लोपे कर्त्तव्ये वरे लुप्तत्वात् न स्थानिवत् । यलोपे—यातिः । यातेर्यङन्तात् क्तिच् अतो लोपः । यलोपः अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वादातो लोपः स चाल्लोपः यलोपे कार्ये न स्थानिवत् । तेन पुनर्यलोपः । स्वरे—चिकीर्षकः । सनोऽतो लोपः लितीति ककारेकारस्योदात्तत्वे कर्त्तव्ये न स्थानिवत् । सवर्णानुस्वारयोः—शिण्ढि । श्नसोरल्लोपो न स्थानिवत् । दीर्घे—प्रतिदीव्ना जश्चि—सग्धिश्च मे अदनं ग्धिः । अदेः क्तिनि बहुलं छन्दसीति घस्लृ घसिभसोर्हलीत्युपधालोपः झलो

झलीति सलोपः । तकारस्य धत्वं घस्य झलां जशीति जश्त्वं तत्र कर्तव्ये उपधालोपो न स्थानिवत् । समानस्य छन्दसीति समानस्य सः । समाना ग्धिः सग्धिः । चारि–जक्षतुः । जक्षुः । घसेर्लिटि अतुस् उस् च गमहनेत्युपधालोपः। खरि चेति चर्त्वं प्रति न स्थानिवत् । भाष्ये तु पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवदित्यवष्टभ्य द्विर्वचनसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चरः प्रत्याख्याताः । तद्रीत्या तु सलोपे धत्वे च कर्तव्ये स्थानिवद्भावशङ्कैव नास्तीति ॥

इति १२२ अंशाः ।

विप्रतिषेधे परं कार्यम् १ । ४ । २ ॥

क्वचित्परस्परलब्धावकाशयोरेकत्र समावेशो विप्रतिषेधः स एव तुल्यबलविरोधस्तत्र परं कार्यं स्यात् । तेन वृक्षेभ्य इत्यत्र सुपि चेत्यतः परत्वाद्बहुवचने झल्येत् इत्येव भवति ॥

अन्तादिवच्च ६ । १ । ८५ ॥

योऽयमेकादेशः स पूर्वस्यान्तवत्परस्यादिवत् स्यात् । यथा ब्रह्मबन्धूरित्यत्र ब्रह्मबन्धुरिति प्रातिपदिकम् । ऊङ् प्रतिपादिकं तयोर्य एकादेशः स प्रातिपदिकस्यान्तवद् भवति । तेन ङ्याप्प्रातिपदिकादिति स्वादिविधिर्भवति । वृक्षावित्यत्र सुबौकारः असुबकारः तयोरेकादेशः सुप आदिवद् भवति । तेन सुबन्तत्वात्पदसंज्ञा वर्णाश्रयविधावन्तवद्भावो नेष्यते । तेन खट्वाभिरित्यत्रान्तवद्भावाददतो भिस ऐस् न भवति । एवं प्राच्छेति उपाच्छेतीत्यादौ पदान्तवद्भावेन रेफस्य न विसर्गः । उभयथर्क्षु इत्यादिनिर्देशाच्च ॥

समर्थः पदविधिः २ । १ । १ ॥

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः । सामर्थ्यं द्विधा । व्यपेक्षा एकार्थीभावश्च । तत्राकाङ्क्षादिवशात्परस्परसम्बन्धो व्यपेक्षा सैव वाक्ये । यथा राज्ञः पुरुषोऽश्वश्चेति । तत्र ह्यपेक्षायां सत्यां सन्निहितेन योग्येन च संबंधोऽभ्युपेयते । एकार्थीभावश्च राजपुरुषइत्यादि वृत्तावेवास च प्रक्रियादशायां पृथगर्थत्वेन प्रथम-

गृहीतार्थस्य विशिष्टैकार्थत्वरूपः स एवेह गृह्यते। पदग्रहणं किम्। वर्णविधौ समर्थपरिभाषा मा भूत्। तेन तिष्ठतु दध्यानय तक्र- मित्यत्र सामर्थ्याभावेऽपि यण् भवत्येव। समर्थ इति किम्। पश्यति कृष्णं श्रितो देवदत्तमित्यादौ कृष्णश्रित इति समासो न भवति। क्वचित्तु सापेक्षत्वेऽपि भाष्यादिप्रामाण्याद्वृत्तिरङ्गीक्रियते। किमोदनः शालीनाम्। केषां शालीनामोदन इत्यर्थः। सक्त्वाढक- मापणीयानाम्। आपणीयानां सक्तूनामाढकमित्यर्थः॥

न वेति विभाषा १।१।४४॥

निषेधविकल्पयोर्विभाषासंज्ञा। विभाषा श्वेरित्यादिषु प्रतिषेध- विकल्पावुपतिष्ठेते। तत्र प्रतिषेधेन समीकृते विषये पश्चाद्विकल्पः प्रवर्तते। शुशाव शिश्वायेत्यत्राप्राप्तौ विकल्पः। शिशुवतुः शिश्वि- यतुरित्यादौ तु वचि स्वपीति नित्यप्राप्ताविति विवेकः। अत्रेदं बोध्यम्। इतिशब्दः काकाक्षिन्यायेनोभाभ्यां सम्बध्यते। स च पदा- र्थविपर्यासकृत्। तेन निषेधो विकल्पश्च न वाशब्दार्थः संज्ञी वि- भाषाशब्दार्थो विकल्प' संज्ञा उभयत्र विभाषार्थं चेदं सूत्रम्। प्राप्तविभाषायामप्राप्तविभाषाया च नास्योपयोगः। प्राप्तविभाषायां भावांशस्य सिद्धत्वेन विभाषाश्रुत्या पक्षे भवतीति भावांशमनूद्य पक्षे न भवतीत्यभावांशमात्रकरणात्। अप्राप्तविभाषायां तु अभा- वांशस्य सिद्धत्वेन पक्षे न भवतीत्यभावांशमनूद्य पक्षे भवतीति भावांशमात्रकरणात्। विभाषा श्वेरित्युभयत्र विभाषायां तु यदि विधिमुखेन प्रवृत्तिस्तर्हि पित्स्वेव संप्रसारणविकल्पः स्यात्। कित्सु यजादित्वाद्वचिस्वपीति नित्यमेव स्यात्। अथ प्रतिषेधमुखेन प्रवृ- त्तिस्तर्हि कित्स्वेव प्रवृत्तिः स्यान्नतु पित्सु। परनित्यान्तरङ्गापवा- दानामुत्तरोत्तरं बलीयः। परात् नित्यं यथा, तुदादिभ्यः शः। तुदति। रुदादिभ्यः श्नम्। रुणद्धि। परमपि लघूपधगुणं बाधित्वा नित्यत्वात् शश्नमौ। तथा धिनवाव। धिनवाम। परमपि लोप- श्चास्यान्यतरस्या म्वोरित्युकारलोपं बाधित्वा नित्यत्वादाडुत्तम- स्येत्याट्। परादन्तरङ्गं यथा। उभये देवमनुष्याः। इह प्रथमचरमेति

परमपि विकल्पं बाधित्वा सर्वादीनीति सर्वनामसंज्ञाविभक्तिनिरपेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वात् । तथा स्रवतेर्णिश्रीति चङि द्वित्वे उपधागुणादन्तरङ्गत्वादुवङ् । असुस्रवत् । परादपवादो यथा । परमप्यनेकाल्शिति सर्वादेशं बाधित्वा ङिच्चेत्यन्तादेशः । दध्ना । दध्ने । अस्थिदधीत्यनङ् । नित्यादन्तरङ्गं यथा । ग्रामणिनी कुले । नित्यमपीकोचीति नुमं बाधित्वा ह्रस्वो नपुंसक इति ह्रस्वः कृते तु नुमि अनजन्तत्वात् ह्रस्वो न स्यात् । अन्तरङ्गादपवादो यथा । दैत्यारिः । श्रीशः । परमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा अन्तरङ्गत्वाद्गुणे यणि च प्राप्तेऽपवादत्वात्सवर्णदीर्घः । तथा उरुयौ । उरुयः । सुल्वौ । सुल्वः । इत्यत्रान्तरङ्गत्वादियङि उवङि च प्राप्तेऽपवादत्वादेरनेकाच इत्योः सुपीति च यण् । यद्यपवादोऽन्यत्र चरितार्थः तर्हि परान्तरङ्गाभ्यां बाध्यत एव । तथाहि ङिच्चेत्येतदनन्यार्थङकारयुक्तेष्वनङादिषु चरितार्थत्वात्तातङि न प्रवर्तते । किन्तु परेणानेकाल्शिदित्यनेन बाध्यते । जीवतात् । भवतात् । अयजे इन्द्रम् । ग्रामे इह । सर्वे इत्थम् । अत्र अयज इ इन्द्रम्, ग्राम इ इह, सर्व इ इत्थमिति स्थिते अन्तरङ्गेण गुणेन सवर्णदीर्घो बाध्यते । तस्य समानाश्रये दैत्यारिः श्रीश इत्यादौ चरितार्थत्वात् ॥

कृताकृतप्रसंगि नित्यं तद्विपरीतमनित्यम् ॥

यथा ऋच्छति इत्यादौ सावकाशस्य शस्य तुतोदेत्यादौ सावकाशस्य गुणस्य च तुदतीत्यादौ परादपि गुणान्नित्यत्वाच्छ एव । शो हि गुणे कृतेऽकृते च प्रसङ्गी गुणस्तु अकृत एव । शे कृते तु शे तस्य ङित्त्वाद् गुणो न भवति ॥

असिद्धं बहिरंगमन्तरङ्गे ॥

बहिरङ्गापेक्षयान्तर्गतानि अन्तर्भूतानि अङ्गानि निमित्तानि यस्य तदन्तरङ्गम् एवमन्तरङ्गापेक्षया बहिर्भूतान्यङ्गानि यस्य तद्बहिरङ्गम् । तत्रान्तरङ्गे कार्ये कर्तव्ये बहिरङ्गमसिद्धम् । यथा पचावेदमित्यत्र आद्गुणे कृते एत ऐ इति ऐकारो न भवति बहिरङ्गतया

गुणस्यासिद्धत्वात्। शेषाः परिभाषास्तृतीये खण्डे व्याख्यास्यन्ते॥
इति १२३ अंशाः ।

अथ णिजन्ताः ॥ ओः पुयण्ज्यपरे । अपीपवत् । अबीभवत् । अमीमवत् । अयीयवत् । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत् ॥

स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा ७ । ४ । ८१ ॥

एषामभ्यासोकारस्य इत्वं वा सनि अवर्णपरे धात्वक्षरे परे। असिस्रवत्। असुस्रवत्। नाग्लोपि इति ह्रस्वनिषेधः। अशशासत्। अडुढौकत्। अचीचकासत्। मतान्तरे अचचकासदिति वक्ष्यते। अग्लोपि इति सुब्धातुप्रकरण उदाहरिष्यते। ण्यन्ताण्णिचि पूर्वविप्रतिषेधादपवादत्वाद्वा वृद्धिं बाधित्वा णिलोपः। चोरयति। णौ चङीति ह्रस्वः। दीर्घो लघोः। न चाग्लोपित्वाद्द्वयोरप्यसम्भवः। व्याकृतिनिर्देशात्। अचूचुरत ॥

णौ च संश्चङोः ६ । १ । ३१ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ श्वयतेः संप्रसारणं वा। संप्रसारणं तदाश्रयं कार्यं च बलवत्। अतः संप्रसारणं। पूर्वरूपम्। अशूशवत्। अलघुत्वान्न दीर्घः। अशिश्वयत् ॥

स्तम्भुसिवुसहां चङि ८ । ३ । ११६ ॥

उपसर्गनिमित्त एषां सस्य षो न स्याच्चङि। अवातस्तम्भत्। पर्यसीषिवत्। न्यसीषहत्। आटिटत्। आशिशत्। बहिरङ्गोऽप्युपधाह्रस्वो द्वित्वात्प्रागेव। ओणेर्ऋदित्करणाल्लिङ्गात् मा भवानिदिधत्। एजादावेधतौ विधानान्न वृद्धिः। मा भवान्मेदिधत्। नन्द्राः इति नदराणां न द्वित्वम्। औन्दिदत्। आड्डिडत्। आर्चिचत्। उब्ज आर्जवे। उपदेशे दकारोपधः। भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः इति सूत्रे निपातनादस्य वः। स चान्तरङ्गोऽपि द्वित्वविषये नन्द्राः इति निषेधाब्भिशब्दस्य द्वित्वे कृते प्रवर्तते नतु ततः प्राक्। दकारोच्चारणसामर्थ्यात्। औब्जिजत्। अजादेरित्येव नेह। अदिद्रपत् ॥

रभेरशब्लिटोः ७ । १ । ६३ ॥

रभेर्नुमचि नतु शब्लिटोः । अररम्भत् ॥

लभेश्च ७ । १ । ६४ ॥

अललम्भत् । हेरचङि इति सूत्रे अचङि इत्युक्तेः कुत्वं न । अजीहयत् ॥

अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम् ॥

असस्मरत् । अददरत् । तपरत्वसामर्थ्यादत्र लघोर्न दीर्घः ॥

विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः ७ । ४ । ९६ ॥

अभ्यासस्यात्वं वा स्याच्चङ्परे णौ । अववेष्टत् अविवेष्टत् । अचचेष्टत् अचिचेष्टत् । भ्राजभास इत्यादिना वोपधाह्रस्वः। अबिभ्रजत् अबभ्राजत् । काण्यादयः प्रागुक्ताः तेषामुपधाह्रस्वो वा । अचीकणत् अचकाणत् ॥

स्वापेश्चङि ६ । १ । १८ ॥

ण्यन्तस्य स्वपेश्चङि संप्रसारणम् । असूषुपत् ॥

शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ७ । ३ । ३७ ॥

णौ पुकोऽपवादः । शाययति । ह्वाययति ॥

ह्वः संप्रसारणम् ६ । १ । ३२ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ ह्वः संप्रसारणम् । अजूहवत् अजुहावत् ॥

लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ७ । ४ । ४ ॥

पिबतेरुपधाया लोपः स्यादभ्यासस्य ईदन्तादेशश्च चङ्परे णौ । अपीप्यत् । अर्तिह्री इति पुक् । अर्पयति ह्रेपयति । व्लेपयति । रेपयति । यलोपः । क्नोपयति । क्ष्मापयति । स्थापयति ॥

तिष्ठतेरित् ७ । ४ । ५ ॥

उपधाया इदादेशश्चङ्परे णौ । अतिष्ठिपत् ॥

जिघ्रतेर्वा ७ । ४ । ६ ॥

अजिघ्रिपत् अजिघ्रपत् । उर्ज्ञत् । अचीकृतत अचिकीर्तत् । अवीवृतत् अववर्तत् । अमीमृजत् अममार्जत् ॥

पातेर्णौ लुग्वक्तव्यः ❀ ॥

पुकोऽपवादः । पालयति ॥

वो विधूनने जुक् ७ । ३ । ३८ ॥

वातेर्जुक्स्याण्णौ कम्पेऽर्थे । वाजयति । कम्पे किम् । केशान्वापयति ॥

विभाषा लीयतेः ॥

लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ७।३।३९॥

लीमतेर्लातेश्च क्रमान्नुग्लुकावागमौ वा णौ स्नेहद्रवे । विलीनयति । विलापयति विलालयति वा घृतम् । ली इति ईकारप्रश्लेषाद्रात्वपक्षे नुग्न । स्नेहद्रवे किम् । लोहं विलापयति ॥

प्रलम्भनाभिभवपूजासु लियो नित्यमात्वमाशीति वाच्यम् ❀ ॥

लियः संमाननशालीनीकरणयोश्च १ । ३ । ७० ॥

लीङ्लियोर्ण्यन्तयोरात्मनेपदं स्यादकर्तृगेऽपि फले पूजाभिभवयोः प्रलम्भने चार्थे । जटाभिर्लापयते । पूजामधिगच्छतीत्यर्थः । श्येनो वर्तिकामुल्लापयते । अभिभवतीत्यर्थः । बालमुल्लापयते । वञ्चयतीत्यर्थः ॥

बिभेतेर्हेतुभये ६ । १ । ५६ ॥

बिभेतेरेच आत्वं वा प्रयोजकाद् । भयं चेत् ॥

भीस्म्योर्हेतुभये १ । ३ । ६८ ॥

ण्यन्ताभ्यामाभ्यामात्मनेपदं स्याद्धेतोश्चेद् भयस्मयौ । सूत्रे भयग्रहणं धात्वर्थोपलक्षणम् मुण्डो भापयते ॥

भियो हेतुभये षुक् ७ । ३ । ४० ॥

भी ई इति ईकारः प्रक्षिप्यते ईकारान्तस्य भियः पुक् स्याण्णौ हेतुभये । भीषयते ॥

नित्यं स्मयतेः ६ । १ । ५७ ॥

स्मयतेरेचो नित्यमात्वं णौ हेतोः स्मये । जटिलो विस्मापयते । हेतोश्चेद् भयस्मयावित्युक्तेर्नेह । कुञ्चिकयैनं भाययति। विस्माययति। कथं तर्हि विस्मापयन्विस्मितमात्मवृत्तौ इति । मनुष्यवाचा इति करणादेव हि तत्र स्मयः । अन्यथा शानजपि स्यात् । सत्यम् । विस्माययन् इत्येव पाठ इति साम्प्रदायिकाः । यद्वा मनुष्यवाक् प्रयोज्यकर्त्री विस्मापयते। तया सिंहो विस्मापयन्निति ण्यन्ताण्णौ शता इति व्याख्येयम् ॥

स्फायो वः ७ । ३ । ४१ ॥

णौ । स्फावयति ॥

इति १२४ अंशाः ।

शदेरगतौ तः ७ । ३ । ४२ ॥

शदेर्णौ तोऽन्तादेशः न तु गतौ । शातयति । गतौ तु गाः शादयति गोविन्दः । गमयतीत्यर्थः ॥

रुहः पोऽन्यतरस्याम् ७ । ३ । ४३ ॥

णौ । रोपयति । रोहयति ॥

क्रीङ्जीनां णौ ६ । १ । ४८ ॥

एषामेव आत्वं णौ । क्रापयति । अध्यापयति । जापयति ॥

णौ च संश्चङोः २ । ४ । ५१ ॥

सन्परे चङ्परे च णौ इङो गाङ्वा । अध्यजीगपत् । अध्यापिपत् ॥

सिध्यतेरपारलौकिके ६ । १ । ४९ ॥

ऐहलौकिकेऽर्थे विद्यमानस्य सिध्यतेरेच आत्व णौ । अन्नं साधयति निष्पादयतीत्यर्थः । अपारलौकिके किम् । तापसः सि-

ध्यति । तत्त्वं निश्चिनोति तं प्रेरयति सेधयति तापसं तपः ॥

प्रजने वीयतेः ६ । १ । ५५ ॥

अस्येच आत्वं वा णौ प्रजनेऽर्थे । वापयति वाययति वा गाः । पुरोवातः गर्भं ग्राहयतीत्यर्थः ॥

ऊदुपधाया गोहः ॥

गूहयति ॥

दोषो णौ ६ । ४ । ९० ॥

दुषः इति सुवचम् । दुष्यतेरुपधाया ऊणौ । दूषयति ॥

वा चित्तविरागे ६ । ४ । ९१ ॥

विरागोऽप्रीतता । चित्तं दूषयति दोषयति वा कामः । मितां ह्रस्वः । तत्र केचिन्मितः प्रागुक्ताः । इदानीं सर्वे उच्यन्ते । तत्रादौ त्वरत्यन्तास्त्रयोदशानुदात्तेतः पितश्च । घट चेष्टायाम् । घटते । इत्यादिरूपाणि । ज्ञेयानि अनुवादरूपाणां तु स्वस्वगणे रूपाणि भवन्ति । घटादयो मितः इति मित्संज्ञा । तत्फलं । णौ मितां ह्रस्वः इति चिण्णमुलोर्दीर्घोऽन्यतरस्याम् इति चोक्तम् । घटयति । विघटयति । कथं तर्हि कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये प्रविघाटयिता । समुत्पतन्हरिदश्वः । कमलाकरानिव इत्यादि शृणु । घट संघाते इति चौरादिकस्येदम् । नच तस्यैवार्थविशेषे मित्वार्थमनुवादोऽयमिति वाच्यम् । नान्ये मितोऽहेतौ इति निषेधात् । अहेतौ स्वार्थे णिचि ज्ञपादिव्यतिरिक्ताश्चुरादयो मितो नेत्यर्थः । व्यथ भयसंचलनयोः । प्रथ प्रख्याने । प्रस विस्तारे । म्रद मर्दने । स्खद स्खदने । स्खदनं विद्रावणम् । क्षजि गतिदानयोः । मित्त्वसामर्थ्यादनुपधात्वेऽपि चिण्णमुलोः इति दीर्घविकल्पः । अक्षञ्जि अक्षाञ्जि । क्षञ्जं क्षञ्जम् क्षाञ्जं क्षाञ्जम् । क्षजेति अनिदितमपि वोपदेवः पठति । दक्ष गतिहिंसनयोः । योऽयं वृद्धिशीघ्र्ययोरनुदात्तेत्सु पठितस्तस्येहार्थविशेषे मित्वार्थोऽनुवादः । कृप कृपायां गतौ च । कदि-क्रदि-क्लदि वैक्लव्ये । वैकल्ये इत्येके । त्रयोऽप्यनिदित इति नन्दी । इदित इति

स्वामी । कदि क्रदी-इदितौ । क्रद-क्लद इति चानिदिताविति मैत्रेयः । कदि-क्रदि-क्लदीनामाह्वानरोदनयोः परस्मै पदिषूक्तानां पुनरिह पाठो मित्वार्थं आत्मनेपदार्थश्च । त्रिलरा संभ्रमे । घटादयः षितः । षित्वात् कृत्सु अङ् वक्ष्यते । घटा व्यथा इत्यादि । अथ फणान्ताः परस्मैपदिनः ॥ ज्वर रोगे । गड सेचने । गडति । जगाड । हेड वेष्टने । हेडृ अनादरे इत्यात्मनेपदिषु गतः । स एवोत्सृष्टानुबन्धोऽनूद्यतेऽर्थविशेषे मित्वार्थम् । परस्मैपदिभ्यो ज्वरादिभ्यः प्रागेवानुवादे कर्त्तव्ये तन्मध्येऽनुवादसामर्थ्यात् परस्मैपदम् । हेडति । जिहेड । गतौ, हिडयति । अहिडि अहीडि । अनादरे तु हेडयति । परे तु असांमदायिकोऽस्य पाठः । सति साम्प्रदायिकत्वे तु अपूर्व एवायं नत्वनुवाद इत्याहुः । वट-भट परिभाषणे । वट वेष्टने, भट भृतौ इति पठितयोः परिभाषणे मित्वार्थोऽनुवादः । नट नृतौ इत्थमेव पूर्वमपि पठितं तत्रायं विवेकः । पूर्वपठितस्य नाट्यमर्थः । यत्कारिषु नटव्यपदेशः । वाक्यार्थाभिनयो नाट्यम् । घटादौ तु नृत्तं नृत्यं चार्थः । यत्कारिषु नर्तकव्यपदेशः । पदार्थाभिनयो नृत्यम् । गात्रविक्षेपमात्रं नृत्तम् । केचित्तु घटादौ नट नतौ इति पठन्ति गतौ इत्यन्ये। णोपदेशपर्युदासवाक्ये भाष्यकृता नाटि इति दीर्घपाठात् घटादिर्णोपदेश एव । ष्टक प्रतीघाते । स्तकति ।चक तृप्तौ । तृप्तिप्रतीघातयोः पूर्वं पठितस्य तृप्तिमात्रे मित्वार्थोऽनुवादः । आत्मनेपदिषु पठितस्य परस्मैपदिष्वनुवादात्परस्मैपदम् । कखे हसने । एदित्वान्न वृद्धिः । अकखीत् । रगे शङ्कायाम् । लगे संगे । ह्रगे-ह्लगे-षगे-ष्टगे-संगे-स्थगे संवरणे । कगे नोच्यते । अस्यायमर्थ इति विशिष्य नोच्यते क्रियासामान्यार्थत्वात् । अनेकार्थत्वादित्यन्ये । अक-अग कुटिलायां गतौ । कण-रण गतौ चकाण। रराण। चण-शण-श्रण दाने च । शण गतौ इत्यन्ये । श्रथ-श्लथ-क्नथ क्रथ हिंसार्थाः । जासिनिप्रहण इति सूत्रे क्राथेति मित्वेऽपि वृद्धिर्निपात्यते। क्राथयति । मित्वं तु निपातनात्परत्वात् चिण्णमुलोः इतिदीर्घे चरितार्थम् अक्रथि। अक्राथि।

क्रथं क्रथम्। क्राथं श्राथम्। वन च हिंसायामिति शेषः। वनु च नोच्यते। वनु इत्यपूर्व एवायं धातुर्नतु तानादिकस्यानुवादः। उदिस्करणसामर्थ्यात्। तेन क्रियासामान्ये वनतीत्यादि। प्रवनयति। अनुपसृष्टस्य तु मित्त्वविकल्पो वक्ष्यते। ज्वल दीप्तौ। णप्रत्ययार्थं पठित एवायं मित्त्वार्थमनूद्यते। प्रज्वलयति। ह्वल-ह्मल चलने। प्रह्वलयति। प्रह्मलयति। स्मृ आध्याने। चिंतायां पठितस्य आध्याने मित्त्वार्थोऽनुवादः। आध्यानमुत्कण्ठापूर्वकं स्मरणम्। दृ भये दॄ विदारणे इति क्र्यादेरयं मित्त्वार्थोऽनुवादः। इणन्तं प्रेरयति दरयति। भयादन्यत्र दारयति। धात्वन्तरमेवेदमिति मते तु दरतीत्यादि केचित् घटादौ अत्स्मृदत्वर इति सूत्रे दृ इति दीर्घस्थाने ह्रस्वं पठन्ति। तन्नेति माधवः। नॄ नये। क्र्यादिषु पठितस्यानुवादः। नयादन्यत्र, नारयति। श्रा पाके। श्रै इति कृतात्वस्य श्रा इत्यदादिकस्य च सामान्येनानुकरणम्। लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम् इति परिभाषाभ्याम्। श्रपयति। विक्लेदयतीत्यर्थः। पाकादन्यत्र श्रापयति। स्वेदयतीत्यर्थः॥

इति १२५ अंशाः।

मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा॥

निशामनं चाक्षुषज्ञानम् इति माधवः। ज्ञापनमात्रम् इत्यन्ये। निशानेषु इति पाठान्तरम्। निशानं तीक्ष्णीकरणम्। एष्वेवार्थेषु जानातिर्मित्। ज्ञपमिच्च इति चुरादौ। ज्ञापनं मारणादिकं च तस्यार्थः। कथं, विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति इति तज्ज्ञापयत्याचार्यः इति च। शृणु माधवमतेऽचाक्षुषज्ञाने मित्त्वाभावात्। ज्ञापनमात्रे मित्वमिति मते तु ज्ञा नियोगे इति चौरादिकस्य। धातूनामनेकार्थत्वात्। निशानेष्विति पठतां हरदत्तादीनां मते तु न काप्यनुपपत्तिः॥

कम्पने चलिः॥

चल कम्पने इति ज्वलादिः । चलयति शाखाम् । कम्पनादन्यत्र तु शीलं चालयति । अन्यथा करोतीत्यर्थः । हरतीत्यर्थः इति स्वामी । सूत्रं चालयति । क्षिपतीत्यर्थः । छदिर् ऊर्जने । छद अपवारणे । इति चौरादिकस्य स्वार्थे णिजभावे मित्त्वार्थोऽयमनुवादः । अनेकार्थत्वादूर्जेरर्थे वृत्तिः । छदन्तं प्रयुंक्ते छदयति । बलवन्तं प्राणवन्तं वा करोतीत्यर्थः । अन्यत्र छादयति । अपवारयन्तं प्रयुंक्त इत्यर्थः । स्वार्थे णिचि तु छादयति । बलीभवति प्राणीभवति अपवारयति वेत्यर्थः ॥

जिह्वोन्मथने लडिः ॥

लड विलासे इति पठितस्य मित्त्वार्थोऽनुवादः । उन्मथनं ज्ञापनम् । जिह्वाशब्देन षष्ठीतत्पुरुषः । लडयति जिह्वाम् । तृतीयातत्पुरुषो वा । लडयति जिह्वया । अन्ये तु जिह्वाशब्देन तद्व्यापारो लक्ष्यते । समाहारद्वन्द्वोऽयम् । लडयति शत्रुम् । लडयति दधि । अन्यत्र लाडयति पुत्रम् । मदी हर्षग्लेपनयोः । ग्लेपनं दैन्यम् । दैवादिकस्य मित्त्वार्थोऽयमनुवादः । मदयति । हर्षयति ग्लेपयति वेत्यर्थः । अन्यत्र मादयति । चित्तविकारमुत्पादयतीत्यर्थः । ध्वन शब्दे । मित्त्वार्थमयमनूद्यते । ध्वनयति घण्टाम् । अन्यत्र ध्वानयति । अस्पष्टाक्षरमुच्चारयतीत्यर्थः । अत्र भोजः दलिवलिस्खलिरणिध्वनित्रपिक्षपयश्च इति पपाठ । तत्र ध्वनिरणी उदाहृतौ । दल विशरणे । वल संवरणे । स्खल संचलने । त्रपूष् लज्जायाम् इति गताः । तेषां णौ दलयति । वलयति । स्खलयति । त्रपयति । क्षै क्षये इत्यस्य कृतात्वस्य पुका निर्देशः । क्षपयति । स्वन अवतंसने । शब्द इति पठितस्यानुवादः । स्वनयति । अन्यत्र स्वानयति । घटादयो मितः । मित्संज्ञा इत्यर्थः ॥

जनीजॄष्क्नसुरञ्जोऽमन्ताश्च ॥

मितः इत्यनुवर्तते । जॄष् इति षित्वनिर्देशाज्जीर्यतेर्ग्रहणम् । जॄणातेस्तु जारयति । केचित्तु जनीजॄष्णसु इति पठित्वा ष्णसु निरसन इति दैवादिकमुदाहरन्ति ॥

ज्वलह्वलह्मलनमामनुपसर्गाद्वा ॥

एषां मित्त्वं वा । प्राप्तविभाषेयम् । ज्वलयति । ज्वालयति । उपसृष्टे तु नित्यं मित्त्वम् । प्रज्वलयति । कथं तर्हि प्रज्वालयति उन्नामयतीति । घञन्तात् तत्करोति इति णौ । कथं संक्रामयतीति । मितां ह्रस्वः इति सूत्रे वा चित्तविरागे इत्यतो वा इत्यनुवर्त्त्य व्यवस्थितविभाषाश्रयणादिति वृत्तिकृत् । एतेन, रजो विश्रामयन् राज्ञां धुर्यो न्विश्रामयेति सः । इत्यादि व्याख्यातम् ॥

ग्लास्नावनुवमां च ॥

अनुपसर्गादेषां मित्त्वं वा । आद्ययोरप्राप्ते इतरयोः प्राप्ते विभाषा ॥

न कम्यमिचमाम् ॥

अमन्तत्वात्प्राप्तं मित्वमेषां न । कामयते । आमयति । चामयति ॥

शमोऽदर्शने ॥

शाम्यतिर्दर्शने मिन्न । निशामयति रूपम् । अन्यत्र तु, प्रणयिनो निशमय्य वधूः कथाः । कथं तर्हि, निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम इति । शम आलोचने इति चौरादिकस्य धातूनामनेकार्थत्वाच्छ्रवणे वृत्तिः शाम्यतिवत् ॥

यमोऽपरिवेषणे ॥

यच्छतिर्भोजनातोऽन्यत्र मिन्न । आयामयति । द्राघयति । व्यापारयति वेत्यर्थः । परिवेषणे तु यमयति । ब्राह्मणान् भोजयतीत्यर्थः । पर्यवसितं नियमयन् इत्यादि तु नियमवच्छब्दात्तत्करोतीति णौ बोध्यम् ॥

स्खदिर् अवपरिभ्यां च ॥

मिन्नेत्येव । अवस्खादयति । परिस्खादयति । अपावपरिभ्यः इति न्यासकारः । स्वामी तु न कमि इति नवमुत्तरांत्रिसूत्र्यामनुवर्त्य शमः अदर्शने इति चिच्छेद । यमस्तु अपरिवेषणे मित्वमाह । तन्मते पर्यवसितं नियमयन् इत्यादि सम्यगेव । उपसृष्टस्य स्खदेश्चेदवादिपूर्वस्यैव इति नियमात्प्रस्खादयतीत्याह । तस्मात्सूत्रद्वय उदा-

हरणप्रत्युदाहरणयोर्व्यत्यासः फलितः। इदं च मतं वृत्तिन्यासादिविरोधादुपेक्ष्यम्। फण गतौ। न इति निवृत्तमसंभवात्। निषेधात्पूर्वमसौ न पठितः फणादिकार्यानुरोधात्। फणयति। इति घटादयः समाप्ताः। फणेः प्रागेवेति केचित्। तेषां मते फाणयतीत्येव॥

रञ्जेर्णौ मृगरमणे नलोपो वक्तव्यः * ॥

मृगरमणमाखेटकम्। रजयति मृगान्। मृग इति किम्। रञ्जयति पक्षिणः। रमणादन्यत्र तु रञ्जयति मृगांस्तृणदानेन। चुरादिषु ज्ञपादिश्चिञ्। चिस्फुरोर्णौ। चपयति चययतीत्युक्तम्। चिनोतेस्तु चापयति चाययति। स्फारयति स्फोरयति। अपुस्फरत् अपुस्फुरत्॥

इति १२६ अंशः।

उभौ साभ्यासस्य ८।४।२१॥

साभ्यासस्यानितेरुभौ नकारौ णौ स्तो निमित्ते सति। प्राणिणत्॥

ईर्ष्यतेस्तृतीयस्येति वक्तव्यम् * ॥

तृतीयव्यञ्जनस्य तृतीयैकाच इति वार्थः। आद्ये यकारस्य द्वित्वं वारयितुमिदम्। द्वितीये तु अजादेर्द्वितीयस्य इत्यस्यापवादतया सन्नन्ते प्रवर्तते। ऐर्षियत् ऐर्षिष्यत्। द्वितीयव्याख्यायां णिजन्तात्‌षडि षकार एवाभ्यासे श्रूयते हलादिः शेषात्। द्वित्वं तु द्वितीयस्यैव। तृतीयाभावेन प्रकृतवार्त्तिकाप्रवृत्तेः॥

बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्रुभ्यो णेः १।३।८६॥

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदम्। णिचश्च इत्यस्यापवादः। बोधयति पद्मम्। योधयति काष्ठानि। नाशयति दुःखम्। जनयति सुखम्। प्रीतिं भक्तजनस्य यो जनयते इति त्वसाधु। अध्यापयति। प्रावयति। प्रापयतीत्यर्थः। द्रावयति। विलापयतीत्यर्थः। स्रावयति। स्यंदयतीत्यर्थः॥

निगरणचलनार्थेभ्यश्च १।३।८७॥

निगारयति । आशयति । भोजयति । चलयति । कम्पयति ॥

अदेः प्रतिषेधः ❀ ॥

आदयते देवदत्तेन । गतिबुद्धि इति कर्मत्वम् आदिखाद्योर्न इति प्रतिषिद्धम् । निगरणचलन इति सूत्रेण प्राप्तस्यैवायं निषेधः । शेषादित्यकर्त्रभिप्राये परस्मैपदं स्यादेव । आदयत्यन्नं बटुना ॥

अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् १ । ३ । ८८ ॥

ण्यन्तात्परस्मैपदम् । शेते कृष्णस्तं गोपी शाययति ॥

न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः १ । ३ । ८९ ॥

एभ्यो ण्यन्तेभ्यः परस्मैपदं न । पिबातिर्निगरणार्थः । इतरे चित्तवत्कर्तृकाकर्मकाः । नृतिश्चलनार्थोऽपि । तेन सूत्रद्वयेन प्राप्तिः । पाययते । दमयते । आयामयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्तयते । वादयते । वासयते ॥

धेट उपसंख्यानम् ❀ ॥

धापयेते शिशुमेकं समीची । अकर्त्रभिप्राये शेषात् इति परस्मैपदं स्यादेव । वत्सान्पाययति पयः । दमयन्ती कमनीयतामदम् । भिक्षां वासयति ॥

णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्तानाध्याने १ । ३ । ६७ ॥

ण्यन्तादात्मनेपदं स्यादणौ या क्रिया सैव चेण्यन्तेनोच्यते । अणौ यत्कर्मकारकं स चेण्णौ कर्ता स्यान्न त्वाध्याने । णिचश्च इति सिद्धेऽकर्त्रभिप्रायार्थमिदम् । कर्त्रभिप्राये [illegible] विभाषोपपदेन प्रतिषेधेनेदमेवेष्यते । कर्तृस्थभावकाः कर्तृस्थक्रियाश्चोदाहरणम् । तथा हि । पश्यंति भवं भक्ताः । चाक्षुषज्ञानविषयं कुर्वन्तीत्यर्थः । प्रेरणांशत्यागे पश्यति भवः । विषयो भवतीत्यर्थः । ततो हेतुमण्णिच् । दर्शयन्ति भवं भक्ताः । पश्यन्तीत्यर्थः । पुनर्ण्यर्थस्याविवक्षायां दर्शयते भवः । इह प्रथमतृतीययोर्द्वितीयचतुर्थयोश्चावस्थयोस्तुल्योऽर्थः । तत्र तृतीयायां न तङ् । क्रियासाम्येऽप्यणौ

कर्मणो णौ कर्तृत्वाभावात् । चतुर्थ्यां तु तङ् द्वितीयामादाय क्रियासाम्यात् । प्रथमायां कर्मणो भवस्य कर्तृत्वाच्च । एवम् आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः । न्यग्भावयन्तीत्यर्थः । तत आरोहति हस्ती । न्यग्भवतीत्यर्थः । ततो णिच् । आरोहयन्ति । आरोहन्तीत्यर्थः । तत आरोहयते । न्यग्भवतीत्यर्थः । यद्वा । पश्यन्त्यारोहन्तीति प्रथमकक्षा प्राग्वत् । ततः कर्मण एव हेतुत्वारोपाण्णिच् । दर्शयति भवः । आरोहयति हस्ती । पश्यत आरोहतश्च प्रेरयतीत्यर्थः । ततो णिज्भ्यां तत्प्रकृतिभ्यां च उपात्तयोर्द्वयोरपि प्रेषणयोस्त्यागे दर्शयते आरोहयते इत्युदाहरणम् । अर्थः प्राग्वत् । अत्र पक्षे द्वितीयकक्षायां न तङ् । समानक्रियत्वाभावाण्णिजर्थस्याधिक्यात् । अनाध्याने किम् । स्मरति वनगुल्मं कोकिलः । स्मरयति वनगुल्मः । आगमेः क्षमायाम् । ण्यन्तात् आत्मनेपदम् । आगमयस्व तावत् । मा त्वरिष्ठा इत्यर्थः ॥

गृधिवञ्च्योः प्रलंभने १ । ३ । ६९ ॥

प्रतारणेऽर्थे ण्यन्ताभ्यामाभ्यामात्मनेपदम् । माणवकं गर्द्धयते । वञ्चयते । प्रलम्भने किम् । श्वानं गर्द्धयति । अभिकांक्षामस्योत्पादयतीत्यर्थः । अहिं वञ्चयति । वर्जयतीत्यर्थः ॥

मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे १ । ३ । ७१ ॥

णेः इत्येव । पदं मिथ्या कारयते । स्वरादिदुष्टमसकृदुच्चारयतीत्यर्थः । मिथ्येति किम् । पदं सुष्ठु कारयति । अभ्यासे किम् । पदं सकृन्मिथ्या कारयति ॥

णौ गमिरबोधने २ । ४ । ४६ ॥

इणो णौ गमिर्नतु बोधने । गमयति । बोधने तु प्रत्याययति । इण्वदिकः । अधिगमयति ॥

हनस्तोऽचिण्णलोः ७ । ३ । ३२ ॥

हन्तेस्तोऽन्तादेशश्चिण्णल्वर्जे ञिति णिति च । हो हन्तेरिति कुत्वम् । घातयति । निवृत्तप्रेषणाद्धातोर्हेतुमण्णौ शुद्धेन तुल्योऽर्थः ।

तेन, प्रार्थयन्ति शयनोत्थितं प्रिया इत्यादि सिद्धम् । एवं सकर्मकेषु सर्वेषूह्यम् ॥ इति णिजन्ताः ॥

इति १२७ अंशाः ।

अथ सन्नन्ताः । अत्तुमिच्छति । घस्लृ इडभावः सस्य तः । जिघत्सति ॥

रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च १ । २ । १८ ॥

एभ्यः संश्च क्त्वा च कितौ । रुरुदिषति । विविदिषति । मुमुषिषति । सनिग्रहगुहोश्च । ग्रहिज्येति संप्रसारणम् । सनः षत्वस्यासिद्धत्वाद्भष्भावः । जिघृक्षति । सुषुप्सति ॥

किरश्च पञ्चभ्यः ७ । २ । ७५ ॥

कॄगॄदृङ्धृङ्प्रच्छ एभ्यः सन इट् । पिपृच्छिषति । चिकरिषति । जिगरिषति । जिगलिषति । अत्रेटो दीर्घो नेष्टः । दिदरिषते । दिधरिषते । उदिधीर्षुरिति तु भ्वादेर्धृङ्धृञोर्ज्ञेयम् ॥

हलन्ताच्च १ । २ । १० ॥

इक्समीपाद्धलः परो झलादिः सन् कित् । गुहू । जुघुक्षति । बिभित्सति । इकः किम् । यियक्षते । झल् किम् । विवर्द्धिषते । हल्ग्रहणं जातिपरम् । तृंहू–तितृक्षति तितृंहिषति । संश्लिष्टोर्जेरिति कुत्वम् । अज्झनेति दीर्घः । जिगीषति । जिघांसति । विभाषा चेः । चिकीषति । चिचीषति ॥

सनि च २ । ४ । ४७ ॥

इणो गमिः सनि नतु बोधने । जिगमिषति । बोधने–प्रतीषिषति । इण्वदिकः । अधिजिगमिषति । कर्मणि तङ् । परस्मैपदेष्वित्युक्तेर्नेट् । अज्झनेति दीर्घः । जिगांसते । अधिजिगांसते । इङ्णिकादेशगतेरित्युक्तेर्गच्छतेर्न दीर्घः । जिगंसते । संजिगंसते ॥

इङश्च २ । ४ । ४८ ॥

गमिः सनि । अधिजिगांसते ॥

रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च १ । २ । २६ ॥

उकारेकारोपधाद्धलादेरलन्तात् परौ क्त्वासनौ सेटौ वा कितौ । द्युतिस्वाप्योरिति संप्रसारणम् । दिद्युतिषते दिद्योतिषते । रुरुचिषते रुरोचिषते । लिलिखिषति लिलेखिषति । रलः किम् दिदेविषति । व्युपधात् किम् । विवर्तिषते । हलादेः किम् । एषिषिषति । इह नित्यमपि द्वित्वं गुणेन बाध्यते । उपधाकार्यं हि द्वित्वात्प्रबलम् । ओणेर्ऋदित्करणस्य सामान्यापेक्षज्ञापकत्वात् ॥

तनिपतिदरिद्रातिभ्यः सनो वा इड्वाच्यः ❀ ॥

तनोतेर्विभाषा ६ । ४ । १७ ॥

अस्योपधायाः दीर्घो वा झलादौ सनि । तितांसति तितंसति तितनिषति ॥

आशंकायां सन् वक्तव्यः ❀ ॥

श्वा मुमूर्षति । कूलं पिपतिषति ॥

सनिमीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् ७ । ४ । ५४ ॥

एषामच इस् सादौ सनि ॥

अत्र लोपोऽभ्यासस्य ७ । ४ । ५८ ॥

सनिमीमेत्यारभ्य यदुक्तं तत्राभ्यासस्य लोपः । स्कोरितिसलोपः । पित्सति । दिदरिद्रिषति । दिदरिद्रासति । डुमिञ् मीञ् आभ्यां सन् । कृतदीर्घस्य मिनोतेरपि मीरूपत्वात् सः सीति तः । मित्सति मित्सते । मा मित्सति । माङ् मेङ् मित्सते । दो दाण् दित्सति । देङ् दित्सते । दाञ् दित्सति दित्सते । धेट् धित्सति । धाञ् धित्सति धित्सते । रिप्सते । लिप्सते । शक्लृ शिक्षति । शिक्षेर्जिज्ञासायाम् आत्मनेपदमनुवर्तते । धनुषि शिक्षते । शक्तो भवितुमिच्छतीत्यर्थः । शकादिवादिः उभयपदी । शिक्षति शिक्षते । पित्सते ॥

राधोऽहिंसायां सनीस् वाच्यः ❀ ॥

रित्सति । अहिंसायां तु आरिरात्सति ॥

इट् सनि वा ७ । २ । ४१ ॥

वृङ्वृञ्भ्यामृदन्ताच्च सन इड्वा । तितरिषति तितरीषति । तितीर्षति। विवरिषति विवरीषति वुवूर्षति । वृङ् वुवूर्षते विवरिषते । दुध्वूर्षति ॥

स्मिपूङ्रञ्ज्वशां सनि ७ । २ । ७४ ॥

स्मिङ् पूङ् ऋ अंजू अश् एभ्यः सन इट् । सिस्मयिषते। पिपविषते अरिरिषति । इह रिस्शब्दस्य द्वित्वम्। इस् इति सनोऽवयवः कार्यभागिति कार्यिणो निमित्तत्वायोगात् द्विर्वचनेचीति न प्रवर्तते। अञ्जिजिषति । अशिशिषते । उभौ साभ्यासस्य। प्राणिणिषति । ओः पुयण्ज्यपरे । पिपावयिषति । यियावयिषति । बिभावयिषति । रिरावयिषति । लिलावयिषति । जिजावयिषति । पुयण्जीति किम् । नुनावयिषति । अपरे किम् । बुभूषति । स्रवतीतीत्वं वा । सिस्रावयिषति । सुस्रावयिषतीत्यादि । अपरे इत्येव । शुश्रूषते । पूर्ववत्सनः। निविविक्षते । शदेः शितः म्रियतेर्लुङ्लिङोश्चेति सूत्रद्वये सनो न इत्यनुवर्त्य वाक्यभेदेन व्याख्येयम् । तेन शदम्रुङोस्तङ् न । शिशत्सति । मुमूर्षति ॥

ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १ । ३ । ५७ ॥

सन्नन्तानामेषामात्मनेपदम्। धर्मं जिज्ञासते। शुश्रूषते । सुस्मूर्षते दिदृक्षते ॥

नानोर्ज्ञः १ । ३ । ५८ ॥

पुत्रमनुजिज्ञासति । पूर्वसूत्रस्यैवायं निषेधः। अनन्तरस्येति न्यायात् । तेनेह न । सर्पिषोऽनुजिज्ञासते । सर्पिषा प्रवर्त्तितुमिच्छति इत्यर्थः । पूर्ववत्सन इति तङ् । अकर्मकाच्चेति केवलाद्विधानात् ॥

प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः १ । ३ । ५९ ॥

आभ्यां सन्नन्ताच्छ्रुव उक्तं न । प्रतिशुश्रूषति । आशुश्रूषति । कर्मप्रवचनीयात् स्यादेव । देवदत्तं प्रतिशुश्रूषते । दीपिकान्मतुवर्थी

याच्छैषिको मतुबर्थिकः । सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥ तेन शालीये भव इति वाक्यमेव । नतु च्छान्ताच्छः । विरूपस्तु अहिच्छत्रे भव आहिच्छत्रीयः । धनवानस्यास्ति इत्येव विरूपस्तु स्यात्। दण्डिमान्। इच्छासन्नन्तान्न सन् । स्वार्थसन्नन्तात्तु स्यादेव । जुगुप्सिषते ॥ इति सन्नन्ताः ॥

इति १२८ अंशाः ।

अथ यङन्ताः । धातोरेकाच इत्यादिना यङ्विधाने धातोरित्युक्तिरार्द्धधातुकत्वाय । तेन भ्रुवो वचिरित्यादि । एकाचः किम् । पुनः पुनर्जागर्ति । हलादेः किम् । भृशमीक्षते। भृशं शोभते रोचते इत्यत्र यङ् नेति भाष्यम् । पौनःपुन्ये तु स्यादेव । शोशुभ्यते । रोरुच्यते॥

सूचिसूत्रिमूत्र्यट्यर्त्यशूर्णोतिभ्यो यङ् ॥

सोसूच्यते । सोसूत्र्यते । मोमूत्र्यते।एकाच्त्वाभावेन षोपदेशत्वाभात्षत्वं नास्य हलः । आदेः परस्य । अतो लोपः। सोसूचाञ्चक्रे । सोसूचिता । दीर्घो कितः । अटाट्यते ॥

यङि च ७ । ४ । ३० ॥

अर्त्तेः संयोगादेश्च ऋतो गुणो याङे । यकारपरस्य रेफस्य न द्वित्वनिषेधः । अरार्यते इति भाष्योदाहरणात् । अरार्यते । अरारिता । ऊर्णोनूयते । वेभिद्यते । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्नोपधागुणः । बेभिदिता ॥

नित्यं कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३ ॥

गत्यर्थात्कौटिल्येऽर्थे एव यङ् नतु क्रियासमभिहारे । कुटिलं व्रजति वाव्रज्यते ॥

लुपसदचरजपजभदहदशगॄभ्यो भावगर्हायाम् ३।१।२४॥

एभ्यो धात्वर्थगर्हायामेव यङ् । गर्हितं लुम्पति लोलुप्यते । सासद्यते ॥

जपजभदहदशभञ्जपशां च ७ । ४ । ८६ ॥

अभ्यासस्य नुक् यङ्लुकोः । नुकानुस्वारो लक्ष्यते स च पदान्तवद्वाच्यः । जञ्जप्यते । जंजप्यते इत्यादि ॥

चरफलोश्च ७ । ४ । ८७ ॥

अभ्यासस्यातो नुक् यङ्लुकोः ॥

उत्परस्यातः ७ । ४ । ८८ ॥

चरफलोरभ्यासात्परस्यात उत् यङ्लुकोः । हलि चेति दीर्घः ॥ चञ्चूर्यते । चंचूर्यते । पम्फुल्यते पंफुल्यते ॥

ग्रो यङि ८ । २ । २० ॥

गिरते रेफस्य लत्वं यङि । जेगिल्यते । घुमास्था इतीत्वम् । देदीयते । पेपीयते । सेपीयते । विभाषा श्वेः । शोशूयते । शेश्वीयते । यङि च । सास्मर्यते । रीङृतः । चेक्रीयते । सुट् । संचेस्क्रीयते ॥

नुगतोऽनुनासिकान्तस्य ७ । ४ । ८५ ॥

अनुनासिकान्तस्यांगस्य योऽभ्यासोऽदन्तस्तस्य नुक् । नुकाऽनुस्वारो लक्ष्यत इत्युक्तम् । यँय्यम्यते यंयम्यते । तपरत्वसामर्थ्यात् भूतपूर्वदीर्घस्यापि न । वामाम्यते । ये विभाषा । जाजायते जञ्जन्यते । हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नी । जेघ्नीयते । अन्यत्र जंघन्यते ॥

रीगृदुपधस्य च ७ । ४ । ९० ॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीक् यङ्लुकोः । वरीवृत्यते । क्षुभ्नादौ, नरीनृत्यते । जरीगृह्यते । चलीक्लृप्यते ॥

रीगृत्वत इति वक्तव्यम् * ॥

वरीवृत्यते । परीपृच्छ्यते ॥

ई घ्राध्मोः ७ । ४ । ३१ ॥

जेघ्रीयते । देध्मीयते ॥

अयङि य क्ङिति ७ । ४ । २२ ॥

शीङोऽयङादेशो यादौ क्ङिति परे । शाशय्यते । अभ्यासस्य

ह्रस्वः। ततो गुणः। डोढौक्यते। तोत्रौक्यते। इति यङन्ताः। अथ यङ्लुगन्ताः। गर्द। जागर्दीति। जागर्त्ति। जागर्त्तः। हौ जागर्द्धि। सिपि दश्चेति रुर्वा। रोरि ढ्रलोप इति दीर्घः। अजागाः। अजागर्त्। नानदीति। नानत्ति। सिपि अनानः। अनानत्। लुङ् अनानादीत् अनानदीत्। चिती। नाभ्यस्तस्येति गुणनिषेधः। चेचितीति चेचेत्ति। अचेचितीत अचेचेत अचेचेः। अचेचेत्। लुङि अचेचेतीत॥

रुग्रिकौ च लुकि ७। ४। ९१॥

ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रुक् रिक् रीक् एते आगमाः यङ्लुकि॥

ऋतश्च ७। ४। ९२॥

ऋदन्तधातोरपि तथा। वर्वृतीति वरिवृतीति वरीवृतीति। वर्वर्त्ति। वर्वर्तिता। गणनिर्दिष्टत्वान्न वृद्भ्य इति न। वर्वर्तिष्यति। अवर्वृतीत्। अवर्वर्त्। सिपि दश्चेति रुत्वपक्षे रोरि। अवर्वाः। गणनिर्दिष्टत्वादङ् न। अवर्वर्त्तीत् ३। चर्करीति ३। चर्कर्त्ति चरिकर्त्ति चरीकर्त्ति। चर्कृतः ३। चर्कति ३। चर्कराञ्चकार ३। चर्करिता ३। अचर्करीत् ३। अचर्कः ३। चर्कृयात् ३। आशिषि रिङ्। चक्रियात् ३। अचर्कारीत् ३। ऋतश्चेति तपरत्वान्नेह। कॄ विक्षेपे। चाकर्ति। तातर्त्ति। तातीर्त्तः। तातिरति। तातीर्हि। तातराणि। अतातरीत्। अतातः। अतातीर्त्ताम्। अतातरुः। अतातारीत्। अतातारिष्टामित्यादि। जङ्गमीति। जङ्गन्ति। अनुदात्तोपदेशेत्यनुनासिकलोपः। जङ्गतः। जङ्ग्मति। म्वोश्च। जङ्गन्मि। जङ्गन्वः। एकाज्ग्रहणान्नेण्निषेधः। जङ्गमिता। अनुनासिकलोपस्याभीयत्वेनासिद्धत्वान्न हेर्लुक्। जङ्गहि। मो नः। अजङ्गन्। अनुबन्धनिर्देशान्न च्लेरङ्। ह्यन्तेति न वृद्धिः। अजङ्गमीत्। अजङ्गमिष्टाम्। हनो यङ्लुक्। यद्यपि अभ्यासाच्चेति कुत्वं हन्तेरिति श्तिवन्तमनुवर्त्य विहितं तथापि यङ्लुकि भवत्येवेति न्यासः। श्तिपा शपेति त्वनित्यं

गुणो यङ्लुकोरिति सामान्यापेक्षज्ञापकात् । जंघनीति जंघन्ति । जंघतः । जंघ्नति । जंघनिता । श्तिपा निर्देशाज्जादेशो न । जंघहि । अजंघनीत् । अजंघन् । जंघन्यात् । आशिषि तु । वध्यात् । अवधीत् । अवधिष्टामित्यादि । वधादेशस्य द्वित्वं न स्थानिवत्त्वेन अनभ्यासस्येति निषेधात् । तद्धि समानाधिकरणं धातोर्विशेषणम् । बहुव्रीहिबलात् आङ्पूर्वात्तु आङो यमहन इत्यात्मनेपदम् । आजंघते। लुका लुप्ते प्रत्ययलक्षणत्वाभावात् स्वपिस्यमीत्युत्वं न रुदादिभ्य इति गणनिर्दिष्टत्वादिण्न । सास्वपीति सास्वप्ति । सास्वप्तः । सास्वपति । असास्वपीत् । असास्वप् । सास्वप्यात् । आशिषि वचिस्वपीत्युत्वम् । सासुप्यात् । असास्वपीत् । असास्वपीत् । ग्रह ग्रहणे । जर्गृहीति ३ । जर्गर्ढि । जर्गृढः ३ । जर्गृहति ३ । अजघर्ट् ३ । गृह्णातेस्तु जाग्रहीति । जाग्राढि । तसादौ ङिन्निमित्तं सम्प्रसारणम् । तस्य बहिरङ्गत्वेनासिद्धत्वान्न रुगादयः । जागृढः । जागृहति । जाग्रहीषि । जाघ्रक्षि । जाग्रहिता । ग्रहो लिटि इति दीर्घस्तु न तत्रैकाच इत्यनुवृत्तेः । माधवस्तु दीर्घमाह । तद्भाष्यविरुद्धम् । जर्गृधीति ३ । जर्गर्द्धि ३ । जर्गृद्धः ३ । जर्गृधति ३ । जर्गृधीषि ३ । जर्घर्त्सि ३ । अजर्गृधीत् ३ । इडभावे गुणः । हल्ङ्यादिलोपः भष्भावः। जश्त्वचर्त्वे। अजघर्त् ३ । अजर्गृद्धाम् । सिपि दश्चेति पक्षे रुत्वम् । अजर्घाः ३ । अजर्गृधीत् ३ । अजर्गर्द्धिष्टाम् ३ ॥ इति यङ्लुगन्ताः ॥

इति १२९ अंशाः ।

नः क्ये । सन्निपातपरिभाषया क्यचो यस्य लोपो न । गव्यांचकार । गव्यिता । नाव्यांचकार । नाव्यिता । नलोपः । राजीयति । प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । त्वद्यति । मद्यति । एकार्थयोः इत्येव । युष्मद्यति । अस्मद्यति । इन्दि च। गीर्यति पूर्यति। धातोः इत्येव । नेट् । दिवमिच्छति दिव्यति । इह पुरमिच्छति पुर्यतीति माधवोक्तं

त्युदाहरणं चिन्त्यम् । पूर्गिरोः साम्यात् । दीव्यतीति दीर्घस्तु
ाचः प्रामादिक एव । अदस्यति ॥

रीङृतः ॥

कर्त्रीयति ॥

क्यच्व्योश्च ६ । ४ । १५२ ॥

हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः क्ये च्वौ च । इति वक्ष्यमाणयत्रं
स्य लोपः । गार्गीयति । वाच्यति । अकृत्सार्व इति दीर्घः ।
कवीयति ॥ समिध्यति । क्यस्य विभाषा । आदेः परस्य अतो
लोपः । तस्य स्थानिवत्त्वाल्लघूपधगुणो न । समिधिता समिध्यिता ॥

मान्तप्रकृतिकसुबन्तादव्ययाच्च क्यच् न * ॥

किमिच्छति । इदमिच्छति । स्वरिच्छति ॥

अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षापिपासागर्धेषु ७।४।३४ ॥

क्यजन्ता निपात्यन्ते । अशनायति । उदन्यति । धनायति ।
बुभुक्षादौ किम् । अशनीयति । उदकीयति । धनीयति ॥

अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ७।१।५१ ॥

एषां क्यचि असुगागमः । अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् । अश्व-
स्यति वडवा । वृषस्यति गौः॥

क्षीरलवणयोर्लालसायाम् * ॥

क्षीरस्यति बालः । लवणस्यत्युष्ट्रः ॥

सर्वप्रातिपदिकानां क्यचि लालसायां सुगसुकौ * ॥

दधिस्यति दध्यस्यति । मधुस्यति मध्वस्यति । काम्यच । पुत्र-
काम्यति । इह यस्य हलः इति लोपो न । अनर्थकत्वात् । यस्य इति
संघातग्रहणमित्युक्तम् । यशस्काम्यति । सर्पिष्काम्यति । मान्ता-
व्ययेभ्योऽप्ययम् । किंकाम्यति । स्वःकाम्यति । आचारे क्यङु-
क्तः । तत्र सान्तस्य लोपस्तु क्यङ्संनियोगशिष्टः।स च व्यवस्थितः।
ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया । ओजःशब्दो वृत्तिवि-

पये तद्वाति । ओजायते । अप्सरायते । यशायते । यशस्यते । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विबुक्तः । कविरिवाचरति कवयति । आशीर्लिङि कवीयात् । सिचि वृद्धिः इत्यत्र धातोः इत्यनुवर्त्य धातुरेव यो धातुरिति व्याख्यानान्नामधातोर्न वृद्धिरिति कैयटादयः । अकवयीत् । माधवस्तु नामधातोरपि वृद्धिमिच्छति । अकवायीत् । विरिव वयति । विवाय । विव्यतुः । अवयीत् अवायीत् । श्रीरिव श्रयति । शिश्राय । शिश्रियतुः । पितेव पितरति । आशिषि रिङ् । पित्रियात् ॥

अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति ६ । ४ । १५ ॥

अनुनासिकान्तस्योपधाया दीर्घः क्वौ झलादौ च क्ङिति । इदमिवाचरति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति । मथीनति । ऋभुक्षीणति ॥

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ३ । १ । १२ ॥

अभूततद्भावविषयेभ्यो भृशादिभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् । हलन्तानामेषां लोपश्च । अभृशो भृशो भवति भृशायते । अच्वेः इति पर्युदासबलात् अभूततद्भावे इति लब्धम् । तेनेह न । क्व दिवा भृशा भवन्ति । ये रात्रौ भृशा नक्षत्रादयस्ते दिवा क्व भवन्तीत्यर्थः। सुमनस् अस्य सलोपः । सुमनायते । चुरादौ संग्राम युद्धे इति पठ्यते । तत्र संग्राम इति प्रातिपदिकम् । तस्मात् तत्करोति इति णिच् सिद्धः । तत्संनियोगेनानुबन्ध आसज्यते । युद्धे योऽयं ग्रामशब्द इत्युक्तेऽपि सामर्थ्यात्संग्रामशब्दे लब्धे विशिष्टपाठो ज्ञापयति । उपसर्गसमानाकारं पूर्वपदं धातुसंज्ञाप्रयोजके प्रत्यये चिकीर्षिते पृथक् क्रियते इति । तेन मनःशब्दात्प्रागट् । स्वमनायत । उदमनायत ॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ३ । १ । १३ ॥

लोहितादिभ्यो डाजन्ताच्च भवत्यर्थे क्यष् ॥

वा क्यषः १ । ३ । ९० ॥

क्यपन्तात्परस्मैपदं वा । लोहितायति लोहितायते । अत्र अ-
च्वेः इत्यनुवृत्त्याऽभूततद्भावविषयत्वं लब्धं तच्च लोहितशब्दस्यैव
विशेषणम् । नतु डाचोऽसंभवात् । नाप्यादिशब्दग्राह्याणां तस्य प्रत्या-
ख्यानात् । तथा च वार्तिकम् । लोहितडाज्भ्यः क्यष्वचनं भृशा-
दिष्वितराणि इति । न चैवं काम्यच इव क्यषोऽपि ककारः श्रूयेत ।
उच्चारणसामर्थ्यादिति वाच्यम् । तस्यापि भाष्ये प्रत्याख्यानात् ।
पटपटायति पटपटायते । कृभ्वस्तियोगं विनापीह डाच् । डाज-
न्तात्क्यषो विधानसामर्थ्यात् ॥

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः ३ । १ । १५ ॥

रोमन्थतपोभ्यां कर्मभ्यां क्रमेण वर्तनायां चरणे चार्थे क्यङ् ।
रोमन्थं वर्तयति रोमन्थायते ॥

हनु चलन इति वक्तव्यम् ॥

चर्वितस्याकृष्य पुनश्चर्वणमित्यर्थः । नेह । कीटो रोमन्थं
वर्तयति । अपानप्रदेशान्निःसृतं द्रव्यमिह रोमन्थः । तदश्नाती-
त्यर्थः इति कैयटः । वर्तुलं करोतीत्यर्थः इति न्यासकारहरदत्तौ ।
तपसः परस्मैपदं च । तपश्चरति तपस्यति ॥

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ३ । १ । १६ ॥

आभ्यां कर्मभ्यां क्यङ् । बाष्पमुद्वमति बाष्पायते । ऊष्मायते ॥

फेनाच्चेति वाच्यम् ॥

फेनायते ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ३ । १ । १७ ॥

एभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यङ् । शब्दं करोति शब्दायते ।
पक्षे तत्करोति इति णिजपीष्यत इति न्यासः । शब्दयति ॥

सुदिनदुर्दिननीहारेभ्यश्च ॥

सुदिनायते ॥

इति १३० अंशाः । इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ।

सुखादिभ्यः कर्तृवेदनायाम् ३ । १ । १८ ॥

सुखादिभ्यः कर्मभ्यो वेदनायामर्थे क्यङ् । वेदनाकर्तुरेव चेत् सुखादीनि । सुखं वेदयते सुखायते । कर्तृग्रहणं किम् । परस्य सुखं वेदयते ॥

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ३ । १ । १९ ॥

करणे इत्यनुवृत्तेः क्रियाविशेषे पूजायां परिचर्यायामाश्चर्ये च । नमस्यति देवान् । पूजयतीत्यर्थः । वरिवस्यति गुरून् । शुश्रूषत इत्यर्थः । चित्रीयते । विस्मयत इत्यर्थः । विस्मापयत इत्यन्ये ॥

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ३ । १ । २० ॥

पुच्छादुदसने व्यसने पर्यसने च । विविधं विरुद्धं वोत्क्षेपणं व्यसनम् । उत्पुच्छयते । विपुच्छयते । परिपुच्छयते ॥

भाण्डात्समाचयने ❀ ॥

संभाण्डयते । भाण्डानि समाचिनोति । राशीकरोतीत्यर्थः । समबभाण्डत ॥

चीवरादर्जने परिधाने च ❀ ॥

सञ्चीवरयते भिक्षुः । चीवराण्यर्जयति परिधत्ते वेत्यर्थः ॥

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ३ । १ । २१ ॥

कृञर्थे । मुण्डं करोति मुण्डयति । व्रताद्भोजनतन्निवृत्त्योः।पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति । वस्त्रात्समाच्छादने संवस्त्रयति । हल्यादिभ्यो ग्रहणे । हलिकल्योरदन्तत्वं च निपात्यते । हलिं कलिं वा गृह्णाति हलयति । कलयति । महद्धलं हलिः । परत्वाद्वृद्धौ सत्यामपीष्ठवद्भावेऽगेव लुप्यते । अतः सन्वद्भावदीर्घौ न । अजहलत् । अचकलत् । कृतं गृह्णाति कृतयति । तूस्तानि विहन्ति वितूस्तयति। तूस्तं केशा इत्येके । जटीभूताः केशा इत्यन्ये । पापमित्यपरे । मुण्डादयः सत्यापपाश इत्यत्रैव पठितुं युक्ताः । प्रातिपदिकाद्धा

त्वर्थे इत्येव सिद्धे केषाचिद्ग्रहणं सापेक्षेभ्योऽपि णिजर्थम् । मुण्डयति माणवकम् । मिश्रयत्यन्नम् । श्लक्ष्णयति वस्त्रम् । लवणयति व्यञ्जनमिति । हलिकल्योरदन्तत्वार्थम् । सत्यस्यापुगर्थम् । केषाचित्तु प्रपञ्चार्थम् । सत्यं करोत्याचष्टे वा सत्यापयति ॥

अर्थवेदयोरप्यापुग् वक्तव्यः ॥

अर्थापयति । वेदापयति । पाशं विमुञ्चति विपाशयति । रूपं पश्यति रूपयति । वीणयोपगायत्युपवीणयति । तूलेनानुकुष्णात्यनुतूलयति । तृणाग्रं तूलेनानुघट्टयतीत्यर्थः । श्लोकैरुपस्तौति उपश्लोकयति । सेनयाभियाति अभिषेणयति । उपसर्गात्सुनोति इति षः । अभ्यषेणयत । प्राक्सितात् इति षः । अभिषिषेणयिषति । स्थादिष्वभ्यासेन च इति षः । लोमान्यनुमार्ष्टि अनुलोमयति । त्वच संवरणे । घः। त्वच गृह्णाति त्वचयति । वर्मणा सनह्यति संवर्मयति । वर्ण गृह्णाति वर्णयति । चूर्णैरवध्वंसते अवचूर्णयति ॥

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च ॥

प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे णिच् । इष्ठे यथा प्रातिपदिकस्य पुंवद्भावरभावटिलोपविन्मतुब्लोपयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशभसंज्ञास्तद्वण्णावपि । पटुमाचष्टे पटयति । परत्वाद्वृद्धौ सत्यां टिलोपः । अपीपटत् । णौ चङि इत्यत्र भाष्ये तु वृद्धेर्लोपो बलीयान् इति स्थितम् । अपपटत् ॥

तत्करोति तदाचष्टे ॥

पूर्वस्य प्रपञ्चः । करोत्याचष्ट इति धात्वर्थमात्रं णिजर्थः । लडर्थस्त्वविवक्षित' ॥

तेनातिक्रामति ॥

अश्वेनातिक्रामति अश्वयति । हस्तिनातिक्रामति हस्तयति ॥

धातुरूपं च ॥

णिच्प्रकृतिर्धातुरूप प्रतिपद्यते । चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तथा च वार्तिकम् ॥

आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्यापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम् इति * ॥

कंसवधमाचष्टे कंसं घातयति इह कंसं हन इ इति स्थिते ॥

हनस्तोऽचिण्णलोः ७ । ३ । ३२ ॥

हन्तेस्तकारोऽन्तादेशः चिण्णल्वर्जे ञिति णिति । नन्वत्राङ्गसंज्ञा धातुसंज्ञा च कंसविशिष्टस्य प्राप्ता ततश्चाड्द्वित्वयोर्दोषः । किंच कुत्वतत्वेन स्याताम्। धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानात् । सत्यं प्रकृतिवच्च इति चकारो भिन्नक्रमः । कारकं च चात्कार्यम् । हेतुमण्णिचः प्रकृतेर्हन्यादेर्हेतुमण्णौ यादृशं कारकं धातावनन्तर्भूतं द्वितीयान्तं यादृशं च कार्यं कुत्वतत्वादि तदिहापीत्यर्थः। कंसमजीघतत् ॥

कर्तृकरणाद्धात्वर्थे ॥

कर्तुर्व्यापारार्थं यत्करणं न तु चक्षुरादिमात्रमित्यर्थः । असिना हन्ति असयति ॥

णिङङ्गान्निरसने ॥

अङ्गवाचिनः प्रातिपदिकान्निरसनेऽर्थे णिङ् । हस्तौ निरस्यति हस्तयते । पादयते ॥

श्वेताश्वाश्वतरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरेतकलोपश्च ॥

श्वेताश्वादीनां चतुर्णामश्वादयो लुप्यन्ते णिङ् च धात्वर्थे । श्वेताश्वमाचष्टे तेनातिक्रामति वा श्वेतयते । अश्वतरमाचष्टेऽश्वयते । गालोडितं वाचां विमर्शः तत्करोति गालोडयते । आह्वरयते । केचित्तु णिचमेवानुवर्तयन्ति तन्मते परस्मैपदमपि ॥

पुच्छादिषु धात्वर्थे इत्येव सिद्धम् ॥

णिजन्तादेव बहुलवचनादात्मनेपदमस्तु मास्तु पुच्छमाण्ड इति णिङ्विधिः। शेषा नामधातवोऽग्रे वक्ष्यंते ॥इति नामधातुप्रक्रिया ॥

इति १३१ अंशाः ।

अभिज्ञावचने लृट् ३।२।११२॥

स्मृतिबोधिन्युपपदे भूतानद्यतने धातोर्लृट्। लङोऽपवादः। स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः। एवं बुध्यसे चेतयसे इत्यादियोगेऽपि। तेषामपि प्रकरणादिवशेन स्मृतौ वृत्तिसंभवात्॥

न यदि ३।२।११३॥

यद्योगे उक्तं न। अभिजानासि कृष्ण यद्वने अभुञ्ज्महि॥

विभाषा साकाङ्क्षे ३।२।११४॥

उक्तविषये लृड्वा। लक्ष्यलक्षणभावेन साकाङ्क्षता धातोरर्थः। स्मरसि कृष्ण वने वत्स्यामस्तत्र गाश्चारयिष्यामः। वासो लक्षणं चारणं लक्ष्यम्। पक्षे लङ्। यच्छब्दयोगेऽपि न यदि इति बाधित्वा परत्वाद्विकल्पः। परोक्षे लिट्। चकार। उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्। सुप्तोऽहं किल विललाप। बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्॥

अत्यन्तापह्नवे लिड्वक्तव्यः ॥

कलिङ्गेष्ववात्सीः। नाहं कलिङ्गाञ्जगाम॥

हशश्वतोर्लङ् च ३।२।११६॥

अनयोरुपपदयोर्लिड्विषये लङ् चाल्लिट्। इति हाकरोत्चकार वा। शश्वदकरोच्चकार वा॥

प्रश्ने चासन्नकाले ३।२।११७॥

प्रष्टव्यः प्रश्नः। आसन्नकाले पृच्छ्यमानेऽर्थे लिड्विषये लङ्लिटौ। अगच्छत्किम्। जगाम किम्। अनासन्ने तु कंसं जघान किम्॥

लट् स्मे ३।२।११८॥

लिटोऽपवादः। यजति स्म युधिष्ठिरः॥

अपरोक्षे च ३।२।११९॥

भूतानद्यतने लट् स्मयोगे। एवं स्म पिता ब्रवीति॥

ननौ पृष्टप्रतिवचने ३ । २ । १२० ॥

अनद्यतने परोक्ष इति निवृत्तम् । भूते लट् । अकार्षीः किम् । ननु करोमि भोः ॥

नन्वोर्विभाषा ३ । २ । १२१ ॥

अकार्षीः किम् । न करोमि । नाकार्षम् । अहं नु करोमि । अहं न्वकार्षम् ॥

पुरि लुङ् चास्मे ३ । २ । १२२ ॥

अनद्यतनग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्तते । पुराशब्दयोगे भूतानद्यतने विभाषा लुङ् चाल्लट् न तु स्मयोगे । पक्षे यथाप्राप्तम् । वसन्तीह पुरा छात्राः । अवात्सुः । अवसन् । ऊषुर्वा । अस्मे किम् । यजति स्म पुरा । भविष्यतीत्यनुवर्तमाने ॥

यावत्पुरानिपातयोर्लट् ३ । ३ । ४ ॥

यावद्भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते । निपातावेतौ निश्चयं द्योतयतः। निपातयोः किम् । यावद्दास्यते तावद्भोक्ष्यते । करणभूतया पुरा यास्यति ॥

विभाषा कदाकर्ह्योः ३ । ३ । ५ ॥

भविष्यति लट् वा । कदा कर्हि वा भुङ्क्ते भोक्ष्यते भोक्ता वा ॥

किंवृत्ते लिप्सायाम् ३ । ३ । ६ ॥

भविष्यति लड्वा । कं कतरं कतमं वा भोजयसि भोजयिष्यसि भोजयितासि वा । लिप्सायां किम् । कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ॥

लिप्स्यमानसिद्धौ च ३ । ३ । ७ ॥

लिप्स्यमानेनान्नादिना स्वर्गादेः सिद्धौ गम्यमानायां भविष्यति लड्वा । योऽन्नं ददाति दास्यति दाता वा स स्वर्गं याति यास्यति याता वा ॥

लोडर्थलक्षणे च ३ । ३ । ८ ॥

लोडर्थः प्रैषादिर्लक्ष्यते येन तस्मिन्नर्थे वर्तमानाद्धातोर्भविष्यति लड्वा । कृष्णश्चेद्भुङ्क्ते त्वं गाश्चारय । पक्षे लृड्लुटौ ॥

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ३ । ३ । ९ ॥

ऊर्ध्वं मुहूर्ताद्भव ऊर्ध्वमौहूर्तिकः । निपातनात्समास उत्तरपदवृद्धिश्च। ऊर्ध्वमौहूर्तिके भविष्यति । लोडर्थलक्षणे वर्तमानाद्धातोर्लिङ्लटौ वा । मुहूर्तादुपरि उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आगच्छति आगमिष्यति आगन्ता वा । अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥

वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा ३ । ३ । १३१ ॥

समीपमेव सामीप्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । वर्तमाने लट् इत्यारभ्य उणादयो बहुलम् इति यावद्येनोपाधिना प्रत्यया उक्तास्ते तथैव वर्तमानसमीपे भूते भविष्यति च वा स्युः । कदा आगतोऽसि । अयमागच्छामि। अयमागमम्। कदा गमिष्यसि । एष गच्छामि। गमिष्यामि वा ॥

आशंसायां भूतवच्च ३ । ३ । १३२॥

वर्तमानसामीप्य इति नानुवर्तते। भविष्यति काले भूतवद्वर्तमानवच्च प्रत्यया वा आशंसायाम । देवश्चेद्वर्षिद्वर्षति वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्म वपामः वप्स्यामो वा। सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः तेन लङ्लिटौ न ॥

क्षिप्रवचने लृट् ३ । ३ । १३३ ॥

क्षिप्रपर्याय उपपदे पूर्वविषये लृट् । वृष्टिश्चेत् क्षिप्रमाशु त्वरितं वा यास्यति शीघ्रं वप्स्यामः । नेति वक्तव्ये लृड्ग्रहणं लुटोऽपि विषये यथा स्यात् । श्वः शीघ्रं वप्स्यामः ॥

आशंसावचने लिङ् ३ । ३ । १३४ ॥

आशंसावाचिन्युपपदे भविष्यति लिङ् स्यान् नतु भूतवत् । गुरुश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥

नानद्यतनवत्क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ३ । ३ ।१३५ ॥

क्रियायाः सातत्ये सामीप्ये च लङ्लुटौ न । यावज्जीवमन्नमदाद्दास्यति वा । सामीप्यं तुल्यजातीयेनाव्यवधानम् । येयं पौर्णमास्य-

तिक्रान्ता तस्यामग्नीनाधीत । सोमेनायष्ट । येयममावास्यागामिनी तस्यामग्नीनाधास्यते । सोमेन यक्ष्यते ॥

भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ३ । ३ । १३६ ॥

भविष्यति काले मर्यादोक्तावरस्मिन् प्रविभागेऽनद्यतनवन्न । योऽयमध्वा गन्तव्य आ पाटलिपुत्रात्तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र रुक्मं पास्यामः ॥

कालविभागे चानहोरात्राणाम् ३ । ३ । १३७ ॥

पूर्वसूत्रं सर्वमनुवर्तते । अहोरात्रसम्बन्धिनि विभागे प्रतिषेधार्थमिदम् । योगविभाग उत्तरार्थः । योऽयं वत्सर आगामी तस्य यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । अनहोरात्राणां किम् । योऽयं मास आगामी तस्य योऽवरः पञ्चदशरात्रस्तत्राध्येतास्महे ॥

परस्मिन्विभाषा ३ । ३ । १३८ ॥

अवरस्मिन् वर्ज्यं पूर्वसूत्रद्वयमनुवर्तते । अप्राप्तविभाषेयम् । योऽयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्राध्येष्यामहे । अध्येतास्महे ॥

इति १३२ अंशाः ।

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ॥

भविष्यतीत्येव । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् ॥

भूते च ३ । ३ । १४० ॥

पूर्वसूत्रं संपूर्णमनुवर्तते ॥

वोताप्योः ३ । ३ । १४१ ॥

वा आ उताप्योः उताप्योः इत्यतः प्राग्भूते लिङ्निमित्ते लृङ् चेत्यधिक्रियते । पूर्वसूत्रं तु उताप्योः इत्यादौ प्रवर्तत इति विवेकः ॥

गर्हायां लडपिजात्वोः ३ । ३ । १४२ ॥

आभ्यां योगे लट् कालत्रये गर्हायाम् । लुङादीन्परत्वादयं बाधते । अपि जायां त्यजसि जातु गणिकामादत्से गर्हितमेतत् ॥

विभाषा कथमि लिङ् च ३ । ३ । १४३ ॥

गर्हायामित्येव कालत्रये लिङ् चाल्लट् । कथं धर्मं त्यजेस्त्यजसि वा । पक्षे कालत्रये लकाराः । अत्र भविष्यति नित्यं लृङ् भूते वा । कथं नाम तत्र भवान्धर्ममत्यक्ष्यत् ॥

किंवृत्ते लिङ्लृटौ ३ । ३ । १४४ ॥

गर्हायामित्येव । विभाषा तु नानुवर्तते । कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा । लृङ् प्राग्वत् ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ३ । ३ । १४५ ॥

गर्हायामिति निवृत्तम् । अनवक्लृप्तिरसंभावना । अमर्षोऽक्षमा । न संभावयामि न मर्षये वा । भवान्हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा । कः कतरः कतमो वा हरिं निन्देत् निन्दिष्यति वा । लृङ् प्राग्वत् ॥

किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ३ । ३ । १४६ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरित्येतत् गर्हाया च इति यावदनुवर्तते । किंकिलेति समुदायः क्रोधद्योतक उपपदम् । अस्त्यर्थाः अस्तिभवतिविद्यतयः । लिङोऽपवादः । न श्रद्दधे न मर्षये वा किंकिल त्वं शूद्रान्नं भोक्ष्यसे । भवति विद्यते वा । शूद्रीं गमिष्यसि । अत्र लृङ् न ॥

जातुयदोर्लिङ् ३ । ३ । १४७ ॥

यदायद्योरुपसंख्यानम् ॥

लटोऽपवादः । जातु यद्यदा यदि वा त्वादृशो हरिं निन्देन्नावकल्पयामि न मर्षयामि । लृङ् प्राग्वत् ॥

यच्चयत्रयोः ३ । ३ । १४८ ॥

यच्च यत्र वा त्वमेवं कुर्याः न श्रद्दधे न मर्षयामि ॥

गर्हायां च ३ । ३ । १४९ ॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरिति निवृत्तम् । यच्चयत्रयोर्योगे गर्हायां लिङ्‌च । यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः । अन्याय्यं तत् ॥

चित्रीकरणे च ३ । ३ । १५० ॥

यच्च यत्र वा त्वं शूद्रं याजयेः । आश्चर्यमेतत् ॥

शेषे लृडयदौ ३ । ३ । १५१ ॥

यच्चयत्राभ्यामन्यस्मिन्नुपपदे चित्रीकरणे गम्ये धातोर्लृट् । आश्चर्यमन्धो नाम कृष्णं द्रक्ष्यति । अयदौ किम् । आश्चर्यं यदि सोऽधीयीत ॥

उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ३ । ३ । १५२ ॥

बाढमित्यर्थेऽनयोस्तुल्यार्थता । उत अपि वा हन्यादघं हरिः । समर्थयोः किम् । उत दण्डः पतिष्यति । अपिधास्यति द्वारम् । प्रश्नः प्रच्छादनं च गम्यते । इतः प्रभृति लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूतेऽपि नित्यो लिङ् ॥

कामप्रवेदनेऽकच्चिति ३ । ३ । १५३ ॥

स्वाभिप्रायाविष्करणे गम्यमाने लिङ् नतु कच्चिति । कामो मे भुञ्जीत भवान् । अकच्चिति इति किम् । कच्चिज्जीवति ॥

संभावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे ३ । ३ । १५४॥

अलमर्थोऽत्र प्रौढिः संभावनमित्यलमिति च प्रथमया सप्तम्या च विपरिणम्यते । संभावने लिङ् । तच्चेत्संभावनमलमिति सिद्धाप्रयोगे सति । अपि गिरिं शिरसा भिन्द्यात् । सिद्धाप्रयोगे किम् । अलं कृष्णो हस्तिनं हनिष्यति ॥

विभाषा धातौ संभावनवचनेऽयदि ३ । ३ । १५५॥

पूर्वसूत्रमनुवर्तते । संभावनेऽर्थे धातावुपपदे उक्तेऽर्थे लिङ् वा नतु यच्छब्दे । पूर्वेण नित्ये प्राप्ते वचनम् । संभावयामि भुञ्जीत भोक्ष्यते वा भवान् । अयदि किम् । संभावयामि यद्भुञ्जीथास्त्वम् ॥

हेतुहेतुमतोर्लिङ् ३ । ३ । १५६ ॥

वा कृष्णं नमेचेत्सुखं यायात् । कृष्णं नंस्यति चेत्सुखं यास्यति । भविष्यत्येवेष्यते नेह । हन्तीति पलायते ॥

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ३ । ३ । १५७ ॥

इच्छामि भुञ्जीत भुङ्क्तां वा भवान् । एवं कामये प्रार्थये इत्यादियोगे बोध्यम् ॥

कामप्रवेदन इति वक्तव्यम् * ॥

नेह । इच्छन्करोति ॥

लिङ् च ३ । ३ । १५९ ॥

समानकर्तृकेषु इच्छार्थेषु लिङ् । भुञ्जीयेतीच्छति ॥

इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने ३ । ३ । १६० ॥

लिङ् पक्षे लट् । इच्छेत् इच्छति । कामयेत् कामयते । विधिनिमंत्रणे इति लिङ् । विधौ–यजेत। निमन्त्रणे–इह भुञ्जीत भवान्। आमन्त्रणे–इहासीत । अधीष्टे–पुत्रमध्यापयेद्भवान् । संप्रश्ने–किं भो वेदमधीयीय उत तर्कम् । प्रार्थने–भो भोजनं लभेय । एवं लोट्॥

इति १३३ अंशाः ।

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ३ । ३ । १६३ ॥

प्रैषो विधिः । अतिसर्गः कामचारानुज्ञा । भवता यष्टव्यम् । भवान्यजताम् । चकारेण लोटोऽनुकर्षणं प्राप्तकालार्थम् ॥

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्तिके ३ । ३ । १६४ ॥

प्रैषादयोऽनुवर्तन्ते । मुहूर्तादूर्ध्वं यजेत यजताम् यष्टव्यम् ॥

स्मे लोट् ३ । ३ । १६५ ॥

पूर्वसूत्रस्य विषये । लिङः कृत्यानां चापवादः । ऊर्ध्वं मुहूर्ताद्यजता स्म ॥

अधीष्टे च ३ । ३ । १६६ ॥

स्म उपपदेऽधीष्टे लोट् । त्वं स्माध्यापय ॥

लिङ्यदि ३ । ३ । १६८ ॥

यच्छब्द उपपदे कालसमयवेलासु च लिङ् । कालः समयो वेला वा यद्भुञ्जीत भवान् ॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ॥

चाल्लिङ् । त्वं कन्यां वहेः ॥

शकि लिङ् च ३ । ३ । १७२ ॥

शक्तौ लिङ् चात्कृत्याः । भारं त्वं वहेः । माङि लुङ् । मा कार्षीः । कथं मा भवतु मा भविष्यतीति । नायं माङ् । किंतु माशब्दः ॥

धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ३ । ४ । १ ॥

धात्वर्थानां संबन्धे यत्र काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि स्युः । तिङ्वाच्यक्रियायाः प्राधान्यात्तदनुरोधेन गुणभूतक्रियावाचिभ्यः प्रत्ययाः । वसन्ददर्श । भूते लट् । अतीतवासकर्तृकं दर्शनमर्थः । सोमयाज्यस्य पुत्रो भविता । सोमेन यक्ष्यमाणो यः पुत्रस्तत्कर्तृकं भवनम् ॥

क्रियासमभिहारे लोट्लोटौ हिस्वौ वा च तध्वमोः ३।४।२॥

पौनःपुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोर्लोट् तस्य च हिस्वौ । तिङामपवादः । तौ च हिस्वौ क्रमेण परस्मैपदात्मनेपदसंज्ञौ च । तध्वमोर्विषये तु हिस्वौ वा । पुरुषैकवचनसंज्ञे तु नानयोरतिदिश्येते । हिस्वविधानसामर्थ्यात् । तेन सकलपुरुषवचनविषये परस्मैपदिभ्यो हिः कर्तरि आत्मनेपदिभ्यः स्वो भावकर्मकर्तृषु ॥

समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ३ । ४ । ३ ॥

अनेकक्रियासमुच्चये द्योत्ये प्रागुक्तं वा ॥

यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ३ । ४ । ४ ॥

आद्ये लोड्विधाने लोट्प्रकृतिभूत एव धातुरनुप्रयोज्यः ॥

समुच्चये सामान्यवचनस्य ३ । ४ । ५ ॥

समुच्चये लोड्विधौ सामान्यार्थस्य धातोरनुप्रयोगः । अनुप्रयोगाययायर्थं लडादयस्तिवादयश्च । ततः संख्याकालयोः पुरुषविशेषार्थस्य चाभिव्यक्तिः ॥

क्रियासमभिहारे द्वे वाच्ये ॥

याहि याहीति याति । पुनः पुनरतिशयेन वा यानं ह्यन्तस्यार्थः । एककर्तृकं वर्तमानं यानं यातीत्यस्य इतिशब्दस्त्वभेदान्वये तात्पर्यं ग्राहयति । एवं यातः । यान्ति । यासि । याथः । याथ । यात-यातेति । यूयं याथ याहि याहीत्ययासीत् यास्यति वा । अधी-ष्वाधीष्वेत्यधीते । ध्वंविषये पक्षेऽधीध्वमधीध्वमिति । यूयमधीध्वे । समुच्चये तु सक्तून् पिब । धानाः खादेत्यभ्यवहरति । अन्नं भुंक्ष्व । दाधिकमास्वादयस्वेत्यभ्यवहरते । तध्वमोस्तु पिबत खादतेत्यभ्य-वहरथ । भुंग्ध्वमास्वदध्वमित्यभ्यवहरध्वम् । पक्षे द्वित्वे । अथ समुच्चीयमानविशेषाणामनुप्रयोगार्थेन सामान्येनाभेदान्वयः । एवं सक्तून् पिबति धानाः खादति । अन्नं भुङ्क्ते दाधिकमास्वाद-यते । एतेन पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः । विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा वली य इत्थमस्वास्थ्यमदर्शयद् दिवः ॥ इति व्याख्यातम् । अवस्कन्दनलवनादिरूपा भूतानद्य-तनपरोक्षा एककर्तृका अस्वास्थ्यक्रियेत्यर्थात् । इह पुनःपुनरवस्क-न्देत्यादिरर्थ इति व्याख्यानं भ्रममूलकमेव । द्वितीयग्रन्थे क्रियास-मभिहार इत्यस्याननुवृत्तेः लोडन्तस्य द्विरापत्तेश्च । पुरीमवस्कन्द [illegible] त्यादि मध्यमपुरुषैकवचनमित्यपि केषांचिद् भ्रमः । [illegible] संज्ञे इह नेत्युक्तत्वात् ॥

दनं भोक्ष्येथे । भोक्ष्यध्वे । भोक्ष्ये । भोक्ष्यावहे । भोक्ष्यामहे । मन्यसे । मन्येथे । मन्यध्वे । इत्यादिरर्थः ॥ इति लकारार्थप्रकरणम्॥

इति १३४ अंशाः ।

तद्धिताः ४ । १ । ७६ ॥

वक्ष्यमाणाः प्रत्ययास्तद्धितसंज्ञाः ॥

समर्थानां प्रथमाद्वा ४ । १ । ८२ ॥

इदं पदत्रयमधिक्रियते प्राग्दिशः इति यावत् । सामर्थ्यं परिनिष्ठितत्वम् । कृतसंधिकार्यत्वमिति यावत् ॥

प्राग्दीव्यतोऽण् ४ । १ । ८३ ॥

तेन दीव्यति इत्यतः प्रागणधिक्रियते ॥

अश्वपत्यादिभ्यश्च ४ । १ । ८४ ॥

एभ्योऽण् स्यात्प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु । वक्ष्यमाणस्य ण्यस्यापवादः ॥

दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः ४ । १ । ८५ ॥

दित्यादिभ्यः पत्युत्तरपदाच्च प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ण्यः स्यादणोऽपवादः । दैत्यः । अदितेरादित्यस्य वादित्यः प्राजापत्यः । यमाच्च इति काशिकायाम् । याम्यः । पृथिव्या ञाञौ । पार्थिवा पार्थिवी । देवाद्यञञौ । दैव्यं दैवम् । बहिषष्टिलोपो यञ्च । बाह्यः। ईकक्च । बाहीकः । स्थाम्नोऽकारः । अश्वत्थामः । पृषोदरादित्वात्सस्य तः॥

भवार्थे तु लुग्वाच्यः * ॥

अश्वत्थामा । लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारः । बाह्वादीञोऽपवादः । उडुलोमाः उडुलोमान् । बहुषु किम् । औडुलोमिः । गोरजादिप्रसङ्गे यत् । गव्यम् । अजादिप्रसङ्गे किम् । गोभ्यो हेतुभ्य आगतं गोरूप्यम् । गोमयम् ॥

उत्सादिभ्योऽञ् ४ । १ । ८६ ॥

औत्सः ॥

अग्निकलिभ्यां ढग्वक्तव्यः * ॥

अग्नेरपत्याद्याग्नेयम् । कालेयम् ॥ इत्यपत्यादिविकारान्तार्थसाधारणाः प्रत्ययाः ॥

स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४ । १ । ८७ ॥

धान्यानां भवने इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमान्नञ्स्नञौ । स्त्रैणः । पौंस्नः । वत्यर्थे न । स्त्रीपुंवच्च इति ज्ञापकात् । स्त्रीवत् । पुंवत् ॥

तस्यापत्यम् ॥

उपगोरपत्यमौपगवः । तस्येदमित्यपत्येऽपि बाधनार्थं कृतं भवेत् । उत्सर्गः शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनम् ॥ योगविभागस्तु, भानोरपत्यं भानवः । कृतसन्धेः किम् । सौत्थितिः । अकृतव्यूहपरिभाषयासाबुत्थितिर्माभूत् । समर्थपरिभाषया नेह । वस्त्रमुपगोरपत्यं चैत्रस्य । प्रथमात् किम् । अपत्यवाचकात्पष्ठ्यर्थे मा भृत् । वाग्रहणाद्वाक्यमपि । देवयज्ञि इति सूत्रादन्यतरस्या ग्रहणानुवृत्तेः । समासोऽपि उपग्वपत्यम् । जातित्वान्ङीष् । औपगवी । आश्वपतः । दैत्यः । औत्सः । स्त्रैणः । पौंस्नः । अत इञ् । दाक्षिः । बाह्वादिभ्यश्च । बाहविः । औडुलोमिः । आकृतिगणोऽयम् ॥

सुधातुरकङ् च ४ । १ । ९७ ॥

चादिञ् । सुधातुरपत्यं सौधातकिः ॥

व्यासवरुडनिषादचाण्डालबिम्बानां चेति वक्तव्यम् * ॥

वैयासकिः । वारुडकिरित्यादि ॥

शिवादिभ्योऽण् ४ । १ । ११२ ॥

गोत्रे इति निवृत्तम् । शिवस्यापत्यं शैवः । गाङ्गः । पक्षे तिकादित्वात्फिञ् । गाङ्गायनिः । शुभ्रादित्वाड्ढक् । गाङ्गेयः ॥

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीभ्यस्तन्नामिकाभ्यः ४।१।११३॥

अवृद्धाभ्यो नदीमानुषीनामभ्योऽण् । ढकोऽपवादः । यामुनः । नार्मदः । चिन्तिताया अपत्यं चैन्तितः । अवृद्धाभ्यः किम् । वासवदत्तेयः । नदी इत्यादि किम् । वैनतेयः । तन्नामिकाभ्यः किम् । शोभनाया अपत्यं शौभनेयः ॥

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४ । १ । ११४ ॥

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः । वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकेभ्यः—श्वाफल्कः । वृष्णिभ्यः—वासुदेवः आनिरुद्धः शौरिः । इति बाह्वादित्वादिञ् । कुरुभ्यः—नाकुलः । साहदेवः । इञ एवाय मपवादो मध्येऽपवादन्यायात् । अत्रिशब्दात्तु परत्वाड् ढक् । आत्रेयः ॥

मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः ४ । १ । ११५ ॥

संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्योदादेशः अण्प्रत्ययश्च । रपरत्वम् । द्वैमातुरः । पाण्मातुरः । सांमातुरः । भाद्रमातुरः । आदेशार्थं वचनम् । प्रत्ययस्तूत्सर्गेण सिद्धः स्त्रीलिङ्गनिर्देशोऽर्थापेक्षः । तेन धान्यमातुर्न । संख्या इति किम् । सौमात्रः । शुभ्रादित्वाद्वैमात्रेयः ॥

कन्यायाः कनीन च ४ । १ । ११६ ॥

ढकोऽपवादोऽण् । तत्संनियोगेन कनीनादेशश्च । कानीनो व्यासः । कर्णश्च अनूढाया एवापत्यमित्यर्थः ॥

स्त्रीभ्यो ढक् ४ । १ । १२० ॥

स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक् । वैनतेयः । बाह्वादित्वात्सौमित्रिः । शिवादित्वात् सापत्नः ॥

द्व्यचः ४ । १ । १२१ ॥

द्व्यचः स्त्रीप्रत्ययान्तादपत्ये ढक् । तन्नामिकाणोऽपवादः । दात्तेयः । पार्थ इत्यत्र तु तस्येदम् इत्यण् । शिवादित्वादिति तु तत्त्वम् ॥

इतश्चानिञः ४ । १ । १२२ ॥

इकारान्ताद्व्यचोऽपत्ये ढक् न त्विञन्तात् । दौलेयः । नैधेयः । आत्रेयः ॥

कल्याण्यादीनामिनङ् ४ । १ । १२६ ॥

एषामिनङादेशः ढक्च । काल्याणिनेयः । बान्धकिनेयः ॥

कुलटाया वा ४ । १ । १२७ ॥

इनङ्मात्रं विकल्प्यते । ढक् तु नित्यः । पूर्वेणैव कौलटिनेयः । कौलटेयः । सती भिक्षुक्यत्र कुलटा या तु व्यभिचारार्थं कुलान्यटति तस्याः क्षुद्राभ्यो वा इति पक्षे ढ्रक् । कौलटेरः ॥

हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च ७ । ३ । १९ ॥

हृदाद्यन्ते पूर्वोत्तरपदयोरचामादेरचो वृद्धिर्ञिति णिति किति च । सुहृदोऽपत्यं सौहार्दः । सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः । सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः तेषु भवः साक्तुसैन्धवः ॥

चटकाया ऐरक् ४ । १ । १२८ ॥

चटकस्येति वाच्यम् ॥

लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्त्रिया अपि । चटकस्य चटकाया वापत्यं चाटकैरः ॥

स्त्रियामपत्ये लुग्वक्तव्यः ॥

तयोरेव स्त्र्यपत्यं चटका । अजादित्वाट्टाप् ॥

गोधाया ढ्रक् ४ । १ । १२९ ॥

गौधेरः । शुभ्रादित्वात्पक्षे ढक् । गौधेयः ॥

आरगुदीचाम् ४ । १ । १३० ॥

गौधारः । रका सिद्ध आकारोच्चारणमन्यतो विधानार्थम् । जडस्यापत्यं जाडारः । पण्डस्यापत्यं पाण्डारः ॥

इति १२९ अंशाः ।

क्षुद्राभ्यो वा ४ । १ । १३१ ॥

अङ्गहीनाः शीलहीनाश्च क्षुद्रास्ताभ्यो वा ढ्रक् । पक्षे ढक् । काणेरः काणेयः । दासेरः दासेयः ॥

पितृष्वसुश्छण् ४ । १ । १३२ ॥

अणोऽपवादः । पैतृष्वस्रीयः ॥

ढकि लोपः ४ । १ । १३३ ॥

पितृष्वसुरन्त्यलोपो ढकि । अत एव ज्ञापकाड्ढक् । पैतृष्वसेयः ॥

मातृष्वसुश्च ४ । १ । १३४ ॥

पितृष्वसुर्यदुक्तं तदस्यापि । मातृष्वस्रीयः । मातृष्वसेयः ॥

गृष्ट्यादिभ्यश्च ४ । १ । १३६ ॥

ढञ् । अण्ढकोरपवादः । गार्ष्टेयः । मित्रयोरपत्यम् ऋष्यणि प्राप्ते ढञ् ॥

केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः ७ । ३ । २ ॥

एषां यकारादेरियादेशः ञिति णिति किति च तद्धिते परे । इति इयादेशे प्राप्ते ॥

दाण्डिनायनहास्तिनायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि ६ । ४ । १७४ ॥

एतानि निपात्यन्ते इति युलोपः । मैत्रेयः । मैत्रेयौ ॥

यस्कादिभ्यो गोत्रे २ । ४ । ६३ ॥

एभ्योऽपत्यप्रत्ययस्य लुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । मित्रयवः ॥

अत्रिभृगुकुत्सवसिष्ठगोतमाङ्गिरोभ्यश्च २ । ४ । ६५ ॥

एभ्यो गोत्रप्रत्ययस्य लुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । अत्रयः । भृगवः । कुत्साः । वसिष्ठाः । गोतमाः । अङ्गिरसः ॥

राजश्वशुराद्यत् ४ । १ । १३७ ॥

राज्ञो जातावेवेति वाच्यम् * ॥

ये चाभावकर्मणोः ६ । ४ । १६८ ॥

यादौ तद्धिते परेऽन्प्रकृत्या नतु भावकर्मणोः । राजन्यः । श्वशुर्यः । जातिग्रहणाच्छूद्रादावुत्पन्नो राजनः ॥

अन् ६ । ४ । १६७ ॥

अणि अन्प्रकृत्या इति टिलोपो न । अभावकर्मणोः किम् । राज्ञः कर्म भावो वा राज्यम् ॥

ब्राह्मोऽजातौ ६ । ४ । १७१ ॥

योगविभागोऽत्र कर्त्तव्यः । ब्राह्मः इति निपात्यतेऽनपत्येऽणि ब्राह्मं हविः । ततो जातौ अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न । ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणः । अपत्ये किम् । ब्राह्मी ओषधिः ॥

क्षत्राद्घः ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्रियः । जातौ इत्येव । क्षात्रिरन्यः ॥

कुलात्खः ४ । १ । १३९ ॥

कुलीनः । तदन्तादपि उत्तरसूत्रे अपूर्वपदात् इति लिङ्गात् । आढ्यकुलीनः ॥

अपूर्वपदादन्यतरस्यां यड्ढकञौ ४ । १ । १४० ॥

कुलात् इत्येव पक्षे खः । कुल्यः कौलेयकः कुलीनः । पदग्रहणं किम् । बहुकुल्यः बाहुकुलेयकः बहुकुलीनः ॥

महाकुलादञ्खञौ ४ । १ । १४१ ॥

अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते पक्षे खः । माहाकुलः माहाकुलीनः महाकुलीनः ॥

दुष्कुलाड्ढक् ४ । १ । १४२ ॥

पूर्ववत्पक्षे खः । दौष्कुलेयः दुष्कुलीनः ॥

स्वसुश्छः ४ । १ । १४३ ॥

स्वस्रीयः ॥

भ्रातुर्व्यच्च ४ । १ । १४४ ॥

चाच्छः । अणोऽपवादः । भ्रातृष्यः भ्रात्रीयः ॥

व्यन्सपत्ने ४ । १ । १४५ ॥

भ्रातुर्व्यन् अपत्ये प्रकृतिप्रत्ययसमुदायेन शत्रौ वाच्ये । भ्रातृव्यः शत्रुः । पाप्मना भ्रातृव्येणेति तूपचारात् ॥

मनोर्जातावञ्यतौ षुक्च ४ । १ । १६१ ॥

समुदायार्थो जातिः । मानुषः मनुष्यः ॥

अपत्यं पौत्रप्रभृतिगोत्रम् ४ । १ । १६२ ॥

अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादिगोत्रसंज्ञम् ॥

जीवति तु वंश्ये युवा ४ । १ । १६३ ॥

वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव नतु गोत्रसंज्ञम् ॥

भ्रातरि च ज्यायसि ४ । १ । १६४ ॥

ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति कनीयांश्चतुर्थादिर्युवसंज्ञो वा ॥

वान्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति ४।१।१६५॥

भ्रातुरन्यस्मिन्सपिण्डे स्थविरतरे जीवति पौत्रप्रभृतेरपत्यं जीवदेव युवसंज्ञं वा । एकं जीवतिग्रहणमपत्यस्य विशेषणम् । द्वितीयं सपिण्डस्य तरन्निर्देश उभयोरुत्कर्षार्थः । स्थानेन वयसा चोत्कृष्टे पितृव्ये मातामहभ्रातरि वा जीवति । गार्ग्यस्यापत्यं गार्ग्यायणः गार्ग्यो वा । स्थविर इति किम् । स्थानवयोन्यूने गार्ग्य एव । जीवति इति किम् । मृते मृतो वा गार्ग्य एव ॥

वृद्धस्य च पूजायामिति वाच्यम् ॥ ॥

गोत्रस्यैव वृद्धसंज्ञा प्राचाम् । गोत्रस्य युवसंज्ञा पूजायां गम्यमानायाम् । तत्रभवान् गार्ग्यायणः । पूजायाम् इति किम् । गार्ग्यः॥

यूनश्च कुत्सायां गोत्रसंज्ञेति वाच्यम् ॥ ॥

गार्ग्यो जाल्मः । कुत्सायामिति किम् । गार्ग्यायणः ॥

एको गोत्रे ४ । १ । ९३ ॥

गोत्र एक एवापत्यप्रत्ययः । उपगोर्गोत्रापत्यमौपगवः । गार्ग्यः । नाडायनः ॥

गोत्राद्यून्यस्त्रियाम् ४ । १ । ९४ ॥

यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेवापत्यप्रत्ययः । स्त्रियां तु न युवसंज्ञा । गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः । स्त्रियां गोत्रत्वादेक एव प्रत्ययः ॥

नडादिभ्यः फक् ४ । १ । ९९ ॥

गोत्रे इत्येव । नाडायनः । चारायणः । अनन्तरो नाडिः ॥

अनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ् ४ । १ । १०४ ॥

एभ्योऽञ्गोत्रे । ये त्वत्रानृषयः पुत्रादयस्तेभ्य आनन्तर्ये सूत्रे स्वार्थे ष्यञ् । बिदस्य गोत्रापत्यं बैदः । अनन्तरो बैदिः । बाह्वादेराकृतिगणत्वादिञ् । पुत्रस्यापत्यं पौत्रः । दौहित्रः ॥

गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १०५ ॥

गोत्रे इत्येव । गार्ग्यः । वात्स्यः ॥

यञिञोश्च ४ । १ । १०१ ॥

गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक् । अनाति इत्युक्तेः । आपत्यस्य इति यलोपो न । गार्ग्यायणः । दाक्षायणः ॥

इति १३६ अंशाः ।

यञञोश्च २ । ४ । ६४ ॥

गोत्रे यद्यञन्तमञन्तं च तदवयवयोरेतयोर्लुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । गर्गाः । वत्साः । बिदाः । उर्वाः । तत्कृते इति किम् । प्रियगार्ग्याः । स्त्रियां तु गार्ग्यः स्त्रियः । गोत्रे किम् । द्वैप्याः । औत्साः । प्रवराध्यायप्रसिद्धमिह गोत्रम् । तेनेह न । पौत्राः । दौहित्राः ॥

जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् ४ । १ । १६८ ॥

जनपदक्षत्रियवाचकादपत्ये । दाण्डिनायन इति सूत्रे निपातनाट्टिलोपः । ऐक्ष्वाकः । ऐक्ष्वाकौ ॥

क्षत्रियसमानशब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यमपत्यवत् ॥

तद्राजमाचक्षाणस्तद्राज इत्यन्वर्थसंज्ञासामर्थ्यात् । पञ्चालानां राजा पाञ्चालः ॥

पूरोरण्वक्तव्यः ॥

पौरवः । पाण्डोर्ड्यण् । पाण्ड्यः ॥

साल्वेयगान्धारिभ्यां च ४ । १ । १६९ ॥

आभ्यामपत्येऽञ् । वृद्धेत इति ञ्यङोऽपवादः । साल्वेयः । गान्धारः । तस्य राजन्यप्येवम् ॥

द्व्यञ्मगधकलिङ्गसूरमसादण् ४ । १ । १७० ॥

अञोऽपवादः । द्व्यच् । आङ्गः । वाङ्गः । सौह्मः । मागधः । कालिङ्गः । सौरमसः । तस्य राजन्यप्येवम् ॥

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् ४ । १ । १७१ ॥

वृद्धात् । आम्बष्ठ्यः । सौवीर्यः । इत आवन्त्यः । कौसल्यः । अजादस्यापत्यमाजाद्यः ॥

कुरुनादिभ्यो ण्यः ४ । १ । १७२ ॥

कौरव्यः । नैषध्यः । स नैषधस्यार्थपतेः इत्यादौ तु शैषिकोऽण् ॥

साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् ४ । १ । १७३ ॥

साल्वो जनपदस्तदवयवा उदुम्बरादयस्तेभ्यः प्रत्यग्रथादिभ्यस्त्रिभ्यश्च इञ् । अञोऽपवादः । औदुम्बरिः । प्रात्यग्रथिः । कालकूटिः । आश्मकिः । राजन्यप्येवम् ॥

ते तद्राजाः ४ । १ । १७४ ॥

अञादय एतत्संज्ञाः स्युः ॥

तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २ । ४ । ६२ ॥

बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थकृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् ।

इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः। इत्यादि। कथं तर्हि कौरव्याः पशवः। तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः इति च कौरव्ये पाण्ड्ये च साधव इति समाधेयम्। रघूणामन्वयं वक्ष्ये। निरुध्यमाना यदुभिः कथंचित् इति तु रघुयदुशब्दयोस्तदपत्ये लक्षणया॥

कम्बोजाल्लुक् ४। १। १७५॥

अस्मात्तद्राजस्य लुक्। कम्बोजः। कम्बोजौ॥

कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम् ॥

चोलः। शकः। द्व्यच्लक्षणस्याणो लुक्। केरलः। यवनः। अञो लुक्। कम्बोजाः। समरे इति पाठः सुगमः। दीर्घपाठे तु कम्बोजोऽभिजनो येषामित्यर्थः। सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ इत्यण्॥

स्त्रियामवन्तिकुन्तिकुरुभ्यश्च ४। १। १७६॥

तद्राजस्य लुक्। अवन्ती। कुन्ती। कुरूः॥

अतश्च ४। १। १७७॥

तद्राजस्याकारस्य स्त्रियां लुक्। शूरसेनी। मद्री। कथं माद्रीसुतौ इति ह्रस्व एव पाठः इति हरदत्तः। भर्गादित्वं वा कल्प्यम्॥

न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ४। १। १७८॥

एभ्यस्तद्राजस्य न लुक्। पाञ्चाली वैदर्भी। आङ्गी। वाङ्गी। मागधी। एते प्राच्याः। भार्गी। कारूषी। कैकयी। कैकयीत्यत्र तु जन्यजनकभावलक्षणे पुंयोगे ङीप्। एवं देवकीत्यत्राप्याहुः। अपत्यप्रत्यये ङीप् संज्ञापूर्वकत्वाद्वृद्ध्यभाव इति परे। युधा। शुक्रा। आभ्यां द्व्यचः इति ढक्। ततः स्वार्थे। पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ इत्यञ्। शार्ङ्गरवाद्यञः इति ङीन्। अतश्च इति लुकि तु ढगन्तत्वान्ङीप्युदात्तनिवृत्तिस्वरः। यौधेयी। शौक्रेयी॥ इत्यपत्याधिकारः॥

तेन रक्तं रागात् ४। २। १॥

रज्यतेऽनेनेति रागः। कषायेण रक्तं वस्त्रं काषायम्। माञ्जिष्ठम्। रागात् किम्। देवदत्तेन रक्तं वस्त्रम्॥

नील्या अन् ॥

नील्या रक्तं नीलम् ॥

पीतात्कन् ॥

पीतकम् ॥

हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् ॥

हारिद्रम् । माहारजनम् ॥

नक्षत्रेण युक्तः कालः ४ । २ । ३ ॥

पुष्येण युक्तं पौषमहः । पौषी रात्रिः ॥

लुबविशेषे ४ । २ । ४ ॥

पूर्वेण विहितस्य लुप् । षष्टिदण्डात्मककालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः । कथं तर्हि पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी इति । विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्य इति निर्देशेन पौर्णमास्यामयं लुन्नेति ज्ञापितत्वात् । श्रवणशब्दात्तु अत एव लुब्युक्तवद्भावाभावश्च । अबाधकान्यपि निपातनानि । श्रावणी ॥

परिवृतो रथः ४ । २ । १० ॥

वस्त्रैः परिवृतो वास्त्रो रथः। रथः किम् । वस्त्रेण परिवृतः कायः। समन्ताद्वेष्टितः परिवृत उच्यते । तेनेह न । छत्रैः परिवृतो रथः ॥

पाण्डुकम्बलादिनिः ४ । २ । ११ ॥

पाण्डुकम्बलेन परिवृतः पाण्डुकम्बली । पाण्डुकम्बलशब्दो राजास्तरणवर्णकम्बलस्य वाचकः । मत्वर्थीयेनैव सिद्धे वचनमणो निवृत्त्यर्थम् ॥

द्वैपवैयाघ्रादञ् ४ । २ । १२ ॥

द्वीपिनो विकारो द्वैपम् । तेन परिवृतो द्वैपो रथः । एवं वैयाघ्रः ॥

स्थण्डिलाच्छयितरि व्रते ४ । २ । १५ ॥

तत्र इत्येव । समुदायेन चेद्व्रतं गम्यते । स्थण्डिले शेते स्थाण्डिलो भिक्षुः ॥

इति १३७ अंशाः ।

संस्कृतं भक्षाः ४ । २ । १६ ॥

सप्तम्यन्तादण् संस्कृतेऽर्थे । यत्संस्कृतं भक्षाश्चेत्ते स्युः । भ्राष्ट्रे संस्कृता भ्राष्ट्रा यवाः ॥

द्विगोर्लुगनपत्ये ४ । १ । ८८ ॥

द्विगोर्निमित्तं यस्तद्धितोऽजादिरनपत्यार्थः प्राग्दीव्यतीयस्तस्य लुक् । अष्टसु कपालेषु संस्कृतः अष्टाकपालः पुरोडाशः ॥

शूलोखाद्यत् ४ । २ । १७ ॥

अणोऽपवादः । शूले संस्कृतं शूल्यं मांसम् । उखा पात्रविशेषः तस्यां संस्कृतमुख्यम् ॥

दध्नष्ठक् ४ । २ । १८ ॥

दध्नि संस्कृतम् दाधिकम् ॥

उदश्वितोऽन्यतरस्याम् ४ । २ । १९ ॥

ठञ् पक्षेऽण् ॥

इसुसुक्तान्तात्कः ७ । ३ । ५१ ॥

इस् उस् उक् त एतदन्तात्परस्य ठस्य कः । उदकेन श्वयति वर्धत इत्युदश्वित् तत्र संस्कृत औदश्वित्कः । औदश्वितः इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणन्नेह । आशिषा चरत्याशिषिकः । उषा चरत्यौषिकः ॥

दोष उपसंख्यानम् * ॥

दोर्भ्यां चरति दौष्कः ॥

क्षीराड्ढञ् ४ । २ । २० ॥

अत्र संस्कृतं इत्येव संबध्यते नतु भक्षा इति । तेन यवाग्वामपि भवति । क्षैरेयी ॥

सास्मिन्पौर्णमासीति ४ । २ । २१ ॥

इतिशब्दात् संज्ञायाम् इति लभ्यते । संज्ञायामिति काचित्कः पाठस्तु मामादिकः । पौषी पौर्णमास्यस्मिन्पौषो मासः ॥

आग्रहायण्यश्वत्थाट्ठक् ४ । २ । २२ ॥

अग्रे हायनमस्या इत्याग्रहायणी । प्रज्ञादेराकृतिगणत्वादण् । पूर्वपदात्संज्ञायाम् इति णत्वम् । आग्रहायणी पौर्णमास्यस्मिन्ना-ग्रहायणिको मासः । अश्वत्थेन युक्ता पौर्णमास्यश्वत्थः । निपातनात्पौर्णमास्यामपि लुक् । आश्वत्थिकः ॥

विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः ४।२।२३॥

एभ्यष्ठग्वा पक्षेऽण् । फाल्गुनिकः फाल्गुनो मासः । श्रावणिकः श्रावणः । कार्तिकिकः कार्तिकः । चैत्रिकः चैत्रः ॥

सास्य देवता ४ । २ । २४ ॥

इन्द्रो देवतास्येति ऐन्द्रं हविः । पाशुपतम् । बार्हस्पतम् । त्यज्यमानद्रव्य उद्देश्यविशेषो देवतामन्त्रः । स्तुत्या च ऐन्द्रो मन्त्रः । आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया इति तु शैषिकेऽर्थे । सर्वत्राग्नि इति ढक् ॥

कस्येत् ४ । २ । २५ ॥

कशब्दस्येदादेशः प्रत्ययसंनियोगेन । यस्य इति लोपात्पर-त्वादादिवृद्धिः । को ब्रह्मा देवतास्य कायं हविः । श्रीर्देवतास्य श्रायम् । शतरुद्राद्धश्च । चाच्छः । शतं रुद्रा देवता अस्य शत-रुद्रियं शतरुद्रीयम् । घच्छयोर्विधानसामर्थ्यात् द्विगोर्लुगनपत्ये इति न लुक् ॥

महेन्द्राद्घाणौ च ४ । २ । २९ ॥

चाच्छः । महेन्द्रियं हविः माहेन्द्रं महेंद्रीयम् ॥

सोमाट्ट्यण् ४ । २ । ३० ॥

सौम्यम् । टित्वान्ङीप् । सौमी ऋक् ॥

वाय्वृतुपित्रुषसो यत् ४ । २ । ३१ ॥

वायव्यम् । ऋतव्यम् । रीङृतः यस्येति च । पित्र्यम् । उषस्यम् ॥

पूर्णमासादण् वक्तव्यः ॥

पूर्णो मासोऽस्यां वर्तते इति पौर्णमासी तिथिः ॥

पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः ४ । २ । ३६ ॥

एते निपात्यन्ते। पितुर्भ्रातरि व्यत्। पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुर्डुलच्। मातुर्भ्राता मातुलः । मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्। मातुः पिता मातामहः । पितुः पिता पितामहः । मातरि षिच्। मातामही । पितामही ॥

अवेर्दुग्धे सोढदूसमरीसचो वक्तव्याः ॥

सकारपाठसामर्थ्यान्न षः। अविसोढम्। अविदूसम्। अविमरीसम्। तिलान्निष्फलात्पिञ्जपेजौ । तिलपिञ्जः। तिलपेजः । वन्ध्यतिल इत्यर्थः । पिञ्जश्छन्दसि डिच् । तिलिपिञ्जः ॥

तस्य समूहः ४ । २ । ३७ ॥

अत्र अचित्तादनुदात्तादेर्गोत्रात् केदारादिप्रतिपदाच्च पृथक् प्रत्यया वक्ष्यन्ते तान्परिहृत्योदाहरणीयम्। काकानां समूहः काकम्। बाकम् ॥

भिक्षादिभ्योऽण् ४ । २ । ३८ ॥

भिक्षाणां समूहो भैक्षम् । गर्भिणीनां समूहो गार्भिणम्। इह भस्याढे इति पुंवद्भावे कृते इनण्यनपत्ये तेन नस्तद्धिते इति टिलोपो न । युवतीनां समूहो यौवनम्। शत्रन्तादनुदात्तादेरञि, यौवतम् ॥

गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ् ४ । २ । ३९ ॥

एभ्यः समूहे वुञ्। लौकिकमिह गोत्रं तच्चापत्यमात्रम् । युवोरनाकौ । ग्लुचुकायनीनां समूहो ग्लौचुकायनकम्। औक्षकमित्यादि । आपत्यस्य च इति यलोपे प्राप्ते प्रकृत्या अके राजन्यमनुष्ययुवानः । राजन्यकम् । मानुष्यकम् ॥

वृद्धाच्चेति वक्तव्यम् ॥

वार्द्धकम् ॥

केदाराद्यञ्च ४ । २ । ४० ॥

चाट्ठञ् । कैदार्यं कैदारकम् ॥

गणिकाया यञिति वक्तव्यम् ❀ ॥

गाणिक्यम् ॥

ठञ्कवचिनश्च ४ । २ । ४१ ॥

चात्केदारादपि । कवचिनां समूहः कावचिकम् । कैदारिकम् ॥

ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत् ४ । २ । ४२ ॥

ब्राह्मण्यम् । माणव्यम् । वाडव्यम् ॥

पृष्ठादुपसंख्यानम् ❀ ॥

पृष्ठ्यम् ॥

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४ । २ । ४३ ॥

ग्रामता । जनता । बन्धुता ॥

गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् ❀ ॥

गजता । सहायता । अह्नः खः क्रतौ । अहीनः । अहर्गणसाध्यमुत्पाद्यः क्रतुरित्यर्थः । क्रतौ किम् । आह्नः । इह खण्डकादित्वादञ् । अह्नष्टखोरेव इति नियमाट्टिलोपो न ॥

पर्श्वा णस् वक्तव्यः ❀ ॥

सिति च १ । ४ । १६ ॥

सिति परे पूर्वं पदसंज्ञम् । अभत्वादोर्गुणो न । पर्शूनां समूहः पार्शवम् ॥

अनुदात्तादेरञ् ४ । २ । ४४ ॥

कापोतम् । मायूरम् ॥

चरणेभ्यो धर्मवत् ४ । २ । ४६ ॥

काठकम् । छान्दोग्यम् ॥

अचित्तहस्तिधेनोष्ठक् ४ । २ । ४७ ॥

साक्तुकम्। हास्तिकम्। धैनुकम्॥

केशाश्वाभ्यां यञ्छावन्यतरस्याम् ४। २। ४८॥

पक्षे ठगणौ। कैश्यं कैशिकम्। अश्वीयम् आश्वम्॥

पाशादिभ्यो यः ४। २। ४९॥

पाश्या। तृण्या। धूम्या। वन्या। वात्या॥

खलगोरथात् ४। २। ५०॥

खल्या। गव्या। रथ्या॥

इनित्रकट्यचश्च ४। २। ५१॥

खलादिभ्यः क्रमात्। खलिनी। गोत्रा। रथकट्या॥

खलादिभ्य इनिर्वक्तव्यः ❀॥

डाकिनी। कुटुम्बिनी। आकृतिगणोऽयम्॥

इति १३८ अंशाः।

तदस्यां प्रहरणमिति क्रीडायां णः ४। २। ५७॥

दण्डः प्रहरणमस्यां क्रीडायां दाण्डा। मौष्टा॥

घञः सास्यां क्रियेति ञः ४। २। ५८॥

घञन्तात्क्रियावाचिनः प्रथमान्तादस्यामिति सप्तम्यर्थे स्त्रीलिङ्गे ञप्रत्ययः। घञः इति कृद्ग्रहणाद्गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्॥

श्येनतिलस्य पाते ञे ६। ३। ७१॥

श्येनतिल एतयोर्मुमागमः ञप्रत्ययपरे पातशब्द उत्तरपदे। श्येनपातोऽस्यां वर्तते श्यैनंपाता मृगया। तिलपातोऽस्यां वर्तते तैलंपाता स्वधा। श्येनतिलस्य किम्। दण्डपातोऽस्यां तिथौ वर्तते दाण्डपाता तिथिः। तदधीते तद्वेद॥

क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४। २। ६०॥

क्रतुविशेषवाचिनामेवेह ग्रहणं तेभ्यो मुख्यार्थेभ्यो वेदितरि तत्प्रतिपादकग्रन्थपरेभ्यस्त्वध्येतरि। आग्निष्टोमिकः। वाजपेयिकः।

उक्थं सामविशेषः तल्लक्षणपरो ग्रन्थविशेषो लक्षणयोक्थम् । तद-धीते वेद वा औक्थिकः । मुख्यार्थोक्थशब्दाट्ठगणौ नेष्येते । न्यायम्–नैयायिकः । वृत्तिम्–वार्तिकः । लोकायतम्–लौकायतिक इत्यादि ॥

सूत्रान्ताट्ठकल्पादेरेवेष्यते ❋ ॥

सांग्रहसूत्रिकः । अकल्पादेः किम् । काल्पसूत्रः ॥

विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेति वक्तव्यम् ❋ ॥

वायसविद्यिकः। गौलक्षणिकः।आश्वलक्षणिकः।पाराशरकल्पिकः॥

अङ्गक्षत्रधर्मत्रिपूर्वाद्विद्यान्तान्नेति वक्तव्यम् ❋ ॥

आङ्गविद्यः । क्षात्रविद्यः । धार्मविद्यः । त्रिविधा विद्या त्रिविद्या तामधीते वेद वा त्रैविद्यः ॥

आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च ❋ ॥

यवक्रीतमधिकृत्य कृतमाख्यानमुपचाराद्यवक्रीतम् । तदधीते वेति वा यावक्रीतिकः । वासवदत्तामधिकृत्य कृता आख्यायिका वासवदत्ता । अधिकृत्य कृते ग्रन्थे इत्यर्थे वृद्धाच्छः । तस्य लुबा-ख्यायिकाभ्यो बहुलम् इति लुप् । ततोऽनेन ठक् । वासवदत्तिकः ऐतिहासिकः । पौराणिकः ॥

सर्वादेः सादेश्च लुग्वक्तव्यः ❋ ॥

सर्ववेदानधीते सर्ववेदः। सर्वतन्त्रः । सवार्तिकः । द्विगोर्लुक् इति लुक् । द्वितन्त्रः ॥

इकन्पदोत्तरपदाच्छतषष्टेः पिकन्पथः ॥

पूर्वपदिकः । उत्तरपदिकः । शतपथिकः । शतपथिकी । षष्टिप-थिकः । षष्टिपथिकी ॥

क्रमादिभ्यो वुन् ४ । २ । ६१ ॥

क्रमकः । क्रमपदशिक्षामीमांसाक्रमादिः ॥

प्रोक्ताल्लुक् ४ । २ । ६४ ॥

प्रोक्तार्थकप्रत्ययात्परस्याध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक्। पणनं पणः। घञर्थे कविधानम् इति कः। सोऽस्यास्तीति पणी तस्य गोत्रापत्यं पाणिनः॥

गाथिविदथिकेशिगणिपणिनश्च ६।४।१६५॥

एतेऽणि प्रकृत्या इति टिलोपो न। ततो यूनि इञ्। पाणिनिः। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्। वृद्धाच्छः इञश्च इत्यण् तु न। गोत्रे य इञ्तदन्तादिति वक्ष्यमाणत्वात्। ततोऽध्येतृवेदित्रणो लुक् स्वरे स्त्रियां च विशेषः। पाणिनीयः पाणिनीया॥

सूत्राच्च कोपधात् ४।२।६५॥

सूत्रवाचिनः ककारोपधादध्येतृवेदितृप्रत्ययस्य लुक्। अप्रोक्तार्थ आरम्भः अष्टावध्यायाः परिमाणमस्याष्टकं पाणिनेः सूत्रम्। तदधीयते विदन्ति वा अष्टकाः॥

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ४।२।६६॥

छन्दांसि ब्राह्मणानि च प्रोक्तप्रत्ययान्तानि तद्विषयाणि अध्येतृवेदितृप्रत्ययं विना न प्रयोज्यानीत्यर्थः। कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः। वैशम्पायनान्तेवासित्वाण्णिनिः। तस्य कठचरकात् इति लुक्। ततोऽण्। तस्य प्रोक्ताल्लुक्॥

तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४।२।६७॥

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन्देशे औदुम्बरः॥

तेन निर्वृत्तम् ४।२।६८॥

कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी नगरी॥

तस्य निवासः ४।२।६९॥

शिबीनां निवासो देशः शैबः॥

अदूरभवश्च ४।२।७०॥

विदिशाया अदूरभवं नगरं वैदिशम्। चकारेण प्रागुक्तास्त्रयोऽर्थाः संनिधाप्यन्ते तेन वक्ष्यमाणप्रत्ययानां चातुरर्थिकत्वं सिध्यति॥

जनपदे लुप् ४ । २ । ८१ ॥

जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ॥

लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने १ । २ । ५१ ॥

लुपि सति प्रकृतिवल्लिङ्गवचने । पञ्चालानां निवासो जनपदः पञ्चालाः । कुरवः । अङ्गाः । वङ्गाः । कलिङ्गाः ॥

विशेषणानां चाजातेः १ । २ । ५२ ॥

लुबर्थस्य विशेषणानामपि तद्वल्लिङ्गवचने स्तो जातिं वर्जयित्वा। पञ्चाला रमणीयाः । गोदौ रमणीयौ । अजातेः किम् । पञ्चाला जनपदः । गोदौ ग्रामः । हरीतक्यादिषु व्यक्तिः । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः ॥

खलतिकादिषु वचनम् ॥

खलतिकस्य पर्वतस्यादूरभवानि खलतिकं वनानि ॥

मनुष्यलुपि प्रतिषेधः ॥

मनुष्यलक्षणे लुबर्थे विशेषणानां न । लुबन्तस्य तु भवतीत्यर्थः । चञ्चा अभिरूपः ॥

इति १३९ अंशाः ।

वरणादिभ्यश्च ४ । २ । ८२ ॥

अजनपदार्थ आरम्भः। वरणानामदूरभवं नगरं वरणा ॥

शर्कराया वा ४ । २ । ८३ ॥

अस्माच्चातुरर्थिकस्य वा लुप् ॥

ठक्छौ च ४ । २ । ८४ ॥

शर्कराया एतौ स्तः । वक्ष्यमाणे कुमुदादौ वराहादौ च पाठसामर्थ्यात्पक्षे ठच्छौ । वाग्रहणसामर्थ्यात्पक्षे औत्सर्गिकोऽण् तस्य लुब्विकल्पः । षड् रूपाणि । शर्करा शार्करं शार्करिकं शर्करीयं शर्करिकं शार्करिकम् ॥

कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप् ४ । २ । ८७ ॥

कुमुद्वान् । नड्वान् । वेतस्वान् । आद्ययोः झयः इत्यन्त्ये मादुपधायाः इति वक्ष्यमाणेन वः ॥

महिषाच्चेति वक्तव्यम् * ॥

महिष्मान्नाम देशः ॥

नडशादाड्ड्वलच् ४ । २ । ८८ ॥

नड्वलः । शादो जम्बालघासयोः इत्यमरः । शाद्वलः ॥

शिखाया वलच् ४ । २ । ८९ ॥

शिखावलम् ॥ इति चातुरर्थिकाः ॥

शेषे ४ । २ । ९२ ॥

अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्तत्राणादयः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । औपनिषदः पुरुषः । दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः । उलूखले क्षुण्ण औलूखलो यावकः । अश्वैरुह्यत आश्वो रथः । चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटम् । चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशं रक्षः । शेषे इति लक्षणं चाधिकारश्च । तस्य विकार इत्यतः प्राक्छेषाधिकारः ॥

राष्ट्रावारपाराद्घखौ ४ । २ । ९३ ॥

आभ्यां क्रमाद्घखौ शेषे । राष्ट्रियः । अवारपारीणः ॥

अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् * ॥

अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । इह प्रकृतिविशेषाद्घादयष्ट्युटयुलन्ता । प्रत्यया उच्यन्ते । तेषां जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥

ग्रामाद्यखञौ ४ । २ । ९४ ॥

ग्राम्यः ग्रामीणः ॥

कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः श्वास्यलंकारेषु ४ । २ । ९६ ॥

कौलेयकः श्वा कौलोऽन्यः । कौक्षेयकोऽसिः कौक्षोऽन्यः। ग्रैवेयकोऽलंकारः ग्रैवोऽन्यः ॥

नद्यादिभ्यो ढक् ४ । २ । ९७ ॥

नादेयम् । माहेयम् । वाराणसेयम् ॥

दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक् ४ । २ । ९८ ॥

दक्षिणा इत्याजन्तमव्ययम्। दाक्षिणात्यः। पाश्चात्त्यः। पौरस्त्यः॥

कापिश्याः ष्फक् ४ । २ । ९९ ॥

कापिश्यां जातादि कापिशायनं मधु कापिशायनी द्राक्षा ॥

द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४ । २ । १०१ ॥

दिव्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उदीच्यम् । प्रतीच्यम् ॥

अव्ययात्त्यप् ४ । २ । १०४ ॥

अमेहक्वतसित्रेभ्य एव । अमान्तिकसहार्थयोः । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः । परिगणनं किम् । उपरिष्टाद्भव औपरिष्टः । अव्ययानां भमात्रे टिलोपः । अनित्योऽयं बहिषष्टिलोपविधानात् । तेनेह न । आरातीयः । शाश्वतीयः ॥

त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम् ❀ ॥

नित्यः ॥

निसो गते ❀

ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ८ । ३ । १०१ ॥

ह्रस्वादिणः परस्य सस्य षः तादौ तद्धिते । निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्ट्यश्चाण्डालादिः । अरण्याण्णः । आरण्याः सुमनसः ॥ दूरादेत्यः । दूरेत्यः । उत्तरादाहञ् । औत्तराहः ॥

ऐषमोह्यःश्वसोऽन्यतरस्याम् ४ । २ । १०५ ॥

एभ्यस्त्यप्वा। पक्षे वक्ष्यमाणौ ट्युट्युलौ । ऐषमस्त्यम् ऐषमस्तनम् । ह्यस्त्यं ह्यस्तनम् । श्वस्त्यं श्वस्तनम् । पक्षे शौवस्तिकं वक्ष्यते । वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् । त्यदादीनि च ॥

वृद्धाच्छः ४ । २ । ११४ ॥

शालीयः । मालीयः । तदीयः ॥

एङ् प्राचां देशे १ । १ । ७५ ॥

एङ् । यस्याचामादिस्तद्वृद्धसंज्ञं वा देशाभिधाने । एणीपचनीयः गोनर्दीयः । भोजकटीयः । पक्षेऽणि ऐणीपचनः । गौनर्दः । भोजकटः । एङ् किम् । आहिच्छत्रः । कान्यकुब्जः ॥

भवतष्ठक्छसौ ४ । २ । ११५ ॥

वृद्धाद्भवत एतौ भावत्कः । जश्त्वम् । भवदीयः । वृद्धात् इत्यनुवृत्तेः । शत्रन्तादणेव । भावतः ॥

काश्यादिभ्यष्ठञ्ञिठौ ४ । २ । ११६ ॥

इकार उच्चारणार्थः । काशिकी काशिका । वैदिकी वैदिका ॥ आपदादिपूर्वपदात्कालान्तात् । आपदादिराकृतिगणः । आपत्कालिकी आपत्कालिका ॥

नगरात्कुत्सनप्रावीण्ययोः ४ । २ । १२८ ॥

नगरशब्दाद्वुञ् कुत्सने प्रावीण्ये च गम्ये । नागरकश्चौरः शिल्पी वा । कुत्सन इति किम् । नागरा ब्राह्मणाः ॥

अरण्यान्मनुष्ये ४ । २ । १२९ ॥

वुञ् । अरण्याण्णः इत्यस्यापवादः ॥

पथ्यध्यायन्यायविहारमनुष्यहस्तिष्विति वाच्यम् * ॥

आरण्यकः पन्था । अध्यायो न्यायो विहारो मनुष्यो हस्ती वा ॥

वा गोमयेषु * ॥

आरण्यका आरण्या वा गोमयाः ॥

गहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८ ॥

छः । गहीयः । मुखपार्श्वतसोर्लोपश्च । मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् । अव्ययानां भमात्रे टिलोपस्यानित्यतां ज्ञापयितुमिदम् । कुग्ज-

नस्य परस्य च । जनकीयम् । परकीयम् । देवस्यच । देवकीयम् । स्वस्य च । स्वकीयम् ॥

राज्ञः क च ४ । २ । १४० ॥

वृद्धत्वाच्छे सिद्धे तत्संनियोगेन कादेशमात्रं विधीयते । राजकीयम् ॥

पर्वताच्च ४ । २ । १४३ ॥

पार्वतीयः ॥

विभाषा मनुष्ये ४ । २ । १४४ ॥

मनुष्यभिन्नेऽर्थे पर्वताच्छो वा पक्षेऽण् । पर्वतीयानि पार्वतानि वा फलानि । अमनुष्ये किम् । पार्वतीयो मनुष्यः ॥

युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ्च ४ । ३ । १ ॥

चाच्छः पक्षेऽण् । युवयोः युष्माकं वा अयं युष्मदीयः । अस्मदीयः ॥

तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४ । ३ । २ ॥

युष्मदस्मदोरेतावादेशौ खञ्यणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः । आस्माकः ॥

तवकममकावेकवचने ४ । ३ । ३ ॥

एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ खञ्यणि च । तावकीनः तावकः । मामकीनः । मामकः । छे तु प्रत्ययोत्तरपदयोश्च । त्वदीयः । मदीयः । उत्तरपदे त्वत्पुत्रः । मत्पुत्रः ॥

मध्यान्मः ४ । ३ । ८ ॥

मध्यमः ॥

असांप्रतिके ४ । ३ । ९ ॥

मध्यशब्दादकारोऽयमर्थः साम्प्रतिकेऽर्थे । उत्कर्षापकर्षहीनो मध्यो वैयाकरणः । मध्यं दारु । नातिह्रस्वं नातिदीर्घमित्यर्थः ॥

इति १४० अंगाः । इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः पादः ।

कालाट्ठञ् ४ । ३ । ११ ॥

कालवाचिभ्यष्ठञ् । मासिकम् । सांवत्सरिकम् । सायंप्रातिकः । पौनःपुनिकः । कथं तर्हि शार्वरस्य तमसो निषिद्धये इति कालिदासः । अनुदितौ पसराग इति भारविः । समानकालीनम् । प्राक्कालीनमित्यादि च । अपभ्रंशा एवैते इति प्रामाणिकाः । तत्र जातः इति यावत्कालाधिकारः ॥

श्वसस्तुट् च ४ । ३ । १५ ॥

श्वस्शब्दाट्ठञ्वा तस्य तुडागमश्च ॥

द्वारादीनां च ७ । ३ । ४ ॥

द्वारस्वरस्वाध्यायव्यल्कशस्वास्तिस्वरस्फ्यकृतस्वादुमृदुश्वस्श्वन्स्व एषां न वृद्धिरैजागमश्च । शौवस्तिकम् ॥

संधिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ४ । ३ । १६ ॥

संधिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवृत्तिभ्योऽण् । संधिवेलायां भवं सांधिवेलम् । ग्रैष्मम् । तैषम् । संधिवेला संध्या अमावस्या त्रयोदशी चतुर्दशी पौर्णमासी प्रतिपत् । संवत्सरात्फलपर्वणोः । सांवत्सरं फलं पर्व वा सांवत्सरम् । सांवत्सरिकमन्यत् ॥

प्रावृष एण्यः ४ । ३ । १७ ॥

प्रावृषेण्यः ॥

वर्षाभ्यष्ठक् ४ । ३ । १८ ॥

वर्षासु साधु वार्षिकं वासः । कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु इति साध्वर्थे ॥

सर्वत्राण्च तलोपश्च ४ । ३ । २२ ॥

हेमन्तादण् तलोपश्च वेदलोकयोः । चकारात्पक्षे ऋत्वण् । हैमनम् । हैमन्तम् ॥

सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४ ।३।२३॥

सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यष्ट्युट्युलौ तयोस्तुट् च। तुटः प्रागनादेशः। अनद्यतन इत्यादिनिर्देशात्। सायंतनम्। चिरंतनम्। प्राह्णप्रगयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम्। प्रगेतनम्। दोषातनम्। दिवातनम्॥

चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः ॥

चिरत्नम्। परुत्नम्। परारित्नम्। अग्रादिपश्चाड्डिमच्। अग्रिमम्। आदिमम्। पश्चिमम्। अन्ताच्च। अन्तिमम्॥

विभाषा पूर्वाह्णापराह्णाभ्याम् ४। ३। २४॥

आभ्यां ट्युट्युलौ वा स्तस्तयोस्तुट् च पक्षे ठञ्। पूर्वाह्णेतनम्। अपराह्णेतनम्। घकालतनेषु इत्यलुक्। पूर्वाह्णः। सोढोऽस्येति विग्रहे तु पूर्वाह्णतनम्। अपराह्णतनम्। पौर्वाह्णिकम्। आपराह्णिकम्॥

तत्र जातः ४। ३। २५॥

सप्तमीसमर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च। स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। औत्सः। राष्ट्रियः। अवारपारीण इत्यादि॥

प्रावृषष्ठप् ४। ३। २६॥

एण्यस्यापवादः। प्रावृषि जातः प्रावृषिकः॥

संभूते ४। ३। ४१॥

स्रुघ्ने संभवति स्रौघ्नः॥

कोशाड्ढञ् ४। ३। ४२॥

कौशेयं वस्त्रम्॥

कालात्साधुपुष्प्यत्पच्यमानेषु ४। ३। ४३॥

हैमन्ते साधुर्हैमन्तः प्राकारः। वसन्ते पुष्प्यन्ति वासन्त्यः कुन्दलताः। शरदि पच्यन्ते शारदाः शालयः॥

उप्ते च ४। ३। ४४॥

हेमन्त उप्यन्ते हैमन्ता यवाः॥

आश्वयुज्या वुञ् ४। ३। ४५॥

ठञोऽपवादः । आश्वयुज्यामुप्ता आश्वयुजका माषाः ॥

ग्रीष्मवसन्तादन्यतरस्याम् ४ । ३ । ४६ ॥

पक्षे ऋत्वण् । ग्रैष्मकं ग्रैष्मम् । वासन्तकं वासन्तम् ॥

तत्र भवः ४ । ३ । ५३ ॥

स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः । राष्ट्रियः ॥

दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ ॥

दिश्यम् । वर्ग्यम् ॥

शरीरावयवाच्च ४ । ३ । ५५ ॥

दन्त्यम् । कर्ण्यम् ॥

दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ४ । ३ । ५६ ॥

दार्तेयम् । कौक्षेयम् । कलशिर्घटस्तत्र भवं कालशेयम् ॥

ग्रीवाभ्योऽण्च ४ । ३ । ५७ ॥

चाड्ढञ् । ग्रैवेयं ग्रैवम् ॥

गम्भीराञ्ञ्यः ४ । ३ । ५८ ॥

गम्भीरे भवं गाम्भीर्यम् ॥

पञ्चजनादुपसंख्यानम् ॥

पाञ्चजन्यः ॥

अव्ययीभावाच्च ४ । ३ । ५९ ॥

परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । परिमुख्यादिभ्य एवेष्यते नेह । औपकूलः ॥

अन्तःपूर्वपदाट्ठञ् ४ । ३ । ६० ॥

अव्ययीभावात् इत्येव । वेश्मन्यन्तरन्तर्वेश्मम् । तत्र भवमान्तर्वेश्मिकम् । आन्तर्गेणिकम् ॥

अध्यात्मादेष्ठञिष्यते ॥

अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् ॥

अनुशतिकादीनां च ७ । ३ । २० ॥

एषांमुभयपदवृद्धिः ञिति णिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिकम् । अध्यात्मादिरनुशतिकादिश्चाकृतिगणः ॥

जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४ । ३ । ६२ ॥

जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ॥

कर्णललाटात्कनलंकारे ४ । ३ । ६५ ॥

कर्णिका । ललाटिका ॥

तत आगतः ४ । ३ । ७४ ॥

स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः ॥

विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ४ । ३ । ७७ ॥

औपाध्यायकः । पैतामहकः ॥

ऋतष्ठञ् ४ । ३ । ७८ ॥

वुञोऽपवादः । हौतृकम् । मातृकम् ॥

पितुर्यच्च ४ । ३ । ७९ ॥

चाट्ठञ् । रीङ्ऋतः यस्य इति लोपः । पित्र्यं पैतृकम् ॥

नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् ७।३।३० ॥

नञः परेषां शुच्यादिपञ्चानामादेरचो वृद्धिः पूर्वपदस्य तु वा ञिदादौ परे आशौचं अशौचम् । आनैश्वर्यं अनैश्वर्यम् । आक्षेत्रज्ञं अक्षेत्रज्ञम् । आकौशलं अकौशलम् । आनैपुणं अनैपुणम् ॥

प्रभवति ४ । ३ । ८३ ॥

ततः इत्येव । हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ॥

विदूराञ्ञ्यः ४ । ३ । ८४ ॥

विदूरात्प्रभवति वैदूर्यो मणिः ॥

अधिकृत्य कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ८७ ॥

तत इत्येव । शारीरकमाधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शारीरकीयः । शारीरकं भाष्यमिति त्वभेदोपचारात् ॥

शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ४।३।८८॥

शिशूनां क्रन्दनं शिशुक्रन्दः । तमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शिशुक्रन्दीयः । यमस्य सभा यमसभम् । क्लीवत्वं निपातनात् । यमसभीयः । किरातार्जुनीयम् । इन्द्रजननादिराकृतिगणः ॥

इति १४१ अंशाः ।

सोऽस्य निवासः ४ । ३ । ८९ ॥

स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः ॥

अभिजनश्च ४ । ३ । ९० ॥

स्रुघ्नोऽभिजनोऽस्य स्रौघ्नः । यत्र स्वयं वसति स निवासः । यत्र पूर्वैरुषितं सोऽभिजनः इति विवेकः ॥

तेन प्रोक्तम् ४ । ३ । १०१ ॥

पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम् ॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ४ । ३ । १०२ ॥

छन्दो ब्राह्मणानि इति तद्विषयता । तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीयाः ॥

काश्यपकौशिकाभ्यामृषिभ्यां णिनिः ४ । ३।१०३॥

काश्यपेन प्रोक्तमधीयते काश्यपिनः ॥

कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च ४ । ३ । १०४ ॥

कलाप्यन्तेवासिभ्यः । हरिद्रुणा प्रोक्तमधीयते हारिद्रविणः । वैशम्पायनान्तेवासिभ्य आलम्बिनः ॥

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ४ । ३।१०६ ॥

छन्दस्यभिधेय एभ्यो णिनिः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते शौनकिनः ॥

कठचरकाल्लुक् ४ । ३ । १०७ ॥

आभ्यां प्रोक्तप्रत्ययस्य लुक् । कठेन प्रोक्तमधीयते कठाः । चरकाः ॥

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ४।३।११० ॥

पाराशर्येण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीयते पाराशरिणो भिक्षवः । शैलालिनो नटाः ॥

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः ४।३।१११ ॥

भिक्षुनटसूत्रयोः इत्येव । कर्मन्देन प्रोक्तमधीयते कर्मन्दिनो भिक्षवः । कृशाश्विनो नटाः ॥

तेनैकदिक् ४ । ३ । ११२ ॥

सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक्सौदामनी ॥

तसिश्च ४ । ३ ।११३ ॥

स्वरादिपाठादव्ययत्वम् । पीलुमूलेन एकदिक् पीलुमूलतः ॥

उरसो यच्च ४ । ३ । ११४ ॥

चात्तसिः । अणोऽपवादः । उरसैकदिगुरस्यः । उरस्तः ॥

उपज्ञाते ४ । ३ । ११५ ॥

तेन इत्येव । पाणिनिनोपज्ञातं पाणिनीयम् ॥

कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ११६ ॥

वररुचिना कृतो वाररुचो ग्रन्थः ॥

संज्ञायाम् ४ । ३ । ११७ ॥

तेन इत्येव । अग्रन्थार्थमिदम् । मक्षिकाभिः कृतं माक्षिकं मधु ॥

क्षुद्राभ्रमरवटरपादपादञ् ४ । ३ । ११९ ॥

तेन कृते संज्ञायाम् । क्षुद्राभिः कृतं क्षौद्रम् । भ्रामरम् । वाटरम् । पादपम् ॥

तस्येदम् ॥

उपगोरिदमौपगवम् ॥

द्वन्द्वाद्वुन्वैरमैथुनिकयोः ४ । ३ । १२५ ॥

काकोलूकिका । कुत्सकुशिकिका ॥

वैरे देवासुरादिभ्यः प्रतिषेधः * ॥

दैवासुरम् ॥

गोत्रचरणाद्वुञ् ४ । ३ । १२६ ॥

औपगवकम् ॥

चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम् * ॥

काठकम् । समासाः शैपिकाः ॥

तस्य विकारः ४ । ३ । १३४ ॥

अश्मनो विकारे टिलोपो वक्तव्यः * ॥

अश्मनो विकार आश्मः । भास्मनः । मार्तिकः ॥

अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः ४ । ३ । १३५ ॥

चाद्विकारे । मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः । मौर्वं काण्डं भस्म वा । पैप्पलम् ॥

बिल्वादिभ्योऽण् ४ । ३ । १३६ ॥

बैल्वम् ॥

कोपधाच्च ४ । ३ । १३७ ॥

अण् अञोऽपवादः । तर्कु तार्कवम् । तैत्तिडीकम् ॥

त्रपुजतुनोः षुक् ४ । ३ । १३८ ॥

आभ्यामण् विकारे एतयोः षुगागमश्च । त्रापुषम् । जातुषम् ॥

ओरञ् ४ । ३ । १३९॥

दैवदारवम् । भाद्रदारवम् ॥

मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः ४ । ३ । १४३॥

प्रकृतिमात्रान्मयड्वा विकारावयवयोः । अश्ममयम् । आश्मनम् । अभक्ष्य इत्यादि किम् । मौद्गः सूपः। कार्पासमाच्छादनम् ॥

नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४ । ३ । १४४ ॥

आम्रमयम् । शरमयम् ॥

एकाचो नित्यम् * ॥

त्वङ्मयम् । वाङ्मयम् । कथं तर्हि आप्यं अम्मयम् इति तस्येदम् इत्यण्णंतात्स्वार्थे ष्यञ् ॥

गोश्च पुरीषे ४ । ३ । १४५ ॥

गोः पुरीषं गोमयम् ॥

पिष्टाच्च ४ । ३ । १४६ ॥

मयट् विकारे । पिष्टमयं भस्म । कथं पैष्टी सुरेति सामान्यविवक्षाया तस्येदम् इत्यण् ॥

संज्ञायां कन् ४ । ३ । १४७॥

पिष्टात् इत्येव । पिष्टस्य विकारविशेषः पिष्टकः । पूपोऽपूपः पिष्टकः इत्यमरः ॥

क्रीतवत्परिमाणात् ४ । ३ । १५६ ॥

प्राग्वहतेष्ठक् इत्यारभ्य क्रीतार्थे ये प्रत्यया येनोपाधिना परिमाणाद्विहितास्ते तथैव विकारेऽतिदिश्यन्ते । अणादीनामपवादः । निष्केण क्रीतं नैष्किकम् । एवं निष्कस्य विकारोऽपि नैष्किकः । शतस्य विकारः शत्यः शतिकः ॥

एण्या ढञ् ४ । ३ । १५९ ॥

ऐणेयम् । एणस्य तु ऐणम् ॥

गोपयसोर्यत् ४ । ३ । १६० ॥

गव्यम् । पयस्यम् ॥

द्रोश्च ४ । ३ । १६१ ॥

द्रुवृक्षस्तस्य विकारोऽवयवो वा द्रव्यम् ॥

माने वयः ४ । ३ । १६२ ॥

द्रोः इत्येव । द्रुवयम् । यौतवं द्रुवयं पाय्यमिति मानार्थकं त्रयम् । इत्यमरः ॥

फले लुक् ४ । ३ । १६३ ॥

विकारावयवप्रत्ययस्य लुक् फले ॥

लुक् तद्धितलुकि १ । २ । ४९ ॥

तद्धितलुकि सत्युपसर्जनस्त्रीप्रत्ययस्य लुक् इति ङीपो लुक् । आमलक्याः फलमामलकम् ॥

प्लक्षादिभ्योऽण् ४ । ३ । १६४ ॥

विधानसामर्थ्यान्न लुक् । प्लाक्षम् ॥

न्यग्रोधस्य च केवलस्य ७ । ३ । ५ ॥

अस्य न वृद्धिरैजागमश्च । नैयग्रोधम् ॥

जम्ब्वा वा ४ । ३ । १६५ ॥

जम्बूशब्दात्फलेऽण्वा । जाम्बवम् । पक्षे ओरञ् तस्य लुक् । जम्बूः ॥

लुप् च ४ । ३ । १६६ ॥

जम्ब्वाः फलप्रत्ययस्य लुब्वा लुपि युक्तवत् । जम्ब्वाः फलं जम्बूः ॥

फलपाकशुषामुपसंख्यानम् ॥

व्रीहयः । मुद्गाः ॥

पुष्पमूलेषु बहुलम् ॥

मल्लिकायाः पुष्पं मल्लिका । जात्याः पुष्पं जाती । विदार्या मूलं विदारी । बहुलग्रहणान्नेह । पाटलानि पुष्पाणि । साल्वानि मूलानि । बाहुलकात्कचिल्लुक् । अशोकम् । करवीरम् ॥

हरीतक्यादिभ्यश्च ४ । ३ । १६७ ॥

एभ्यः फलप्रत्ययस्य लुप् ॥

हरीतक्यादीनां लिङ्गमेव प्रकृतिवत् ॥

हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः ॥

कंसीयपरशव्ययोर्यञञौ लुक्च ४ । ३ । १६८ ॥

कंसीयपरशव्यशब्दाभ्यां यञञौ छयतोश्च लुक् । कंसाय हितं कंसीयम् । तस्य विकारः कांस्यम् । परशवे हितं परशव्यम् । तस्य विकारः पारशवः ॥ इति प्राग्दीव्यतीयाः समाप्ताः ॥

इति १४२ अंशाः ।

प्राग्वहतेष्ठक् ४ । ४ । १ ॥

तद्वहतीत्यतः प्राक् ठगधिक्रियते ॥

तदाहेति माशब्दादिभ्य उपसंख्यानम् ॥

माशब्दः कारि इति य आह स माशब्दिकः ॥

स्वागतादीनां च ७ । ३ । ७॥

ऐज्न । स्वागतमित्याह । स्वागतिकः । स्वाध्वरिकः स्वाङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः । व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गिः । व्यडस्यापत्यं व्याडिः । व्यवहारेण चरति व्यावहारिकः । स्वपतौ साधु स्वापतेयम् ॥

आहौ प्रभूतादिभ्यः ॥

प्रभूतमाह प्राभूतिकः । पार्याप्तिकः ॥

पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ॥

सुस्नातं पृच्छति सौस्नातिकः। सौखशायनिकः । अनुशतिकादिः॥

गच्छतौ परदारादिभ्यः॥

पारदारिकः । गौरुतल्पिकः ॥

तेन दीव्यति खनति जयति जितम् ४ । ४ । २ ॥

अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः। अभ्र्या खनति आभ्रिकः। अक्षैर्जयति आक्षिकः। अक्षैर्जितमाक्षिकम्॥

संस्कृतम् ४।४।३॥

दध्ना संस्कृतं दाधिकम्। मारिचिकम्॥

तरति ४।४।५॥

उडुपेन तरति औडुपिकः॥

नौ द्व्यचष्ठन् ४।४।७॥

नाविकः। घटिकः। बाहुभ्यां तरति बाहुका स्त्री॥

चरति ४।४।८॥

तृतीयान्ताद्गच्छतिभक्षयतीत्यर्थयोष्ठक्। हस्तिना चरति हास्तिकः। शाकटिकः। दध्ना भक्षयति दाधिकः॥

वेतनादिभ्यो जीवति ४।४।१२॥

वेतनेन जीवति वैतनिकः। धानुष्कः॥

वस्नक्रयविक्रयाट्ठन् ४।४।१३॥

वस्नेन मूल्येन जीवति वास्निकः। क्रयविक्रयग्रहणं संघातविगृहीतार्थम्। क्रयविक्रयिकः। क्रयिकः। विक्रयिकः॥

आयुधाच्छ च ४।४।१४॥

चाट्ठन्। आयुधेन जीवति आयुधीयः आयुधिकः॥

निर्वृत्तेऽक्षद्यूतादिभ्यः ४।४।१९॥

अक्षद्यूतेन निर्वृत्तमाक्षद्यूतिकं वैरम्। क्त्रेर्मम् नित्यम्। कृत्रिमम्। पक्त्रिमम्। भावप्रत्ययान्तादिमप्। पाकिमम्। त्यागिमम्॥

अपमित्ययाचिताभ्यां कक्कनौ ४।४।२१॥

अपमित्येति ल्यबन्तम्। अपमित्य निर्वृत्तमापमित्यकम्। याचितेन निर्वृत्तं याचितकम्॥

लवणाल्लुक् ४।४।२४॥

लवणेन संसृष्टो लवणः सूपः । लवणं शाकम् ॥

मुद्गादण् ४ । ४ । २५ ॥

मौद्ग ओदनः ॥

व्यञ्जनैरुपसिक्ते ४ । ४ । २६ ॥

ठक् । दध्ना उपसिक्तं दाधिकम् ॥

ओजःसहोऽम्भसा वर्तते ४ । ४ । २७ ॥

ओजसा वर्तते औजसिकः शूरः । साहसिकश्चौरः । आम्भसिको मत्स्यः ॥

तत्प्रत्यनुपूर्वमीपलोमकूलम् ४ । ४ । २८ ॥

द्वितीयान्तादस्माद्वर्तते इत्यस्मिन्नर्थे ठक् । क्रियाविशेषणत्वाद्द्वितीया । प्रतीपं वर्तते प्रातीपिकः । आन्वीपिकः । प्रातिलोमिकः आनुलोमिकः । प्रातिकूलिकः । आनुकूलिकः ॥

परिमुखं च ४ । ४ । २९ ॥

परिमुखं वर्तते पारिमुखिकः । चात्पारिपार्श्विकः ॥

प्रयच्छति गर्ह्यम् ४ । ४ । ३० ॥

द्विगुणार्थं द्विगुणं तत्प्रयच्छति द्वैगुणिकः । त्रैगुणिकः ॥

वृद्धेर्वृधुषिभावो वक्तव्यः * ॥

वार्धुषिकः ॥

कुसीददशैकादशात्ष्ठन्ष्ठचौ ४ । ४ । ३१ ॥

गर्ह्यार्थाभ्यामाभ्यामेतौ स्तः प्रयच्छतीत्यर्थे । कुसीदं वृद्धिस्तदर्थं द्रव्यं कुसीदं तत्प्रयच्छतीति कुसीदिकः कुसीदिकी । एकादशार्थत्वादेकादश ते च ते वस्तुतो दश चेति विग्रहेऽकारः समासान्त इहैव सूत्रे निपात्यते । दशैकादशिकः । दशैकादशिकी दशैकादशान्प्रयच्छतीत्युत्तमर्ण एवेहापि तद्धितार्थः ॥

शब्ददर्दुरं करोति ४ । ४ । ३४ ॥

शब्दं करोति शाब्दिकः । दार्दुरिकः ॥

पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति ४ । ४ । ३५ ॥

स्वरूपस्य पर्यायाणां विशेषाणां च ग्रहणम् । मत्स्यपर्यायेषु मीनस्यैव । पक्षिणो हन्ति पाक्षिकः । शाकुनिकः । मायूरिकः । मात्स्यिकः । मैनिकः । शाकुलिकः । मार्गिकः । हारिणिकः । सारङ्गिकः ॥

धर्मं चरति ४ । ४ । ४१ ॥

धार्मिकः ॥

अधर्माच्चेति वक्तव्यम् * ॥

आधर्मिकः ॥

समवायान्समवैति ४ । ४ । ४३ ॥

सामवायिकः । सामूहिकः ॥

परिषदो ण्यः ४ । ४ । ४४ ॥

परिषदं समवैति पारिषद्यः ॥

सेनाया वा ४ । ४ । ४५ ॥

ण्यः पक्षे ठक् । सैन्याः सैनिकाः ॥

शिल्पम् ४ । ४ । ५५ ॥

मृदङ्गवादनं शिल्पमस्य मार्दङ्गिकः ॥

मड्डुकझर्झरादणन्यतरस्याम् ४ । ४ । ५६ ॥

मड्डुकवादनं शिल्पमस्य माड्डुकः माड्डुकिकः । झार्झरः झार्झरिकः ॥

प्रहरणम् ४ । ४ । ५७ ॥

तदस्य इत्येव । असिः प्रहरणमस्य आसिकः । धानुष्कः ॥

परश्वधाट्ठञ्च ४ । ४ । ५८ ॥

पारश्वधिकः ॥

शक्तियष्टयोरीकक् ४ । ४ । ५९ ॥

शाक्तीकः । याष्टीकः ॥

इति १४३ अंशाः ।

अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ४ । ४ । ६० ॥

तदस्य इत्येव । अस्ति परलोक इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः । नास्तीतिमतिर्यस्य स नास्तिकः । दिष्टमिति मतिर्यस्य स दैष्टिकः॥

शीलम् ४ । ४ । ६१ ॥

अपूपभक्षणं शीलमस्य आपूपिकः ॥

छत्रादिभ्यो णः ४ । ४ । ६२ ॥

गुरोर्दोषाणामावर्णं छत्रं तच्छीलमस्य छात्रः ॥

कार्मस्ताच्छील्ये ६ । ४ । १७२ ॥

कार्म इति ताच्छील्ये णे टिलोपो निपात्यते । कर्मशीलः कार्मः । नस्ताद्धिते इत्येव सिद्धे अण्कार्यं ताच्छीलिके णेऽपि । तेन चौरी तापसीत्यादि सिद्धम् । ताच्छील्ये किम् । कार्मणः ॥

तत्र नियुक्तः ४ । ४ । ६९ ॥

आकरे नियुक्त आकरिकः ॥

अगारान्ताट्ठन् ४ । ४ । ७० ॥

देवागारे नियुक्तो देवागारिकः ॥

प्राग्घिताद्यत् ४ । ४ । ७५ ॥

तस्मै हितम् इत्यतः प्राग्यदधिक्रियते ॥

तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम् ४ । ४ । ७६ ॥

रथं वहति रथ्यः । युग्यः । वत्सानां दमनकाले स्कन्धे यत्काष्ठमासज्यते स प्रासङ्गः तं वहति प्रासङ्ग्यः ॥

धुरो यड्ढकौ ४ । ४ । ७७ ॥

हलि च इति दीर्घे प्राप्ते न भकुर्छुराम् । धुर्यः धौरेयः ॥

खः सर्वधुरात् ४ । ४ । ७८ ॥

सर्वधुरं वहतीति सर्वधुरीणः ॥

एकधुराल्लुक् च ४ । ४ । ७९ ॥

एकधुरं वहति एकधुरीणः एकधुरः ॥

शकटादण् ४ । ४ । ८० ॥

शकटं वहति शाकटो गौः ॥

हलसीराट्ठक् ४ । ४ । ८१ ॥

हलं वहति हालिकः । सैरिकः ॥

संज्ञायां जन्या ४ । ४ । ८२ ॥

जनी वधूः तां वहति प्रापयति जन्या ॥

धनगणं लब्धा ४ । ४ । ८४ ॥

तृन्नन्तमेतत् । धनं लब्धा धन्यः । गणं लब्धा गण्यः ॥

वशंगतः ४ । ४ । ८६ ॥

वश्यः परेच्छानुचारी ॥

संज्ञायां धेनुष्या ४ । ४ । ८९ ॥

धेनुशब्दस्य षुगागमो यप्रत्ययश्च स्वार्थे निपात्यते संज्ञायाम् । धेनुष्या बन्धके स्थिता इत्यमरः ॥

गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः ४ । ४ । ९० ॥

गृहपतिर्यजमानस्तेन संयुक्तो गार्हपत्योऽग्निः ॥

नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु ४ । ४ । ९१ ॥

नावा तार्यं नाव्यम् । वयसा तुल्यो वयस्यः । धर्मेण प्राप्यं धर्म्यम् । विषेण वध्यो विष्यः । मूलेनानाम्यं मूल्यम् । मूलेन समो मूल्यः । सीतया समितं सीत्यं क्षेत्रम् । तुलया संमितं तुल्यम् ॥

धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते ४ । ४ । ९२ ॥

धर्मादनपेतं धर्म्यम् । पथ्यम् । अर्थ्यम् । न्याय्यम् ॥

छन्दसो निर्मिते ४ । ४ । ९३ ॥

छन्दसा निर्मितं छन्दस्यम् । इच्छया कृतमित्यर्थः ॥

उरसोऽण् च ४ । ४ । ९४ ॥

चाद्यत् । उरसा निर्मितः पुत्र औरसः उरस्यः ॥

हृदयस्य प्रियः ४ । ४ । ९५ ॥

हृद्यो देशः । हृदयस्य हृल्लेख इति हृदादेशः ॥

तत्र साधुः ४ । ४ । ९८ ॥

अग्रे साधुः अग्र्यः । सामसु साधुः सामन्यः । ये चाभावकर्मणोः इति प्रकृतिभावः । कर्मण्यः । शरण्यः ॥

प्रतिजनादिभ्यः खञ् ४ । ४ । ९९ ॥

प्रतिजनं साधुः प्रातिजनीनः । सांयुगीनः । सार्वजनीनः । वैश्वजनीनः ॥

भक्ताण्णः ४ । ४ । १०० ॥

भक्ते साधवो भाक्ताः शालयः ॥

परिषदो ण्यः ४ । ४ । १०१ ॥

पारिषद्यः । परिषद इति योगविभागाण्णोऽपि । पारिषदः ॥

पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ् ४ । ४ । १०४ ॥

पथि साधु पाथेयम् । आतिथेयम् । वसनं वसतिस्तत्र साधुर्वासतेयी रात्रिः । स्वापतेयं धनम् ॥

सभाया यः ४ । ४ । १०५ ॥

सभ्यः ॥

समानतीर्थे वासी ४ । ४ । १०७ ॥

साधुः इति निवृत्तम् । वसतीति वासी । समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः ॥

समानोदरे शयित ओ चोदात्तः ४ । ४ । १०८ ॥

समाने उदरे शयितः स्थितः समानोदर्यो भ्राता ॥

सोदराद्यः ४ । ४ । १०९ ॥

सोदर्यः । अर्थः प्राग्वत् ॥ इति प्राग्घितीयाः ॥

प्राक् क्रीताच्छः ५ । १ । १ ॥

तेन क्रीतम् इत्यतः प्राक्छोऽधिक्रियते ॥

उगवादिभ्यो यत् ५ । १ । २ ॥

प्राक् क्रीतादित्येव । उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च यत् । छस्यापवादः ॥

तस्मै हितम् ५ । १ । ५ ॥

वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक् । शङ्कवे हितं शङ्कव्यं दारु । गव्यम् । हविष्यम् ॥

शरीरावयवाद्यत् ५ । १ । ६ ॥

दन्त्यम् । कण्ठ्यम् ॥

नस्नासिकायाः ❀ ॥

नस्यम् । नाभ्यम् ॥

ये च तद्धिते ६ । १ । ६१ ॥

यादौ तद्धिते परे शिरःशब्दस्य शीर्षन्नादेशः । शीर्षण्यः । तद्धिते किम् । शिर इच्छति शिरस्यति ॥

वा केशेषु ❀ ॥

शीर्षण्याः शिरस्या वा केशाः ॥

अतिशीर्ष इति वाच्यम् ❀ ॥

अजादौ तद्धिते शिरसः शीर्षादेशः । स्थूलशिरस इदं स्थौलशीर्षम् ॥

खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ५ । १ । ७ ॥

खलाय हितं खल्यम् । यव्यम् । माष्यम् । तिल्यम् । वृष्यम् । ब्रह्मण्यम् । चाद्रथ्या ॥

अजाविभ्यां थ्यन् ५ । १ । ८ ॥

अजथ्या । यूथिः । अविथ्या ॥

आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः ५ । १ । ९ ॥

आत्माध्वानौ खे ६ । ४ । १६९ ॥

एतौ खे प्रकृत्या । आत्मने हितमात्मनीनम् । विश्वजनीनम् ॥

कर्मधारयादेवेष्यते ॥

षष्ठीतत्पुरुषाद्बहुव्रीहेश्च छ एव । विश्वजनीयम् ॥

पञ्चजनादुपसंख्यानम् ❀ ॥

पञ्चजनीनम् ॥

सर्वजनाट्ठञ् खश्च ❀ ॥

सार्वजनिकः सर्वजनीनः ॥

महाजनाट्ठञ् ❀ ॥

माहाजनिकः । मातृभोगीणः । पितृभोगीणः । राजभोगीनः ॥

आचार्यादणत्वं च ❀ ॥

आचार्यभोगीनः ॥

सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ ५ । १ । १० ॥

सर्वाण्णो वेति वक्तव्यम् ❀ ॥

सर्वस्मै हितं सार्वं सर्वीयम् ॥

पुरुषाद्वधविकारसमूहतेनकृतेषु ॥

भाष्यकारप्रयोगात्तेनेत्यस्य द्वन्द्वमध्ये निवेशः । पुरुषस्य वधः पौरुषेयः । तस्येदम् इत्यणि प्राप्ते पुरुषस्य विकारः पौरुषेयः । प्राणिरजतादिभ्योऽञ् इत्यञि प्राप्ते समूहेऽप्यणि प्राप्ते एकाकिनोऽपि

परितः पौरुषेयवृता इव इति भावः। तेन कृते ग्रन्थेऽगणे प्राप्ते अग्रन्थे तु प्रासादादावप्राप्त एवेति विवेकः॥ छयतोः पूर्णोऽवधिः॥

इति १४४ अंशाः।

प्राग्वतेष्ठञ् ५।१।१८॥

तेन तुल्यम् इति वतिं वक्ष्यति ततः प्राक् ठञधिक्रियते॥

आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक् ५।१।१९॥

तदर्हति इत्येतदभिव्याप्य ठञधिकारमध्ये ठञोऽपवादष्ठगधिक्रियते गोपुच्छादीन् वर्जयित्वा॥

असमासे निष्कादिभ्यः ५।१।२०॥

आर्हात् इत्येतत् तेन क्रीतम् इति यावत्सप्तदशसङ्ख्यामनुवर्तते। निष्कादिभ्योऽसमासे ठक् आर्हीयेष्वर्थेषु। नैष्किकम्। समासे तु ठञ्॥

परिमाणान्तस्याऽसंज्ञाशाणयोः ७।३।१७॥

उत्तरपदवृद्धिः ञिदादौ। परमनैष्किकः। असंज्ञा इति किम्। पञ्च कलापाः परिमाणमस्य पाञ्चकलापिकम्। तदस्य परिमाणम्। इति ठञ्। असमासग्रहणं ज्ञापकं भवति इत्यतः प्राक्तदन्तविधिः इति। तेन सुगव्यम् यवापूप्यमित्यादि॥

इत ऊर्ध्वं तु संख्यापूर्वपदानां तदन्तग्रहणं प्राग्वतेरिष्यते तच्चालुकि *॥

पारायणिकः। द्वैपारायणिकः। अलुकि इति किम्। द्वाभ्यां शूर्पाभ्यां क्रीतं द्विशूर्पम्। द्विशूर्पेण क्रीते शूर्पादञ् मा भूत् किंतु ठञ्। द्विशौर्पिकम्॥

शताच्च ठन्यतावशते ५।१।२१॥

शतेन क्रीतं शतिकं शत्यम्। अशते किम्। शतं परिमाणमस्य शतकः संघः। इह प्रत्ययार्थो वस्तुतः प्रकृत्यर्थान्न भिद्यते। तेन ठन्यतौ न किंतु कनेव। असमासे इत्येव। द्विशतेन क्रीतं द्विशतकम्॥

संख्याया अतिशदन्तायाः कन् ५ । १ । २२ ॥

संख्यायाः कन् आर्हीयेऽर्थे न तु त्यन्तशदन्तायाः । पञ्चभिः क्रीतः पञ्चकः बहुकः । त्यन्तायास्तु साप्ततिकः । शदन्तायाः चात्वारिंशत्कः ॥

वतोरिड्वा ५ । १ । २३ ॥

वत्वन्तात्कन् इड्वा । तावतिकः तावत्कः ॥

विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् ५ । १ । २४ ॥

योगविभागः कर्तव्यः । आभ्यां कन् । असंज्ञायां तु ड्वुन्कनोऽपवादः । विंशकः । त्रिंशकः । संज्ञायां तु विंशतिकः । त्रिंशतिकः ॥

शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ५ । १ । २७ ॥

एभ्योऽण् । ठञ्ठकनामपवादः । शतमानेन क्रीतं शातमानम् । वैंशतिकम् । साहस्रम् । वासनम् ॥

अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुगसंज्ञायाम् ५ । १ । २८ ॥

अध्यर्धपूर्वाद्द्विगोश्च परस्यार्हीयस्य लुक् । अध्यर्धकंसम् । द्विकंसम् । संज्ञायां तु पाञ्चकलापिकम् ॥

विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम् ५ । १ । २९ ॥

लुग्वा । अध्यर्धकार्षापणम् अध्यर्धकार्षापणिकम् । द्विकार्षापणम् द्विकार्षापणिकम् । औपसंख्यानिकस्य टिठनो लुक् । पक्षेऽध्यर्धप्रतिकम् । द्विप्रतिकम् । अध्यर्धसहस्रम् अध्यर्धसाहस्रम् । द्विसहस्रं । द्विसाहस्रम् । इह ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रकृतास्तेषां समर्थविभक्त्योऽर्थाश्चाकाङ्क्षितास्त इदानीमुच्यन्ते ॥

तेन क्रीतम् ५ । १ । ३७ ॥

ठञ् । गोपुच्छेन क्रीतं गौपुच्छिकम् । साप्ततिकम् । प्रास्थिकम् । ठक् । नैष्किकम् ॥

तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ५ । १ । ३८ ॥

संयोगः संबंधः उत्पातः । शुभाशुभसूचकः । शतिकः शत्यो

वा। धनपतिसंयोगः शत्यं शतिकम्। दक्षिणाक्षिस्पन्दनं शतस्य निमित्तमित्यर्थः॥

वातपित्तश्लेष्मभ्यः शमनकोपनयोरुपसंख्यानम् ॥

वातस्य शमनं कोपनं वा वातिकम्। पैत्तिकम्। श्लैष्मिकम्॥

संनिपाताच्चेति वक्तव्यम् ॥

सांनिपातिकम्॥

गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ५।१।३९॥

गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः। द्व्यचः। धन्यः। यशस्यः। स्वर्ग्यः। गोद्व्यचः किम्। विजयस्य वैजयिकः। असंख्या इत्यादि किम्। पञ्चानाम्। पञ्चकम्। सप्तकम्। प्रास्थिकम्। खारीकम्। अश्वादि। आश्विकम्। आश्मिकम्॥

ब्रह्मवर्चसादुपसंख्यानम् ॥

ब्रह्मवर्चस्यम्॥

पुत्राच्छ च ५।१।४०॥

चायत्। पुत्रीयः पुत्र्यः॥

सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ ५।१।४१॥

सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः पार्थिवः। सर्वभूमिशब्दोऽनुशतिकादिषु पठ्यते॥

तस्येश्वरः ५।१।४२॥

तत्र विदित इति च ५।१।४३॥

सर्वभूमेरीश्वरः सर्वभूमौ विदितो वा सार्वभौमः पार्थिवः॥

लोकसर्वलोकाट्ठञ् ५।१।४४॥

तत्र विदितः इत्यर्थे। लौकिकः। अनुशतिकादित्वादुभयपदवृद्धिः। सार्वलौकिकः॥

तस्य वापः ५।१।४५॥

उप्यतेऽस्मिन्निति वापः क्षेत्रम् । प्रस्थस्य वापः प्रास्थिकम् । द्रौणिकं । खारीकम् ॥

तदस्मिन्वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते ५।१।४७ ॥

वृद्धिर्दीयत इत्यादि क्रमेण प्रत्येकं संबंधादेकवचनम् । पञ्चास्मिन् वृद्धिः । आयः । लाभः । शुल्कम् । उपदा वा । दीयते । पञ्चकः । शतिकः । शत्यः । साहस्रः । उत्तमर्णेन मूलातिरिक्तं ग्राह्यं वृद्धिः । ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भाग आयः। विक्रेत्रा मूल्याद् धिकं ग्राह्यं लाभः। रक्षानिर्वेशो राजभागः शुल्कः। उत्कोच उपदा ॥

चतुर्थ्यर्थे उपसंख्यानम् ॥

पञ्चास्मै वृद्ध्यादिर्दीयते पञ्चको देवदत्तः । सप्तमब्राह्मणे दानम् इतिवदधिकरणत्वविवक्षा वा ॥

तदस्य परिमाणम् ५ । १ । ५७ ॥

प्रस्थं परिमाणमस्य प्रास्थिको राशिः ॥

संख्यायाः संज्ञासंघसूत्राध्ययनेषु ५ । १ । ५८ ॥

पूर्वसूत्रमनुवर्तते ॥

तत्र संज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो वाच्यः ॥

यद्वा द्व्येकयोरितिवत्संख्यामात्रवृत्तेः परिमाणिनि प्रत्ययः । पञ्चैव पञ्चकाः शकुनयः। पञ्च परिमाणमेषामिति वा संघे पञ्चकः। सूत्रेऽष्टकं पाणिनीयम् । संघशब्दस्य प्राणिसमूहे रूढत्वात्सूत्रं पृथगुपात्तम् । पञ्चकमध्ययनम् ॥

इति १४५ अंशाः ।

स्तोमे डविधिः ॥

पञ्चदश मन्त्राः परिमाणमस्य पञ्चदशः । सप्तदशः । एकविंशः । सोमयागेषु छन्दोगैः क्रियमाणा पृष्ठ्यादिसंज्ञिका स्तुतिः स्तोमः ॥

पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टिसप्तत्यशीतिनवतिशतम् ५ । १ । ५९ ॥

एते रूढिशब्दा निपात्यन्ते ॥

तदर्हति ५ । १ । ६३ ॥

लब्धुं योग्यो भवतीत्यर्थे द्वितीयान्ताट्ठञादयः । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वैतच्छत्रिकः ॥

शीर्षच्छेदाद्यच्च ५ । १ । ६५ ॥

शिरश्छेदं नित्यमर्हति शीर्षच्छेद्यः शैर्षच्छेदिकः । यट्कोः सन्नियोगेन शिरसः शीर्षभावो निपात्यते ॥

दण्डादिभ्यो यत् ५ । १ । ६६॥

एभ्यो यत् । दण्डमर्हति दण्ड्यः । अर्घ्यः । वध्यः ॥

कडङ्करदक्षिणाच्छ च ५ । १ । ६९ ॥

चाद्यत् । कडं करोतीति विग्रहेऽत एव निपातनात्खच् । कडंकरं माषमुद्गादिकाष्ठमर्हतीति कडंकरीयो गौः कडंकर्यः । दक्षिणामर्हतीति दक्षिणीयः दक्षिण्यः ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ ५ । १ । ७१ ॥

यथासंख्यम् । यज्ञमृत्विजं वार्हति यज्ञियः । आर्त्विजीनो यजमानः ॥

यज्ञर्त्विग्भ्यां तत्कर्मार्हतीत्युपसंख्यानम् ❀ ॥

यज्ञियो देशः । आर्त्विजीन ऋत्विक् ॥ इत्यार्हीयाः ॥ अतः परं ठञेव ॥

पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति ५ । १ । ७२ ॥

पारायणं वर्तयति पारायणिकश्छात्रः । तुरायणं यज्ञविशेषः । तं वर्तयति तौरायणिको यजमानः । चान्द्रायणिकः ॥

संशयमापन्नः ५ । १ । ७३ ॥

संशयविषयीभूतोऽर्थः सांशयिकः ॥

पथः ष्कन् ५ । १ । ७५ ॥

पो ङीपर्थः । पन्थानं गच्छति पथिकः पथिकी ॥

पन्थो ण नित्यम् ५ । १ । ७६ ॥

पन्थानं नित्यं गच्छति पान्थः पान्था ॥

कालात् ५ । १ । ७८ ॥

व्युष्टादिभ्योऽण् इत्यतः प्रागधिकारोऽयम् ॥

तेन निर्वृत्तम् ५ । १ । ७९ ॥

अह्ना निर्वृत्तमाह्निकम् ॥

तमधीष्टो भृतो भूतो भावी ५ । १ । [illegible]

अधीष्टः सत्कृत्य व्यापारितः । भृतो वे[illegible]
स्वसत्तया व्याप्तकालः । भावी तादृश ए[illegible]
मधीष्टो मासिकोऽध्यापकः । मासं [illegible]
मासं भूतो मासिको व्याधिः । पा[illegible]

षष्टिकाः षष्टिरात्रेण [illegible]नेषु ५ । [illegible]

बहुवचनमतन्त्रम् । प[illegible]
रात्रशब्दलोपश्च निपात्य[illegible]यो वा[illegible]न्यन्ते ५ । १ । ९
तत्र च दीयते क[illegible]त्रवृत्तिक्ती धान्यविशेषः । ह
प्रावृषि दीयते कार्यं[illegible] पारिते ॥
धिकारः ॥ [illegible]र्थ भववत् ५ । १ । ९६
तस्मै प्रभवति सं[illegible]वा प्रावृषेण्यम् । शारदम् ॥
संतापाय प्रभवति सांत[illegible]
योगाद्यच्च ५ । १ । [illegible]तापादिभ्यः ५ । १ । १०
चाट्स् । योगाय प्रभव[illegible]पिकः । सांग्रामिकः ॥
कर्मण उकञ् ५ । १ । १०२ ॥
कर्मणे प्रभवति कार्मुकम् ॥ [illegible]भ्यः यौगिकः ॥
[illegible] ॥

समयस्तदस्य प्राप्तम् ५ । १ । १०४ ॥

समयः प्राप्तोऽस्य सामयिकम् ॥

ऋतोरण् ५ । १ । १०५ ॥

ऋतुः प्राप्तोऽस्य आर्तवम् ॥

उपवस्त्रादिभ्य उपसंख्यानम् ❀ ॥

उपवस्ता प्राप्तोऽस्य औपवस्त्रम् । प्राशिता प्राप्तोऽस्य प्राशित्रम्॥

कालाद्यत् ५ । १ । १०७ ॥

कालः प्राप्तोऽस्य काल्यं शीतम् ॥

प्रयोजनम् ५ । १ । १०९ ॥

तदस्य इत्येव । इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य ऐन्द्रमहिकम् । प्रयोजनं फलं कारणं च ॥

ऐकागारिकट् चौरे ५ । १ । ११३ ॥

एकमसहायमगारं प्रयोजनमस्य मुमुपिषोः स ऐकागारिकश्चौरः॥

आकालिकडाद्यन्तवचने ५ । १ । १११ ॥

समानकालावाद्यन्तौ यस्येत्याकालिकः । समानकालस्याकाल आदेशः । आशु विनाशीत्यर्थः । पूर्वदिने मध्याह्नादारुत्पद्य दिनान्तरे तत्रैव नश्वर इति वा ॥

आकालाट्ठंश्च ❀ ॥

आकालिका विद्युत् ॥ इति ठञधिकारः ॥

तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः ५ । १ । ११५ ॥

ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मणवदधीते । क्रिया चेत् इति किम् । गुणतुल्ये मा भूत् । पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ॥

तत्र तस्येव ५ । १ । ११६ ॥

मथुरायामिव मथुरावत्स्रुघ्ने प्राकारः । चैत्रस्येव चैत्रवन्मैत्रस्य गावः ॥

तदर्हम् ५ । १ । ११७ ॥

विधिमर्हति विधिवत्पूज्यते । क्रियाग्रहणं मण्डूकप्लुत्यानुवर्तते तेनेह न । राजानमर्हति छत्रम् ॥

तस्यभावस्त्वतलौ ५ । १ । ११९ ॥

प्रकृतिजन्यबोधे प्रकारो भावः। गोर्भावो गोत्वं गोता । त्वान्तं क्लीबम् । तलन्तं स्त्रियाम् ॥

आ च त्वात् ५ । १ । १२० ॥

ब्रह्मणस्त्व इत्यतः प्राक्त्वतलावधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थं गुणवचनादिभ्यः कर्मणि विधानार्थं चेदम् । चकारो नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रिया भावः स्त्रैणं स्त्रीत्वं स्त्रीता । पौंस्नं पुंस्त्वं पुंस्ता ॥

न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषादचतुरसंगतलवणवटयुधकतरसलसेभ्यः ५ । १ । १२१ ॥

इतः परं ये भावप्रत्ययास्ते नञ्तत्पुरुषान्न चतुरादीन् वर्जयित्वा । अपतित्वम् । अपटुत्वम् । नञ्पूर्वात् किम् । बार्हस्पत्यम् । तत्पुरुषात् किम् । नास्य पटवः सन्तीत्यपटुस्तस्य भाव आपटवम् । अचतुर इति किम् । आचतुर्यम् । आसंगत्यम् । आलवण्यम् । आवट्यम् । आयुध्यम् । आकत्यम् । आरस्यम् । आलस्यम् ॥

पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५ । १ । १२२ ॥

वावचनमणादिसमावेशार्थम् ॥

र ऋतो हलादेर्लघोः ६ । ४ । १६१ ॥

हलादेर्लघोर्ऋकारस्य रः इष्ठेमेयस्सु ॥

टेः ६ । ४ । १५५ ॥

भस्य टेर्लोपः इष्ठेमेयस्सु । पृथोर्भावः प्रथिमा पार्थवम् । म्रदिमा मार्दवम् ॥

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च ५ । १ । १२३ ॥

चादिमानिच। शौक्ल्यं शुक्लिमा। दार्ढ्यम्। पृथुमृदुभृशकृश-दृढपरिवृढानामेव रत्वम्। द्रढिमा। यो ङीपर्थः। औचिती। याथाकामी॥

इति १४६ अंशाः।

गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च॥

चाद्भावे। जडस्य कर्म भावो वा जाड्यम्। मूढस्य भावः कर्म वा मौढ्यम्। ब्राह्मण्यम्॥

अर्हतो नुम् च ❀॥

अर्हतो भावः कर्म वा आर्हन्त्यम् आर्हन्ती। ब्राह्मणादिराकृतिगणः॥

यथातथयथापुरयोः पर्यायेण ७।३।३१॥

नञः परयोरेतयोः पूर्वोत्तरपदयोः पर्यायेणादेरचो वृद्धिर्निदादौ। अयथातथाभाव आयथातथ्यं अयथातथ्यम्। आयथापुर्यं अयथापुर्यम्। आपादसमाप्तेर्भावकर्माधिकारः॥

चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ❀॥

चत्वारो वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम्। चातुराश्रम्यम्। त्रैस्वर्यम्। षाड्गुण्यम्। सैन्यम्। सान्निध्यम्। सामीप्यम्। औपम्यम्। त्रैलोक्यमित्यादि। सर्वे वेदाः सर्ववेदास्तानधीते सर्ववेदः। सर्वादेः इति लुक्। स एव सार्ववेद्यः॥

चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च ❀॥

चतुरो वेदानधीते चतुर्वेदः स एव चातुर्वैद्यः। चतुर्विद्यस्य इति पाठान्तरम्। चतुर्विद्य एव चातुर्वैद्यः॥

स्तेनाद्यन्नलोपश्च ५।१।१२५॥

न इति संघातग्रहणम्। स्तेनचौर्ये पचाद्यच्। स्तेनस्य भावः कर्म वा स्तेयम्। स्तेनात् इति योगं विभज्य स्तैन्यमिति ष्यजन्तमपि केचिदिच्छन्ति॥

सख्युर्यः ५ । १ । १२६ ॥

सख्युर्भावः कर्म वा सख्यम् ॥

दूतवणिग्भ्यां च ॥

दूतस्य भावः कर्म वा दूत्यम् । वाणिज्यम् इति काशिका । माधवस्तु वणिज्याशब्दः स्वभावात्स्त्रीलिङ्गः भाव एव चात्र प्रत्ययो नतु कर्मणि इत्याह । भाष्ये तु दूतवणिग्भ्यां च इति नास्त्येव । ब्राह्मणादित्वाद्वाणिज्यमपि ॥

कपिज्ञात्योर्ढक् ५ । १ । १२७ ॥

कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ५ । १ । १२८ ॥

सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ॥

राजाऽसे ॥

राजशब्दोऽसमासे यकं लभत इत्यर्थः । राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासे तु ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् । आधिराज्यम् ॥

प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् ५।१।१२९ ॥

प्राणभृज्जातिः । आश्वम् । औष्ट्रम् । वयोवचनम् । कौमारम् । कैशोरम् । औद्गात्रम् । औन्नेत्रम् । सौष्टवम् । दौष्टवम् ॥

हायनान्तयुवादिभ्योऽण् ५ । १ । १३० ॥

द्वैहायनम् । त्रैहायनम् । यौवनम् । स्थाविरम् ॥

श्रोत्रियस्य यलोपश्च ॥

श्रौत्रम् । कुशलचपलनिपुणपिशुनकुतूहलक्षेत्रज्ञा युवादिषु ब्राह्मणादिषु च पठ्यन्ते । कौशल्यं कौशलमित्यादि ॥

इगन्ताच्च लघुपूर्वात् ५ । १ । १३१ ॥

शुचेर्भावः कर्म वा शौचम् । मौनम् । कथं काव्यम् । कविशब्दस्य
१ । २ ॥

योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ् ५ । १ । १३२ ॥

रामणीयकम्। आभिधानीयकम्॥

सहायाद्वा ॥

साहाय्यं साहायकम्॥

द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च ५।१।१३३॥

शैष्योपाध्यायिका। मानोज्ञकम्॥

गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु ५।१।१३४॥

अत्याकारोऽधिक्षेपः। तदवेतस्ते गोत्रचरणयोर्भावकर्मणी प्राप्तः अवगतवान्वा। गार्गिकया श्लाघते। गार्ग्यत्वेन विकत्थत इत्यर्थः। गार्गिकयात्याकुरुते। गार्गिकामवेतः॥

होत्राभ्यश्छः ५।१।१३५॥

होत्राशब्दोऽत्र ऋत्विग्वाची स्त्रीलिङ्गः। बहुवचनाद्विशेषग्रहणम्। अच्छावाकस्य भावः कर्म वा अच्छावाकीयम्। मैत्रावरुणीयम्॥

ब्रह्मणस्त्वः ५।१।१३६॥

होत्रावाचिनो ब्रह्मशब्दात्त्वः। छस्यापवादः। ब्रह्मत्वं नेति वाच्ये त्ववचनं तलो बाधनार्थम्। ब्राह्मणपर्यायाद्ब्रह्मञ्छब्दात्तु त्वतलौ। ब्रह्मत्वं ब्रह्मता॥ इति नञ्स्नञधिकारः॥

धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ् ५।२।१॥

भवन्त्यस्मिन्निति भवनम्। मुद्गानां भवनं क्षेत्रं मौद्गीनम्॥

व्रीहिशाल्योर्ढक् ५।२।२॥

व्रैहेयम्। शालेयम्॥

यवयवकषष्टिकाद्यत् ५।२।३॥

यवानां भवनं क्षेत्रं यव्यं यवक्यम्। षष्टिक्यम्॥

विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः ५।२।४॥

यद्वा पक्षे खञ्। तिल्यं तैलीनम्। माष्यं माषीणम्। उम्यं औमीनम्। भङ्ग्यं भाङ्गीनम्। अणव्यं आणवीनम्॥

यथामुखसंमुखस्य दर्शनः खः ५।२।६॥

मुखस्य सदृशं यथामुखं प्रतिबिम्बम् । निपातनात्सादृश्येऽव्ययीभावः । समं सर्वं मुखं संमुखम् । समशब्दस्यान्तलोपो निपात्यते । यथामुखं दर्शनो यथामुखीनः । सर्वस्य मुखस्य दर्शनः संमुखीनः ॥

तत्सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति ५।२।७॥

सर्वादेः पथ्याद्यन्ताद्द्वितीयान्तात्खः । सर्वपथान् व्याप्नोति सर्वपथीनः । सर्वाङ्गीणः । सर्वकर्मीणः । सर्वपत्रीणः । सर्वपात्रीणः॥

आप्रपदं प्राप्नोति ५।२।८॥

पादस्याग्रं प्रपदं तन्मर्यादीकृत्य आप्रपदम् । आप्रपदीनः पटः॥

अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु ५।२।९॥

अनुरायामे सादृश्ये वा । अनुपदं बद्धा अनुपदीना उपानत् । सर्वान्नानि भक्षयति सर्वान्नीनो भिक्षुः । अयानयः स्थलविशेषः । तं नेयोऽयानयीनः शारः ॥

परोवरपरंपरपुत्रपौत्रमनुभवति ५।२।१०॥

पराश्चावराश्चानुभवतीति परोवरीणः । अवरस्योत्वं निपात्यते । पराश्च परतराश्चानुभवति परंपरीणः । प्रकृतेः परंपरभावो निपात्यते । पुत्रपौत्राननुभवति पुत्रपौत्रीणः । परम्पराशब्दस्तु अव्युत्पन्नं शब्दान्तरं स्त्रीलिङ्गं तस्मादेव स्वार्थे ष्यञि पारम्पर्यम् । कथं पारो वर्यवदिति असाधुरेव । खप्रत्ययसंनियोगेनैव परोवरेति निपातनात् ॥

अवारपारात्यन्तानुकामंगामी ५।२।११॥

अवारपारं गामी अवारपारीणः । अवारीणः । पारीणः । पारावारीणः । अत्यन्तं गामी अत्यन्तीनः । भृशं गन्तेत्यर्थः। अनुकामं गामी अनुकामीनः यथेष्टं गन्ता ॥

इति १४७ अंशाः ।

समांसमां विजायते ५ । २ । १२ ॥

यलोपोऽविशिष्टविभक्तेरलुक् च पूर्वपदे निपात्यते । समांसमीना गौः । समांसमीना सार्यव प्रतिवर्षं प्रसूयते इत्यर्थः ॥

खप्रत्ययानुत्पत्तौ यलोपो वा वक्तव्यः ॥

समांसमां विजायते समायां समायां वा ॥

अद्यश्वीनावष्टब्धे ५ । २ । १३ ॥

अद्य श्वो वा विजायते अद्यश्वीना वडवा । आसन्नप्रसवेत्यर्थः । केचित्तु विजायत इति नानुवर्तयन्ति । अद्यश्वीनं मरणम् । आसन्नमित्यर्थः ॥

आगवीनः ५ । २ । १४ ॥

आङ्पूर्वाद्गोः कर्मकरे खप्रत्ययो निपात्यते । गोप्रत्यर्पणपर्यन्तं यः कर्म करोति स आगवीनः ॥

अनुग्वलंगामी ५ । २ । १५ ॥

अनुगु गोः पश्चात्पर्याप्तं गच्छति अनुगवीनो गोपालः ॥

अध्वनो यत्खौ ५ । २ । १६ ॥

अध्वानमलं गच्छति अध्वन्यः अध्वनीनः ॥

ये चाभावकर्मणोः ॥

आत्माध्वानौ खे इति सूत्राभ्यां प्रकृतिभावः ॥

अभ्यमित्राच्छ च ५ । २ । १७ ॥

चाद्यत्खौ । अभ्यमित्रीयः अभ्यमित्र्यः अभ्यमित्रीणः । अमित्राभिमुखं सुष्ठु गच्छतीत्यर्थः ॥

गोष्ठात्खञ्भूतपूर्वे ५ । २ । १८ ॥

गोष्ठो भूतपूर्वः । गौष्ठीनो देशः ॥

अश्वस्यैकाहगमः ५ । २ । १९ ॥

एकाहेन गम्यत इत्येकाहगम आश्वीनोऽध्वा ॥

शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ५ । २ । २० ॥

शालाप्रवेशमर्हति शालीनोऽधृष्टः । कूपपतनमर्हति कौपीनं पापम् । तत्साधनत्वाच्चह्लोप्यत्वात्पुरुषलिङ्गमपि तत्संबन्धात्तदाच्छादनमपि ॥

व्रातेन जीवति ५ । २ । २१ ॥

व्रातेन शरीरायासेन जीवति नतु बुद्धिवैभवेन स व्रातीनः ॥

साप्तपदीनं सख्यम् ५ । २ । २२ ॥

सप्तभिः पदैरवाप्यते साप्तपदीनम् ॥

हैयंगवीनं संज्ञायाम् ५ । २ । २३ ॥

ह्योगोदोहस्य हियङ्गुरादेशो विकारार्थे खश्च निपात्यते । दुह्यत इति दोहः क्षीरम् । ह्योगोदोहस्य विकारो हैयङ्गवीनं नवनीतम् ॥

तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ ५ । २ । २४ ॥

पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं कर्णजाहम् ॥

पक्षात्तिः ५ । २ । २५ ॥

मूलग्रहणमात्रमनुवर्तते । पक्षस्य मूलं पक्षतिः ॥

तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ ५ । २ । २६ ॥

पकारः प्रत्यययोरादौ लुप्तनिर्दिष्टस्तेन चस्य नेत्संज्ञा । विद्यया वित्तो विद्याचुञ्चुः विद्याचणः ॥

विनञ्भ्यां नानाञौ न सह ५ । २ । २७ ॥

असहार्थे पृथग्भावे वर्तमानाभ्यां स्वार्थे प्रत्ययौ । विना । नाना ॥

वेः शालच्छङ्कटचौ ५ । २ । २८ ॥

क्रियाविशिष्टसाधनवाचकात् स्वार्थे । विस्तृतम् । विशालम् । विशङ्कटम् ॥

संप्रोदश्च कटच् ५ । २ । २९ ॥

संकटम् । प्रकटम् । उत्कटम् ॥

अलाबूतिलोमाभङ्गाभ्यो रजस्युपसंख्यानम् ❀ ॥

अलाबूनां रजः अलाबूकटम् ॥

गोष्ठजादयः स्थानादिषु पशुनामभ्यः ❀ ॥

गवां स्थानं गोगोष्ठम् ॥

संघाते कटच् ॥

अवीनां संघातोऽविकटः ॥

विस्तारे पटच् ❀ ॥

अविपटः ॥

द्वित्वे गोयुगच् ❀ ॥

द्वावुष्ट्रौ उष्ट्रगोयुगम् ॥

षट्त्वे षड्गवच् ❀ ॥

अश्वषड्गवम् ॥

स्नेहे तैलच् ❀ ॥

तिलतैलम् । सर्षपतैलम् ॥

भवने क्षेत्रे शाकटशाकिनौ ❀ ॥

इक्षुशाकटम् । इक्षुशाकिनम् ॥

अवात्कुटारच्च ५ । २ । ३० ॥

चात्कटच् । अवाचीनोऽवकुटारः । अवकटः ॥

नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः ५।२।३१॥

अवात् इत्येव । नतं नमनम् । नासिकाया नतं अवटीटम् अवनाटम् अवभ्रटम् । तद्योगान्नासिकावटीटा । पुरुषोऽप्यवटीटः ॥

नेर्बिडज्बिरीसचौ ५ । २ । ३२ ॥

निबिडम् । निबिरीसम् ॥

इनच्पिटच्चिकचि च ५ । २ । ३३ ॥

नेः इत्येव । नासिकाया नतेऽभिधेये इनच्पिटचौ प्रत्ययौ प्रकृतेश्चिकचीत्यादेशौ च ॥

कप्रत्ययचिकादेशौ च वक्तव्यौ ❀ ॥

चिक्किनम् । चिपिटम् । चिकम् ॥

क्लिन्नस्य चिलिपल्लश्चास्य चक्षुषी ❀ ॥

क्लिन्ने चक्षुषी अस्य चिल्लः । पिल्लः ॥

चुल् च ❀ ॥

चुल्लः ॥

उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ५ । २ । ३४ ॥

संज्ञायाम् इत्यनुवर्तते । पर्वतस्यासन्नं स्थलमुपत्यका । आरूढं स्थलमधित्यका ॥

कर्मणि घटोऽठच् ५ । २ । ३५ ॥

घटत इति घटः । पचाद्यच् । कर्मणि घटते कर्मठः पुरुषः ॥

तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ५ । २ । ३६ ॥

तारकाः संजाता अस्य तारकितं नभः । आकृतिगणोऽयम् ॥

प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ५ । २ । ३७ ॥

तदस्य इत्यनुवर्तते । ऊरु प्रमाणमस्य ऊरुद्वयसम् ऊरुदघ्नम् ऊरुमात्रम् ॥

प्रमाणे लः ❀ ॥

शमः । दिष्टिः । वितस्तिः ॥

द्विगोर्नित्यम् ❀ ॥

द्वौ शमौ प्रमाणमस्य द्विशमम् ॥

प्रमाणपरिमाणाभ्यां संख्यायाश्चापि संशये मात्रज्वक्तव्यः ❀ ॥

शममात्रम् । प्रस्थमात्रम् । पञ्चमात्रम् ॥

वत्वन्तात्स्वार्थे द्वयसज्मात्रचौ बहुलम् ❀ ॥

तावदेव तावद्वयसम् । तावन्मात्रम् ॥

पुरुषहस्तिभ्यामण्च ५ । २ । ३८ ॥

पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषं पुरुषद्वयसम् । हास्तिनं हस्तिद्वयसम्॥

यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् ५ । २ । ३९ ॥

यत्परिमाणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् ॥

किमिदंभ्यां वो घः ५ । २ । ४० ॥

आभ्यां वतुप्स्याद्वस्य च घः । कियान् । इयान् ॥

किमः संख्यापरिमाणे डति च ५ । २ । ४१ ॥

चाद्वतुप् तस्य च वस्य घः । काः संख्या येषान्ते कति कियन्तः॥

संख्याया अवयवे तयप् ॥

पञ्चतयम् ॥

द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ॥

द्वयं द्वितयम् । त्रयं त्रितयम् ॥

उभादुदात्तो नित्यम् ५ । २ । ४४ ॥

उभशब्दात्तयपोऽयच् स चाद्युदात्तः । उभयम् । वृत्तिविषये सर्वत्र नित्यम् । उभयसुखम् ॥

इति १४८ अंशाः ।

तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः ५ । २ । ४५ ॥

एकादशाधिका अस्मिन्नेकादशं शतम् ॥

शतसहस्रयोरेवेष्यते ❀ ॥

नेह । एकादशाधिका अस्यां विंशतौ॥

प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः समानजातीयत्व एवेष्यते ❀॥

नेह । एकादश माषा अधिका अस्मिन्सुवर्णशते ॥

अथ पूर्वखण्डोक्तसंख्यापूरणप्रकरणशेषः ॥

बहुपूगगणसंघस्य तिथुक् ५ । २ । ५२ ॥

डटि पूगसंघयोरसंख्यात्वेऽप्यत एव डट् । बहुतिथ इत्यादि ॥

वतोरिथुक् ५ । २ । ५३ ॥

डटि । यावतिथः ॥

नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च ५ । २। ५७ ॥

शतस्य पूरणः शततमः । एकशततमः । मासादेरत एव डट् । मासतमः ॥

षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः ५ । २ । ५८ ॥

षष्टितमः । संख्यादेस्तु विंशत्यादिभ्यः इति विकल्प एव । एकषष्टः एकषष्टितमः इति ॥

तत्र कुशलः पथः ५ । २ । ६३ ॥

वुन् । पथि कुशलः पथिकः ॥

स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते ५ । २ । ६६ ॥

कन् केशेषु प्रसितः केशकः केशरचनातत्परः ॥

उदराट्ठगाद्यूने ५ । २ । ६७ ॥

अविजिगीषौ ठक् । कनोऽपवादः । बुभुक्षयात्यन्तपीडित उदरे प्रसित औदरिकः । आद्यूने किम् । उदरकः । उदरपरिमार्जनादौ प्रसक्त इत्यर्थः ॥

तन्त्रादचिरापहृते ५ । २ । ७० ॥

तंत्रकः पटः । प्रत्यग्र इत्यर्थः ॥

ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम् ५ । २ । ७१ ॥

आयुधजीविनो ब्राह्मणा यस्मिन्देशे स ब्राह्मणकः । अल्पमन्नं यस्यां सा उष्णिका यवागूः । अन्नशब्दस्योष्णादेशो निपात्यते ॥

शीतोष्णाभ्यां कारिणि ५। २। ७२॥
शीतं करोतीति शीतकोऽलसः। उष्णं करोतीत्युष्णकः शीघ्रकारी॥

अधिकम् ५। २। ७३॥
अध्यारूढशब्दात्कनुत्तरपदलोपश्च॥

अनुकाभिकाभीकः कमिता ५। २। ७४॥
अन्वभिभ्यां कन्नभेः पाक्षिको दीर्घश्च। अनुकामयते अनुकः। अभिकामयतेऽभिकः अभीकः॥

पार्श्वेनान्विच्छति ५। २। ७५॥
अनृजुरुपायः पार्श्वं तेनान्विच्छति पार्श्वकः॥

अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ ५। २। ७६॥
तीक्ष्ण उपायोऽयःशूलं तेनान्विच्छति आयःशूलिकः साहसिकः। दण्डाजिनं दम्भः तेनान्विच्छति दाण्डाजिनिकः॥

शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे ५। २। ७९॥
शृङ्खलकः करभः॥

उत्क उन्मनाः ५। २। ८०॥
उद्गतमनस्कवृत्तेरुच्छब्दात्स्वार्थे कन् उत्कः उत्कण्ठितः॥

कालप्रयोजनाद्रोगे ५। २। ८१॥
कालवचनात्प्रयोजनवचनाच्च कन् रोगे। द्वितीयेऽहनि भवो द्वितीयको ज्वरः। प्रयोजनं कारणं रोगस्य फलं वा। विषपुष्पैर्जनितो विषपुष्पकः। उष्णं कार्यमस्य उष्णकः। रोगे किम्। द्वितीयो दिवसोऽस्य॥

श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते ५। २। ८४॥
श्रोत्रियः। वा इत्यनुवृत्तेश्छान्दसः॥

श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ ५। २। ८५॥

श्राद्धी श्राद्धिकः ॥

पूर्वादिनिः ५ । २ । ८६ ॥

पूर्वं कृतमनेन पूर्वी ॥

सपूर्वाच्च ५ । २ । ८७ ॥

कृतपूर्वी ॥

इष्टादिभ्यश्च ५ । २ । ८८ ॥

इष्टमनेन इष्टी । अधीती ॥

छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि५।२।८९॥

लोके तु परिपन्थिशब्दो न न्याय्यः ॥

अनुपद्यन्वेष्टा ५ । २ । ९० ॥

अनुपदमन्वेष्टा गवामनुपदी ॥

साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम् ५ । २ । ९१ ॥

साक्षाद्द्रष्टा साक्षी ॥

क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः ५ । २ । ९२ ॥

क्षेत्रियो व्याधिः । शरीरान्तरे चिकित्स्यः अप्रतिकार्य इत्यर्थः॥

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा ५ । २ । ९३ ॥

इन्द्र आत्मा तस्य लिङ्गं करणेन कर्तुरनुमानात् । इतिशब्दः प्रकारार्थः । इन्द्रेण दुर्जयमिन्द्रियम् ॥

अथ मत्वर्थीयप्रकरणशेषः । भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने सम्बन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्तिमतुबादयः ॥ अस्तिविवक्षायां ये मतुबादयो विधीयंते ते भूमादिषु विषयेषु भवंतीति वार्तिकार्थः । भूम्नि—गोमान् । यवमान् । निन्दायाम्—ककुदावर्तिनी कन्या । प्रशंसा—रूपवान् । नित्ययोगे क्षीरिणो वृक्षाः । अतिशायने—उदरणी कन्या । संसर्गे । दण्डी—संसर्गः संयोगः तेन

दण्डीति संयुक्त दण्ड एवोच्यते नतु गृहावस्थितदंडोऽपि । वसोः सम्प्रसारणम् । विदुष्मान् । तसौ मत्वर्थे इति मत्वम् ॥

गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः ॥

शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति शुक्लः पटः । कृष्णः ॥

संज्ञायाम् ८ । २ । ११ ॥

मतोर्मस्य वः। अहीवती । मुनीवती । शरादीनां च इति दीर्घः॥

आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ८।२।१२

एते पद संज्ञायां निपात्यन्ते । आसनशब्दस्यासन्दीभावः । आसन्दीवान् ग्रामः । अन्यत्रासनवान् । अस्थिशब्दस्याष्ठीभावः । अष्ठीवान् । अस्थिमानन्यत्र । चक्रशब्दस्य चक्रीभावः । चक्रीवान्नाम राजा । चक्रवानन्यत्र । कक्ष्यायाः संप्रसारणम् । कक्षीवान्नामर्षिः । कक्ष्यावानन्यत्र । लवणशब्दस्य रुमण्भावः। रुमण्वान्नाम पर्वतः । लवणवानन्यत्र । चर्मणो नलोपाभावो णत्वं च । चर्मण्वती नाम नदी । चर्मवत्यन्यत्र ॥

उदन्वानुदधौ च ८ । २ । १३ ॥

उदकस्योदन्भावो मतावुदधौ संज्ञायां च । उदन्वान्समुद्र ऋषिश्च ॥

राजन्वान्सौराज्ये ८ । २ । १४ ॥

राजन्वती भूः । राजवानन्यत्र ॥

इति १४९ अंशाः ।

सिध्मादिभ्यश्च ५ । २ । ९७ ॥

लज्वा । सिध्मलः सिध्मवान् । अन्यतरस्यां ग्रहणं मतुप्समुच्चयार्थं नतु प्रत्ययविकल्पार्थम् । तेनाकारान्तेभ्य इनिठनौ न ॥

वातदन्तबलललाटगलानामूङ् च ॥

वातूलः ॥

अर्णवः ॥

गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम् ५ । २ । ११० ॥

ह्रस्वदीर्घयोर्यणा तन्त्रेण निर्देशः । गाण्डिवम् । गाण्डीवमर्जुनस्य धनुः । अजगवं पिनाकः ॥

काण्डाण्डादीरन्नीरचौ ५ । २ । १११ ॥

काण्डीरः । आण्डीरः ॥

रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच् ५ । २ । ११२ ॥

रजस्वला स्त्री । कृषीवलः । वले इति दीर्घः । आसुतीवलः । शौण्डिकः । परिषद्वलः । पर्षत् इति पाठान्तरम् । पर्षद्वलम् ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥

भ्रातृवलः। शत्रुवलः। वले इत्यत्र संज्ञायाम् इत्यनुवृत्तेर्नेह दीर्घः॥

दन्तशिखात्संज्ञायाम् ५ । २ । ११३ ॥

दन्तावलो हस्ती । शिखावलः केकी ॥

ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः ५ । २ । ११४ ॥

मत्वर्थे निपात्यन्ते । ज्योतिष उपधालोपो नश्च प्रत्ययः । ज्योत्स्ना । तमस उपाधाया इत्वं रश्च। तमिस्रा । स्त्रीत्वमतन्त्रम् । तमिस्रम् । शृङ्गादिनच् । शृङ्गिणः। ऊर्जसो वलच् । तेन बाधा मा भूदिति विनिरपि । ऊर्जस्वी ऊर्जस्वलः । ऊर्जोऽसुगाम इति वृत्तिस्तु चिन्त्या । ऊर्जस्वती इतिवदसुन्नन्तेनैवोपपत्तेः । गोशब्दाग्मिनिः । गोमी । मलशब्दादिनच् । मलिनः । ईमसच । मलीमसः ॥

अत इनिठनौ ५ । २ । ११५ ॥

दण्डी दण्डिकः । एकस्वरात् कृतो जातेः सप्तम्याश्च न तौ स्मृतौ । एकाक्षरात्–स्ववान् । कृतः–कारकवान् । जातेः–व्याघ्रवान् । सप्तम्यां–दण्डोऽस्त्यस्या सा दण्डवती शाला । कचित्कृतो जातेश्चापि भवति । कार्यी कार्यिकः । तण्डुली तण्डुलिकः ॥

व्रीह्यादिभ्यश्च ५। २। ११६॥

व्रीही व्रीहिकः। नच सर्वेभ्यो व्रीह्यादिभ्य इनिठनाविष्येते। किं तर्हि शिखामालासंज्ञादिभ्य इनिः। यवखदादिभ्य इकः। अन्येभ्य उभयम्॥

तुन्दादिभ्य इलच ५। २। ११७॥

चादिनिठनौ मतुप् च। तुन्दिलः तुन्दी तुन्दिकः तुन्दवान्। उदरपिचण्डयवव्रीहि॥

स्वाङ्गाद्विवृद्धौ ॥

विवृद्ध्युपाधिकात्स्वाङ्गवाचिन इलजादयः। विवृद्धौ कर्णौ यस्य स कर्णिलः कर्णी कर्णिकः कर्णवान्॥

रूपादाहतप्रशंसयोर्यप् ५। २। १२०॥

आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः। प्रशस्तं रूपमस्यास्तीति रूप्यो गौः। आहत इति किम्। रूपवान्॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥

हिम्याः पर्वताः। गुण्या ब्राह्मणाः। अस्मायेति विनिः किन्नन्तत्वात्कुः। स्रग्वी॥

आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्च ॥

आमयावी॥

शृङ्गवृन्दाभ्यामारकन् ॥

शृङ्गारकः। वृन्दारकः॥

फलबर्हाभ्यामिनच् ॥

फलिनः। बर्हिणः॥

हृदयाच्चालुरन्यतरस्याम् ॥

इनठनौ मतुप् च। हृदयालुः हृदयी हृदयिकः हृदयवान्॥

इति १५० अंशाः। इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः पादः।

शीतोष्णतृप्रेभ्यस्तदसहने ❋ ॥

शीतं न सहते शीतालुः । उष्णालुः । स्फायितञ्चि इति रक् । तृप्रः पुरोडाशः । तं न सहते तृप्रालुः। तृप्रं दुःखम् इति माधवः ॥

हिमाच्चेलुः ❋ ॥

हिमं न सहते हिमेलुः ॥

बलादूलः ❋ ॥

बलं न सहते बलूलः ॥

वातात् समूहे च ❋ ॥

वातं न सहते वातस्य समूहो वा वातूलः ॥

तप्पर्वमरुद्भ्याम् ❋ ॥

पर्वतः । मरुत्तः ॥

ऊर्णाया युस् ५ । २ । १२३ ॥

सित्वात्पदत्वम् । ऊर्णायुः। अत्र छन्दसि इति केचिदनुवर्तयन्ति । युक्तं चैतत् । अन्यथा हि अहंशुभमोः इत्यत्रैवोर्णाग्रहणं कुर्यात् ॥

वाचो ग्मिनिः ५ । २ । १२४ ॥

वाग्मी गद्यवान् ॥

आलजाटचौ बहुभाषिणि ५ । २ । १२५ ॥

कुत्सित इति वक्तव्यम् । कुत्सितं बहु भाषते वाचालः वाचाटः । यस्तु सम्यग्बहु भाषते स वाग्मीत्येव ॥

स्वामिन्नैश्वर्ये ५ । २ । १२६ ॥

ऐश्वर्यवाचकात्स्वशब्दान्मत्वर्थे आमिनच् । स्वामी ॥

अर्शआदिभ्योऽच् ५ । २ । १२७ ॥

अर्शांस्यस्य विद्यन्ते अर्शसः । आकृतिगणोऽयम् ॥

द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्प्राणिस्थादिनिः ५ । २ । १२८ ॥

द्वन्द्वः । कटकवलयिनी । शङ्खनूपुरिणी । उपतापो रोगः ।

कुष्ठी । किलासी । गर्ह्य निन्द्यम् । ककुदावर्ती । काकतालुकी । प्राणिस्थात् किम् । पुष्पफलवान् घटः ॥

प्राण्यङ्गान्न * ॥

पाणिपादवती । अतः इत्येव । चित्रकललाटिकावती । सिद्धे प्रत्यये पुनर्वचनं ठनादिबाधनार्थम् ॥

वातातीसाराभ्यां कुक् च ५ । २ । १२९ ॥

चादिनिः । वातकी । अतीसारकी ॥

रोगे चायमिष्यते * ॥

नेह वातवती गुहा ॥

पिशाचाच्च ॥

पिशाचकी ॥

वयसि पूरणात् ५ । २ । १३० ॥

पूरणप्रत्ययान्तान्मत्वर्थे इनिः वयसि द्योत्ये । मासः संवत्सरो वा पञ्चमोऽस्यास्तीति पञ्चमुष्टः । ठन्बाधनार्थमिदम् । वयसि किम् । पञ्चमवान् ग्रामः ॥

सुखादिभ्यश्च ५ । २ । १३१ ॥

इनिर्मत्वर्थे । सुखी । दुःखी ॥

मालाक्षेपे * ॥

माली ॥

धर्मशीलवर्णान्ताच्च ५ । २ । १३२ ॥

धर्माद्यन्तादिनिर्मत्वर्थे । ब्राह्मणधर्मी । ब्राह्मणशीली । ब्राह्मणवर्णी ॥

हस्ताज्जातौ ५ । २ । १३३ ॥

हस्ती । जातौ किम् । हस्तवान्पुरुषः ॥

वर्णाद्ब्रह्मचारिणि ५ । २ । १३४ ॥

वर्णी ॥

पुष्करादिभ्यो देशे ५ । २ । १३५ ॥

पुष्करिणी पद्मिनी । देशे किम् । पुष्करवान्करी ॥

बाहूरुपूर्वपदाद्बलात् ॥

बाहुबली । ऊरुबली ॥

सर्वादेश्च ॥

सर्वधनी । सर्वबीजी ॥

अर्थाच्चाऽसंनिहिते ॥

अर्थी । संनिहिते तु अर्थवान् ॥

तदन्ताच्च ॥

धान्यार्थी । हिरण्यार्थी ॥

बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम् ५ । २ । १३६ ॥

बलवान् बली । उत्साहवान् उत्साही ॥

संज्ञायां मन्माभ्याम् ५ । २ । १३७ ॥

मन्नन्तान्मान्ताच्चेनिर्मत्वर्थे । प्रथिमिनी । दामिनी । होमिनी । सोमिनी । संज्ञायां किम् । सोमवान् ॥

कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः ५ । २ । १३८ ॥

कम् शम् इति मान्तौ । कम् इत्युदकसुखयोः । शम् इति सुखे । आभ्यां सप्त प्रत्ययाः । युस्यसोः सकारः पदत्वार्थः । कंवः । कंभः । कंयुः । कंतिः । कंतुः । कंतः । कंयः । शंवः । शंभः । शंयुः । शंतिः । शंतुः । शंतः । शंयः । अनुस्वारस्य वैकल्पिकः परसवर्णः । बकारयकारपरस्यानुनासिको वर्णः ॥

तुन्दिवलिवटेर्भः ५ । २ । १३९ ॥

वृद्धा नाभिस्तुन्दिः । मूर्धन्योपधोऽयम् इति माधवः । तुन्दिभः । वलिभः । वटिभः । पामादित्वाद्वलिनोऽपि ॥

अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०॥

अहम् इति मान्तमव्ययमहंकारे। शुभमिति शुभे। अहंयुः अहंकारवान्। शुभंयुः शुभान्वितः॥

प्राग्दिशो विभक्तिः ५।३।१॥

दिक्छब्देभ्य इत्यतः प्राग् वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञाः॥

अथ स्वार्थिकाः प्रत्ययाः। समर्थानाम् इति प्रथमात् इति च निवृत्तम्। वा इति त्वनुवर्तत एव॥

किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ५।३।२॥

किमः सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते॥

इदम इश् ५।३।३॥

प्राग्दिशीये परे। इशोऽपवादः॥

एतेतौ रथोः ५।३।४॥

इदम एत इत इत्येतौ स्तः रेफथकारादौ प्राग्दिव्यतीये परे॥

एतदोऽन् ५।३।५॥

योगविभागः कर्तव्यः। एतदः। एतेतौ स्तो रथोः। अन्। एतदः इत्येव। अनेकाल्त्वात्सर्वादेशः। नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य॥

सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि ५।३।६॥

प्राग्दिशीये दकारादौ प्रत्यये परे सर्वस्य सो वा॥

पञ्चम्यास्तसिल् ५।३।७॥

पञ्चम्यन्तेभ्यः किमादिभ्यस्तसिल् वा॥

कु तिहोः ७।२।१०४॥

किमः कु स्यात् तादौ हादौ च विभक्तौ परतः। कुतः कस्मात्। यतः। ततः। अतः। इतः। अमुतः। बहुतः। द्व्यादेस्तु द्वाभ्याम्॥

तसेश्च ५।३।८॥

किंसर्वनामबहुभ्यः परस्य तसेस्तसिलादेशः। स्वरार्थं विभक्त्यर्थं च वचनम्॥

पर्यभिभ्यां च ५।३।९॥

आभ्यां तसिल्॥

सर्वोभयार्थाभ्यामेव ❀॥

परितः सर्वत इत्यर्थः। अभितः। उभयत इत्यर्थः॥

सप्तम्यास्त्रल् ५।३।१०॥

कुत्र। यत्र। तत्र। बहुत्र॥

इदमो हः ५।३।११॥

त्रलोऽपवादः। इशादेशः। इह॥

किमोऽत् ५।३।१२॥

वाग्रहणमपकृष्यते। सप्तम्यन्तात्किमोऽद्वा पक्षे त्रल्॥

क्वाऽति ७।२।१०५॥

किमः क्वादेशः अति। क्व। कुत्र॥

वाऽह च च्छन्दसि ५।३।१३॥

कुह स्थः। कुह जग्मथुः॥

इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते ५।३।१४॥

पञ्चमीसप्तमीतरविभक्त्यन्तादपि तसिलादयो दृश्यन्ते। दृशिग्रहणाद्भवदादियोग एव। सभवान्। ततोभवान्। तत्रभवान्। तंभवन्तम्। ततोभवन्तम्। तत्रभवन्तम् एवं दीर्घायुः। देवानांप्रियः। आयुष्मान्॥

सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा ५।३।१५॥

सप्तम्यन्तेभ्यः कालार्थेभ्यः स्वार्थे दा। सर्वस्मिन् काले सदा। सर्वदा। एकदा। अन्यदा। यदा। कदा। तदा। काले किम्। सर्वत्र देशे॥

इदमो र्हिल् ५।३।१६॥

सप्तम्यन्तात्काले इत्येव। हस्यापवादः। अस्मिन् काले एतर्हि। काले किम्। इह देशे॥

अधुना ५ । ३ । १७ ॥

इदमः सप्तम्यन्तात्कालवाचिनः स्वार्थेऽधुनाप्रत्ययः । इश् । यस्य इति लोपः । अधुना ॥

इति १९१ अंशाः ।

दानीं च ५ । ३ । १८ ॥

इदानीम् ॥

तदो दा च ५ । ३ । १९ ॥

तदा तदानीम् । तदो दावचनमनर्थकं विहितत्वात् ॥

अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम् ५ । ३ । २१ ॥

कर्हि कदा । यर्हि यदा । तर्हि तदा । एतस्मिन्काल एतर्हि ॥

सद्यः परुत्परार्यैषमः परेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युतरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः ५ । ३ । २२ ॥

एते निपात्यन्ते । समानस्य सभावो द्यश्चाहनि । समानेऽहनि सद्यः । पूर्वपूर्वतरयोः परः । उदारी च संवत्सरे । पूर्वस्मिन् वत्सरे परुत् । पूर्वतरे वत्सरे परारि । इदम इश् समसण् प्रत्ययश्च । संवत्सरे । अस्मिन्संवत्सरे ऐषमः । परस्मादेद्यव्यहनि परस्मिन्नहनि परेद्यवि । इदमोऽश् द्यश्च । अस्मिन्नहनि अद्य । पूर्वादिभ्योऽष्टभ्योऽहन्येद्युस् । पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः । अन्यस्मिन्नहनि अन्येद्युः । उभयोरुभयेद्युः ॥

द्युश्चोभयाद्वक्तव्यः * ॥

उभयद्युः ॥

प्रकारवचने थाल् ५ । ३ । २३ ॥

प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् स्वार्थे । तेन प्रकारेण तथा । यथा ॥

इदमस्थमुः ५ । ३ । २४ ॥

थालोऽपवादः॥

एतदो वाच्यः ॥

अनेन एतेन वा प्रकारेण इत्थम्॥

किमश्च ५।३।२५॥

केन प्रकारेण कथम्॥

इति १९२ अंशाः।

दिक्छब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्योऽदिग्देशकालेष्वस्तातिः ५।३।२७॥

सप्तम्याद्यन्तेभ्यो दिशि रूढेभ्यो दिग्देशकालवृत्तिभ्यः स्वार्थेऽस्तातिप्रत्ययः॥

पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम् ५।३।३९॥

एभ्योऽस्तात्यर्थेऽसिप्रत्ययः। तद्योगे चैषां क्रमात् पुरः अध् अव् इत्यादेशाः॥

अस्ताति च ५।३।४०॥

अस्तातौ परे पूर्वादीनां पुरादयः। पूर्वस्यां पूर्वस्याः पूर्वा वा दिक् पुरः पुरस्तात्। अधः अधस्तात्। अवः अवस्तात्॥

विभाषाऽवरस्य ५।३।४१॥

अवरस्यास्तातौ परेऽव् स्याद्वा। अवस्तात् अवरस्तात्। एवं देशे काले च। दिशि रूढेभ्यः किम्। ऐन्द्र्यां वसति। सप्तम्याद्यन्तेभ्यः किम्। पूर्वं ग्रामं गतः। दिगादिवृत्तिभ्यः किम्। पूर्वस्मिन् गुरौ वसति। अस्ताति च इति ज्ञापकादसिरस्तातिं न बाधते॥

दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच् ५।३।२८॥

अस्तातेरपवादः। दक्षिणतः। उत्तरतः॥

विभाषा परावराभ्याम् ५।३।२९॥

परतः । अवरतः । परस्तात् । अवरस्तात् ॥

अञ्चेर्लुक् ५ । ३ । ३० ॥

अञ्चत्यन्तादिक्छब्दादस्तातेर्लुक्। लुक्तद्धितलुकि । प्राच्यां प्राच्याः प्राची वा दिक् प्राक् । उदक् । एवं देशे काले च ॥

उपर्युपरिष्टात् ५ । ३ । ३१ ॥

अस्तातेर्विषये ऊर्ध्वशब्दस्योपादेशः रिलिरिष्टातिलौ च प्रत्ययौ। उपरि उपरिष्टाद्वा वसति आगतो रमणीयं वा ॥

पश्चात् ५ । ३ । ३२ ॥

अपरस्य पश्चभाव आतिश्च प्रत्ययोऽस्तातेर्विषये ॥

उत्तराधरदक्षिणादातिः ५ । ३ । ३४ ॥

उत्तरात् । अधरात् । दक्षिणात् ॥

एनवन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः ५ । ३ । ३५ ॥

उत्तरादिभ्य एनब्वा स्यादवध्यवधिमतोः सामीप्ये पञ्चम्यन्तं विना । उत्तरेण । अधरेण । दक्षिणेन । पक्षे यथास्वं प्रत्ययाः । इह केचिदुत्तरादीननुवर्त्य दिक्छब्दमात्रादेनपमाहुः । पूर्वेण ग्रामम् । अपरेण ग्रामम् ॥

दक्षिणादाच् ५ । ३ । ३६ ॥

अस्तातेर्विषये । दक्षिणा वसति । अपञ्चम्याः इत्येव । दक्षिणादागतः ॥

आहि च दूरे ५ । ३ । ३७ ॥

दक्षिणाद्दूरे आहिः स्यात् चादाच् । दक्षिणाहि दक्षिणा ॥

उत्तराच्च ५ । ३ । ३८ ॥

उत्तराहि उत्तरा ॥

संख्याया विधार्थे धा ५ । ३ । ४२ ॥

चतुर्धा । पञ्चधा ॥

अधिकरणविचाले च ५ । ३ । ४३ ॥

द्रव्यस्य संख्यान्तरापादने संख्याया धा । एकं राशिं पञ्चधा कुरु ॥

एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम् ५ । ३ । ४४ ॥

ऐकध्यम् एकधा ॥

द्वित्र्योश्च धमुञ् ५ । ३ । ४५ ॥

आभ्यां धा इत्यस्य धमुञ् वा । द्वैधं द्विधा । त्रैधं त्रिधा । धमुञन्तात् स्वार्थे डदर्शनम् । पथि द्वैधानि ॥

एधाच्च ५ । ३ । ४६ ॥

द्वेधा । त्रेधा ॥

याप्ये पाशप् ५ । ३ । ४७ ॥

कुत्सितो भिषक् भिषक्पाशः ॥

एकादाकिनिच्चासहाये ५ । ३ । ५२ ॥

चात्कन्लुकौ । एकः एकाकी एककः ॥

भूतपूर्वे चरट् ५ । ३ । ५३ ॥

आढ्यो भूतपूर्व आढ्यचरः । अतिशायने । लघुतमः लघिष्ठः ॥

अजादी गुणवचनादेव ५ । ३ । ५८ ॥

इष्ठनीयसुनौ । गुणवचनादेव । प्रथिष्ठः प्रथीयान् । नेह । पाचकतरः । पाचकतमः ॥

तुश्छन्दसि ५ । ३ । ५९ ॥

तृन् । तृजन्तादिष्ठनीयसुनौ ॥

तुरिष्ठेमेयःसु ६ । ४ । १५४ ॥

तृशब्दस्य लोपः इष्ठेमेयःसु परेषु । अतिशयेन कर्ता करिष्ठः । दोहीयसी धेनुः ॥

प्रशस्यस्य श्रः ५ । ३ । ६० ॥

अस्य आदेशः अजाद्योः ॥

प्रकृत्यैकाच् ६ । ४ । १६३ ॥

इष्ठादिष्वेकाच् प्रकृत्या । श्रेष्ठः श्रेयान् ॥

ज्य च ५ । ३ । ६१ ॥

प्रशस्यस्य ज्यादेशः इष्ठेयसोः । ज्येष्ठः ॥

ज्यादादीयसः ६ । ४ । १६० ॥

आदेः परस्य । ज्यायान् ॥

वृद्धस्य च ५ । ३ । ६२ ॥

ज्यादेशः अजाद्योः । ज्येष्ठः ज्यायान् ॥

अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ ५ । ३ । ६३ ॥

अजाद्योः । नेदिष्ठः नेदीयान् । साधिष्ठः साधीयान् ॥

स्थूलदूरयुवह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां यणादिपरं पूर्वस्य च गुणः ६ । ४ । १५६ ॥

एषां यणादिपरं लुप्यते पूर्वस्य च गुण इष्ठादिषु । स्थविष्ठः । दविष्ठः । यविष्ठः । ह्रसिष्ठः । क्षेपिष्ठः क्षोदिष्ठः । एवमीयसु । ह्रस्वक्षिप्रक्षुद्राणां पृथ्वादित्वाद्ध्रसिमा । क्षेपिमा । क्षोदिमा ॥

प्रियस्थिरस्फिरोरुबहुलगुरुवृद्धतृप्रदीर्घवृन्दारकाणां प्रस्थस्फवर्बंहिगर्वर्षित्रब्द्राघिवृन्दाः ६ । ४ । १५७ ॥

प्रियादीनां क्रमात् प्रादयः स्युरिष्ठादिषु । प्रेष्ठः । स्थेष्ठः । स्फेष्ठः । वरिष्ठः । बंहिष्ठः । गरिष्ठः । वर्षिष्ठः । त्रपिष्ठः । द्राघिष्ठः । वृन्दिष्ठः । एवमीयसुन् । प्रेयान् । प्रियोरुबहुलगुरुदीर्घाणां पृथ्वादित्वात्प्रेमेत्यादि ॥

बहोर्लोपो भू च बहोः ६ । ४ । १५८ ॥

बहोः परयोरिमेयसोर्लोपः बहोश्च । भूरादेशः । भूमा भूयान् ॥

इष्ठस्य यिट् च ६ । ४ । १५९ ॥

वहोः परस्य इष्ठस्य लोपः यिडागमश्च । भूयिष्ठः ॥

युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम् ५ । ३ । ६४ ॥

एतयोः कनादेशो वा इष्ठेयसोः । कनिष्ठः कनीयान् । पक्षे । यविष्ठः । अल्पिष्ठ इत्यादि ॥

विन्मतोर्लुक् ५ । ३ । ६५ ॥

विनो मतुपश्च लुक् इष्ठेयसोः अतिशयेन स्रग्वी स्रजिष्ठः स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्वान् त्वचिष्ठः त्वचीयान् ॥

प्रशंसायां रूपप् ५ । ३ । ६६ ॥

सुबन्तात्तिङन्ताच्च । प्रशस्तः पटुः पटुरूपः । प्रशस्तं पचति पचतिरूपम् ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ५ । ३ । ६७ ॥

ईषदूनो विद्वान् विद्वत्कल्पः । यशस्कल्पम् । यजुःकल्पम् । विद्वद्देश्यः । विद्वद्देशीयः । पचतिकल्पम् ॥

विभाषा सुपो बहुच्पुरस्तात्तु ५ । ३ । ६८ ॥

ईषदसमाप्ति विशिष्टेऽर्थे सुबन्ताद्बहुज्वास च प्रागेव नतु परतः । ईषदूनः पटुर्बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम् । यजतिकल्पम् ॥

प्रकारवचने जातीयर् ५ । ३ । ६९ ॥

प्रकारवति चायम् । थाल्तु प्रकारमात्रे । पटुप्रकारः पटुजातीयः ॥

प्रागिवात्कः ५ । ३ । ७० ॥

इवे प्रतिकृतौ इत्यतः प्राक्काधिकारः ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः ५ । ३ । ७१ ॥

तिङश्च इत्यनुवर्तते ॥

कस्य च दः ५ । ३ । ७२ ॥

कान्ताव्ययस्य दकारोऽन्तादेशः अकच् ॥

अज्ञाते ५ । ३ । ७३ ॥

कस्यायमश्वोऽश्वकः । उच्चकैः । नीचकैः । सर्वके । विश्वके ॥

ओकारसकारभकारादौ सुपि सर्वनाम्नष्टेः प्रागकच् ॥

अन्यत्र तु सुबन्तस्य टेः प्रागकच् ॥ युवकयोः । आवकयोः । युष्मकासु । अस्मकासु । युष्मकाभिः । अस्मकाभिः । ओकार इत्यादि किम् । त्वयका । मयका ॥

अकच्प्रकरणे तूष्णीमः काम्वक्तव्यः ॥

मित्वादन्त्यादचः परः । तूष्णीकामास्ते ॥

शीले कोमलोपश्च ॥

तूष्णींशीलस्तूष्णीकः । पचतकि जल्पतकि।धकित् हिरकुत् ॥

कुत्सिते ५ । ३ । ७४ ॥

कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः ॥

संज्ञायां कन् ५ । ३ । ७५ ॥

कुत्सिते कन् तदन्तेन चेत्संज्ञा गम्यते । शूद्रकः । राधकः । स्वरार्थं वचनम् ॥

अनुकम्पायाम् ५ । ३ । ७६ ॥

पुत्रकः । अनुकम्पितः पुत्र इत्यर्थः ॥

नीतौ च तद्युक्तात् ५ । ३ । ७७ ॥

सामदानादिरूपा नीतिस्तस्यां गम्यमानायामनुकम्पायुक्तात्क-प्रत्ययः । हन्त ते धानकाः । गुडकाः । एहकि । अद्धकि । पूर्वे-णानुकम्प्यमानात्प्रत्ययः । अनेन तु परम्परासंबंधेऽपीति विशेषः ॥

बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज्वा ५ । ३ । ७८ ॥

पूर्वसूत्रद्वयविषये ॥

घनिलचौ च ५ । ३ । ७९ ॥

तत्रैव ॥

ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः ५ । ३ । ८३ ॥

अस्मिन्प्रकरणे यष्ठोऽजादिप्रत्ययश्च तस्मिन् प्रत्यये परे प्रकृते-

द्वितीयादच ऊर्ध्वं सर्वं लुप्यते । अनुकम्पितो देवदत्तो देविकः देवियः देविलः देवदत्तकः। अनुकम्पितो वायुदत्तो वायुकः। ठग्रहण-मुक्तो द्वितीयत्वे कविधानार्थम् । वायुदत्तकः वायुकः पितृकः ॥

चतुर्थादच ऊर्ध्वस्य लोपो वाच्यः ❀ ॥

अनुकम्पितो बृहस्पतिदत्तो बृहस्पतिकः ॥

अनजादौ च विभाषा लोपो वक्तव्यः ❀ ॥

देवदत्तकः देवकः ॥

लोपः पूर्वपदस्य च ❀ ॥

दत्तिकः दत्तियः दत्तिलः दत्तकः ॥

विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः ❀ ॥

देवदत्तः दत्तः देवः । सत्यभामा भामा सत्या ॥

उवर्णाल्ल इलस्य च ❀ ॥

भानुदत्तः भानुलः ॥

ऋवर्णादपि ❀ ॥

सवित्रियः सवितृलः। चतुर्थादनजादौ च लोपः पूर्वपदस्य च । अप्रत्यये तथैवेष्ट उवर्णाल्ल इलस्य च । ल इति लोपसंज्ञा प्राचाम् ॥

जातिनाम्नः कन् ५ । ३ । ८१ ॥

मनुष्यनाम्नः इत्येव । जातिशब्दो यो मनुष्यनामधेयस्तस्मात्कन् स्यादनुकम्पायां नीतौ च । सिंहकः। शरभकः । रासभकः ॥

द्वितीयं संध्यक्षरं चेत्तदादेर्लोपो वक्तव्यः ❀ ॥

कहोडः। कहिकः॥

एकाक्षरपूर्वपदानामुत्तरपदलोपो वक्तव्यः वाचाशीर्यस्य ❀ ॥

वागाशीर्दत्तः वाचिकः । कथं षडङ्गुलिदत्तः षडिक इति षषष्ठाजादिवचनात्सिद्धम् ॥

अल्पे ५ । ३ । ८५ ॥

अल्पं तैलं तैलकम् ॥

ह्रस्वे ५ । ३ । ८६ ॥

ह्रस्वो वृक्षो वृक्षकः ॥

संज्ञायां कन् ५ । ३ । ८७ ॥

ह्रस्वहेतुका या संज्ञा तस्यां गम्यमानायां कन् । पूर्वस्यापवादः । वंशकः । वेणुकः ॥

कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ५ । ३ । ८८ ॥

ह्रस्वा कुटी कुटीरः । शमीरः । शुण्डारः ॥

कुत्वा डुपच् ५ । ३ । ८९ ॥

ह्रस्वा कुतूः कुतुपः । कुतूः कृत्तेः स्नेहपात्रं ह्रस्वा सा कुतुपः पुमान् । इत्यमरः ॥

कासूगोणीभ्यां ष्टरच् ५ । ३ । ९० ॥

आयुधविशेषः कासूः । ह्रस्वा सा कासूतरी । गोणीतरी ॥

वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे ३ । ५ । ९१ ॥

वत्सतरः । द्वितीयं वयः प्राप्तः। उक्षतरः। अश्वतरः । ऋषभतरः। प्रवृत्तिनिमित्ततनुत्व एवायम् ॥

किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् ५ । ३।९२ ॥

अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः । महाविभाषया कः । यः । सः ॥

वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् ५ । ३ । ९३ ॥

बहूना मध्ये एकस्य निर्धारणे डतमच्स्यात् । जातिपरिप्रश्ने इति प्रत्याख्यातमाकरे । कतमो भवता कठः । यतमः ततमः । वाग्रहणमकजर्थम् । यकः । सकः । महाविभाषया यः । सः । किमोऽ-

...डतरजपि । कतरः ॥

एकाच्च प्राचाम् ५ । ३ । ९४ ॥

इतरच इतमच । अनयोरेकतरो मैत्रः । एषामेकतमः ॥

अवक्षेपणे कन् ५ । ३ । ९५ ॥

व्याकरणकेन गर्वितः । येनेतरः कुत्स्यते तदिदमुदाहरणम् । स्वतः कुत्सितं तु कुत्सिते इत्यस्य ॥ इति प्रागिवीयाः ॥

इति १५३ अंशाः ।

इवे प्रतिकृतौ ५ । ३ । ९६ ॥

कन् । अश्व इव प्रतिकृतिः अश्वकः । प्रतिकृतौ किम् । गौरिव गवयः ॥

संज्ञायां च ५ । ३ । ९७ ॥

इवार्थे कन् समुदायश्चेत्संज्ञा । अप्रतिकृत्यर्थमारम्भः । अश्वसदृशस्य संज्ञा अश्वकः । उष्ट्रकः ॥

लुम्मनुष्ये ५ । ३ । ९८ ॥

संज्ञायां चेति विहितस्य कनो लुप् मनुष्ये वाच्ये । चञ्चा तृणमयः पुमान् । चञ्चेव मनुष्यश्चञ्चा । वध्रिका ॥

जीविकार्थे चापण्ये ५ । ३ । ९९ ॥

जीविकार्थं यदविक्रीयमाणं तस्मिन्वाच्ये कनो लुप् । वासुदेवः । शिवः । स्कन्दः । देवलकानां जीविकार्थासु देवप्रतिकृतिष्विदम् । अपण्ये किम् । हस्तिकान्विक्रीणीते ॥

शिलाया ढः ५ । ३ । १०२ ॥

शिलायाः इति योगविभागाड्ढञपीत्येके । शिलेव शिलेयं शैलेयम् ॥

शाखादिभ्यो यत् ५ । ३ । १०३ ॥

शाखेव शाख्यः । मुख्यः । जघनमिव जघन्यः । अग्र्यः ।

५५० ॥

द्रव्यं च भव्ये ५ । ३ । १०४ ॥

द्रव्यमयं ब्राह्मणः ॥

कुशाग्राच्छः ५ । ३ । १०५ ॥

कुशाग्रमिव कुशाग्रीया बुद्धिः ॥

समासाच्च तद्विषयात् ५ । ३ । १०६ ॥

इवार्थविषयात्समासाच्छः । काकतालीयो देवदत्तस्य वधः । इह काकतालसमागमसदृशश्चोरसमागम इति समासार्थः । तत्प्रयुक्तः काकमरणसदृशस्तु प्रत्ययार्थः । अजाकृपाणीयः । अतर्कितोपनत इति फलितोऽर्थः ॥

पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च ५।४।१ ॥

लोपवचनमनैमित्तिकत्वार्थम् अतो न स्थानिवत् । पादः पत् । तद्धितार्थ इति समासे कृते प्रत्ययः । वुन्नन्तं स्त्रियामेव । द्वौ द्वौ पादौ ददाति द्विपदिकाम् । द्विशतिकाम् । पादशतग्रहणमनर्थकमन्यत्रापि दर्शनत् । द्विमोदकिकाम् ॥

दण्डव्यवसर्गयोश्च ५ । ४ । २ ॥

वुन् । अवीप्सार्थमिदम् । द्वौ पादौ दण्डितः द्विपदिकां द्विशतिकां व्यवसृजति । ददातीत्यर्थः ॥

स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ५ । ४ । ३ ॥

जातीयरोऽपवादः । स्थूलकः । अणुकः ॥

अनत्यन्तगतौ क्तात् ५ । ४ । ४ ॥

छिन्नकम् । भिन्नकम् । अभिन्नकम् ॥

न सामिवचने ५ । ४ । ५ ॥

सामिपर्याय उपपदे क्तान्तान्न कन् । सामिकृतम् । अर्धकृतम् । अनत्यन्तगतेरिह प्रकृत्यैवाभिधानात्पूर्वेण कन्न प्राप्तः । इदमेव निषेधसूत्रमत्यन्तस्वार्थिकमपि कनं ज्ञापयति । बहुतरकम् ॥

बृहत्या आच्छादने ५ । ४ । ६ ॥

कन् । द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहतिका तथा । इत्यमरः । आच्छादने किम् । बृहतीछन्दः ॥

अषडक्षाशितंग्वलंकर्मालंपुरुषाध्युत्तरपदात्खः ५।४।७॥

स्वार्थे । अषडक्षीणो मन्त्रः। द्वाभ्यामेव कृत इत्यर्थः । आशिता गावोऽस्मिन्निति आशितंगवीनमरण्यम् । निपातनात्पूर्वस्य मुम् । अलं कर्मणे अलंकर्मीणः । अलंपुरुषीणः । ईश्वराधीनः । नित्योऽयं खः । उत्तरसूत्रे विभाषाग्रहणात् । अन्येऽपि केचित्स्वार्थिकाः प्रत्यया नित्यमिष्यन्ते ॥

तमबादयः प्राक्कनः । ञ्यादयः प्राग्वुनः । आमादयः प्राङ्मयटः । बृहती जात्यन्ताः समासान्ताश्च इति ॥

विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम् ५ । ४ । ८ ॥

अदिक्स्त्रीवृत्तेरञ्चत्यन्तात्प्रातिपदिकात् खो वा स्वार्थे । प्राक् प्राचीनम् प्रत्यक् प्रतीचीनम् । अवाक् अवाचीनम् । निकृष्टप्रतिकृष्टार्वरेफयाप्यावमाधमाः । इत्यमरः । अर्वन्तमञ्चतीति अर्वाक् अर्वाचीनम् । अदिक् स्त्रियां किम् । प्राची दिक् । उदीची दिक् । दिग्ग्रहणं किम् । प्राचीना ब्राह्मणी । स्त्रीग्रहणं किम् । प्राचीनं ग्रामादाम्राः ॥

जात्यन्ताच्छ बन्धुनि ५ । ४ । ९ ॥

ब्राह्मणजातीयः । बन्धुनि किम् । ब्राह्मणजातिः शोभना । जातेर्व्यञ्जकं द्रव्यं बन्धु ॥

स्थानान्ताद्विभाषा सस्थानेनेति चेत् ५ । ४ । १० ॥

सस्थानेन तुल्येन चेत् स्थानान्तमर्थवदित्यर्थः । पितृस्थानीयः पितृस्थानः । सस्थानेन किम् । गोः स्थानम् ॥

अनुगादिनष्ठक् ५ । ४ । १३ ॥

अनुगदतीत्यनुगादी स एवानुगादिकः ॥

विसारिणो मत्स्ये ५ । ४ । १६ ॥

अण् । वैसारिणः । मत्स्ये इति किम् । विसारी देवदत्तः । कृत्वसुच्सुचौ प्रायुक्तौ । पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते । द्विर्भुंक्ते । सकृद्भुंक्ते ॥

विभाषाबहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले ५ । ४ । २० ॥

अविप्रकृष्ट आसन्नः । बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते । आसन्नकाले किम् । बहुकृत्वो मासस्य भुङ्क्ते ॥

तत्प्रकृतवचने मयट् ५ । ४ । २१ ॥

प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतं तस्य वचनं प्रतिपादनम् । भावेऽधिकरणे वा ल्युट् । आद्ये प्रकृतमन्नमन्नमयम् । अपूपमयम् । यवागूमयी । द्वितीयेऽन्नमयो यज्ञः । अपूपमयं पर्व ॥

समूहवच्च बहुषु ५ । ४ । २२ ॥

सामूहिकाः प्रत्यया अतिदिश्यन्ते चान्मयट् । मोदकाः प्रकृताः मौदकिकं मोदकमयम् । शाष्कुलिकं शष्कुलीमयम् । द्वितीयेऽर्थे मौदकिको यज्ञः मोदकमयः ॥

अनन्तावसथेतिहभेषजाञ्ञ्यः ५ । ४ । २३ ॥

अनन्त एवानन्त्यम् । आवसथ एवावसथ्यम् । इति ह इति निपातसमुदायः । ऐतिह्यम् । भेषजमेव भैषज्यम् ॥

देवतान्तात्तादर्थ्ये यत् ५ । ४ । २४ ॥

तदर्थं एव तादर्थ्यम् । स्वार्थे ष्यञ् । अग्निदेवतायै इदमग्निदेवत्यम् । पितृदेवत्यम् ॥

पादार्घाभ्यां च ५ । ४ । २५ ॥

पादार्थमुदकं पाद्यम् । अर्घ्यम् ॥

नवस्य नू आदेशो त्नप्तनप्खाश्च प्रत्यया वक्तव्याः ॥

नूत्नं नूतनं नवीनम् ॥

नश्च पुराणे प्रात् ॥

पुराणार्थे वर्तमानात्प्रशब्दान्नो वक्तव्यः । चात्पूर्वोक्ताः । प्रणं प्रत्नं । प्रतनं प्रीणम् ॥

२०

भागरूपनामभ्यो धेयः ❀ ॥

भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ॥

आग्नीध्रसाधारणादञ् ❀ ॥

आग्नीध्रम् साधारणम् । स्त्रियां ङीप् । आग्नीध्री । साधारणी ॥

अतिथेर्ञ्यः ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्ये इत्येव । अतिथय इदमातिथ्यम् ॥

देवात्तल् ५ । ४ । २७ ॥

देव एव देवता ॥

अवेः कः ५ । ४ । २८ ॥

अविरेवाविकः ॥

यावादिभ्यः कन् ५ । ४ । २९ ॥

याव एव यावकः । मणिकः ॥

विनयादिभ्यष्ठक् ५ । ४ । ३४ ॥

विनय एव वैनयिकः । सामयिकः ॥

उपायो ह्रस्वत्वं च ❀ ॥

औपयिकः ॥

वाचो व्याहृतार्थायाम् ५ । ४ । ३५ ॥

संदिष्टार्थायां वाचि विद्यमानाद्वाक्छब्दात् स्वार्थे ठक् च । संदेशवाग् वाचिकं स्यात् । इत्यमरः ॥

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ५ । ४ । ३६ ॥

मैंव कार्मणम् । वाचिकं श्रुत्वा क्रियमाणं कर्मेत्यर्थः ॥

ओ[illegible]जातौ ५ । ४ । ३७ ॥

[illegible]र्थेऽण् । औषधं पिबति । अजातौ किम् । ओषधयः क्षेत्रे [illegible] ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च ५ । ४ । ३८ ॥

प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः ॥

मृदस्तिकन् ५ । ४ । ३९ ॥

मृदेव मृत्तिका ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ५ । ४ । ४० ॥

रूपपोऽपवादः । प्रशस्ता मृन्मृत्सा मृत्स्ना । उत्तरसूत्रे अन्यतरस्यां ग्रहणान्नित्योऽयम् ॥

इति १९४ अंशाः ।

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥

बहूनि ददाति बहुशः । अल्पशः ॥

बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् ॥

नेह । बहूनि ददात्यनिष्टेषु । अल्पानि ददात्याभ्युदयिकेषु ॥

संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ५ । ४ । ४३ ॥

द्वौ द्वौ ददाति द्विशः । माषं माषं माषशः । प्रस्थशः । परिमाणशब्दाद्वृत्ताविकार्था एव । संख्यैकवचनात् किम् । घटं घटं ददाति । वीप्सायां किम् । द्वौ ददाति । कारकात् इत्येव । द्वयोर्द्वयोः स्वामी ॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ५ । ४ । ४४ ॥

प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः । प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति ॥

आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् ॥

आदौ आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ॥

अपादाने चाहीयरुहोः ५ । ४ । ४५ ॥

अपादाने या पञ्चमी तदन्तात्तसिः । ग्रामादागच्छति ग्रामतः । अहीयरुहोः किम् । स्वर्गाद्धीयते । पर्वतादवरोहति । अभूततद्भावे च्विः ॥

भागरूपनामभ्यो धेयः ॥

भागधेयम् । रूपधेयम् । नामधेयम् ॥

आग्नीध्रसाधारणादञ् ॥

आग्नीध्रम्। साधारणम् । स्त्रियां ङीप् । आग्नीध्री । साधारणी॥

अतिथेर्ञ्यः ५ । ४ । २६ ॥

तादर्थ्ये इत्येव । अतिथय इदमातिथ्यम् ॥

देवात्तल् ५ । ४ । २७ ॥

देव एव देवता ॥

अवेः कः ५ । ४ । २८ ॥

अविरेवाविकः ॥

यावादिभ्यः कन् ५ । ४ । २९ ॥

याव एव यावकः । मणिकः ॥

विनयादिभ्यष्ठक् ५ । ४ । ३४ ॥

विनय एव वैनयिकः । सामयिकः ॥

उपायो ह्रस्वत्वं च ॥

औपयिकः ॥

वाचो व्याहृतार्थायाम् ५ । ४ । ३५॥

संदिष्टार्थाया वाचि विद्यमानाद्वाक्छब्दात् स्वार्थे ठक् च । संदेशवाग् वाचिकं स्यात् । इत्यमरः ॥

तद्युक्तात्कर्मणोऽण् ५ । ४ । ३६ ॥

कर्मैव कार्मणम् । वाचिकं श्रुत्वा क्रियमाणं कर्मेत्यर्थः ॥

ओषधेरजातौ ५ । ४ । ३७ ॥

स्वार्थेऽण् । औषधं पिबति । अजातौ किम् । ओषधयः क्षेत्रे रूढा ॥

प्रज्ञादिभ्यश्च ५ । ४ । ३८॥

प्रज्ञ एव प्राज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । दैवतः । बान्धवः ॥

मृदस्तिकन् ५ । ४ । ३९ ॥

मृदेव मृत्तिका ॥

सस्नौ प्रशंसायाम् ५ । ४ । ४० ॥

रूपपोऽपवादः । प्रशस्ता मृन्मृत्सा मृत्स्ना । उत्तरसूत्रे अन्यतरस्यां ग्रहणान्नित्योऽयम् ॥

इति १५४ अंशाः ।

बह्वल्पार्थाच्छस्कारकादन्यतरस्याम् ॥

बहूनि ददाति बहुशः । अल्पशः ॥

बह्वल्पार्थान्मङ्गलामङ्गलवचनम् * ॥

नेह । बहूनि ददात्यनिष्टेषु । अल्पानि ददात्याभ्युदयिकेषु ॥

संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ५ । ४ । ४३ ॥

द्वौ द्वौ ददाति द्विशः । माषं माषं माषशः । प्रस्थशः । परिमाणशब्दावृत्तविकार्था एव। संख्यैकवचनात् किम् । घटं घटं ददाति । वीप्सायां किम् । द्वौ ददाति । कारकात् इत्येव । द्वयोर्द्वयोः स्वामी॥

प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसिः ५ । ४ । ४४ ॥

प्रतिना कर्मप्रवचनीयेन योगे या पञ्चमी विहिता तदन्तात्तसिः । प्रद्युम्नः कृष्णतः प्रति ॥

आद्यादिभ्य उपसंख्यानम् * ॥

आदौ आदितः । मध्यतः । अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः।आकृतिगणोऽयम् । स्वरेण स्वरतः । वर्णतः ॥

अपादाने चाहीयरुहोः ५ । ४ । ४५ ॥

अपादाने या पञ्चमी तदन्तात्तसिः ।ग्रामादागच्छति ग्रामतः । अहीयरुहोः किम् । स्वर्गाद्धीयते । पर्वतादवरोहति । अभूततद्भावे च्विः ॥

अव्ययस्य च्वावीत्वं न ॥

दोषाभूतमहः । दिवाभूता रात्रिः । एतच्च अव्ययीभावश्चेत्यत्र भाष्य उक्तम् ॥

क्यच्व्योश्च ६ । ४ । १५२ ॥

हलः परस्यापत्ययकारस्य लोपः क्ये च्वौ च परतः । गार्गीभवति । च्वौ च शुचीभवति । पटूस्यात् । अव्ययस्य दीर्घत्वं न इति केचित् । तन्निर्मूलम् । स्वस्ति स्यात् इति तु महाविभाषया च्वेरभावात्सिद्धम् । स्वस्ती स्यात् इत्यपि पक्षे स्यादिति चेदस्तु । यदि नेष्यते तर्ह्यनभिधानात् च्विरेव नोत्पद्यत इत्यस्तु । रीङृत मात्री करोति ॥

अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च ५ । ४ । ५१ ॥

एषां लोपः च्विश्च । अरूकरोति । उन्मनीस्यात् उच्चक्षूकरोति । विचेतीकरोति । विरहीकरोति । विरजीकरोति ॥

विभाषा साति कार्त्स्न्ये ५ । ४ । ५२ ॥

च्विविषये सातिर्वा साकल्ये ॥

सात्पदाद्योः ८ । ३ । १११ ॥

सस्य षत्वं न स्यात् । दधि सिञ्चति । अनुस्वदते कृत्स्नं शस्त्रमग्निः संपद्यतेऽग्निसाद्भवति अग्नीभवति । महाविभाषया वाक्यमपि । कार्त्स्न्ये किम् । एकदेशेन शुक्लीभवति पटः ॥

अभिविधौ संपदा च ५ । ४ । ५३ ॥

संपदा कृभ्वस्तिभिश्च योगे सातिर्वा व्याप्तौ । पक्षे कृभ्वस्तियोगे च्विः। संपदा तु वाक्यमेव । अग्निसात्संपद्यते अग्निसाद्भवति । शस्त्रम् अग्नीभवति । जलसात्संपद्यते जलीभवति लवणम् । एकस्या व्यक्तेः सर्वावयवावच्छेदेनान्यथाभावः कार्त्स्न्यम् । बहूनां व्यक्तीनां किंचिदवयवावच्छेदेनान्यथात्वं त्वभिविधिः ॥

[illegible]धीनवचने ५ । ४ । ५४ ॥

सातिः कृभ्वस्तिभिः संपदा च योगे । राजसात्करोति । राजसात्संपद्यते । राजाधीनमित्यर्थः ॥

देये त्रा च ५ । ४ । ५५ ॥

तदधीने देये त्रा स्यात्सातिश्च । कृभ्वादियोगे विप्राधीनं देयं करोति विप्रत्राकरोति । विप्रत्रासंपद्यते । पक्षे विप्रसात्करोति । देये किम् । राजसाद्भवति राष्ट्रम् ॥

देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम् ५ । ४ । ५६ ॥

एभ्यो द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च त्रा । देवत्रावन्दे रमे वा । बहुलोक्तेरन्यत्रापि । बहुत्राजीवतो मनः ॥

अव्यक्तानुकरणाद् व्यजवरार्धादनितौ डाच् ५।४।५७॥

द्व्यच् । अवरं न्यूनं न तु ततो न्यूनम् । अनेकाच् इति यावत्ताद्दृशमर्धं यस्य तस्माड्डाच् कृभ्वस्तिभिर्योगे ॥

डाचि विवक्षिते द्वे बहुलम् * ॥

नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम् * ॥

डाच्परं यदाम्रेडितं तस्मिन्परे पूर्वपरयोर्वर्णयोः पररूपं स्यात् । इति तकारपकारयोः पकारः । पटपटाकरोति । अव्यक्तानुकरणात् किम् । ईषत्करोति । व्यजवरार्धात् किम् । श्रत्करोति । अवर इति किम् । खरटखरटाकरोति । त्रपटत्रपटाकरोति । अनेकाचः इत्येव सूत्रयितुमुचितम् । एवं हि डाचीति परसप्तम्येव द्वित्वे सुवचेत्यवधेयम् । अनितौ किम् । पटितिकरोति ॥

कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्कृषौ ५ । ४ । ५८ ॥

द्वितीयादिभ्यो डाच् कृञ एव योगे कर्षणेऽर्थे । बहुलोक्तेरव्यक्तानुकरणादन्यस्य डाचि न द्वित्वम् । द्वितीयं तृतीयं कर्षणं करोति द्वितीयाकरोति तृतीयाकरोति । शम्बशब्दः प्रतिलोमे । अनुलोमं

कृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कर्षति शम्बाकरोति । बीजेन सह कर्षति बीजाकरोति ॥

संख्यायाश्च गुणान्तायाः ५ । ४ । ५९ ॥

कृञो योगे कृषौ डाच् । द्विगुणाकरोति क्षेत्रम् । क्षेत्रकर्मकं द्विगुणं कर्षणं करोतीत्यर्थः ॥

समयाच्च यापनायाम् ५ । ४ । ६० ॥

कृषौ इति निवृत्तम् । कृञो योगे डाच् । समयाकरोति । कालं यापयतीत्यर्थः ॥

सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने ५ । ४ । ६१ ॥

सपत्राकरोति मृगम् । सपुङ्खशरप्रवेशेन सपत्रं करोतीत्यर्थः । निष्पत्राकरोति । सपुङ्खस्य शरस्यापरपार्श्वे निर्गमनान्निष्पत्रं करोतीत्यर्थः। अतिव्यथने किम् । सपत्रं निष्पत्रं वा करोति भूतलम् ॥

निष्कुलान्निष्कोषणे ५ । ४ । ६२ ॥

निष्कुलाकरोति दाडिमम् । निर्गतं कुलमन्तरवयवाना समूहो यस्मादिति बहुव्रीहेर्डाच् ॥

सुखप्रियादानुलोम्ये ५ । ४ । ६३ ॥

सुखाकरोति प्रियाकरोति गुरुम् । अनुकूलाचरणेनानन्दयतीत्यर्थः ॥

दुःखात्प्रातिलोम्ये ५ । ४ । ६४ ॥

दुःखाकरोति । स्वामिनं पीडयतीत्यर्थः ॥

शूलात्पाके ५ । ४ । ६५ ॥

शूलाकरोति मांसम् । शूलेन पचतीत्यर्थः ॥

सत्यादशपथे ५ । ४ । ६६ ॥

सत्याकरोति भाण्डं वणिक् । क्रेतव्यमिति तथ्यं करोतीत्यर्थः। शपथे तु सत्यं करोति विप्रः ॥

मद्रात्परिवापणे ५ । ४ । ६७ ॥

मद्रशब्दो मङ्गलार्थः । परिवापणं मुण्डनम् । मद्राकरोति । माङ्गल्यमुण्डनेन संस्करोतीत्यर्थः ॥

भद्राच्चेति वक्तव्यम् * ॥

भद्राकरोति । अर्थः प्राग्वत् । परिवापणे किम् । भद्रं करोति ॥

इति तद्धिताः ॥

इति १५५ अंशाः ।

स्त्रियामित्यधिकृत्य ॥

अजाद्यतष्टाप् ॥

अजाद्युक्तिर्ङीपो ङीषश्च बाधनाय । अजा । अत' खट्वा । अजादिभिः स्त्रीत्वस्य विशेषणान्नेह । पञ्चाजी । द्विगो' इति ङीप् । अत्र हि समासार्थसमाहारनिष्ठं स्त्रीत्वम् । अजा । एडका । अश्वा । चटका । मूषिका । एषु जातिलक्षणो ङीष् प्राप्तः । बाला । वत्सा । होढा । मन्दा । विलाता । एषु वयसि प्रथमे इति ङीप् प्राप्तः ॥

संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् * ॥

संफला । भस्त्रफला । ङ्यापो' इति ह्रस्वः ॥

सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्पात् * ॥

सत्पुष्पा । प्राक्पुष्पा । प्रत्यक्पुष्पा ॥

शूद्रा चामहत्पूर्वाजातिः * ॥

पुंयोगे तु शूद्री । अमहत्पूर्वा किम् । महाशूद्री । क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमेति पुंयोगेऽपि कोकिला । जातावपि ॥

मूलान्नञः * ॥

अमूला । ऋन्नेभ्यो ङीप् । कर्त्री । दण्डिनी ॥

उगितश्च ४ । १ । ६ ॥

पचन्ती । भवन्ती । दीव्यन्ती । अत्र प्रागुक्तनुम् संग्रहपद्यमनुसन्धेयम् । भांती भाती । अदती । जुह्वती । सुन्वती । तुदन्ती तुदती । रुन्धती । तन्वती । क्रीणन्ती क्रीणती । भविष्यन्ती भविष्यती उगिदचामिति सूत्रेऽच्ग्रहणेन धातोश्चेदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेव इति नियम्यते । तेनेह न । उखास्रत् । क्विप् । अनिदिताम् इति नलोपः । पर्णध्वत् । अञ्चतेस्तु स्यादेव । प्राची । प्रतीची ॥

वनो र च ४ । १ । ७ ॥

वन्नन्तात्तदन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् रश्चान्तादेशः । वन्निति ङ्वनिप्क्वनिब्वनिपां सामान्यग्रहणम् । प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम् । तेन प्रातिपदिकविशेषणात्तदन्तान्तमपि लभ्यते । सुत्वानमतिक्रान्ता अतिसुत्वरी । अतिधीवरी । शर्वरी ॥

वनो न हश इति वक्तव्यम् ॥

हशन्ताद्धातोर्विहितो यो वन् तदन्तात्तदन्तान्ताच्च प्रातिपदिकान्न ङीब् रश्च नेत्यर्थः । ओणृ अपनयने । वनिप् । विड्वनोः इत्यात्वम् । अवावा ब्राह्मणी राजयुध्वा ॥

बहुव्रीहौ वा ॥

बहुधीवरी बहुधीवा पक्षे डाब्वक्ष्यते ॥

पादोऽन्यतरस्याम् ४ । १ । ८ ॥

पाच्छब्दः कृतसमासान्तस्तदन्तात्प्रातिपदिकान्ङीब्वा । द्विपदी द्विपाद् ॥

टाबृचि ४ । १ । ९ ॥

ऋचि वाच्यायां पादन्ताट्टाप् । द्विपदा ऋक् । एकपदा ॥

न षट्स्वस्रादिभ्यः ॥

पञ्च । चतस्रः । पञ्च इत्यत्र नलोपे कृतेऽपि ष्णान्ता षट् इति

पदसंज्ञां प्रति नलोपः सुप्स्वर इति नलोपस्यासिद्धत्वात् । न षट्-स्वस्रादिभ्यः इति न टाप् ॥

मनः ४ । १ । ११ ॥

मन्नन्तान्न ङीप् । सीमा । सीमानौ ॥

अनो बहुव्रीहेः ४ । १ । १२ ॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेर्न ङीप् । बहुयज्वा । बहुयज्वानौ ॥

डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम् ४ । १ । १३ ॥

सूत्रद्वयोपात्ताभ्यां डाब्वा । सीमा । सीमे । सीमानौ । दामा । दामे । दामानौ । न पुंसि दाम इत्यमरः । बहुयज्वा । बहुयज्वे । बहुयज्वानौ ॥

अन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम् ४ । १ । २८ ॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेरुपधालोपिनो वा ङीप् पक्षे डाब्ङीन्निषेधौ । बहुराज्ञी । बहुराज्ञ्यौ । बहुराजे । बहुराजानौ । प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्येत्युक्तम् । सर्विका । कारिका । अतः किम् । नौका । प्रत्ययस्थात् किम् । शक्नोतीति शका । असुपः किम् । बहुपरिव्राजका नगरी । कात् किम् । नन्दना । पूर्वस्य किम् । परस्य मा भूत् । कटुका । तपरः किम् । राका । आपि किम् । कारकः ॥

मामकनरकयोरुपसंख्यानम् ॥

मामिका । नरान् कायतीति नरिका ॥

त्यक्त्यपोश्च ॥

दाक्षिणात्यिका । इहत्यिका ॥

न यासयोः ७ । ३ । ४५ ॥

यत्तदोरस्येत्त्र । यका । सका । यकाम् । तकाम् ॥

त्यकनश्च निषेधः ॥

अधित्यका । उपत्यका ॥

आशिषि वुनश्च न ॥

जीवका । भवका ॥

उत्तरपदलोपे च ❀ ॥

देवदत्तिका देवका ॥

क्षिपकादीनां च न ❀ ॥

क्षिपका । ध्रुवका । कन्यका । चटका ॥

तारका ज्योतिषि ❀ ॥

अन्यत्र तारिका ॥

वर्णका तान्तवे ❀ ॥

अन्यत्र वर्णिका ॥

वर्तका शकुनौ प्राचाम् ❀ ॥

उदीचां तु वर्तिका ॥

अष्टका पितृदेवत्ये ❀ ॥

अष्टिकान्या ॥

सूतकापुत्रिकावृन्दारकाणां वेति वक्तव्यम् ❀ ॥

इह वा अ इति च्छेदः । कात्पूर्वस्याकारादेशो वेत्यर्थः । तेन पुत्रिकाशब्दे ङीन इवर्णस्य पक्षेऽकारः । अन्यत्रेत्वबाधनार्थमकारस्यैव पक्षेऽकारः । सूतिका सूतकेत्यादि ॥

उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः ७ । ३ । ४६ ॥

यकपूर्वस्य स्त्रीप्रत्ययाकारस्य स्थाने योऽकारस्तस्य कात्पूर्वस्येद्वा आपि परे । केणः इति ह्रस्वः । आर्यका आर्यिका । चटकका चटकिका । आतः किम् । सांकाश्ये भवा सांकाशियका । यक इति किम् । अश्विका । स्त्रीप्रत्यय इति किम् । शुभं यातीति शुभंयाः । अज्ञाता शुभंयाः शुभंयिका । धात्वन्तयकोस्तु नित्यम् । सुनयिका । सुपाकिका ॥

इति १५६ अंशाः ।

भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वानञ्पूर्वाणामपि ७ । ३ । ४७ ॥

स्वेत्यन्तं लुप्तषष्ठीकं पदम्। एषामत इद्वा। तदन्तविधिनैव सिद्धे नञ्पूर्वाणामपीति स्पष्टार्थम् । भस्त्राग्रहणमुपसर्जनार्थम् । अन्यस्य तूत्तरसूत्रेण सिद्धम् । एषा द्वा एतयोस्तु सपूर्वयोर्नेत्वम् । अन्तर्वर्तिनीं विभक्तिमाश्रित्य असुपः इति प्रतिषेधात् । अनेषका । परमैषका । अद्वके । परमद्वके । स्वशब्दग्रहणं संज्ञोपसर्जनार्थम् । इह हि आतः स्थाने इत्यनुवृत्तं स्वशब्दस्यैवातो विशेषणम् । नतु द्वेषयोरसंभवात् । नाप्यन्येषामव्यभिचारात् । स्वशब्दस्त्वनुपसर्जनमात्मीयवाची अकजर्हः । अर्थान्तरे तु न स्त्री । संज्ञोपसर्जनीभूतस्तु कप्रत्ययान्तत्वाद्भवत्युदाहरणम् । एवं चात्मीयायां स्विका परमस्विकेति । नित्यमेवेत्वम्। निर्भस्त्रका निर्भस्त्रिका। एषका एषिका। कृतषत्वनिर्देशान्नेह विकल्पः । एतिके एतिकाः । अजका अजिका । ज्ञका ज्ञिका । द्विके द्वके । निःस्वका निःस्विका ॥

अभाषितपुंस्काच्च ७ । ३ । ४८ ॥

आदाचार्याणाम् ७ । ३ । ४९ ॥

गङ्गिका गङ्गाका गङ्गका । उक्तपुंस्कात्तु शुभ्रिका । बहुव्रीहेर्भाषितपुंस्कत्वात्ततो विहितस्य नित्यम् । अज्ञाता अखट्वा अखट्विका । शैषिके कपि तु विकल्प एव ॥

अनुपसर्जनात् ४ । १ । १४ ॥

अधिकारोऽयम्। यूनस्तिः इत्यभिव्याप्य । अयमेव स्त्रीप्रत्ययेषु तदन्तविधिं ज्ञापयति । टिड्ढाणञ् इत्यादि । कुरुचरी । उपसर्जनत्वान्नेह । बहुकुरुचरा । नदट् नदी । वक्ष्यमाणेत्यत्र टित्त्वादुगित्त्वाच्च ङीप्प्रसङ्गः यासुटो ङित्वेन लाश्रयमनुबन्धकार्यं नादेशानाम् इति ज्ञापनान्न भवति । श्नः शानचः शित्वेन क्वचिदनुबन्धकार्येऽप्यनल्विधाविति निषेधज्ञापनाद्वा । सौपर्णेयी । ऐन्द्री । औत्सी। ऊरुद्वयसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । लावणिकी । यादृशी । इत्वरी । ताच्छीलिके णेऽपि चौरी ॥

नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् ❀ ॥

स्त्रैणी । पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यंकरणी । तरुणी । तलुनी॥

यञश्च ४ । १ । १६ ॥

यञन्तात्स्त्रिया ङीप् । अकारलोपे कृते ॥

हलस्तद्धितस्य ६ । ४ । १५० ॥

हल उत्तरस्य तद्धितयकारस्योपधाभूतस्य लोपः ईति परे । गार्गी॥

अनपत्याधिकारस्थान्न ङीप् ❀ ॥

द्वीपे भवा द्वैप्या । अधिकारग्रहणान्नेह । देवस्यापत्यं दैव्या । देवाद्यञञौ इति हि यञ्प्राग्दीव्यतीयो न त्वपत्याधिकारपठितः ॥

प्राचां ष्फस्तद्धितः ४ । १ । १७ ॥

यञन्तात्ष्फो वा स्त्रियाम् । स च तद्धितः। ष इत् । तद्धितान्तत्वात्प्रातिपदिकत्वम् । ष्फेणोक्तेऽपि स्त्रीत्वे षित्त्वसामर्थ्यात् षिद्गौरादिभ्य इति ङीष् । गार्ग्यायणी ॥

सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः ४ । १ । १८ ॥

लोहितादिभ्यः कतशब्दान्तेभ्यो यञन्तेभ्यो नित्यं ष्फः । लौहित्यायनी । कात्यायनी ॥

कौरव्यमाण्डूकाभ्यां च ४ । १ । १९ ॥

आभ्यां ष्फः टाब्ङीपोरपवादः । कुर्वादिभ्यो ण्यः । कौरव्यायणी । ढक्च मण्डूकात् इत्यण् । माण्डूकायनी ॥

आसुरेरुपसंख्यानम् ❀ ॥

आसुरायणी ॥

वयसि प्रथमे ४ । १ । २० ॥

कुमारी ॥

वयस्य चरम इति वाच्यम् ❀ ॥

वधूटी । चिरण्टी । वधूटचिरण्टशब्दौ यौवनवाचिनौ । अतः
. । शिशुः ॥

कन्याया न ॥

कन्यायाः कनीन च इति निर्देशात् ॥

द्विगोः ४ । १ । २१ ॥

त्रिलोकी । द्विगोः किम् । त्र्यनीका सेना ॥

अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि ४ । १ । २२ ॥

अपरिमाणान्ताद्बिस्ताद्यन्ताच्च द्विगोर्ङीप् न तद्धितलुकि सति । पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा । आर्हीयष्ठक् । अध्यर्ध इति लुक् । द्वौ बिस्तौ पचति द्विबिस्ता । द्व्याचिता । द्विकम्बल्या । परिमाणात्तु द्व्याढकी तद्धितलुकि किम् । समाहारे पञ्चाश्वी ॥

काण्डान्तात् क्षेत्रे ४ । १ । २३ ॥

क्षेत्रे यः काण्डान्तो द्विगुस्ततो न ङीप् तद्धितलुकि द्वे काण्डे प्रमाणमस्या द्विकाण्डा क्षेत्रभक्तिः । प्रमाणे द्वयसज् इति विहितस्य मात्रचः । प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम् इति लुक् । क्षेत्रे किम् । द्विकाण्डी रज्जुः ॥

पुरुषात्प्रमाणेऽन्यतरस्याम् ४ । १ । २४ ॥

प्रमाणे यः पुरुषस्तदन्ताद्द्विगोर्ङीब्वा तद्धितलुकि । द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्याः सा द्विपुरुषी द्विपुरुषा वा परिखा ॥

ऊधसोऽनङ् ५ । ४ । १३१ ॥

ऊधोन्तस्य बहुव्रीहेरनङादेशः स्त्रियाम्। इत्यनङि कृते डाब्ङी-न्निषेधेषु प्राप्तेषु ॥

बहुव्रीहेरूधसो ङीष् ४ । १ । २५ ॥

ऊधोन्ताद्बहुव्रीहेर्ङीष् स्त्रियाम् । कुण्डोध्नी । स्त्रियां किम् । कुण्डोधो धेनुकम् । इहानङपि न । तद्धितो स्त्रियाम् इत्युपसंख्यानात् ॥

संख्याव्ययादेर्ङीप् ४ । १ । २६ ॥

ङीपोऽपवादः। द्व्यूध्नी । अत्यूध्नी । बहुव्रीहेरित्येव । ऊधोऽतिक्रान्ता अत्यूधाः ॥

दामहायनान्ताच्च ४ । १ । २७ ॥

संख्यादेर्बहुव्रीहेर्दामान्ताद्धायनान्ताच्च ङीप् । दामान्ते डाप्प्रतिषेधयोः प्राप्तयोर्हायनान्ते टापि प्राप्ते वचनम् । द्विदाम्नी । अव्ययग्रहणाननुवृत्तेरुद्दामा वडवेत्यत्र डान्निषेधावपि पक्षे स्तः । द्विहायनी बाला ॥

इति १५७ अंशः ।

त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम् *

वयोवाचकस्यैव हायनस्य ङीब् णत्वं चेष्यते । त्रिहायणी।चतुर्हायणी । वयसोऽन्यत्र । द्विहायना त्रिहायना चतुर्हायना शाला॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ४ । १ । २९ ॥

अन्नन्ताद्बहुव्रीहेरुपधालोपिनो ङीप् संज्ञाछन्दसोः । सुराज्ञी नाम नगरी । अन्यत्र पूर्वेण विकल्प एव । वेदे तु शतमूर्ध्नी ॥

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्यकृतसुमङ्गलभेषजाच्च ४ । १ । ३० ॥

एभ्यो नवभ्यो नित्य ङीप् संज्ञाछन्दसोः । अथोत इन्द्रः केवलीर्विशः। मामकी । भागधेयी । पापी । अपरी । समानी । आर्यकृती । सुमङ्गली । भेषजी । अन्यत्र केवला इत्यादि। मामकग्रहणं नियमार्थम्। अण्णन्तत्वादेव सिद्धेः। तेन लोकेऽसंज्ञायां मामिका॥

अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक् ४ । १ । ३२ ॥

एतयोः स्त्रियां नुक् । सन्नेभ्यो ङीप् । गर्भिण्यां जीवद्भर्तृकायां च प्रकृतिभागौ निपात्येते । तत्रान्तरस्त्यस्या गर्भ इति विग्रहेऽन्तः-

[illegible]

मतुन्निपात्यते । पतिवत्नी इत्यत्र तु वत्वं निपात्यते । अन्तर्वत्नी । पतिवत्नी । प्रत्युदाहरणं तु अंतरस्त्यस्यां शालायां घटः । पतिमती पृथिवी ॥

पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ४ । १ । ३३ ॥

पतिशब्दस्य नकारादेशः यज्ञेन संबन्धे । वसिष्ठस्य पत्नी । तत्कर्तृकयज्ञस्य फलभोक्त्रीत्यर्थः । दंपत्योः सहाधिकारात् ॥

विभाषा सपूर्वस्य ४ । १ । ३४ ॥

पतिशब्दान्तस्य सपूर्वस्य प्रातिपदिकस्य नो वा। गृहस्य पतिः गृहपतिः गृहपत्नी । अनुपसर्जनस्य इतीहोत्तरार्थमनुवृत्तमपि न पत्युर्विशेषणं किंतु तदन्तस्य तेन बहुव्रीहावपि। दृढपत्नी दृढपतिः। वृषलपत्नी वृषलपतिः। अथ वृषलस्य पत्नी इति व्यस्ते कथमिति चेत् पत्नीव पत्नीत्युपचारात् । यद्वा । आचारक्विबन्तात्कर्तरि क्विप् । अस्मिंश्च पक्षे पत्नियौ पत्नियः इतीयङ्विषये विशेषः । सपूर्वस्य किम् । गवां पतिः स्त्री ॥

नित्यं सपत्न्यादिषु ४ । १ । ३५ ॥

पूर्वविकल्पापवादः । समानस्य सभावोऽपि निपात्यते । समानः पतिर्यस्याः सा सपत्नी । एकपत्नी । वीरपत्नी ॥

पूतक्रतोरै च ४ । १ । ३६ ॥

अस्य स्त्रियामै आदेशो ङीप् च। इयं त्रिसूत्री पुंयोग एवेष्यते। पूतक्रतोः स्त्री पूतक्रतायी।यया तु क्रतवः पूताः स्यात्पूतक्रतुरेव सा॥

वृषाकप्यग्निकुसितकुसिदानामुदात्तः ४ । १ । ३७ ॥

एषामुदात्त ऐ आदेशः ङीप् च । वृषाकपेः स्त्री वृषाकपायी । हराविष्णू वृषाकपी इत्यमरः । वृषाकपायी श्रीगौर्योः इति च । अग्नायी । कुसितायी । कुसिदायी । कुसिदशब्दो ह्रस्वमध्यो नतु दीर्घमध्यः ॥

मनोरौ वा ४ । १ । ३८ ॥

मनुशब्दस्यौकारादेशः उदात्तैकारश्च वा ताभ्यां संनियोगशिष्टो ङीप् च । मनोः स्त्री मनायी मनावी मनुः ॥

वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४ । १ । ३९ ॥

वर्णवाची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्तादनुपसर्जनात्प्रातिपदिकाद्वा ङीप् । तकारस्य नकारादेशश्च । एनी एता । रोहिणी रोहिता । वर्णानां तणतिनितान्तानाम् इति फिट्सूत्रेणाद्युदात्तः । श्येण्या च शलल्या इति गृह्यम् । त्रीण्येतान्यस्या इति बहुव्रीहिः । अनुदात्तात् किम् । श्वेता । घृतादीनां च इत्यन्तोदात्तोऽयम् । अत इत्येव । शितिः स्त्री ॥

पिशङ्गादुपसंख्यानम् ❀ ॥

पिशङ्गी पिशङ्गा ॥

असितपलितयोर्न ❀ ॥

असिता । पलिता ॥

छन्दसि क्रमेके ❀ ॥

असिक्नी । पलिक्नी । अवदातशब्दस्तु न वर्णवाची किंतु विशुद्धिवाची । तेन अवदाता इत्येव ॥

अन्यतो ङीप् ४ । १ । ४० ॥

तोपधभिन्नाद्वर्णवाचिनोऽनुदात्तान्तात्प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् । कल्माषी । सारङ्गी । लघावन्ते द्वयोश्च बह्वचो गुरुः इति मध्योदात्तावेतौ । अनुदात्तान्तात् किम् । कृष्णा । कपिला ॥

षिद्गौरादिभ्यश्च ॥

गौरी । नर्त्तकी । अनडुही । अनड्वाही ॥

पिप्पल्यादयश्च ❀ ॥

आकृतिगणोऽयम् ॥

सूर्यतिष्यागस्त्यमत्स्यानां य उपधायाः६।४।१४९॥

भ्रस्योपधाया यस्य लोपः स चेद्यः सूर्याद्यवयवः ॥

मत्स्यस्य ङ्याम् ॥

सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च ॥

तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् ॥

मत्सी । मातरि पितृ इति पित्रादेव सिद्धे गौरादिषु मातामहीशब्दपाठादनित्यः पितां ङीष् । दंष्ट्रा ॥

जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककबराद्वृत्त्यमत्रावपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनायोविकारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु ४ । १ । ४२ ॥

एकादशभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः क्रमाद्वृत्त्यादिष्वर्थेषु ङीष् । जानपदी वृत्तिश्चेत् । अन्या तु जानपदी । उत्सादित्वादणन्तत्वेन टिड्ढ इति ङीप्याद्युदात्तः । कुण्डी अमत्रं चेत् । कुण्डान्या । कुडि दाहे गुरोश्च हलः इत्यप्रत्ययः । यस्तु, अमृते जारजः कुण्डः इति मनुष्यजातिवचनस्ततो जातिलक्षणो ङीष् भवत्येव । अमत्रे हि स्त्रीविषयत्वाभावादप्राप्तो ङीष् विधीयते न तु नियम्यते । गोणी आवपनं चेत् । गोणान्या । स्थली अकृत्रिमा चेत् । स्थलान्या । भाजी श्राणा चेत् । भाजान्या । नागी स्थूला चेत् । नागान्या । गजवाची नागशब्दः स्थौल्यगुणयोगादन्यत्र शिलादौ प्रयुक्त उदाहरणम् । नागी शिला । सर्पवाची तु दैर्घ्यगुणयोगाद् अन्यत्र रज्ज्वादौ प्रयुक्तः प्रत्युदाहरणम् । नागा रज्जुः । काली वर्णश्चेत् । कालान्या । नीली अनाच्छादनं चेत् । नीलान्या । नील्या रक्ता शाटीत्यर्थः। नील्या अन् वक्तव्य इत्यन् । अनाच्छादनेऽपि न सर्वत्र किंतु नीलादोषधौ नीली । प्राणिनि च नीली गौः । संज्ञायां वा । नीली नीला । कुशी अयोविकारश्चेत् । कुशान्या । कामुकी मैथुनेच्छा चेत् । कामुकान्या । कबरी केशानां संनिवेशश्चेत् । कबरान्या । चित्रेत्यर्थः ॥

इति १५८ अंशाः ।

शोणात्प्राचाम् ४ । १ । ४३ ॥

शोणी शोणा । वोतो गुणवचनात् । मृद्वी मृदुः । उतः किम् । शुचिः । गुण इति किम् । आखुः ॥

खरुसंयोगोपधान्न ❀ ॥

खरुः पतिंवरा कन्या । पाण्डुः ॥

बह्वादिभ्यश्च ४ । १ । ४५ ॥

एभ्यो वा ङीप् । बह्वी बहुः ॥

कृदिकारादक्तिनः ❀ ॥

रात्रिः रात्री । सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके । शकटिः शकटी । अक्तिन्नर्थात् किम् । अजननिः । क्तिन्नन्तत्वादप्राप्ते विध्यर्थं पद्धतिशब्दो गणे पठ्यते । हिमकाषिहतिषु च इति पद्भावः । पद्धतिः पद्धती । पुंयोगादाख्यायाम् । गोपी ॥

पालकान्तान्न ❀ ॥

गोपालिका । अश्वपालिका ॥

सूर्याद्देवतायां चाब्वाच्यः ❀ ॥

सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या । देवतायां किम् । सूरी । कुन्ती मानुषीयम् । न केवलं दाम्पत्यलक्षण एव पुंयोगः किन्तु जन्यजनकलक्षणोऽपि । तेन कैकयी देवकीत्यत्रापीति केचित् । परे तु दाम्पत्यलक्षण एव पुंयोगः । कैकयी । देवकीत्यत्र अपत्यप्रत्यये ङीप् संज्ञापूर्वकत्वादचामादेर्न वृद्धिरित्याहुः इति प्रागुक्तम् ॥

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ४ । १ । ४९ ॥

एषामानुगागमः स्यात् ङीष्च । इन्द्रादीनां षण्णां मातुलाचार्ययोश्च पुंयोग एवेष्यते । तत्र ङीपि सिद्धे आनुगागममात्रं विधीयते । इतरेषां चतुर्णामुभयम् । इन्द्राणी ॥

हिमारण्ययोर्महत्त्वे ॥

महद्धिमं हिमानी। अरण्यानी॥

यवाद्दोषे ॥

दुष्टो यवो यवानी॥

यवनाल्लिप्याम् ॥

यवनानां लिपिर्यवनानी॥

मातुलोपाध्याययोरानुग्वा ॥

मातुलानी मातुली। उपाध्यायानी उपाध्यायी॥

या तु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वा ङीष् वाच्यः ॥

उपाध्यायी उपाध्याया॥

आचार्यादणत्वं च ॥

आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी। पुंयोग इत्येव। आचार्या स्वयं व्याख्यात्री॥

अर्यक्षत्रियाभ्यां वा ॥

स्वार्थे। अर्याणी अर्या। स्वामिनी वैश्या वेत्यर्थः। क्षत्रियाणी क्षत्रिया। पुंयोगे तु अर्यी। क्षत्रियी। कथं ब्रह्माणी इति। ब्रह्माणमानयती जीवयतीति कर्मण्यण्॥

क्रीतात्करणपूर्वात् ४।१।५० ॥

क्रीतान्तादद‍न्तात्करणादेः स्त्रियां ङीष्। वस्त्रक्रीती। क्वचिन्न। धनक्रीता॥

क्तादल्पाख्यायाम् ४।१।५१ ॥

करणादेः क्तान्तात्स्त्रिया ङीष् अल्पत्वे द्योत्ये॥ अभ्रलिप्ती द्यौः। अल्पाख्याया किम्। चन्दनलिप्ताङ्गना॥

बहुव्रीहेश्चान्तोदात्तात् ४।१।५२ ॥

बहुव्रीहेः क्तान्तादन्तोदात्तादद‍न्तात् स्त्रियां ङीष्॥

जातिपूर्वादिति वक्तव्यम् ❀ ॥

तेन बहुनञ्सुकालसुखादिपूर्वान्न । ऊरुभिन्नी । नेह । बहुकृता ॥

जानान्तान्न ❀ ॥

दन्तजाता ॥

पाणिगृहीती भार्यायाम् ❀ ॥

पाणिगृहीतान्या ॥

अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा ४ । १ । ५३ ॥

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पोऽयम् । सुरापीती सुरापीता । अन्तोदात्तात् किम् । वस्त्रच्छन्ना । अनाच्छादनात् इत्युदात्तनिषेधः । अत एव पूर्वेणापि न ङीप् । स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादित्यादि । अतिकेशी अतिकेशा । संयोगोपधात्तु सुगुल्फा । स्वाङ्गं त्रिधा । अद्रवन्मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम् । सुस्वेदा द्रवत्वात् । सुज्ञाना अमूर्तत्वात् । सुमुखा शाला अप्राणिस्थत्वात् । सुशोफा विकारजत्वात् । अतत्स्थं तत्र दृष्टं च । सुकेशी सुकेशा वा रथ्या । अप्राणिस्थस्यापि प्राणिनि दृष्टत्वात् । तेन चेत्तत्तथायुतम् । सुस्तनी सुस्तना वा प्रतिमा । प्राणिवत्प्राणिसदृशे स्थितत्वात् ॥

नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च ४ । १ । ५५ ॥

एभ्यो वा ङीप् । आद्ययोर्बह्वज्लक्षणो निषेधो बाध्यते । पुरस्तादपवादन्यायात् । ओष्ठादीनां पञ्चानां तु असंयोगोपधात् इति पर्युदासे प्राप्ते वचनं मध्येऽपवादन्यायात् । सहनञ्लक्षणस्तु प्रतिषेधः परत्वादस्य बाधकः । तुङ्गनासिकी तुङ्गनासिकेत्यादि । नेह । सहनासिका । अनासिका । अत्र वृत्तिः ॥

अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम् ❀ ॥

स्वङ्गी स्वङ्गेत्यादि । एतच्चानुक्तसमुच्चयार्थेन चकारेण संग्राह्यमिति केचित् । भाष्यादनुक्तत्वादप्रमाणम् इति प्रामाणिकाः । अत्र वार्तिकानि ॥

पुच्छाच्च ॥

सुपुच्छी सुपुच्छा ॥

कबरमणिविषशरेभ्यो नित्यम् ॥

कबरं चित्रं पुच्छं यस्याः सा कबरपुच्छी मयूरीत्यादि ॥

उपमानात्पक्षाच्च पुच्छाच्च ॥

नित्यमित्येव । उलूकपक्षी शाला । उलूकपुच्छी सेना ॥

न क्रोडादिबह्वचः ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडादेर्बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष् । कल्याणक्रोडा । अश्वानामुरः क्रोडा । आकृतिगणोऽयम् । सुजघना ॥

इति १५९ अंशाः ।

सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च ४ । १ । ५७ ॥

सहेत्यादित्रिकपूर्वान्न ङीष् । सकेशा । अकेशा । विद्यमान-नासिका ॥

नखमुखात्संज्ञायाम् ४ । १ । ५८ ॥

ङीष् न । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायां किम् । ताम्रमुखी कन्या ॥

दिक्पूर्वपदान् ङीप् ४ । १ । ६० ॥

दिक्पूर्वपदात्स्वाङ्गान्तात्प्रातिपदिकात्परस्य ङीषो ङीबादेशः । प्राङ्मुखी । आद्युदात्तं पदम् ॥

वाहः ४ । १ । ६१ ॥

वाहन्तात्प्रातिपदिकान्ङीप् ङीषेवानुवर्तते न ङीप् । दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे ॥

सख्यशिश्वीति भाषायाम् ४ । १ । ६२ ॥

इतिशब्दः प्रकारे भाषायाम् इत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । छन्द-स्यपि क्वचित् । सखी । अशिश्वी । आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः । जातेरस्त्रीविषयादयोपधात् । आकृतिग्रहणा जातिः । अनुगतसं-

स्यानव्यङ्गचेत्यर्थः । तटी । लिङ्गानां च न सर्वभाक् । सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या । असर्वलिङ्गत्वे सत्येकस्यां व्यक्तौ कथनाद्व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिः इति लक्षणान्तरम् । वृषली । सत्यन्तं किम् । शुक्ला । सकृत् इत्यादि किम् । देवदत्ता । गोत्रं च चरणैः सह । अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची चशब्दो जातिकार्यं लभत इत्यर्थः । औपगवी । कठी । बह्वृची । ब्राह्मणीत्यत्र तु शार्ङ्गरवादिपाठान् ङीना ङीष्बाध्यते । जातेः किम् । मुण्डा । अस्त्रीविषयात् किम् । बलाका । अयोपधात् किम् । क्षत्रिया ॥

योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ❀ ॥

हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्य इति लोपः। मानुषी ॥

मत्स्यस्य ङ्याम् ❀ ॥

मत्सी ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ४।१।६४ ॥

पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः स्त्रीविषयादपि ङीप् । ओदनपाकी । शंकुकर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोवाली । ओषधिविशेषे रूढा एते ॥

इतो मनुष्यजातेः ४ । १ । ६५ ॥

ङीप् । दाक्षी । योपधादपि । उदमेयस्यापत्यं औदमेयी । मनुष्य इति किम् । तित्तिरिः ॥

ऊङुतः ४ । १ । ६६ ॥

उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् । कुरूः । कुरुनादिभ्यो ण्यः । तस्य स्त्रियामवन्ति इत्यादिना लुक् । अयोपधात् किम् । अध्वर्युः ॥

अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम् ❀ ॥

रज्ज्वादिपर्युदासादुवर्णान्तेभ्य एव। अलाब्वा। कर्कन्ध्वा। अन-

योर्दीर्घान्तत्वेऽपि नोङ् धात्वोः इति विभक्त्युदात्तत्वप्रतिषेध ऊङः फलम्। प्राणिजातेस्तु कृकवाकुः। रज्ज्वादेस्तु रज्जुः। हनुः॥

बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ४।१।६७॥

स्त्रियामूङ्। भद्रबाहूः। संज्ञायां किम्। वृत्तबाहुः॥

पङ्गोश्च ४।१।६८॥

पंगूः॥

श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च ॥

चादूङ्। पुंयोगलक्षणस्य ङीषोऽपवादः। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्वादयः। श्वश्रूः॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९॥

उपमानवाचिपूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ्। करभोरूः॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ४।१।७०॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरूः। सैव शफोरूः। शफौ खुरौ ताविव संश्लिष्टत्वादुपचारात्। लक्षणशब्दादर्श आद्यच्। लक्षणोरूः। वामोरूः॥

सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

हितेन सह सहितौ ऊरू यस्याः सा सहितोरूः। सहेते इति सहौ ऊरू यस्याः सा सहोरूः। यद्वा विद्यमानवचनस्य सहशब्दस्य ऊर्वतिशयप्रतिपादनाय प्रयोगः॥

संज्ञायाम् ४।१।७२॥

कद्रुकमण्डल्वोः संज्ञायां स्त्रियामूङ्। कद्रूः। कमण्डलूः। संज्ञायां किम्। कद्रुः। कमण्डलुः। अच्छन्दोऽर्थं वचनम्॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन्। शार्ङ्गरवी वेदी। जातेः इत्यनुवृत्तेः पुंयोगे ङीषेव॥

स्थानव्यङ्ग्चेत्यर्थः । तटी । लिङ्गानां च न सर्वभाक् । सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या । असर्वलिङ्गत्वे सत्येकस्या व्यक्तौ कथनाद्व्यक्त्यन्तरे कथनं विनापि सुग्रहा जातिः इति लक्षणान्तरम् । वृषली । सत्यन्तं किम् । शुक्ला । सकृत् इत्यादि किम् । देवदत्ता । गोत्रं च चरणैः सह । अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची चशब्दो जातिकार्यं लभत इत्यर्थः । औपगवी । कठी । बह्वृची । ब्राह्मणीत्यत्र तु शार्ङ्गरवादिपाठान् ङीना ङीष्बाध्यते । जातेः किम् । मुण्डा । अस्त्रीविषयात् किम् । बलाका । अयोपधात् किम् । क्षत्रिया ॥

योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः ॥

हयी । गवयी । मुकयी । हलस्तद्धितस्य इति लोपः। मानुषी ॥

मत्स्यस्य ङ्याम् ॥

मत्सी ॥

पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलवालोत्तरपदाच्च ४।१।६४॥

पाकाद्युत्तरपदाज्जातिवाचिनः स्त्रीविषयादपि ङीष् । ओदनपाकी । शंकुकर्णी । शालपर्णी । शङ्खपुष्पी । दासीफली । दर्भमूली । गोवाली । ओषधिविशेषे रूढा एते ॥

इतो मनुष्यजातेः ४ । १ । ६५ ॥

ङीष् । दाक्षी । योपधादपि । उदमेयस्यापत्यं औदमेयी । मनुष्य इति किम् । तित्तिरिः ॥

ऊङुतः ४ । १ । ६६ ॥

उकारान्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामूङ् । कुरूः । कुरुनादिभ्यो ण्यः । तस्य स्त्रियामवन्ति इत्यादिना लुक् । अयोपधात् किम् । अध्वर्युः ॥

अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुपसंख्यानम् ॥

रज्ज्वादिपर्युदासादुवर्णान्तेभ्य एव । अलाब्वा । कर्कन्ध्वा । अन-

योर्दीर्घान्तत्वेऽपि नोङ् धात्वोः इति विभक्त्युदात्तत्वप्रतिषेध ऊङः फलम्। प्राणिजातेस्तु कृकवाकुः। रज्ज्वादेस्तु रज्जुः। हनुः॥

बाह्वन्तात्संज्ञायाम् ४ । १ । ६७ ॥

स्त्रियामूङ्। भद्रबाहूः। संज्ञायां किम्। वृत्तबाहुः॥

पङ्गोश्च ४ । १ । ६८ ॥

पंगूः॥

श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च ❀ ॥

चादूङ्। पुंयोगलक्षणस्य ङीषोऽपवादः। लिङ्गविशिष्टपरिभाषया स्वादयः। श्वश्रूः॥

ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४ । १ । ६९ ॥

उपमानवाचिपूर्वपदमूरूत्तरपदं यत्प्रातिपदिकं तस्मादूङ्। करभोरूः॥

संहितशफलक्षणवामादेश्च ४ । १ । ७० ॥

अनौपम्यार्थं सूत्रम्। संहितोरूः। सैव शफोरूः। शफौ खुरौ ताविव संश्लिष्टत्वादुपचारात्। लक्षणशब्दादर्श आद्यच्। लक्षणोरूः। वामोरूः॥

सहितसहाभ्यां चेति वक्तव्यम् ❀ ॥

हितेन सह सहितौ ऊरू यस्याः सा सहितोरूः। सहेते इति सहौ ऊरू यस्याः सा सहोरूः। यद्वा विद्यमानवचनस्य सहशब्दस्य ऊर्वतिशयप्रतिपादनाय प्रयोगः॥

संज्ञायाम् ४ । १ । ७२ ॥

कद्रुकमण्डल्वोः संज्ञायां स्त्रियामूङ्। कद्रूः। कमण्डलूः। संज्ञायां किम्। कद्रुः। कमण्डलुः। अच्छन्दोऽर्थं वचनम्॥

शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादेरञो योऽकारस्तदन्ताच्च जातिवाचिनो ङीन्। शार्ङ्गरवी। बैदी। जातेः इत्यनुवृत्तेः पुंयोगे ङीषेव॥

नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥

इति गणसूत्रम् । नारी ॥

यङश्चाप् ४ । १ । ७४ ॥

यङन्तात् स्त्रियां चाप् । यङ्ष्यङोः सामान्यग्रहणम् । आम्बष्ठ्या । कारीषगन्ध्या ॥

पाद्यभश्चाब्राच्यः ॥

पौतिमाष्या ॥

आवट्याच्च ४ । १ । ७५ ॥

अस्माचाप् । यञश्च इति ङीपोऽपवादः । अवटशब्दो गर्गादिः । आवट्या ॥

तद्धिताः ॥

आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयं प्रागुक्तः ॥

यूनस्तिः ४ । १ । ७७ ॥

युवन्शब्दात्तिप्रत्ययः स च तद्धितः । लिङ्गविशिष्टपरिभाषया सिद्धे तद्धिताधिकार उत्तरार्थः । युवतिः । अनुपसर्जनादित्येव । बहवो युवानो यस्यां सा बहुयुवा । युवतीति तु यौतेः शत्रन्तान्ङीपि बोध्यम् ॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः ॥

इति १६० अंशाः ।

इति चतुर्थोऽध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः । इति द्वितीय खण्डस्य द्वितीयो भागः ।

पूर्णो द्वितीयः खण्डोऽयं श्रीशानुग्रहतः सुखम् ।
संपूर्णकल्पा व्युत्पत्तिं छात्राणां विदधात्यसौ ॥ १ ॥

इति श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितकृतसिद्धान्तकौमुदीप्रतिबिम्बभूतायाः सुगमकौमुद्या द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥ २ ॥